महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित
श्रीभागवत विवृति

सुबोधिनी

हिन्दी भावानुवाद

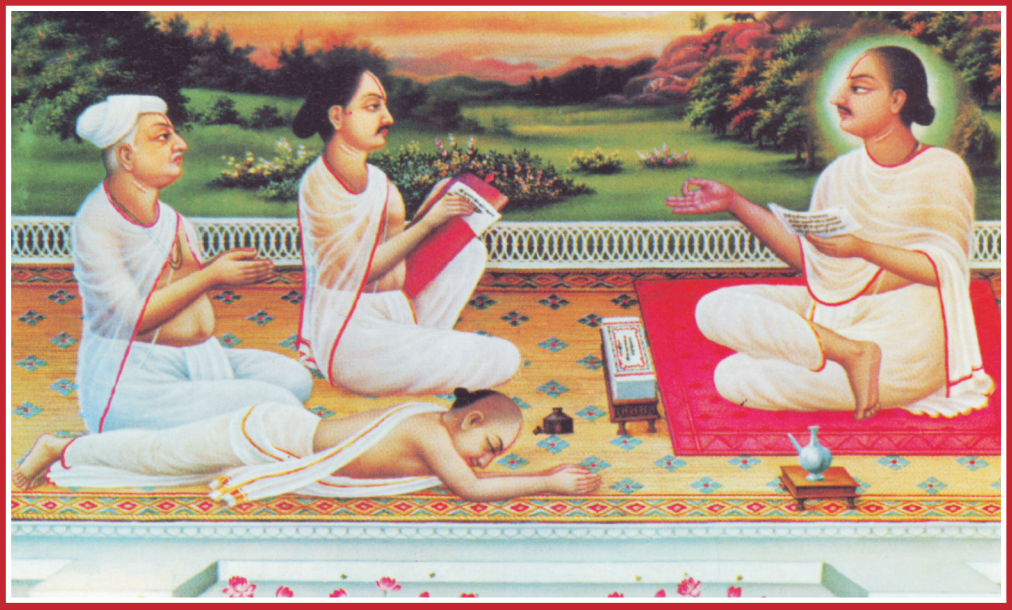

दशमस्कन्ध

राजस प्रमाण–प्रमेय प्रकरण

(अध्याय ३३–४१)

खंड ११/क

जय श्रीकृष्ण

श्रीवल्लभाधीशो जयति

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित श्रीभागवत विवृति

'सुबोधिनी'

दशम स्कन्ध

राजस प्रमाण–प्रमेय प्रकरण

(अध्याय ३३/३६–४६/४९)

हिन्दी भाषानुवाद

खंड ११

अनुवादक:
गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु(पुष्करणा), जोधपुर

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य

... तब व्यासजीने भागवतपुराण प्रकट किया जिसके अभ्यास (श्रवण–स्मरण–कीर्तन) से लोग मुक्त हो सकते हैं, बशर्ते भागवतका आजीविकार्थ उपजीवन न किया जाय. यह श्रीमद्भागवत एक श्रेष्ठ साधन है. अतः प्रयत्नपूर्वक, किसी लौकिक हेतु या दम्भ के बिना, आदरके साथ इसका पठन करना चाहिये. भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कण्ठमें ही क्यों न अटक जायें परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं ही करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके अन्य किसी भी उपायसे अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये

(तत्त्वार्थदीपनिबन्ध.२।६७, २४३, २५४).

जो लोग भगवद्गुणगानको अपनी आजीविकाका साधन बनाते हैं ऐसे गुणगानकर्ता गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये जमीनमें खोदे गये गहरे गढ्ढेकी तरह होते हैं. (जलभेद.५)

मुंह–हाथ–पांव आदि धोनेमें प्रयुक्त गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे अधम होते हैं दक्षिणा लेकर कथा करनेवाले ...आशय यह है कि गढ्ढेमें भरे हुवे प्रक्षालनोच्छिष्ट गंदे जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंकेलिये ग्राह्य नहिं होता ... पौराणिकोंके भावोंका निरूपण करनेके बाद जो गायकोंका निरूपण किया गया है वह यह दिखलानेकेलिए कि (आजीविकार्थ पुराणोंका उपयोग करनेवाले) पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य नीच ही होते हैं.

(श्रीकल्याणरायविरचित जलभेदविवृति ५).

।। प्रासंगिक ।।

यह ज्ञापित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित श्रीभागवतकी विवृति 'सुबोधिनी'के हिन्दी अनुवादका पुनः प्रकाशन किया जा रहा है.

यह तो सुविदित है कि मूल संस्कृत सुबोधिनीका पुनः प्रकाशन पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीके सम्पादकत्वमें श्रीवल्लभविद्यापीठश्रीविट्ठलेश-प्रभुचरण आश्रम ट्रस्ट, कोल्हापुर द्वारा किया गया है.

सुबोधिनीके गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी, गो.वा.श्रीमग्नलाल शास्त्री तथा गो.वा.श्रीव्रजलाल सांकळीया आदि विद्वानों द्वारा लिखित गुर्जरभाषानुवादका पुनः प्रकाशन श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी द्वारा किया जा चुका है.

इसी तरह श्रीरामानुजमतानुयायी किन्तु सुबोधिनीके परम प्रेमी श्रीटी. रामनन्ने सुबोधिनीका अंग्रेजी अनुवाद करके उसे सद्गुरु पब्लिकेशन्स, दिल्ली द्वारा मूल संस्कृत सहित प्रसिद्ध करवाया है, जो २४ खंडोंमें उपलब्ध होता है. यह अंग्रेजी अनुवाद श्रीरामन्ने श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल, जोधपुर द्वारा प्रकाशित, सम्प्रति अनुपलब्ध, सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादका ही किया है. वे लिखते हैं:

> "I owe a deep debt of gratitude to Sri Subodhini Parakashan Mandal (Jodhpur). My traslation is, to a very large extent, based on this book and I am, indeed, very grateful for this Mandal".

सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादका प्रकाशन ''श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल''(जोधपुर) नामकी संस्थाको स्थापित करके उसके द्वारा गो.वा. श्रीनन्दलालजी मानधना,जोधपुर ने करवाया था. इनको इस भगीरथ कार्यमें गो.वा.श्रीरामचन्द्र(नन्ददास) वर्मा का साथ मिला. इन दोनों महानुभावोंकी निष्ठा प्रेरणा उत्साह और समर्पण से पुष्टिमार्गके अनेक विद्वानोंने मिल-जुलकर सुबोधिनीका अनुवाद तैयार किया. इनमें उल्लेखनीय हैं:

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु (जोधपुर)

दशमस्कन्धके नब्बे अध्यायोमेंसे चोहत्तर अध्याय;

तृतीय स्कन्धके १ से २१ अध्याय.

गो.वा.श्रीआनन्दीलालजी शास्त्री (श्रीनाथद्वारा)

प्रथम स्कन्धके १ से ९ अध्याय, दशमस्कन्धका चौथा अध्याय.

गो.वा.श्रीनारायणप्रसाद व्यास(कोटा)

प्रथमस्कन्धके १० से १९ अध्याय.

गो.वा.पं.गोरधनजी शास्त्री(कोटा)

दशमस्कन्धके चौदह अध्याय,

गो.वा.श्रीनारायणजी त्रिपाठी(नाथद्वारा)

द्वितीय स्कन्धके १ से ४ अध्याय. तृतीय स्कन्धके २२ से ३३ अध्याय .

गो.वा.श्रीरमानाथ शास्त्री(कांकरोली)

द्वितीय स्कन्धके ५ से १० अध्याय.

गो.वा.श्रीसबलकिशोर चतुर्वेदी (मथुरा)

दशमस्कन्धका तीसरा अध्याय.

इस अनुवादके संशोधन तथा सम्पादन कार्यमें पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ-पार्ला), गो.वा.श्रीनारायणजी त्रिपाठी (श्रीनाथद्वारा) तथा गो.वा.श्रीरणछोड कलाधर भट्ट(मुम्बई) का भी योगदान रहा है. पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ-पार्ला) तो ''श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल, जोधपुर'' के संरक्षक भी हैं.

इस श्रीभागवत-सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादके पुनःप्रकाशनका एकमेव उद्देश्य यही है कि श्रीवल्लभवाङ्मय कभी भी किसी भी जिज्ञासुकेलिए अलभ्य न रहे. हमें विश्वास है कि इस पुनःप्रकाशनसे सुबोधिनीके अध्येताओंको अवश्य लाभ होगा.

अन्तमें सुबोधिनीके हिन्दी भाषानुवादके पूर्व प्रकाशक, अनुवादक, संशोधक, सम्पादक, द्रव्यसहायक आदि सभीके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं तथा इस कार्यमें निःस्वार्थ भावसे सहयोग करनेवाले सभी वैष्णवोंका भी सादर स्मरण करते हैं.

सुबोधिनी स्वाध्याय मंडल

क्या आप पुष्टिमार्गी हैं?

एक बार श्रीवल्लभाचार्यके ये आदेश पढ़ें.

सोचें, क्या आप श्रीवल्लभके मार्ग पर चल रहे हैं?

परब्रह्म श्रीकृष्णको ही अपना आश्रय-रक्षक जानें. मन-वचन-कर्मसे अन्याश्रय कदापि न करें.

भगवानने पुष्टिजीवोंको अपनी स्वरूपसेवाकेलिये भूतल पर प्रकट किया है. कृष्णसेवा ही पुष्टिजीवका स्वधर्म है. अतः कृष्णसेवाको जो स्वधर्म समझता है वही पुष्टिजीव है और वही पुष्टमार्गमें प्रवेशके योग्य है.

भगवत् शास्त्रको अच्छी तरहसे समझकर, आत्मनिवेदित होकर अपने तन-धनसे अपने घरमें श्रीकृष्णकी सेवा करें.

घरमें बिराजते ठाकुरजीको ही अपना सर्वस्व समझें जो खास आप ही के उद्धारार्थ कृपा करके आपके घर पधारे हैं. उनको छोडकर अन्य ठाकुरजीके दर्शन-सेवा केलिये भटकना अपने सेव्यप्रभुका तिरस्कार है.

अपनी सभी वस्तु-व्यक्ति-व्यवहारका समर्पण अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवामें ही करें. वे ही उनके सच्चे स्वामी हैं.

अपने ठाकुरजीको सर्वस्व समर्पित करके उस समर्पित महाप्रसादसे ही खान-पान-दान आदि सभी लौकिक-शास्त्रीय कार्य करें. असमर्पित पदार्थके उपयोगका सर्वथा त्याग करें.

हवेली-मन्दिरोंमें भेंट-सामग्री देकर कराये जाते सेवा-मनोरथ पुष्टिसिद्धान्तके अनुसार सेवा-भक्ति है ही नहीं; वो न केवल सेवा-भक्तिके नामपर पाखंड है अपितु परम पवित्र भगवत्सेवाको धंधा बनानेवाले दुष्टोंको पोषित करना है.

भगवत्सेवा-मनोरथ-कीर्तनके निमित्त भेंट-सामग्री मांगना-स्वीकारना उनको व्यापार-धंधा बनाना है. ऐसा पाप करनेवालेका नर्कमें पात होता है.

अतः भगवत्सेवा–मनोरथ–कीर्तनके निमित्त किसीको कुछ भी न दें.

अनजानेमें भी यदि कोई अवैष्णव सेव्य ठाकुरजीका दर्शन कर लेता है तो हमारी एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. ऐसा हो जाने पर श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराकर शुद्ध करना चाहिये.

भगवत्सेवा अपने ही घरमें करें. सार्वजनिक हवेली–मन्दिरमें सेवा–मनोरथ करना पुष्टिसिद्धान्तके अत्यन्त विरुद्ध है.

दर्शनको कभी भक्ति न समझें. दर्शनका आग्रह उसीका रखें जो कृपा करके आपके घरमें आपकेलिये आपके माथेपर बिराज रहे हैं, जिनकी सेवा आप स्वयं कर रहे हैं.

मंदिर–हवेलियोंमें दिया जाता या वहांसे खरीदा जाता प्रसाद–पातल महापातकी देवद्रव्य होता है. ऐसा प्रसाद खानेवाला नर्कमें ही जाता है.

प्रसादका नहीं किन्तु घरके ठाकुरजीने जो अङ्गीकार किया है उस समर्पित महाप्रसादको लेनेका आग्रह रखें.

भगवत्सेवाकी ही तरह भागवतका पाठ भी स्वयं ही करें. भक्तिभावकी वृद्धिके अलावा दूसरे किसी भी हेतुसे भागवतका पाठ न करें.

प्राण निकल जायें तो भले ही निकल जायें परन्तु दक्षिणा लेकर भागवतकी कथा–कीर्तन कभी भी न करें.

दक्षिणा लेकर कथा–कीर्तन करनेवालोंके मुखसे कथा–कीर्तन सुनना गटरका पानी पीनेके समान हीन कृत्य है. व्यावसायिक कथावक्ताओंके संगको दुष्टसंग समझकर उनका त्याग करो.

।। अनुक्रमणिका ।।

राजस प्रमाण–प्रमेयरूप उपप्रकरणोंकी मीमांसा

ले.:पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी(किशनगढ–पार्ला) १

भागवतार्थ निबन्ध दशमस्कन्धान्तर्गत राजस प्रमाण–प्रमेय प्रकरण १९

श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रस्तोत्र (राजस प्रमाण–प्रमेय प्रकरणके नाम) ४५

दशम स्कन्ध

(राजस प्रमाण–प्रमेय प्रकरण)

अध्याय ३३/३६.अरिष्टासुरका उद्धार और कंसका अक्रूरको व्रज भेजना १

अध्याय ३४/३७.केशी और व्योमासुर का उद्धार तथा नारदजी द्वारा भगवान्‌की स्तुति ३३

अध्याय ३५/३८.अक्रूरकी व्रजयात्रा ६७

अध्याय ३६/३९. श्रीकृष्ण बलरामका मथुरागमन १०६

अध्याय ३७/४०. अक्रूर द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति १५५

अध्याय ३८/४१. श्रीकृष्णका मथुरामें प्रवेश १८४

अध्याय ३९/४२.कुब्जा पर कृपा, धनुष भङ्ग और कंसकी घबराहट २२९

अध्याय ४०/४३.कुवलयापीडका उद्धार एवं रङ्ग मंडपमें प्रवेश २६१

अध्याय ४१/४४.चाणूर मुष्टिक आदिका तथा कंसका उद्‌धार २९५

अध्याय ४२/४५.श्रीकृष्ण–बलरामका उपनयन और गुरुकुल प्रवेश ३३५

अध्याय ४३/४६.उद्‌धवकी व्रजयात्रा ३७९

अध्याय ४४/४७.उद्‌धव तथा गोपियों की बातचीत (भ्रमरगीत) ४२३

अध्याय ४५/४८.भगवान्‌का कुब्जा और अक्रूरजी के घर जाना ५३७

अध्याय ४६/४९.अक्रूरजीका हस्तिनापुर जाना. ५७२

अनुवादक

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु, जोधपुर

राजसप्रकरणान्तर्गत
प्रमाण–प्रमेयरूप उपप्रकरणोंकी मीमांसा

पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी
(किशनगढ–पार्ला)

उपक्रम :

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणके अनुसार, प्रमुख प्रतिपाद्य विषय भगवान्‌की निरोधरूपा विविध लीलायें हैं. ब्रह्ममीमांसार्थ प्रवृत्त महर्षि बादरायणद्वारा प्रकट किये गये ब्रह्मसूत्रोंमें मीमांस्य ब्रह्मके लक्षण तथा प्रमाण के रूपमें ''**जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात्**''(ब्र.सू.१।१।२) सूत्रद्वारा उस मीमांस्य ब्रह्मको इस जगत्के उत्पत्ति–स्थिति–लयके शास्त्राभिमत हेतुके रूपमें निरूपित किया गया है. प्रस्तुत सूत्रके, किन्तु, अधिकरणांग विषयवाक्योंके अन्तर्गत

''**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्ति अभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म**''(तैत्ति.उप.३।१)

वचनके पर्यालोचन करनेपर केवल नाम रूप– कर्मभेदेन प्रकट जड़जगत्के उत्पत्ति–स्थिति–लय ही नहीं अपितु सचेतन जीवजगत्के जनन जीवन प्रयाण तथा प्रवेशके हेतुतया भी ब्रह्मका निरूपण हम पाते हैं. साथ ही साथ सूत्रगत 'शास्त्रयोनि' पदके परामर्श करनेपर यह ब्रह्म भी केवल उपनिषत्प्रतिपाद्य हेतु न हो कर शास्त्रप्रतिपाद्य हेतुतया ही स्वीकारा गया है. श्रुति सूत्रके बीच इस प्रयोगपार्थक्यमें दोनों शास्त्रोंके कुछ अपने–अपने विशिष्ट अभिप्राय प्रकट होते हैं.

औपनिषद ब्रह्म = भागवतके भगवान्:

सर्वप्रथम तो यह कि ब्रह्म सदंशभूत जड़जगत् की उत्पत्ति–स्थिति–लयका उपादानरूप हेतु ही केवल नहीं अपितु चिदंशरूप जीवात्माओंके भी व्युच्चरणमें अपादानभूत अंशी भी है. उन उभय अंशोंमेंसे सूक्ष्म–स्थूल जड़देहोंमें चिदंशोंके संयोजनरूप संसरणात्मक जीवन तथा वियोजनरूप मृत्यु मुक्ति एवं प्रलय का कर्तृभूत हेतु भी वही ब्रह्म होता है.

ऐसा ब्रह्म यदि केवल उपनिषदेकप्रतिपाद्य होता तो सम्भवतः वह केवल मीमांस्य ही रह जाता. अथवा अधिकाधिक ज्ञातृज्ञेयात्मक ऐच्छिक द्वैतके स्वाभाविक अद्वैताधिष्ठानतया ज्ञेयमात्र बन पाता.

उसे, परन्तु, 'उपनिषद्योनि' न कह कर 'शास्त्रयोनि' कहना इस तथ्यका भी प्रमाण बन जाता है कि वह ब्रह्म उपनिषद्रूप श्रुतिओं द्वारा जैसे मीमांस्य या ज्ञेय है, वैसे ही भगवद्गीतादिरूप स्मृतिओंद्वारा आश्रयणीय या भजनीय भी है. उसी तरह भागवतादि पुराणोंद्वारा साधनरूपा नवधा भक्ति तथा फलरूपा प्रेमलक्षणा भक्तिद्वारा श्रवणीय कीर्तनीय स्मरणीय सेवनीय अर्चनीय वन्दनीय दास्यभावेन भावनीय सख्यभावेन भावनीय तथा परमात्मभावेन आत्मसमर्पण पूर्वक सेवनीय भी है ही. अतएव आत्मसमर्पणोत्थ प्रेमभावके उत्तरोत्तर प्रवर्धमान आसक्तिभाव व्यसनभाव और सर्वात्मभाव के क्रमसे अन्तमें सकलविषयोंकी विस्मृतिके साथ अनन्यभावेन सभी तरहकी चित्तवृत्तिओंका विषयीकरणीय भी वह बन जाता है.

भागवतदशमस्कन्धीय भगवल्लीला :

अतएव महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणके अनुसार श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका वर्ण्यविषय भगवान्की वैसी ही लीलायें हैं जिन्हें सुनने, कीर्तन करने तथा स्मरण करने मात्रसे श्रीकृष्णभक्त प्रापञ्चिक सकल विषयों तथा कर्तव्यों को भूल कर अनन्यात्मना परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णमें भक्तिके प्रेम आसक्ति व्यसन और सर्वात्मभाव रूपी उत्तरोत्तर सोपानोंपर अग्रसर हो पाता है. क्योंकि ऐसे ही भक्तोंके बीच प्रकट होनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी लीला दशम स्कन्धमें वर्णित हुयी है. इन्हें वर्णन करनेवाले महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन बादरायण व्यासका प्रयोजन भी, अतएव, भगवान्के अनवतारकालमें भी अवतारकालिक भगवदनुग्रहका लाभ भगवद्भक्तों तक पहुंचाना है. यही बात महाप्रभु कहते हैं

''स्कन्धार्थस्तु निरोधो हि ततः तेन उपसंहृतिः
अग्रेऽपि ये भविष्यन्ति कीर्तनात् तेऽपि तादृशाः''

(त.दी.नि.३।१०।४६६).

एतदर्थ श्रीमद्भागवतके प्रथम तथा द्वितीय स्कन्धोंमें क्रमशः अधिकार तथा साधन के निरूपणके बाद तृतीयस्कन्धसे भगवल्लीलाके निरूपक शास्त्रका आरम्भ होता है. इनमें उपनिषदुक्त यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते वचनके

लीलात्मक व्याख्यानतया तृतीय स्कन्धमें सर्वप्रथम भगवान्की 'सर्गलीला और चतुर्थ स्कन्धमें विसर्गलीला योजित हुयी हैं. इस तरह हम देख सकते हैं कि उपनिषदुक्त सृष्टिलीला भागवतमें सर्ग-विसर्गात्मना द्विगुणित हो कर गेय बनी है!

उपनिषदुक्त ''**येन जातानि जीवन्ति**'' वाक्यांशमें निरूपित स्थितिलीला भी भागवतमें ऐश्वर्यादि षड्गुणोपेत भगवान्की लीलाके रूपमें षड्गुणित हो कर पञ्चम स्कन्धसे दशम स्कन्ध पर्यन्त निरूपित हुयी है. जैसे कि पञ्चम स्कन्धमें स्थानलीला, षष्ठमें पोषणलीला, सप्तममें 'ऊतिलीला, अष्टम में मन्वन्तरलीला, नवममें ईशानुकथालीला अर्थात्, जीवात्मा और परमात्मा के बीच भक्त तथा भजनीय होनेके सम्बन्धवाली भक्तिरूपा लीलाओं का वर्णन किया गया है. अन्तमें दशम स्कन्धमें ऐसे भजनीय भगवान्का स्वयं भूतलके ऊपर प्रकट हो कर अपने भक्तोंके बीच निरुद्ध हो जाने और भक्तोंका अपने सांसारिक विषयों और कर्तव्यों को भूल कर भगवान्में निरुद्ध हो जाने की कथा वर्णित है. अर्थात् भक्त भगवान् में किस प्रकार अनन्यतया आसक्त हो जाते हैं ऐसी भगवल्लीलाओं का ही दशम स्कन्धमें वर्णन किया गया है:

निरोधो अस्य अनुशयनं प्रपञ्चे क्रीडनं हरेः ।
शक्तिभिः दुर्विभाव्याभिः कृष्णस्य इति हि लक्षणम् ।।
भक्ताः पूर्वत्र निर्दिष्टाः ते रोद्धव्याः विमुक्तये ।
कृष्णे निरुद्धकरणाद् भक्ताः मुक्ताः भवन्ति हि ।।
भक्तेः च शुद्धतासिद्ध्यै प्रपञ्चाद् विनिवारणम् ।
आसक्तिः आत्मनि तथा निरोधार्थं न संशयः ।।
प्रपञ्चविस्मृतिः तस्मात् कृष्णासक्तिः च वर्ण्यते ।।

(त.दी.नि.३।१०।१४-१८)

जीवात्माका इस तरह परमात्मामें निरुद्ध हो जाना जीवन्मुक्तिसे भी अधिक स्पृहणीय भक्तिमार्गीय उपलब्धि भूतलपर मानी गयी है. अतएव उपनिषद् वर्णित ज्ञेयब्रह्मकी येन जातानि जीवन्ति की मीमांसाके उत्कृष्टतम जीवनरूपका ही श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें भगवल्लीलाओंके श्रवणीयतम कीर्तनीयतम या स्मरणीयतम स्वरूपमें व्याख्यान किया गया

तैत्तिरीयोपनिषत्के ''**यत् प्रयन्ति अभिसंविशन्ति**''वचनके अनुरूप

भागवतमें भी एकादश द्वादश स्कन्ध योजित हुवे हैं. अर्थात् विदेहमुक्तिके अनुरूप सालोक्य साष्टि सामीप्य सारूप्य सायुज्य या एकत्व मेंसे कोई मुक्ति भी भक्तोंकी होती ही है और वह श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धका प्रतिपाद्य विषय मानी गयी है.

इसी तरह बारहवें स्कन्धमें मुख्यतया भक्तिमार्गीय या ज्ञानमार्गीय अधिकारिताके अनुरूप मुक्त जीवात्माओंको सिद्ध होती ब्रह्मभावापत्तिका जैसे वर्णन है वैसे ही सृष्टिकी उपसंहारलीलामें संसृतिमार्गीय अधिकारिताके अनुरूप अमुख्यतया अमुक्त जीवात्माओंकी भी ब्रह्ममें उपसंहृतिका वर्णन किया गया है. यह 'अभिसंविशन्ति' वचनका ही लीलात्मक व्याख्यान है.

इस तरह सर्गादि दशविध लीलाओंके कर्ता परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने विरुद्धधर्माश्रयी स्वरूप तथा दशविध लीलाओं के प्रभेदवश भागवतके एकमात्र प्रतिपाद्य विषय सिद्ध होते हैं, विविध जड़ जीव और ईश्वररूपी अवतारोंके रूपोंको धारण करनेवाले अवतारीके रूपमें.

एतदन्तर्गत दशमस्कन्धकी आद्य अध्यायचतुष्टयी सकलोपादान सकलांशी तथा सकलावतारावतारी श्रीकृष्णके भूतलपर प्राकट्यके वर्णनार्थ है.

इसके बाद पांचवे अध्यायसे आरम्भ कर सात-सात अध्यायोंवाले प्रमाण प्रमेय साधन और फल यो चार प्रकरणोंमें; अर्थात्, अड्ढाईस अध्यायोंमें तामस भक्तोंके बीच भगवान्द्वारा की गयी तामसलीला और उन लीलाओंके कारण उन तामसभक्तोंकी संसारको भूल कर भगवान्में अनन्यभावसे आसक्त हो जानेकी कथा वर्णित हुयी है. यही बात महाप्रभुने समझायी हैं :

''अतः तामसभक्तानाम् अष्टाविंशतिभिः क्रमाद्
मानमेयैः साधनैः च फलैः चापि पृथक्पृथक्,
भगवान् सप्तधा लीलां कुर्वन् उद्धारकः परः
पुरुषोत्तमरूपेण यत् चकार तद् उच्यते''

(त.दी.नि.३।१०।४०-४१)

वचनद्वारा इनकी विशद विवेचना उन-उन प्रकरणोंकी भूमिकामें की जा चुकी है.

संक्षेपमें आरम्भके चार अध्याय जन्मप्रकरणके और अट्ठाईस अध्याय तामस प्रकरणके, साथ ही साथ बीचके तीन प्रक्षिप्त अध्याय, यों कुल मिला कर

३५ अध्यायोंके बाद अब ३६ वें अध्यायसे ६३ वें तक पुनः २८ अध्यायोंवाला तीसरा राजस प्रकरण प्रारम्भ होता है..

दशमस्कन्धीय राजस प्रकरण :

श्रीबालकृष्ण भट्टने अपने प्रमेयरत्नार्णव नामक ग्रन्थके फलप्रकरणमें तामस प्रकरणके वर्ण्यविषय तामसत्वका त्रैविध्य प्रतिपादित किया है. तदनुसार ही राजसत्वके भी तीन प्रकार ऊह कर लेने चाहियें :

(१) अविहितभक्तिरसके अनुभवार्थ साधनरूप या
(२) मनोवस्थाविशेषरूप या धर्मविशेषरूप प्रासङ्गिक राजसत्व.
(३) बौद्धिकमति वचनोक्ति या बाह्यकृति में प्रकट होता भगवन्मायाकृत यादृच्छिक राजसत्व.

मूलमें साधारण राजसभावकी व्याख्या भागवतमें

''विकुर्वन् क्रियया च आधी, अनिर्वृत्तिः च चेतसां,
गात्रास्वास्थ्यं मनोभ्रान्तं रजः एतैः निशामय''

(भाग.पुरा. ११।२५।१७)

अर्थात् जब अपनेद्वारा अनुष्ठित क्रियाओं द्वारा मानसिक असन्तोष या ताप बढ़ने लगे, चित्त अशान्त होने लगे, गात्र अस्वस्थ होने लगे और मानसिक भ्रान्तियां होने लगे तो इन्हें राजस विकारके लक्षणतया समझ लेना चाहिये.

यह अवस्था संसृतिशील जीवात्माओंकी जैसे हो सकती है, वैसे ही भगवान् जिनके बीचमें प्रकट हुवे हों ऐसे भक्तात्माओंमें भी दिखलायी देने लगे तो उन भक्तोंको राजस भक्त समझना चाहिये. ऐसे भक्तोंके भावोंको राजसभाव और तदनुरूप भगवल्लीलाओंका राजसलीलाके रूपमें अवधारण किया जाता है.

यहां अविहितभक्तिरसके अनुभवार्थ साधनरूप या व्यक्तिस्वभावरूप प्राकरणिक राजसत्व सम्पूर्ण राजस प्रकरणमें मुख्यतया विवक्षित सभी भक्तोंके स्वभावका द्योतक पारिभाषिक राजसत्व होता है. जैसे पूर्वप्रकरणमें अविहित भक्तिरसके अनुभवार्थ तामस साधनरूप या व्यक्तिस्वभावरूप पारिभाषिक तामसत्वविशिष्ट भगवल्लीलाका निरूपण किया गया था.

द्वितीयतया मनोवस्थाविशेषरूप या धर्मविशेषरूप राजसत्व पूर्ववर्णित तामसप्रकरणकी तरह या आगे वर्णित होनेवाले सात्त्विक प्रकरणकी भी तरह

राजस प्रकरणमें भी प्रसङ्गोपात्त प्रकट होता होनेसे प्रासंगिक राजसत्व माना जाता है. जैसे तामस भक्तोकें भी मनोभावोंकी विवेचनामें कहीं सात्त्विकतामसत्व, तो कहीं राजसतामसत्व, तो कहीं तामसतामसत्व निरूपित हुवे हैं, ऐसे ही राजस भक्तोंके भावोंकी विवेचनामें कहीं सात्त्विकराजसत्व, तो कहीं राजसराजसत्व, तो कहीं तामसराजसत्व भी निरूपित होने ही हैं.

ये दोनों ही प्रकारके राजसत्व भगवल्लीलान्तः पाती बन कर भगवल्लीला की राजस–सरसताको प्रकट करते हैं.

तृतीय राजसत्व बुद्धिवृत्ति वचनोक्ति या बाह्यकृति में कभी–कभी प्रकट होता भगवन्मायाकृत राजसत्व है. यह प्रायः भगवल्लीलानुभूति में व्यवधान या विमुखता लानेको ही भगवदिच्छाके कारण प्रकट होता होनेसे यादृच्छिक राजसत्व माना जाता है.

यहां यह भी ज्ञातव्य है कि राजसप्रकरणीय भगवल्लीलाओं द्वारा पूर्ववर्णित तामस भक्तोंको भी राजस भक्तोंमें रूपान्तरित किया गया है. अतएव उनका तो तामस स्वरूपसे राजस स्वरूपमें परिवर्तन ही केवल निरूपित हुवा है. जो, परन्तु, स्वभावतः राजस भक्त हैं, उन्हें तो उनकी राजसताको निभाने देते हुवे ही भगवान्ने उनके प्रापञ्चिक विषयों और कर्तव्यों को भुलवा कर अपने स्वरूपमें अनन्यभावसे समासक्त कैसे बना लिया उस लीलाका इस राजसप्रकरणमें वर्णन होना है. वह भगवान्के जैसे स्वरूप और जैसी लीलाओंके कारण शक्य बना, उसका ही निरूपण राजस प्रकरणका प्रमुख वर्ण्यविषय है. अतएव महाप्रभुका कहते हैं कि

''स्वभावस्य अन्यथाभावो नवै शक्यः कथञ्चन
अतः त्रिविधजीवेषु त्रिविधा भगवत्कृतिः''

(सुबो.कारि.१०।५।१।६)

अतएव राजस भक्तोंके स्वरूप स्वभाव मनोभाव तथा व्यवहार के अनुरूप अपनी स्वरूपकी छटा तथा लीलाकी मनोहारिता जो भगवान्ने प्रकट की उन्हें 'राजसलीला' कहा जाता है.

अतएव इस राजसलीलाके सन्दर्भमें साकांक्ष 'निरोध' पदकी विभिन्न आकांक्षाओं और उनकी पूर्तिके प्रकारको भी समझ लेना यहां उपकारक होगा–

आकांक्षा	**पूर्ति**
१. किसका निरोध?	मथुरास्थित यादवादि भक्तोंका.

२. किसमें निरोध ? व्रजसे मथुरा पधारनेवाले भगवत्स्वरूप –भगवल्लीलाओंमें.

३. किस साधनसे निरोध ? अपनी राजस लीलाओंसे.

४. कहांसे निरोध ? प्रापञ्चिक विषय–कर्तव्योंसे.

एक और तथ्य यहां जो अविस्मरणीय है वह यह कि तामस प्रकरणवर्णित भक्तोंका राजस प्रकरणवर्णित लीलाके समय तामसत्व तो निवृत्त होता माना गया है परन्तु उनको सिद्ध हुयी भगवन्निरुद्धता अर्थात् प्रपञ्चविस्मृति पूर्वक भगवदासक्ति भी निवृत्त हो गयी होगी ऐसे नहीं मान लेना चाहिये. वह तो सर्वथा अक्षुण्ण ही रहती है.

पूर्वनिरूपित तामस प्रकरणकी तरह ही इस प्रकरणमें भी भगवान्के ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य रूपी छह गुणधर्मो ; तथा, सातवें स्वयं भगवान् धर्मी यों सात–सात अध्यायोंवाले राजसप्रमाण, राजसप्रमेय राजससाधन और राजसफल रूपी चार अवान्तर प्रकरणोंके प्रभेदवश भगवल्लीला विवक्षित है. अतएव महाप्रभु अपने भागवतार्थनिबन्धमें कहते हैं

''अतः परं राजसानां प्रक्रिया पूर्वसंख्यया
अष्टाविंशतिभिः प्रोक्ताः तथा अध्यायैः चतुर्विधैः''

(त.दी.नि. ३।१०।११२–११३).

२८ अध्यायोंवाले इस तृतीय राजस प्रकरणमें मुख्य निरोध्य भक्त यादव हैं. इनके बीच भगवान्ने जैसी निरोधलीला और अपने जैसे निरोधकारी स्वरूप को प्रकट किया, वे दोनों ही भक्तस्वभावानुरोधी भगवानका स्वरूप और भगवान्की लीला होनेके अर्थमें यहां भगवान्की राजसलीला मानी जाती है. जब अपने मोहक स्वरूप और मोहिनी लीलाओंके द्वारा भगवान् अपने बारेमें प्रेम आसक्ति व्यसन तथा सर्वात्मभाव के विविध सोपानोंवाली भक्तिसे सभी यादवोंको भर देंगे तब राजस यादवोंका सात्त्विकीकरण सिद्ध हो जायेगा. इसे केवल यादवोंके राजसत्वकी ही नहीं अपितु पूर्वप्रक्रान्त व्रजभक्तोंके भी राजसत्वकी निवृत्ति तथा सात्त्विकभावापत्तिकी सिद्धि जान लेनी चाहिये. अतएव राजस भक्तोंके सात्त्विकीकरणकी तरह तामस भक्तोंके भी उपलक्षणतया इसे लेना चाहिये. बादमें सात्त्विक प्रकरणमें निरूप्य भक्तोंको जब निर्गुणभावसे भगवान् सम्पन्न करेंगे तब पूर्ववत् ही व्रजभक्त तथा यादवों को भी निर्गुणभावसे मण्डित कर उन्हें एकादश

स्कन्धमें वर्णनीय मुक्ति प्रदान की जायेगी

''इतोऽपि चेद् हरिः गच्छेत् नीत्वा सर्वस्य तामसं
राजसाः ते भविष्यन्ति गोकुलस्थाः न संशयः,
उभये च ततस्तु अग्रे सात्त्विकाः निर्गुणाः
ततः यैपि सम्भविष्यन्ति मुक्तौ तेषां निरूपणम्''

(त.दी.नि.३।१०।१२६-१२७).

और अन्तमें द्वादशस्कन्धमें वर्णनीय ब्रह्मभावापत्तिसे सभीको सम्पन्न बना कर स्वस्वरूपान्तः पाती बना लिया जायेगा.

यह नवमस्कन्धसे ले कर दशम एकादश और द्वादश स्कन्धोंका श्रीमदाचार्यचरणाभिप्रेत भगवल्लीलाका संपिण्डित प्रारूप है. इस पूर्वभूमिकाको भलीभांति बुद्धिगत कर लेनेपर प्रक्रान्त राजस प्रकरणके स्वरूपकी मीमांसार्थ अग्रसर हुवा जा सकता है.

राजस प्रमाणप्रकरण :

तामस प्रकरणमें भगवल्लीलाकी पृष्ठभूमितया चतुर्विध व्यूहोंके अन्तर्गत निर्गुण वासुदेवव्यूह तथा तामस संकर्षण व्यूहोंकी प्रधानता होनेपर भी अपनी लीलाकी पुरोभूमिपर तो भगवान्ने व्रजके गोपगोपिकाओंके भावोंके अनुरूप श्रीनन्दयशोदात्मज गोपाल होनेका तामस स्वरूप ही प्रमुखतया प्रकट दरसाया था. इस राजस प्रमाणप्रकरणमें किन्तु भगवान्ने राजसलीलार्थ परिगृहीत अपने देवकी-वसुदेवपुत्र होनेके राजस स्वरूपके परिज्ञापनार्थ जिन-जिन लीलापरिकर जनोंको साधन बनाया उनके नाम भागवतार्थनिबन्धमें महाप्रभु इस तरह गिनाते हैं: नारद अक्रूर श्रीनन्दराय क्षत्ता गोपिकायें श्रीहरिव्यूह और कुब्जा (द्रष्ट.त.दी.नि. ३।१०।११६-११७).

यहां हम देख सकते हैं कि व्रजस्थ श्रीकृष्ण देवकीपुत्र हैं ऐसी सूचना कंसको देनेवाले प्रथम प्रमाण देवर्षि नारद बने हैं. इसीके कारण भगवान्के राजस स्वरूपका ज्ञान कंसको हुवा. इस राजस स्वरूपकी पहचान पाते ही कंसने, यह सूचना अक्रूरको देते हुवे, व्रजसे श्रीकृष्णको मथुरा लिवा लानेको उन्हें वहां भेजा. सो वहां जा कर 'अक्रूर श्रीकृष्ण-बलरामको यह जतानेवाले द्वितीय प्रमाण बने स्वयं भगवान्ने अक्रूरकी कही बात श्रीनन्दको बता दी. तदनुसार तृतीय प्रमाण बन कर श्रीनन्दने अपने गोपपरिजनोंको यह बात बताई. साथ ही साथ अपने क्षत्ताद्वारा

सारे व्रजस्थ गोपोंको भी यह सूचना भिजवा दी गयी. सो चतुर्थ प्रमाण क्षत्ता बना. यद्यपि भागवतके "**विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोः ततः**"(भाग.पुरा.१२।१२।८) वचनमें विदुरका भी नामान्तर 'क्षत्ता' मिलता है. यहां किन्तु उनका कोई वर्णन न होनेसे उन्हें यहां 'क्षत्ता'नाम्ना विवक्षित नहीं माना लेना चाहिये. "'**क्षत्ता' स्यात् सारथौ द्वाःस्थे क्षत्रियायां च शूद्रजे**" (अम.को.३।५।२४६०) वचनके अनुसार यहां नन्दालयके प्रतीहारीको 'क्षत्ता' कहा जा रहा है. अतएव महाप्रभु भी "**एवम् आघोषयत् क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले**"(भाग.पुरा.१०।३६=३९।१२)की सुबोधिनीमें " '**क्षत्त्रा**'**= अन्तःपुराध्यक्षेण**" व्याख्या देते हैं. यद्यपि भगवान्के देवकीवसुदेवात्मज होनेकी घोषणा सारे व्रजमें नहीं करवायी गयी होगी. क्योंकि आगामी कल सभी व्रजवासिओंको श्रीकृष्ण–बलरामके साथ मथुरा चलना है केवल इतनी ही घोषणा करवायी गयी ऐसा उल्लेख मिलता है. तथापि इसमें गूढ़ संकेत तो रहे ही थे.

ये सारी बातें कानोंपर पड़नेपर व्रजकी गोपिकाओंने भी एक–दूसरेको बताना शुरु कर दिया, सो वे पांचवीं प्रमाण बनी. छट्ठा प्रमाण स्वयं भगवान्के जिस व्यूहरूपने कालिन्दीहृदमें अक्रूरको दर्शन दिये वह बना और सर्वान्तमें भगवान्के राजस स्वरूपकी सातवीं प्रमाण कंसकी दासी कुब्जा बनी.

प्रमाणान्वेषणद्वारा भगवत्स्वरूप तथा भगवल्लीला का बोध मिलता होनेके कारण इन सातों ही अध्यायोंको मिला कर एक प्रमाणप्रकरण बनता है.

यहां एक अवश्यज्ञातव्य स्पष्टीकरण सुबोधिनीपर 'लेख' व्याख्या में लेखकार यों देते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णके पूर्ववर्णित चतुर्व्यूहविशिष्ट पुरुषोत्तमके स्वरूपके अन्तर्गत मुक्तिदायक वासुदेव व्यूह गुणातीत होता है. असुरसंहारक संकर्षण व्यूह तामस स्वरूप होता है. वंशवर्धक प्रद्युम्न व्यूह राजस स्वरूप होता है. तथा धर्मरक्षक अनिरुद्ध व्यूह सात्त्विक स्वरूप होता है.

इन चारों व्यूहोंसे विशिष्ट पुरुषोत्तमका स्वरूप तो प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक स्वासक्तिसम्पादिका निरोधरूपा लीलाओंके कर्ता होनेका ही होता है. एतावता निरोधलीलांगभूत मुक्तिदान या असुरसंहार कार्य तो पुरुषोत्तम व्यूहोंद्वारा ही सम्पन्न होते हैं. अतएव अग्रिम लीलामें राजकन्याओंसे विवाहद्वारा वंशवृद्धिरूप कार्य राजस कार्य होनेसे राजसप्रकरणकी लीलामें प्रद्युम्नव्यूहद्वारा सम्पन्न होता है.

इसके बाद अब राजस प्रमाण प्रकरणके अन्तर्गत प्रत्येक अध्यायोंमे

प्रतिपाद्य विषयका अवगाहन कर लेना उचित होगा. यहां इस राजस प्रमाण प्रकरणमें प्रारम्भके छह अध्याय, जैसाकि दिखला ही चुके हैं तदनुसार, भगवान्के ऐश्वर्यादि छह गुणोंको प्रकट या गुणोंका ज्ञापन करनेवाली लीलाके निरूपक हैं; और, अन्तमें सातवां अध्याय स्वयं धर्मरूप भगवान्के स्वरूपको प्रकट या उनका ज्ञापन करनेवाली लीलाओंके निरूपणार्थ है. तदनुसार:

राजसप्रमाणप्रकरणीय प्रथमाध्याय :

यहां प्रथमाध्याय, अर्थात् आदितः तेंतीसवें अध्याय, में भगवान्के ऐश्वर्य गुणका निरूपण है. भगवान्ने अरिष्टका जब वध कर दिया तो देवर्षि नारदने कंसको जा कर यह सूचित कर दिया कि देवकीवसुदेवपुत्र ही नन्दव्रजमें कंसके भेजे असुरोंके संहारक हैं. तब देवकीवसुदेवको मार देनेको इच्छुक होनेपर भी कंस उन्हें मार नहीं पाया. न केवल इतना प्रत्युत कंसके द्वारा विचारे गये सारे वधोपायोंको भी भगवान्ने अन्यथा ही सिद्ध कर दिया. यह भगवान्का अन्यथाकर्तुं सामर्थ्यरूप ऐश्वर्य है. यहां शंका हो सकती है कि स्वयं भक्त होनेपर भी देवर्षि नारदने भगवल्लीलामें परिकररूप भक्तोंको कष्ट पहोंचे ऐसा काम क्यों किया? समाधानतया महाप्रभु यहां भागवतार्थनिबन्धमें स्पष्ट करते हैं कि देवर्षि नारद तो जो बात देवगणोंसे भी छिपी हुयी थी सो देवगणोंकी सम्मतिके अनुसार अनुसार ऐसा कार्य कर रहे थे. अतएव देवगणोंकी सम्मतिके अनुसार भगवान्को समझाने भी व्रजमें आये क्योंकि प्रद्युम्नव्यूहद्वारा की जानेवाली लीलाके बारेमें देवगणोंकी अपेक्षा त्वरायुक्त हो गयी थी. पुरुषोत्तमरूपेण, परन्तु, की जानेवाली निरोधलीला का भान तो देवगणोंको भी नहीं था. फलतः अपने भगवद्रहस्यको अपने अधिकारके अनुरूप जान पानेके कारण भक्तोंके लिये देवर्षि नारद भयवर्धक बन गये परन्तु राजस प्रकरणके अनुरूप अन्ततः भयद्वारा भी राजस भक्तोंमें श्रीकृष्णके प्रति स्नेहभाव प्रकट करनेवाले बने

''देवगुह्यस्य कर्ता हि नारदो देवसम्मतः...
अधिकाराद् न अपराधो नारदस्य भविष्यति''

(त.दी.नि.३।१०।१२८-१३२).

राजसप्रमाणप्रकरणीय द्वितीयाध्याय:

द्वितीय, अर्थात् आदितः चोंतीसवे अध्यायमें यहां केशी और व्योमासुर के वधका निरूपण किया गया है. यह केशी व्रजभक्तोंकी राजसभावापत्तिमें

हेतुरूप ज्ञानमें प्रतिबन्धरूपी था और अरिष्ट भक्तिमें प्रतिबन्धरूपी था. अतएव महाप्रभु कहते हैं

''कंसादयो राजसाः हि बुद्ध्या कार्यस्य साधकाः,
तामसं केशिनं तेन प्रेषयामास राजसो,
मथुरायां तामसस्य वधो युक्तो नच क्वचिद्,
अतो गोकुलम् आसाद्य सोऽपि नष्टो विमुक्तये,
ज्ञानेतु बाधकः केशी...
भक्तौ अरिष्टोऽपि तौ उभौ गोकुले हतौ''

(त.दी.नि.३।१०।१३३-१३६)

इसी तरह भगवान्के स्वरूपपारोक्ष्यमें भी आन्तर अनुभूतिके भगवल्लीलाके सुखदायक कर्म निभनेमें व्योमासुर प्रतिबन्धरूप था अतः इन तीनों असुरोंके वधके वृत्तान्तद्वारा भगवान्के वीर्य गुणका निरूपण यहां अभिप्रेत है. कंसको ऐसे समाचार देते रहनेके कारण देवर्षि नारदको अपराधसम्भावनाजन्य ग्लानि भी हुयी कि वे कहीं भगवान्के भक्तोंको कष्ट पहुंचाने में तो कहीं इस तरह हेतु तो नहीं बन रहे हैं! ऐसी भीतिके निवारणार्थ उन्होंने भगवान्के सामने आ कर भगवान्की वीर्यगुणख्यापिका लीलाओंके वर्णनद्वारा स्तुति की.

राजसप्रमाणप्रकरणीय तृतीयाध्याय :

तृतीय, अर्थात् आदितः पेंतीसवें अध्यायमें यहां कर्म-ज्ञान-भक्तिके सारे आसुरी प्रतिबन्धोंकी निवृत्तिके बाद भगवन्माहात्म्यके अनुरूप कर्म-ज्ञान-भक्तिरूप त्रिविधमार्गोपयोगी मनोरथ अक्रूरके हृदयमें जग पाये और अक्रूर वैकुण्ठानुभूतिके योग्य बन गये, यों भगवान्के यशका वर्णन यहां अभिप्रेत माना गया है. यहां पूर्वसिद्ध ज्ञानके आधारपर की जाती भगवत्स्तुतिमें भगवद्यश प्रकट हुवा जानना चाहिये आगे चल कर पांचवे अध्यायमें, जहां कालिन्दीह्रदमें भगवान्के साक्षात् दर्शन कर जो स्तुति अक्रूरने की वह तात्कालिक बोध होनेसे, यशके बजाय भगवान्के ज्ञानरूप गुणका परिचायक माना जायेगा. यहां तो अक्रूरने भगवान्के यशका वर्णन ही स्तुतिमें किया है. ये सारी बातें महाप्रभु इन शब्दोंमें स्फुट करते हैं

''ज्ञानभक्तिप्रसिद्ध्यर्थम् अक्रूरागमनं पुनः
गोकुले बाधको व्योमो लीलायां कर्मणि स्थितः

परोक्षेऽपि हरेः सिद्धयै लीलायाः सोऽपि वै हतः...
मार्गाः पुष्टाः भविष्यन्ति तेन राजसता स्थिता''

(त.दी.नि.३।१०।१३७-१३९).

राजसप्रमाणप्रकरणीय चतुर्थाध्याय:

चतुर्थ, अर्थात् आदितः छत्तीसवें अध्यायमें यहां भगवान्के मथुरा पधारनेको उद्यत होनेपर भगवान्के बिना रह न सकनेवाले व्रजभक्तोंके हृदयमें भगवान्का स्थिरतया बिराजमान हो जाना ही भगवान्की भक्तिमार्गीय श्री या शोभा है. इसी तरह अक्रूरको कालिन्दीह्रदमें वैकुण्ठके दर्शन भी भगवान्के श्रीगुणका ही निरूपण है. उल्लिखित तीन आसुरी भावोंके मूर्तिमान् रूप असुरोंके वधद्वारा कर्म ज्ञान और भक्ति तीनों ही मार्गक निष्कटंक हो जानेके कारण भगवान्को व्रजमें बिराजे रहना चाहिये था फिरभी श्रीशुकदेवजीने जो भगवान्के मथुराप्रयाणका वर्णन किया है वह व्रजकी गोपिकाओंके इतरासक्तिरहित केवल भगवदासक्तिमें राजसता जो प्रकट होने जा रही है कि बाह्यदृष्ट्या उन्हें भगवान् मथुरा पधारते से प्रतीत होते हैं तथा आन्तरदृष्ट्या सारी भगवल्लीला उनके इतनी हृदयारूढ़ है उन्हें विप्रयोग सता ही नहीं सकता फिरभी राजसभावानुरूप बाह्याभ्यन्तरके बीच चित्तकी दोलायमानता स्नेहरसका अन्यतम परिपाक है और श्रीशुक इसे निरूपित करना चाहते हैं. अतएव महाप्रभु कहते हैं

''**मार्गत्रये ततः प्रोक्ता तस्य निष्ठा विशेषतः**
कृष्णमाहात्म्यविज्ञानं भक्तिमार्गोपयोगि हि,
स्वरूपबोधो ज्ञानार्थः कामना कर्मणि स्थिता
त्रिभिः त्रयोऽपि सन्तुष्टा नन्दरामी तथा हरिः
हरेः निर्गमनं तस्माद् न युक्तमिति वै शुकः
गोपिकावाक्यरीत्यैव भगवद्गमनं जगी''

(त.दी.नि. ३।१०।१४२- १४५).

राजसप्रमाणप्रकरणीय पञ्चमाध्याय :

पंचम, अर्थात् आदितः सेतींसवें अध्यायमें यहां भगवान्के ज्ञानरूप गुणका वर्णन अभिप्रेत है. क्योंकि सारा अध्याय भगवत्स्तुतिपरक है तथा अक्रूरको तत्कालमें प्राप्त दर्शनके अनुसार उन्होंने स्तुति की है, पूर्वज्ञात माहात्म्यबोधके आधारपर नहीं. वैसे तो अक्रूर भगवान्के सम्बन्धमें पितृव्य लगते

होनेपर भी उस सम्बन्धके अभिमानको छोड़ कर भगवान्‌की स्तुतिमें जो तत्पर हुवे एतावता यह उनमें प्रकटे भगवद्विषयक ज्ञानका ही प्रमाण है:

''अक्रूरे त्रितयं जातं वैकुण्ठे स्थापनाय हि
ब्रह्महृदे निमग्नस्य तथा दर्शनम् ईर्यते ...
माहात्म्यं ज्ञापितन्तु अर्थात् तेन स्तोत्रम् उदीरितं,
संस्कारमात्रतः तस्मिन् स्नेहभक्तिः प्रतिष्ठिता''

(त.दी.नि.३।१०।१४६-१४८).

राजसप्रमाणप्रकरणीय षष्ठाध्याय :

षष्ठ, अर्थात् आदितः अड़तीसवें अध्यायमें यहां सबसे पहले अक्रूरके घर पधारना पसन्द न करके जो उदासीनता सी कुछ दिखलायी वह भगवान्‌के वैराग्य गुणकी ख्यापिका है. रंगरेज़ धोबीको उसके अनुचित कर्मके दण्ड देनेमें तथा दरजी और माली पर प्रसन्न हो कर याचित वर= अखिलात्मा भगवान्‌में अविचलभक्ति, भगवद्भक्तोंके बारेमें सौहार्द तथा सर्वप्राणिओंमें दयाभाव की सिद्धि का वरदान देनेमें भगवान्‌का वैराग्य गुण प्रकट हुवा है.

राजसप्रमाणप्रकरणीय सप्तमाध्याय :

सातवें, अर्थात् आदितः उचालीसवें अध्यायमें यहां वर्णित सभी लीला यथा कुब्जाको रूपवती बनाना, स्थावर वस्तुरूप धनुषका भङ्ग, जङ्गमरूप धनूरक्षकोंका वध, भक्तोंके दुःखोंका निवारक निजमाहात्म्य प्रकटन ये सभी कुछ भगवान्ने धर्मिरूपेण की लीलायें है.

इस तरह अपने छह गुणधर्मो तथा स्वरूप से भगवान्‌ने अपना वसुदेवात्मज होना तथा परब्रह्म परमेश्वर होना यादवोंके बीच प्रथित किया एतावता इन सात अध्यायोंका प्रमाणप्रकरण होना उपपन्न होता है. इसके बाद राजस प्रमेयप्रकरणके सात अध्यायोंमें भगवान् ने अपना राजस प्रमेयरूपद्वारा यादवोक प्रेमभावको आसक्तिके भावमें उदात्तीकृत किया.

।। राजस प्रमेयप्रकरण ।।

इसके बाद राजस प्रमेयप्रकरण आरम्भ होता है. वसुदेवात्मजतया यादव होनेपर भी स्वयं परब्रह्म परमेश्वर होनेके तथ्यको प्रमाण प्रकरणमें प्रमापित करनेके बाद इस प्रकरणमें भी भगवान् ने अपने ऐश्वर्यादि छह गुणधर्मो प्राधान्यसे तथा सातवें स्वयं धर्मिरूप होनेके रूपमें प्रमाण प्रकरणनिरूपित प्रेमको आसक्तिततया अपने प्रमेयरूपके बारेमें दृढ़तर बनाया और उसी लीलाका वर्णन यहां प्रमेयप्रकरणमें अभिप्रेत है. अतएव महाप्रभु कहते हैं कि भगवान्के सप्तविध प्रमेयस्वरूपके अनुसार भगवान्के निरोध्य भक्त भी और निराकार्य विद्वेषी भी यहां सप्तविध ही निरूपित हुवे हैं

''प्रमेयबलम् आसाद्य ततः सप्तभिः उच्यते
आसक्तिः यादवानां च दुष्टानां च वधः तथा
प्रमेये सप्त भक्ताः हि तावन्तः चापि विद्विषः''

(त.दी.नि.३।१०।१५६-१५७)

ये सप्तविध निरोध्य भक्त यों हैं: देवकीवसुदेवादि यादव विद्यागुरु सान्दीपनि 'यशोदानन्दराय गोपिका कुब्जा अक्रूर तथा पाण्डव. इसी तरह भक्तोंकी भगवदासक्तिमें भयजनक हो कर प्रतिबन्ध करनेवाले निराकार्य भगवद्विद्वेषि भी सप्तविध ही हैं नामशः १.कुवलयापीड और उसका महावत २.चाणूर ३.मुष्टिक ४.कूट ५.शल ६.तोशल तथा ७.कंस और उसके आठ अनुज.

इस प्रकरणमें निरूप्यमाण भगवान्के प्रमेयस्वरूपके बारेमें यह उल्लेखनीय है कि भगवान्के यहां प्रकट किये गये रूपके कारण जिनका मन भगवान्में समासक्त हो पाता है वे भक्त तो जीवन्मुक्तोपम हो जाते हैं परन्तु जो जीव भगवान्के इस स्वरूपके साथ द्वेषयुक्त हो जाते हैं वे द्वेषवशात् मृत्युद्वारा विदेहमुक्ति पा लेते हैं. कुल मिला कर भगवान्का सकल स्वरूप या रूप केवल मुक्तिदानार्थ ही प्रकट हुवा है, वह मुक्ति चाहे जीवन्मुक्ति हो या विदेहमुक्ति हो. जो भगवान्के ऐसे रूपको देख कर भयभीत हो जाते हैं उनमें वह भीति भगवत्प्रीतिको पनपने नहीं देती सो उन्हें मरनेपर ही मुक्ति प्राप्त होती है.

इसके बाद अब राजस प्रमाणोंद्वारा प्रमितिविषयीभूत प्रमेयरूप भगवान्के बलके निरूपक होनेके कारण इस प्रमेयप्रकरणके अन्तर्गत आते

प्रत्येक अध्यायोंमे प्रतिपाद्य विषयका अवगाहन कर लेना भी उचित होगा. यहां इस राजस प्रमेयप्रकरणमें प्रारम्भके छह अध्याय, जैसाकि दिखला ही चुके हैं तदनुसार, भगवान्के ऐश्वर्यादि छह गुणोंको प्रकट या गुणोंका ज्ञापन करनेवाली लीलाके निरूपक हैं; और, अन्तमें सातवां अध्याय स्वयं धर्मिरूप भगवान्के स्वरूपको प्रकट या उनका ज्ञापन करनेवाली लीलाओंके निरूपणार्थ है. तदनुसार:

राजसप्रमेयप्रकरणीय प्रथमाध्याय :

प्रमेयप्रकरण के इस प्रथम अध्याय, अर्थात् आदितः चालीसवें अध्याय में कुवलयापीड़के वधद्वारा भगवान्के ऐश्वर्यका निरूपण अभिप्रेत है. यह कुवलयापीड़ भक्तोंकी भगवान्में जो आसक्ति थी उसमें एक बाह्य भयरूप था. उसे मार दूर कर देनेपर, अर्थात् उसके गजदन्तको अपने आयुधकी तरह धारण विहरनेवाले भगवान्को देखते ही भगवान्के ऐश्वर्यका बोध हो जाता था. इसी तरह भगवद्दर्शनकर्ताओंके दशविध भावोंके अनुरूप भगवान् ने अपने दशविध स्वरूपके भी दर्शन कराये वह भी एक विलक्षण ऐश्वर्य यहां निरूपित है. हुवा

राजसप्रमेयप्रकरणीय द्वितीयाध्याय:

द्वितीय, अर्थात् आदितः इकतालीसवें अध्यायमें चाणूरादि तथा कंसादि के वधकी कथा है. यह भक्तोंकी भगवदासक्तिमें आन्तरिक भयको दूर करनेको भगवान्के वीर्यगुणके निरूपण करनेवाली कथा है.

राजसप्रमेयप्रकरणीय तृतीयाध्याय:

तृतीय, अर्थात् आदितः बयालीसवें अध्यायमें भगवान् ने अपने माता-पिता देवकी-वससुदेवको कंसके कारागृहसे छुड़ा कर मथुराके राजसिंहासनपर पुनः अपने नाना उग्रसेनको स्थापित किया यह भगवान्के यशोरूप गुणका निरूपण है. इसी अध्यायमें कंसके भयसे मथुरासे दूर- दूर जा कर बस जानेवाले यादवोंको पुनः मथुरा में बुला कर बसाया तथा तथा नन्दादि गोपजनोंको व्रजमें लोट जानेको तथा वहां निर्भय हो कर बसनेको जो प्रेरित किया वह भी भगवान्के निर्भयकालके प्रवर्तक यशोरूप गुणके निरूपणार्थ ही है. इसी तरह कालकृत जरा-मृत्युबाधाके निवर्तनका निरूपण भी भगवद्यशोनिरूपणार्थ ही है.

राजसप्रमेयप्रकरणीय चतुर्थाध्याय:

चतुर्थ, अर्थात् आदितः तियांलीसवें अध्यायमें व्रजगोकुलके

व्रजभक्तोंके विप्रयोगके निवारणार्थ भगवान्का उद्यमरत होना भगवान्की श्री = शोभाके निरूपणार्थ है. भगवद्विप्रयोगके कारण अपने प्रिय व्रजभक्तों में निराशाजनित आसक्तिप्रतिबन्धको दूर करनेके लिये अर्थात् उन्हें जीवनदायिनी सान्त्वना प्रदान करनेको उद्धवको व्रज जानेको प्रेरित करना तथा उद्धवकी भी वैसी ही शोभाका निरूपण, इसी तरह व्रजकी भी शोभाका निरूपण के कारण इस अध्यायमें भगवान्के श्रीगुणका वर्णन हुवा है.

राजसप्रमेयप्रकरणीय पञ्चमाध्याय :

पांचवां, अर्थात् आदितः चवालीसवां अध्याय भगवान्के विप्रयोगके निवारणार्थ भगवत्स्वरूपके ज्ञानोपदेशार्थ है. सो भगवान्के ज्ञानरूप गुणका निरूपण है. भगवान्के पुनः व्रज न लोट आनेके कारण व्रजभक्तोंको भगवान्में दोषबुद्धि पनपी है ऐसी उद्धवजीको प्रतीति हुयी तथा स्वयं व्रजभक्तोंमें मानादिके भाव जो उन्होंने देखे सुने भगवान्के स्वरूपके ज्ञानोपदेशद्वारा उद्धवजीने दूर करने चाहे थे. ये सारे दोषारोपण तथा मानादिभाव भगवान्के बारेमें दोषबुद्धिमूलक न हो कर भक्तिभावमूलक थे ऐसा उद्धवजीको जो ज्ञान हुवा वह भी भगवान्के ज्ञानरूप गुणका कार्य है.

राजसप्रमेयप्रकरणीय षष्ठाध्याय :

छठ्ठे, अर्थात् आदितः पैंतालीसवें अध्यायमें पुनः भगवान्का कुब्जा एवं अक्रूर आदिके गृहोंमें पधारनेका निरूपण हुवा है. यह भगवान्के भक्तके अलावा अन्यत्र विरक्तिके द्योतानार्थ होनेसे भगवान्के वैराग्यरूप गुणका निरूपण है. कुब्जाने भक्तिभाववशात् नहीं प्रत्युत कामभावसे विवश हो कर भगवान्को अपने घर आमन्त्रित किया था. उसे भगवानूने न तो जीवन्मुक्तिरूपा भक्ति और न विदेहरूपा मुक्ति ही प्रदान की. कमसे कम तब तो नहीं अतः यह भगवान्के भक्तेतरजनोंमें वैराग्यके सूचनार्थ है

''कुब्जातु राजसी नारी तथा अक्रूरः च यादवः
उपलक्षणभावेन द्वौ एतौ विनिरूपितौ''

(त.दी.नि.३।१०।१७९-१८०)

राजसप्रमेयप्रकरणीय सप्तमाध्याय :

सातवें, अर्थात् आदितः छियालीसवें अध्यायमें अक्रूरद्वारा धृतराष्ट्रको पाण्डवोंकी रक्षाके उपदेश दिलवाये जानेपर भी उसका इस विषयमें पुत्रासक्तिके

अतिरेकवश सावधान न होना भगवान्को अभिप्रेत भूभारहरणरूप धर्मिकार्य है. वहां भी भगवान्के कुन्तीआदि सात्त्विक भक्तोंको अक्रूरद्वारा सान्त्वना दिलवाना भी भगवान्के धर्मिरूपमें की जानेवाली लीला है

''कुन्ती च पाण्डवाः चैव सात्त्विको पूर्ववद् मतौ
धृतराष्ट्रकृते दुःखे तस्यापि स्यात्तु बोधनं,
सतु सात्त्विकवर्यो हि पुत्रस्नेहात् तथा अकरोत्''

(त.दी.नि.३।१०।१८०-१८१).

यहां पूर्वनिर्दिष्ट तामसप्रकरणोक्त व्रजभक्तोंको तो निरोध सिद्ध हो जानेसे केवल बाह्यानुसन्धान होनेपर ही विप्रयोगकी प्रतीति होती है अन्यथा आन्तरिक संयोगानुभूति में तो किसी प्रकारका प्रतिबन्ध उन्हें हो ही नहीं सकता था. अतः राजसप्रकरणोचित चांचल्यवशात् केवल बायानुसन्धानवश विप्रयोग निरूपित हुवा है. और अतएव उनकेलिये प्रेषित भगवत्सन्देशमें भी आन्तरानुसन्धानका उपदेश ही उपलब्ध होता हैं

''यशोदा वाथ नन्दो वा गोपिका वा यदा यदा
कृष्णा-सक्तैकहृदयाः तदा आविर्भावम् एति हि
बहिर्मुखदशायान्तु न पश्यन्तीति दुःखिताः
अतः प्रबोधएव अत्र कर्तव्यो न ततो अधिकः''

(त.दी.नि.३।१०।१६७-१६९).

जहां तक राजसप्रकरणके भक्तोंका सवाल है तो प्रारम्भके तीन अध्यायोंमें तो उनकी भक्तिमें प्रतिबन्धक जो भय थे उनके निराकरणकी कथा है. माहात्म्यज्ञान सहित स्नेह जैसे भक्तिका रूप धारण कर लेता है वैसे ही भयरहित माहात्म्यज्ञान भी भक्तिके रूपमें खिल पाता है

''तेन एवं सिद्धं माहात्म्यम् आसक्तः स्याद् भयादपि
एवं त्रिभिः इह अध्यायैः आसक्तौ साधनं जगी.
स्निग्धानां सान्त्वनाभावे प्रतिबन्धो भवेद् इह.
अतः चतुर्भिः भूतानां त्रिविधानां च सान्त्वनम्''

(त.दी.नि.३।१०।१६४-१६६)

अतः अन्तिम चार अध्याय भक्तसान्त्वनाके निरूपणार्थ हैं. इनमें अन्तिम अध्याय कुन्ती-पाण्डवोंको सान्त्वना प्रदान करनेके निरूपणार्थ है.

क्योंकि आगामी प्रकरणोंमें उन्हें प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक अपने स्वरूपमें भगवान्‌को आसक्त बनाना है. मथुराके राजस भक्तोंके हृदयमें प्रमाणप्रकरणमें प्रेम प्रकट करके प्रस्तुत प्रमेयप्रकरणमें उसे आसक्तिके भाव तक विकसित करना अभीष्ट है परन्तु इन्हें प्रपञ्चविस्मृतिसहित भगवदासक्तिरूप निरोध अग्रिम राजस साधन–फलाध्यायोंका वर्ण्यविषय है.

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ।
वाचोऽभिधायिनी : नाम्नां कायः तत्प्रवणादिषु ।।
कर्मभिः भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ।
मङ्गलाचरितैः दानैः रतिः नः कृष्णईश्वरे ।
श्रीवल्लभमताभ्यासे कृपया येन दीक्षितः ।
दीक्षितं तमहं नौमि श्रीतातचरणं सदा ।।

चैत्रशुक्ला एकादशी वि.सं. २०६० **गोस्वामी श्याम मनोहर**
मुंबई.

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित तत्त्वार्थदीपनिबन्धका

।। भागवतार्थ प्रकरण ।।

राजस प्रमाण–प्रमेय प्रकरण

(अध्याय ३३ से ४६)

अतः परं राजसानां प्रक्रिया पूर्वसङ्ख्यया ।।११२ ।।
अष्टाविंशतिभिः प्रोक्तास्तथाऽध्यायैश्चतुर्विधैः ।

तामस प्रकरणके सम्पूर्ण होनेके अनन्तर १९२ कारिकाओं (श्लोकों)से राजस प्रकरणका भी पूर्वकी तरह चार उपप्रकरणों (प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल)से विचार करते हैं जैसे वह तामस प्रकणण सात–सात अध्यायोंमें ४ उप–प्रकरणोमें विभक्त किया हुआ है, वैसे ही यह भी २८ अध्यायोंमें विभक्त कर सम्पूर्ण कया गया है.

राजस भक्त कौन है? उनका उद्धार किस प्रकार किया? इसकी अपेक्षामें, वह प्रकार निम्न तीन कारिकाओंसे कहते हैं:

यादवा राजसाः प्रोक्तास्तेषां पूर्वस्थितस्य हि ।।११३ ।।
त्याजनं सर्वथा कार्यं देशादेः षड्विधस्य च ।
तत्रादौ दुःखकर्त्तारो मारणीया गुणैरिह ।।११४ ।।
ततः कालविमुक्तिर्हि देशद्रव्यैस्ततोऽपि हि ।
ख्यात्या पूर्वाणि नामानि कर्माण्यपि पुरा यथा ।।११५ ।।

यादव राजस भक्त कहे गये है, उनको जो कुछ पहलेसे ही देश तथा छः प्रकारके दुःख थे, वे इनके छुड़ाने चाहिये. यह इसलिये कि रजोगुण विक्षेप कर्त्ता है, रजोगुण विक्षेप न करावे, इसलिये इनका त्याग करना चाहिये ।।११३ ।।

इसमें पहले इस प्रसङ्गमें जो दुःख देनेवाले अरिष्ट आदि हैं, उनको गुणोंके द्वारा मारना चाहिये. इसके अनन्तर कालसे छुड़ाना है, इसके बाद देश (द्वारका आदि) तथा द्रव्योंसे अन्तमें ख्याति (लोक प्रसिद्धि)से मुक्ति करानी है. जैसे पहले (सबके पहले)के नाम और कर्म भी छुड़ाए, वैसे ही धर्मी स्वरूप हरिने यादवोंको प्रसिद्धि भी दी थी ।।११४ ।।

व्याख्या–इस उपप्रकरणमें भी सात अध्याय हैं, जिसका कारण बताते हैं कि दुःख देनेवाले (अरिष्ट आदि छ) हैं, अतः छः अध्याय कहे बादमें देश

कालसे, पश्चात् देश द्रव्य आदिसे धर्मी स्वरूप हरिने मुक्ति कराई है, यह प्रसिद्ध है. कारण कि इनसे छुड़ानेकी युक्ति एवं प्रयुक्ति वे ही (हरि ही) जानते हैं. अध्यायोंका चतुर्विधत्व स्पष्ट करनेकेलिये पहले सात अध्यायोंका प्रमाण प्रकरणत्व होनेके लिये पहलेकी तरह प्रमाताओंको कहते हुए प्रकरणके समान नाम और उनके लिये हुए निरोधको विशद करते हैं.

त्याजितानि स्मस्तानां तथा ख्यातिं ददौ हरिः ।
प्रमाणं नारदः प्रोक्तस्तथाक्रूरो द्वितीयकः ।।११६ ।।
नन्दस्तृतीयः क्षत्ता तु चतुर्थो गोपिकास्तथा ।
हर्याविष्टो हरिश्चैव कुब्जा चात्र मताः पुरा ।।११७ ।।
एते प्रमाणभूता हि राजसे सगुणो हरिः ।
एतैः सिद्धो राजसानां स्नेहः सर्वोत्तमः स्थितः ।।११८ ।।

पहले नारदजी, दूसरे अक्रूरजी, तीसरे नन्दजी, चौथे विदुरजी, पांचवीं गोपियां, छठे हरिमें आवेश युक्त हरि, सातवीं कुब्जा; ये सब सत्य ज्ञान कारानेवाले होनेसे प्रमाणभूत माने गये हैं राजस प्रकरणमें हरि सगुण हैं, जिससे राजसोंको भगवानमें सर्वसे श्रेष्ठ अधिक स्नेह उत्पन्न हुआ है.

व्याख्या–पहले ३३वें अध्यायमें नारदजीने कंसको यह सत्व ज्ञान कराया कि श्रीकृष्ण देवकीके पुत्र हैं. दूसरे अक्रूरजी जिन्होंने कंसको बताया कि ये श्रीकृष्ण, जिनको नन्दजी अपना पुत्र समझकर पाल रहे हैं, वे वसुदेवजीके पुत्र हैं. यद्यपि यहां प्रत्येक अध्यायमें प्रमाणकी कथा नहीं है, तो दूसरेमें नारदजीका, तीसरेमें अक्रूरजीका प्रसङ्ग होनेसे इन दोनोंका इस प्रमाण प्रकरणमें समावेश किया गया है. नन्दजी और क्षत्ता(विदुरजी)ने व्रजमें, गोपियोंने अपने यूथ हरिमें (भगवानमें), आवेशवाले व्यूहरूप हरिने अक्रूरजीको पुरुषोत्तमत्व रूपका सत्य ज्ञान कराया (हरिने अपना यादवोंसे ज्ञातित्व सम्बन्ध बतानेसे अपनेमें वसुदेव पुत्रत्व प्रकट किया) कुब्जाने मथुराकी स्त्रियोंको श्रीकृष्णके स्वरूपके सगुण रूपका ज्ञान कराया.

इस प्रकार इन अध्यायोंमें प्रमाताओंके सम्बन्धमें उनमें उस प्रकारका प्रेम उत्पन्न करनेसे राजस प्रकरणमें ये प्रमाणभूत हैं, क्योंकि सगुण हरि(वासुदेव) उनके द्वारा अच्छे प्रकारसे सिद्ध हुए हैं. इसलिये यहां सगुण हरि प्रमाण जनक होनेसे इस प्रकारका नाम 'प्रमाण उपप्रकरण' हुआ है. इस प्रकरणमें राजस

यादवोंका सर्वोत्तम स्नेह वर्णित है, इसलिये यह प्रकरण निरोधोपयोगी है, यह तात्पर्य है।।११६-११८।।

इससे स्नेह निर्णय कैसे होगा? इस शंकाका निर्णय निम्न ६ कारिकाओंसे करते हैं:

नारदो देवगुह्यस्य कर्त्ता भयविवर्धनः।
येन स्नेहः समुत्पन्नस्तथाक्रूरस्तु पोषकः ।।११९।।
सन्देहजननात् चित्तं कृष्णार्थं तरलं यतः।
स्नेहे द्वितीयमेतद्धि पर्व लोकेऽपि बुध्यताम् ।।१२०।।

नारदजी देवोंका गुह्य कार्य करनेवाले होनेसे भयको बढ़ानेवाले बनते हैं, जिसके बढ़नेसे स्नेह उत्न्न होता है. वैसै अक्रूरजी बढ़े हुए स्नेहके पोषक हैं. कंसको सन्देह उत्पन्न होनेसे वसुदेव तथा देवकी का चित्त श्रीकृष्णके लिये अस्थिर होता है, लोकमें भी स्नेहकी यह दूसरी श्रेणी मानी जाती है।।११९-१२०।।

व्याख्या-नारदजीने देवोंका गुप्त रीतिसे यह कार्य सिद्ध किया है कि कंसको श्रीकृष्ण शीघ्र मारे, वह कार्य तब सिद्ध होगा जब कंसको यह ज्ञान होगा कि मेरा हन्ता श्रीकृष्ण प्रकट हो गया और अमुक स्थान पर है. इसलिये नारदजीने कंसको यह सत्व ज्ञान करा दिया कि श्रीकृष्ण देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए आठवें पुत्र हैं, जिसको वसुदेवजीने अपने मित्र नारदजीके यहां गुप्त रूपसे पहुंचा रखा है. वह सत्य ज्ञान होने पर कंसने वसुदेव देवकीको बन्धनमें डाला.

यद्यपि देवताओंने श्रीकृष्णकी गर्भमें स्तुति करते हुए देवकीको स्पष्ट कहा था कि श्रीकृष्ण सकल यादवोंकी रक्षा करेंगे, अतः अब तुम कंसका भय मत करो. इसको देवकी भूल गई, किन्तु नारदजीने कंसको सच्चा वृत्तान्त कह दिया है. इस स्मृतिसे वह भयभीत होने लगी. इस भांतिसे माता-पिताका पुत्रमें (श्रीकृष्णमें) विशेष स्नेह हुआ. नारदजीका इस तरहसे कहना भी स्नेहका निर्णायक हुआ.

जब कंसने मृत्युसे बचनेके लिये अक्रूरजीको श्रीकृष्ण तथा बलभद्रको मथुरा ले आनेके लिये गोकुल भेजा, उस समय अक्रूरजीने कंसको कहा कि आप अपना अनिष्ट एवं मृत्युसे पीछा चुड़ाना चाहते हो, जिसके लिये उनको नाश करनेके लिये बुलाते हो, यों करना नीति संयुक्त तो है, किन्तु इसमें सफलता

मनुष्यके हाथ नहीं, सफलता तो दैवी प्रेरणासे ही होती है. मैं आपकी आज्ञाका तो पालन करता ही हूं, किन्तु वसुदेव देवकीके मनमें पहले ही नारदजीके कथनसे भय बढ़ा हुआ था. वह अक्रूरजीके इस प्रकार कहनेसे फिर बढ़ने लगा. भगवानके यहां पधारने पर कंस मारा जाएगा या नहीं? ऐसा सन्देह उत्पन्न होने लगा. उससे जो भय हुआ, जिसने उन दोनों (वसुदेव और देवकी)के चित्तको अस्थिर बना दिया. लोकमें भी स्नेहमार्गमें इसको द्वितीय श्रेणीका गिना है या समझा है।।११९-१२०।।

नन्दजीके वचन स्नेहमें उपयोगी कैसे हुए? इस शंकाका निवारण निम्न श्लोकोंसे होता है:

नन्दस्तु पूर्वभागस्य निन्दां चक्रे विनिश्चिताम्।
तेन मिश्रपरित्यागान्निर्दोषस्य भविष्यति।।१२१।।
उत्कण्ठा परमा क्षत्रा गोपिकाभिश्च जायते।
पुरुषाणां तथा स्त्रीणामाविष्टेनाभयं महत्।।१२२।।
ततः सन्देहगमनात् स्थिरः स्नेहो भविष्यति।
कृष्णेन पुरुषैर्योगः स्नेहवृद्धिः प्रदायकः।।१२३।।

नन्दजीने कंसके पहले विचारोंकी निश्चित प्रकारसे निन्दा की, जिससे अक्रूरजी जो कंस पर भी श्रीकृष्णके समान प्रेम था, वह दोष अक्रूरजीके अन्तःकरणसे निकल गया. अतः शुद्धान्तःकरण होनेसे उनकी श्रीकृष्णके साथ ही रहनेकी इच्छा होने लगी. अतः पुराध्यक्ष एवम् गोपियोंसे पुरुषोंको तथा स्त्रियोंको यह ज्ञान होगा कि श्रीकृष्ण मथुरा पधारेंगे आवेश युक्त हरिसे महान् भय होगा. अनन्तर संशय दूर हो जानेसे भगवानमें स्थित स्नेह होगा. पुरुषोंके साथ श्रीकृष्णका सम्बन्ध स्नेहका वृद्धिकारक है।।१२१-१२३।।

व्याख्या-नन्दजी द्वारा कंसके निर्दय पापी स्वभावका निश्चित् ज्ञान अक्रूरजीको हुआ, तब शुद्धान्तःकरण होनेसे वह मिश्रित प्रेम अर्थात् कंस तथा श्रीकृष्णमें जो समान प्रेम था, वह उड़ (दूर हो) गया, केवल श्रीकृष्णमें शुद्ध पूर्ण प्रेम होने लगा, इसलिये मथुरा जाकर उस वृद्धिंगत प्रेमके कारण श्रीकृष्णको कहने लगे कि मैं आपके सिवाय एकाकी घर नहीं जाऊंगा, इत्यादि.

चतुर्थ क्षत्ता (अन्तःपुराध्यक्ष) और पांचवीं गोपियां थी, उन्होंने भगवान् मथुरा पधार जाएंगें, यह समाचार गोकुलके पुरुष तथा स्त्रियोंमें फैला दिया,

जिससे उनको बहुत भय (शोक) होने लगा, जिससे श्रीकृष्णमें उनका प्रेम बढ़ने लगा. ये गोकुलस्थ पुरुष तथा स्त्रियां पहले तामसी थीं किन्तु आगे चलकर तामसी लीलाके पूर्ण होनेके बादमें वे राजस हो गये. उनके स्नेहकी वृद्धिक राजस प्रकरणमें वर्णन की है.

छठे हरिमें आविष्ट व्यूह रूप हरि हैं, उनने गोपियोंमें ऐसा भय उत्पन्न कर दिया कि श्रीकृष्ण मथुरा पधारते हैं, वे फिर गोकुल लौटकर नहीं पधारेंगे. इस वाक्यसे गोपियोंमें महद्भयकी वृद्धि हुई.

अनन्तर कितने ही समयके बाद जब श्रीउद्धवजी भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश लेकर आए, उसके श्रवणसे मनमें त्याग करनेका जो सन्देह उत्पन्न हुआ था, उसके मिट जानेसे स्नेह स्थिर होगा, इस प्रकार आविष्टका भी दूरसे निर्णायकत्व हुआ है.

मथुरामें पुरुषोंसे (दर्जी वस्त्र परिधान करनेवाले तथा सुदामादिसे) सम्बन्ध हुआ, जिससे उनका भी भगवान् पर स्नेह बढ़ा ।।१२१-१२३ ।।

तथैव कुब्जया स्त्रीणाम् एवं स्नेहो निरूपितः ।।
प्रमाणबलम् आसाद्य तथासक्तिः प्रमेयके ।।१२४ ।।

इसी तरह प्रमाण बल प्राप्तकर कुब्जा द्वारा स्त्रियोंका स्नेह भगवानमें बढ़ा हुआ बताया है. इसी तरह प्रमेय प्रकरणमें आसक्ति बताई है ।।१२४ ।।

व्याख्या-इसी तरह जिनका भगवानके साथ पहले सम्बन्ध नहीं था, अब ही हुआ है, उनका तो इस प्रकरणमें स्नेह उत्पन्न होना कहा है और जिनका पहलेसे ही सम्बन्ध था, उनकी आसक्ति हुई. यों दो प्रकार प्रमाण उप = प्रकरणमें निरूपित हैं, यों कहा है ।।१२४।।

अरिष्टो राजसानां हि गोकुले निधनं गतः ।
वासनालेशमात्रेण तत्र स्थास्यति सर्वदा ।।१२५ ।।
इतोऽपि चेद्धरिर्गच्छेद् नीत्वा सर्वस्य तामसम् ।
राजसास्ते भविष्यन्ति गोकुलस्था न संशयः ।।१२६ ।।
उभये च ततस्त्वग्रे सात्विका निर्गुणास्ततः ।
त्रयोऽपि सम्भविष्यन्ति मुक्तौ तेषां निरूपणम् ।।१२७ ।।

अरिष्ट दैत्य जिसने राजसोंको दुःख दिया उसकी मृत्यु हुई, वह केवल वासनाके कारण सदैव वहां रहेगा. जब भगवान् यहांसे पधारेंगे तब सबके

तामसपनको ले जायेंगे, जिससे ये (गोकुलवासी) सब पहले राजस हो जायेंगे, इसमें संशय नहीं. फिर समय पाकर सात्त्विक बनेंगे. अनन्तर सब निर्गुण होंगे, इसी तरह वे सब क्रमशः निर्गुण होनेसे मुक्तिमें इनका निरूपण हुआ है।।१२५-१२७।।

व्याख्या-यादवों (राजसों)को दुःख देनेवालोंमें अरिष्ट भी है, यों दशम स्कन्धके दूसरे अध्यायमें कहा है, इसका वध राजसोंके देशमें ही करना था न कि तामसोंके निरोध स्थान व्रजमें, क्योंकि यहां व्रजमें वध करनेसे व्रजस्थोंके ही दुःखकी निवृत्तिसे तदनन्तर पूर्व प्रकरण कहना चाहिये. 'अरिष्ट' तो वह है जिसका नाश सम्पूर्ण हो नहीं सकता कि वह वासना मात्रसे सर्वदा गोकुलमें रहेगा. अक्रूरजी भी ''तां रात्रिं'' इस श्लोकके अनुसार वहां रहे, अतः ३५ अध्यायसे राजस प्रकरण कहना उचित नहीं है.

इस आकांक्षामें 'अरिष्टो' इत्यादि तीन श्लोक कहे हैं, जिनमें कारण यह है कि भगवान् जब मथुरा पधारे तब तामस (अवज्ञादि मूढता)को अपने साथ ले गये, जिससे वहां संशय नहीं रहा. इसको जतानेके लिये व्रजमें वध किया, उसका वर्णन राजस प्रकरणमें किया है, वह उचित ही है. तामस राजस हुए, अनन्तर राजस-तामस दोनों सात्त्विक बनेंगे, अन्तमें तीनों ही निर्गुण होंगे, जिस कारणसे उनका निरूपण मुक्ति प्रकरण ११वें स्कन्धमें किया है. तामसका त्याग राजस और उसका त्याग सात्त्विक ग्रहण, तीनोंको त्यागकर निर्गुण हो जाना, जिसका कि कारण मुक्ति लीलामें प्रवेश होत है।।१२५-१२७।।

देवगुह्यस्य कर्त्ता हि नारदो देवसम्मतः।
भगवत्सम्मतिस्त्वत्र नास्तीत्येवेति मे मतिः।।१२८।।
यतः प्रबोधयत्येनं प्रद्युम्नत्वाद् न दुष्यति।
पूर्वं भावस्तु न ज्ञातः स्वाधिकारस्तु मध्यमः।।१२९।।

नारदजी देवताओंका कार्य गुप्त रूपसे करते थे वह देवोंका सम्मत था. इस तरह कार्य करनेमें भगवानकी सम्मति नहीं थी, यह मेरी निश्चित मति है।।१२८।।

क्योंकि नारदजी अपना किया हुआ भगवानके समक्ष स्पष्ट कहते हैं. यों करनेसे उनको दोष नहीं लगा. पहले उन्होंने भगवानका क्या विचार है? उसे जाना नहीं क्योंकि उनका अधिकार मध्यम है।।१२९।।

व्याख्या–नारदजीने कंसको श्रीकृष्णके प्राकट्य–निवास आदिका सत्य वृत्तान्त बता दिया जिससे उसने वसुदेव देवकीको बन्धनमें डाल दिया, जिस बन्धनसे वे दुःखी हुए. यों भक्त होकर नारदजीको करना उचित नहीं था, इस शंकाको मिटानेके लिये ''**देवगुह्यस्थ कर्ता हि नारदो देव सम्मतः**'' यह कारिका है. देवताओंकी इच्छा थी कि हम जो दुःख भोग रहे हैं, वह दुःख शीघ्र मिटे, इस इच्छासे देवोंने अपने कार्य पूर्ण करानेके लिये नारदको योग्य समझ कर उनको भेजा. अर्थात् देवोंकी सम्मतिसे देवोंका क्लेश शीघ्र मिटे इसलिये कंसको समग्र वृत्तान्त बताया. नारदजीके इस कार्यमें भगवानकी सम्मति नहीं थी, यों मेरा निश्चय मत है. दूसरेकी इसमें क्या राय है, वह नहीं कहता हूं. मेरी तो यही राय है कि मेरी इस सम्मतिमें क्या बीज है? यह '**यतः प्रबोधयत्येन प्रद्युम्नत्वान्नदुष्यति**' अग्रिम अध्यायमें ''**कृष्ण! कृष्ण! प्रमेयात्मन्**'' इत्यादिसे सर्व बताते हैं. इससे जाना जाता है कि इसमें भगवानकी सम्मति नहीं थी, इससे निश्चय है कि यह कार्य नारदजीने देवोंकी प्रेरणासे ही किया है. नारदजी जानते थे कि यह भगवान् हैं, फिर प्रबोध कराना उचित नहीं था! इस पर कहते हैं कि राजसोंके निरोध करनेवाले भगवान् प्रद्युम्न व्यूहरूप हैं, इसलिये नारदजीने प्रबोध कराया जिससे नारदजीको कोई दोष नहीं लगा. भगवानका विचार नारदजी पहले जान नहीं सके; क्योंकि उनका (नारदजीका) अधिकार मध्यम है ।।१२९।।

पूर्वक्रुद्धा देववाणी पुत्रत्वाय यतो हरिः।
प्रार्थितो वसुदेवाभ्यां ततो गमनयाञ्चया ।।१३०।।
अध्यात्मा नारदः क्रुद्ध उभाभ्यां बन्धनं तयोः।

वसुदेव–देवकीने भगवानसे अपना पुत्र बननेकी प्रार्थना की, जिससे देववाणी इन पर क्रोधित हुई, और दूसरा कोप नारदजीको हुआ क्योंकि भगवानको अन्यत्र पधारनेकी प्रार्थना की, इन दो दोषोंसे (कोपोंसे) इन दोनों (वसुदेव और देवकी)का बन्धन हुआ ।।१३०।।

व्याख्या–'वसुदेवाभ्यां' यह एकशेष समास है. इस पदका अर्थ है कि वसुदेव और देवकी ने पूर्व जन्ममें भगवानसे प्रार्थना कर वर ले लिया कि आपके समान हमारे पुत्र हो, ऐसी प्रार्थना कर वर लेनेसे देववाणी कुपित हुई, और फिर भगवानको अपने गृहसे अन्यत्र पधार जानेकी प्रार्थना की, जिससे अध्यात्म नारदजी कुपित हुए. यद्यपि जिसके यहां पूर्ण भगवान्का प्राकट्य हो उसको बन्धन

आदि क्लेश होना उचित नहीं है, इस शंकाकी निवृत्तिके लिये बताया है कि उपर्युक्त दो दोषोंके (देववाणीका कुपित होना और नारदजीका कुपित होना) कारण वसुदेव देवकीका दो बार बन्धन हुआ ।।१३० ।।

मायया प्रथमे मुक्तिः कृष्णेनाग्रे भविष्यति ।।१३१ ।।
मायावशात् तदा याञ्चा कृष्णार्थं गमनं मतम् ।

प्रथम बन्धनसे मायाने छुड़ाया; दूसरे बन्धनसे श्रीकृष्ण छुड़ायेंगे. पहले माया वश हो, ऐसी याञ्चा (आपके सम हमारे पुत्र हो) की थी, अनन्तर श्रीकृष्णको अन्यत्र पधारनेकी प्रार्थना की ।।१३१ ।।

व्याख्या–इसलिये जिस समय जैसा जिस कारणसे कार्य हुआ, उसका फल तदनुसार समयमें मिला, देववाणी कुपित हुई. उस आकाशवाणीके द्वारा कंसको कह दिया कि हे मन्द! जिसको तू प्रेमसे पहुंचाने ले जा रहा है, उसीका आठवां गर्भ तेरा काल है, वह तेरा नाश करेगा, यह वाक्य सुनते ही कंसने पहले तो देवकीको ही मारना चाहा, किन्तु वसुदेवके समझाने पर मारा नहीं, किन्तु जब नारदजीने आकर कहा कि ये यादव सब देवताएं हैं, तब फिर इनको बन्धनमें डाला. इसी तरह नारदजी और आकाशवाणी बन्धनके कारण हुए हैं.

पहले बन्धनसे मायाने छुड़ाया, दूसरे बन्धनसे श्रीकृष्ण स्वयं पधारकर छुड़ायेंगे कारण कि कृष्णने ही अन्यत्र ले जानेके लिये कहा था आपके कहनेसे ही वसुदेव आपको गोकुल पधराने गये थे.

मायाने ही कंसको क्यों नहीं मार डाला? इस शंका निवृत्तिके लिये कहा है 'कृष्णार्थं गमनं मतम्' कृष्ण ही कंसको मारेगा इसलिये माया गई थी ।।१३१ ।।

अधिकाराद् नापराधो नारदस्य भविष्यति ।।१३२।।
तथापि प्रीतये नैव हरिरित्येव मे मतिः ।

इस कार्यके करेनसे नारदजी दोषी नहीं हुए, क्योंकि उनको ऐसा अधिकार है, परन्तु इस कार्यसे भगवान् प्रसन्न नहीं हुए, ऐसी मेरी राय है ।।१३२ ।।

व्याख्या–मायाके लिये उचित यों है, किन्तु नारदजीने भगवानको जो कार्य सम्मत नहीं था वह किया, तो उनको क्लेश होना उचित था, वह क्यों न हुआ? इसके उत्तरमें कहा है कि 'अधिकारात्' नारदजीका ऐसा अधिकार है इसलिये उन्होंने कंसको श्रीकृष्णका वृत्तान्त बताया है. अधिकारके कारण उनको

दोष न लगा, भगवान् प्रसन्न हुए जिसके लिये क्षमा ली ।।१३२ ।।

कंसादयो राजसा हि बुद्ध्या कार्यस्य साधकाः ।।१३३ ।।
तामसं केशिनं तेन प्रेषयामास राजसः ।
मथुरायां तामसस्य वधो युक्तो न च क्वचित् ।।१३४ ।।
अतो गोकुलम् आसाद्य सोऽपि नष्टो विमुक्तये ।
ज्ञाने तु बाधकः केशी तेनाक्रूरादयस्तथा ।।१३५ ।।
तथा भक्तावरिष्टोऽपि तावुभौ गोकुले हतौ ।
अन्यथा गोकुलस्थानां जीवनं न भवेत् क्षणम् ।।१३६ ।।

कंस आदि राजस हैं. अतः वे बुद्धिसे कार्यकी सिद्धि करनेवले हैं. इसलिये राजस (कंस)ने तामस केशीको भेजा. तामस केशीका वध मथुरामें हो; यह किसी तरह भी उचित नहीं था, अतः उसकी मुक्ति हो,इसलिये वह गोकुल आकर मरा. केशी तो ज्ञानमें बाधक था, इस कारणसे अक्रूरादि वैसे बने. अरिष्ट भी भक्तिमें बाधक था. वे दोनों गोकुलमें मारे गये, यदि वे मारे न जाते तो गोकुलवासी एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते थे ।।१३६।।

व्याख्या–केशी ज्ञानमें विघ्नकारक था. अतएव अक्रूरादि भी ज्ञान शून्य होनेसे भगवानको पूर्ण रूपसे न जान सके. इसलिये कंसके अनुयायी होकर रहे. अरिष्ट भक्तिमें विघ्न करनेवाला था. वे दोनों गोकुलमें आए. यदि ये यहां जीवित रहते तो गोकुलवासी ज्ञान–भक्तिसे वञ्चित होते, जिससे वे क्षण मात्र भी वहां न रहे, इसलिये भगवानने दोनोंको गोकुलमें ही मारा. भगवान् गोकुलसे अन्यत्र पधार जाते तो गोकुलमें केशी एवं अरिष्टके प्रभावसे ज्ञान–भक्ति तिरोहित हो जाते, जिससे गोकुल निवासी एक क्षण भी जीवन धारण नहीं कर पाते।।१३६ ।।

ज्ञानभक्तिप्रसिद्ध्यर्थम् अक्रूरागमनं पुनः ।
गोकुले बाधको व्योमो लीलायां कर्मणि स्थितः ।।१३७ ।।
पराक्षेऽपि हरेः सिद्ध्यै लीलायाः सोऽपि वै हतः ।

ज्ञान और भक्ति की गोकुलमें विशेष प्रसिद्धि हो सके, तदर्थ अक्रूरजी यहां पधारे. कर्मका अनुसरण करनेवाला व्योम गोकुलमें लीलामें बाधक होकर स्थित था, जिससे भगवानके परोक्षमें लीला बन नहीं सकती, उसकी (लीलाकी) सिद्धिके लिये ही भगवानने उसको भी मार डाला.

व्याख्या–भगवान्के विरहमें भी ज्ञान एवं भक्ति हो तो लीलाओंका

आनन्द गोकुलवालसी ले सकें, इसलिये ही अक्रूरजीका गोकुलमें आगमन हुआ; जिससे ज्ञान एवं भक्तिका प्रचार अच्छी प्रकारसे होता रहे. यह व्योम विघ्नकर्ता होगा तो यों न हो सकेगा. अतः इसको भी भगवानने गोकुलमें मारा ।।१३७।।।

द्वाभ्यां त्रयोऽत्र निहताः परोक्षेण त्रयोऽत्र हि ।।१३८ ।।
मार्गाः पुष्टा भविष्यन्ति तेन राजसता स्थिता ।

दोसे यहां तीन मारे, इसके मारनेसे भगवान्के परोक्षमें भी यहां तीनों ही मार्ग पुष्ट होंगे, यों करनेसे तामसोंका राजस हो जाना भी दृढ़ हुआ ।।१३८।। ।।

व्याख्या–३३वां अध्याय भगवान्का ऐश्वर्य गुण प्रदर्शित करता है, ऐश्वर्य गुणसे भगवान्ने अरिष्टको मारा. ३४वां अध्याय वीर्य गुण प्रकट करता है, जिससे केशी और व्योमासुर दोनोंको मारा है. ये तीन अरिष्ट, केशी और व्योम, भक्ति, ज्ञान और कर्म(लीला)में विघ्न करनेवाले थे. इनके नाश हो जानेसे भगवान्के परोक्षमें भी गोकुलमें भक्ति, ज्ञान और लीला सिद्ध होती रहेगी; जिससे तीनों ही मार्ग बलवान होंगे, अब गोकुलवासी तामस न रहकर राजस बन गये ।।१३८।।।

सात्विकोऽप्युभयैर्दोषैरक्रूरः कंससङ्गतः ।।१३९ ।।
उभयोस्तु ततो नाशे भक्त्या कृष्णान्तिकं गतः ।

अक्रूरजी सात्त्विक होने पर भी दो प्रकारके दोषोंसे कंसके सङ्गी बने. उन दोनों दोषोंके नष्ट होने पर भक्त होकर श्रीकृष्णके पास गये ।।१३९।।।

व्याख्या–जब अक्रूरजी भक्त थे, तब वे कंसानुरोधी कैसे बने? इस शंकाका निवारण करते हैं कि राजस और तामस दोषोंके कारण वैसे बने. उसके बाद जब मनमें भगवत्सम्बन्धि मनोरथ हुए, उनसे वे दोष मिट गये, भक्तिका उदय हुआ, जिस भक्तिके कारण श्रीकृष्णके पास पहुंचे ।।१३९।। ।।

सिद्धान्तस्य परिज्ञानाद् आसुराणां तथाभवत् ।।१४० ।।
भगवच्छास्त्रविज्ञानात् सन्दिग्धं स उवाच ह ।

असुरोंका सिद्धान्त जानते थे इसलिये अक्रूरजी वैसे हुए. भगवत्सम्बन्धि शास्त्रका भी ज्ञान होनेसे उनने कंसको संदिग्ध वचन कहे ।।१४० ।।।

व्याख्या–भगवानको ले आनेकी आज्ञा मानता तो सर्वथा अनुचित था. जिसके उत्तरमें कहते हैं कि 'असुरों'के सिद्धान्तको जानते थे, तो भी

आकाशवाणीके कहे हुए सिद्धान्तको (भगवानकी इच्छा जानना अशक्य है, किन्तु भगवच्छास्त्रका यह सिद्धान्त) भी समझते थे कि श्रीकृष्ण द्वारा कंसकी मृत्यु होनेवाली है, यों जानकर श्रीकृष्णको लानेका कंसका अनुरोध माना लिया एवं कंसको संदेहवाले वचन सुनाए ।।१४०।।।

यथाकथञ्चिद् दुष्टस्य परित्यागे तु सात्विकः ।।१४१ ।।
भक्तः सन् भगवत्पार्श्वं याति कृष्णश्च तुष्यति ।
मार्गत्रये ततः प्रोक्ता तस्य निष्ठा विशेषतः ।।१४२ ।।
कृष्णमाहात्म्यविज्ञानं भक्तिमार्गोपयोगि हि ।
स्वरूपबोधो ज्ञानार्थं कामना कर्मणि स्थिता ।।१४३ ।।
त्रिभिस्त्रयोऽपि सन्तुष्टा नन्दरामौ तथा हरिः ।

जिस किसी भी प्रकारसे दुष्टका त्याग होनेसे अक्रूरजी सात्त्विक हो गये. सात्त्विक (भक्त) होकर भगवानके पास गये, पास आने पर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए. इससे उनकी तीनों मार्गोमें विशेष निष्ठा हुई. श्रीकृष्णके माहात्म्यका विशेष ज्ञान भक्ति मार्गमें निश्चयसे उपयोगी है. स्वरूपका बोध ज्ञानके लिये है अर्थात् ज्ञान कराता है. कामना कर्म मार्गमें होती है; इन तीनोंसे नन्द, बलभद्र और हरि तीनों ही प्रसन्न हुए ।।१४१-१४३।।।

व्याख्या-अक्रूरजी मथुरासे गोकुल अकेले जाने लगे. एकाकी होनेसे दुष्ट सङ्ग छूट गया, जिससे वे सात्विक बन गये, सत्त्ववृत्ति होनेसे भक्त हो गये, भक्ति युक्त होकर श्रीकृष्णके पास पहुंचे. अक्रूरजीको सात्त्विक भक्त देखकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए.

अक्रूरजीको भक्तिमार्गोपयोगी श्रीकृष्णके माहात्म्यका ज्ञान था और भगवत्स्वरूपका भी ज्ञान था. वह स्वरूपज्ञान ज्ञानमार्गोपयोगी है. अक्रूरजी मार्गमें जो-जो कृष्ण दर्शन आदिकी कामनाओंको कर रहे थे वे कर्मोपयोगी मार्ग थे इससे तीनों मार्गों में इसकी निष्ठा थी, जिससे श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा नन्द तीनों ही प्रसन्न हुए. श्रीनन्दजीकी प्रसन्नता 'यो नन्दः परमानन्दः' इस श्रुति वाक्यसे मुक्त्युपयोगी है. इस अध्यायमें कहा गया है कि अक्रूरजीको भगवानके माहात्म्य आदिका ज्ञान था. यो तृतीय अध्यायका विचार किया. यहां भी माहात्म्य ज्ञान आदि यशका कार्य है ।।१४१-१४३।।।

हरेर्निर्गमनं तस्माद् न युक्तम् इति वै शुकः ।।१४४ ।

गोपिकावाक्यरीत्यैव भगगवद्गमनं जगौ ।
प्रतिबन्धाद् अरिष्टादेर्न गोपीकायिकोद्यमः ।।१४५ ।।
वाक्येनैव च सन्तुष्टा वाचि तास्तु प्रतिष्ठिताः ।
अक्रूरे त्रितयं जातं वैकुण्ठे स्थापनाय हि ।।१४६ ।।
ब्रह्महृदे निमग्नस्य तथा दर्शनम् ईर्यते ।
अन्यथा भगवत्सङ्गं न त्यजेच्च कथञ्चन ।।१४७ ।।

उस स्थानसे हरिका अन्यत्र (बाहर) जाना उचित नहीं था,फिर भी पधारे, जिसका कारण शुकदेवजी बताते हैं कि गोपियोंके वाक्यकी रीतिके अनुसार ही बाहर पधारे हैं.

अरिष्ट आदि द्वारा होनेवाले विघ्नोंके कारण गोपियोंने भगवानको मथुरा जानेके लिये कायिक उद्यम नहीं किया ।।१४५ ।।

वचनोंसे जो उद्यम किया, उसमें ही सन्तोष धारण किया. वे तो वाणीसे स्थिर थे ।।१४५।।।।

अक्रूरजी पर तीनों ही प्रसन्न थे, कारण कि इनको (अक्रूरजीको) वैकुण्ठमें ही रखना था. यह बतानेके लिये अक्रूरजीको ब्रह्महृदमें स्नानके समय डुबकीमें वैसे स्वरूपके दर्शन दिये, यदि यों लीला न करनी होती तो अक्रूरजी भगवान्का साथ कैसे भी नहीं छोड़ते ।।१४६ ।।

व्याख्या–चतुर्थाध्यायका विचार करते हुए ये कारिकायें (श्लोक) कही हैं. अरिष्टादि तीन दुष्टोंके वधसे जब व्रजवासी तामससे अब राजा बन गये, तब व्रजसे हरिका बाहर(मथुरा) जाना उचित नहीं था, कारण कि मथुरावासी यादव भी राजस थे. उनके निरोधार्थ वहां पधारे और गोकुलवासियोंका निरोध वहांसे करेंगे वैसे ही गोकुलमें रहकर मथुरावासी भक्तोंका निरोध भी कर सकते थे, अतः मथुरा पधारनेकी आवश्यकता न होनेसे वहां पधारना उचित नहीं था!

इस शंकाको मिटानेके लिये शुकदेवजी कहते हैं कि गोपियोंके वाक्य रीति अनुसार ही भगवान् वहां पधारे हैं. उससे गोपियोंका भगवानमें उच्चतम भाव प्रकट होता है और उत्कर्ष भाव मथुरावासियोंको बतानेके लिये पधारे हैं.

जब गोपियोंका भगवानमें उत्कट भाव था तो गोपियोंने भगवान्को मथुरा जानेसे रोकनेके लिये शारीरिक(दैहिक) उद्यम क्यों नहीं किया? इस शंकाका मिटानेके लिये कहते हैं कि वासनाएं भगवत्प्राप्तिमें विघ्न रूप होती हैं, जिसका

वर्णन सप्तम स्कन्धमें किया हुआ है? यद्यपि अरिष्टकी मृत्यु हो गई, तो भी गोपियोंमें कुछ वासना रह गई थी, उस वासनाने गोपियोंको कायिक उद्यम करने नहीं दिया, कारण कि वासना दुष्ट होती है, भगवद्वियोग कराती हैं. इसलिये वासनाकी प्रबलतासे कायिक उद्यम न कर वाणीसे, जो रोकनेका प्रयास किया, उसमें सन्तोष मान लिया. वे गोपीजन ऋषिरूप तथा उपनिषद्रूप होनेसे भगवानने पधारते समय जो आश्वासनके वचन (श्लोक ३५में) कहे, उस पर विश्वास कर धैर्य धारण कर लिया.

अक्रूरजी पर नन्द, बलभद्र और भगवान् तीनोंकी प्रसन्नता थी. उनको (अक्रूरजीको) वैकुण्ठमें रखना था, इसलिये अक्रूरजीने जब कालिन्दीके ह्रदमें डुबकी मारी तब शेषशायी स्वरूपसे भगवानने उनको दर्शन दिया था. यदि भगवानकी अक्रूरजीको यों जतानेकी इच्छा न होती तो न ऐसे दर्शन कराते और न अक्रूरजी ही भगवानको छोड़कर ह्रदमें स्नानार्थ जाते. इस अध्यायमें भगवानके 'श्री' धर्मका कार्य प्रकट हुआ, भक्तोंको विरह उत्पन्न हुआ, यह तो प्रकट ही है ।।१४७।।

माहात्म्यं ज्ञापितं त्वर्थात् तेन स्तोत्रम् उदीरितम् ।
संस्कारमात्रतस्तस्मिन् स्नेहभक्तिः प्रतिष्ठिता ।।१४८ ।।
व्यवहारो महद्भिः स्याद् यथा कृष्णे तथाऽभवत् ।

अक्रूरजीने भगवानकी स्तुति की, जिसका कारण यह था कि भगवानने अक्रूरजीको अपना माहात्म्य दिखाया था, यद्यपि उनका(अक्रूरजीका) दुःसङ्गके कारण कृति(कार्य) अयुक्त थी, किन्तु श्रेष्ठ संस्कारोंके कारण भगवानके लिये अन्तःकरणमें स्नेह भक्ति स्थित थी ।।१४८।।।

व्याख्या–फलकी प्राप्तिके ज्ञानकी स्थिरता न होनेकी स्थितिमें केवल भगवन्माहात्म्य ज्ञानसे अक्रूरजी स्तुति भी न कर सकते? इस पर कहते हैं कि स्वयं भगवान्ने शेषशायी स्वरूपसे दर्शन द्वारा अपना माहात्म्य ज्ञान कराया, जिससे उन (अक्रूरजी)ने भगवानी इच्छा द्वार अपना माहात्म्य स्वयं माहात्म्यका ज्ञान क्यों करवाया? जिसके उत्तरमें कहते हैं कि संस्कारोंके कारण अन्तःकरणमें भगवानके लिये स्नेह था, जिसका अक्रूरजीका व्यवहार है, यद्यपि अक्रूरजी समझते थे कि मैं श्रीकृष्णका पितृव्य(काका) हूं, तो भी उस पितृव्यत्वके अभिमानका त्याग, श्रीकृष्ण भगवान् हैं, इसलिये स्नेह करना ही उपयुक्त समझ स्नेह करते थे जिसके

कारण बिना हिचकिचाहटके श्रीकृष्णको साक्षात् दण्डवत् प्रणाम करते थे. अक्रूरजीकी यह स्तुति ज्ञानका कार्य है. दोनों वासनाओंसे सर्व निर्वाह करते हुए भी अक्रूरजीमें जीवान्तर प्रवेश करनेका पक्षस्वीकार न हुआ, इससे यों समझा गया है. इसी प्रकार पञ्चमाध्यायका विचार किया, इस अध्यायमें ज्ञान कार्य स्फुट (प्रसिद्ध) ही है ।।१४८।। ।।

कुब्जानिःशंकवचनैः स्वेच्छां पूरयते हरिः ।।१४९ ।।
उभयोरन्तरा दण्डप्रसादौ सुनिरूपितौ ।
श्रुतमाहात्म्ययुक्तानां सन्देहविनिवारकौ ।।१५० ।।

भगवान् कुब्जाको शंकारहित वचन कहते हैं और अपनी इच्छा (मथुरा नगरी देखनेकी इच्छा) पूर्ण करते हैं. दोनोंके मध्यमें जो दण्ड एवं कृपा की जिसका वर्णन है. वह चरित्र सुनकर जो भगवान्का माहात्म्य जान लेते हैं, उनका सन्देह मिट जाता है ।।१५०।।

व्याख्या–अब छठे अध्यायमें अक्रूरजीको अपने घर भेजा जिससे वैराग्य कार्यत्वका स्फुटत्व है. उसमें वैसा कहनेके लिये अग्रिम अध्यायमें धर्मीका कार्य जतानेके लिये उस अर्थके कथनपूर्वक, जो विषय है, उसे कहते हैं.

भगवान् अक्रूरजीके साथ मथुरा पहुंचकर उनके घर स्वयं नहीं जाते हैं, किन्तु अपनी इच्छा नगरी देखनेकी कहकर अक्रूरजीको भेज खुद नगरसे बाहर, जहां नन्द आदि पहले ही रथोंको खोलकर बैठे थे, वहां रुक गये. बादमें भगवान्, बलराम आदि सहित नगरी देखने पधारते हैं. धोबीने अहंकारसे श्रीकृष्णकी आज्ञा न मानी, अतः उसका वध करते हैं. वस्त्रोंसे सेवा करनेवाले दर्जी तथा पुष्पोंसे सेवा करनेवाले सुदामा माली पर कृपा करते हैं. इसके बाद कुब्जासे मिलाप होता है. वह चन्दनादिसे आपको समलंकृत कर सेवा करती है, जिससे आप प्रसन्न हो, उसका मनोरथ पूर्ण करनेका वर देते हैं. इसी तरह मथुरा नगरी देखते हुए भक्त मनोरथ पूर्ण कर, दुष्टोंका दमनकरनेकी लीला की. जिन्होंने श्रीकृष्णका यह चरित्र देखकर माहात्म्य जान लिया, उनका यह सन्देह कि 'श्रीकृष्ण भगवान् हैं या नहीं', वह मिट गया तथा वैराग्य विषयक सन्देह भी मिट गया ।।१५० ।।

रजको दण्डनीयो हि पूर्वधाष्ट्र्यादिहापि हि ।
सीताया विप्रियं वक्ता रङ्गशोभार्थम् उद्यतः ।।१५१ ।।

अन्त्यजा दैत्यपक्षीया रजकस्तेषु चाऽऽदिमः ।
कर्ममार्गे फलं सर्वैः प्राप्यते तत् तथोक्तवान् ।।१५२ ।।
वस्त्रदातुः फलं ते स्याद् अन्यथा तु वधः स्मृतः ।

धोबी दण्डके योग्य था क्योंकि निर्दोष सीताको दूषित कहा था, जैसे यहां भी धृष्टता कर रङ्गमण्डपकी शोभा देखनेके लिये तैयार था. अन्त्यज दैत्योंके पक्षवाले होते हैं, जिनमें यह पहला है, कर्म मार्गमें सबको कर्मका फल मिलता है, इसलिये भगवानने उसको वैसा ही कहा, जो वस्त्र दोगे तो तुझे वैसा फल मिलेगा अन्यथा वध ही कहा है.

व्याख्या–दण्ड वैराग्यबोधक कैसे है? इस शंकाको मिटाकर 'रजको' इन कारिकाओंसे प्रतिपादन करते हैं:

धोबीने रामावतारमें ''सीता दोष युक्ता है'' ऐसा मिथ्या प्रलाप किया था और अब भी धृष्टतासे रङ्ग सभामें जाकर उसकी शोभा देखनेके लिये उद्यत (तैयार) हुआ है. भगवान्ने उससे वस्त्र देनेके लिये कहा और साथमें यों भी कहा कि ''वस्त्र दोगे तो तुम्हारा कल्याण एवं लाभ होगा'', ऐसे सरल वचनोंका उत्तर उसने असम्बद्ध दिया.

कर्म मार्गमें प्रत्येकको अपने कर्मानुसार ही फल मिलता है. भगवानने उसकी स्वचन्दताका फल देकर अपना वैराग्य गुण प्रकट कर दिखाया. अतः यदि वस्त्र देनेका उत्तम कार्य करता तो उत्तम फल मिलता. नहीं किया तो वध हुआ ।।१५२।।।।

मालाकारः प्रियो लोके भक्तानां सुतरां प्रियः ।।१५३ ।।
उभौ परीक्षतौ सम्यक् ततो दण्डादिकं कृतम् ।

साधारण रीतिसे तो माली लोकमें सबको प्रिय है, किन्तु भक्तोंको विशेष प्रिय है. दोनोंकी परीक्षा करनेके अनन्तर भगवान्ने दण्ड आदि दिये ।।१५३।। ।।

व्याख्या–प्रसाद (कृपा करना) वैराग्यका कार्य कैसे? इस पर (मालाकार) कारिका द्वारा इसको सिद्ध करते हैं. धोबी और माली की भगवानने पूर्ण रीतिसे परीक्षा की, जैसे कि भगवानने मालीसे किसी प्रकारकी याचना नहीं की थी, तो भी उसने भगवानका सर्व प्रकारसे भक्तिपूर्वक सादर पूजन कर विविध सुन्दर पुष्प मालाओंसे भगवानको सुसज्जित किया, जिससे उस पर कृपा कर

उसको भक्ति, बल और आयुष्य आदिका दान दिया. इसी तरह धोबीकी भी परीक्षा की. उसने भी स्वयोग्यतानुसार सेवा की, उसकी योग्यतानुसार उसको फल दिया. यह कार्य भी वैराग्य गुण दिखाता है ।।१५२।।।।

तयोर्मध्ये वेषकर्त्ता नटानां सुतरां प्रियः ।।१५४।।
प्रसादः स्त्रिषु वक्तव्यः ततस्तस्मिन् पुरोदितः ।

इन दोनोंमें वस्त्र पहनानेवाला धोबी नटोंको विशेष प्रिय था. कृपा तीनों पर करनी है, इससे उस पर पहले कही है ।।१५४।। ।।

व्याख्या–धोबी एवं दर्जीकी क्या परीक्षा की जिससे उन पर कृपा की? दर्जी नटोंको प्रिय हुआ, जिससे उस पर कृपा की, न कि स्वतः कर्मीपनके कारण. धोबी पर भी अनुग्रह किया. इस प्रकार समस्त कार्य वैराग्यका है, यों छठे अध्यायका निरूपण किया.

धनुषो भञ्जनं चैव रक्षकाणां वधस्तथा ।।१५५।
निग्रहोऽपि द्विधा जातः तैः सर्वं प्रकटीकृतम् ।

धनुष तोड़ना तथा उसके रक्षकोंका वध, इसी तरह निग्रह भी दो प्रकारका हुआ, उनसे सकल प्रकट किया है ।।१५५।। ।।

व्याख्या–भगवानने जो निग्रह किया, वह दो प्रकारका था. एक स्थावर (धनुष)का भंग और दूसरा जङ्गम, जो धनुषकी रक्षा कर रहे थे, उनका वध और कुब्जको सुरूप बनाना. इसी तरह तीनों पर कृपाका कार्य धर्मीका था. इन तीन प्रकारकी लीलासे कृष्णने अपना वसुदेवके पुत्रपनेको तथा ब्रह्मत्वको प्रकट कर यादवोंको अपने स्वरूपका ज्ञान कराया. यह सप्तम अध्यायका अर्थ कहा है ।।१५५।। ।।

राजस प्रमाण प्रकरण समाप्त.

।। राजस प्रमेय प्रकरण ।।

(अध्याय ४० से ४६)

राजस प्रमाण प्रकरणके अनन्तर राजस प्रमेय प्रकरणका साढे ३३ कारिकाओंसे विचार करते हैं:

इस प्रकरणका 'प्रमेय' नाम क्यों है? जिसका बीज ''प्रमेय बलम्'' कारिकाओंसे कहते हैं. इस प्रकरणमें सात अध्याय क्यों है? जिसका बीज ''प्रमेय...'' सप्त कारिकाओंसे कहा है.

प्रमेयबलम् आसाद्य ततः सप्तभिरुच्यते ।।१५६ ।।
आसक्तिर्यादवानां च दुष्टानां च वधस्तथा ।
प्रमेये सप्त भक्ता हि तावन्तश्चाऽपि विद्विषः ।।१५७ ।।

प्रमेय बलको प्रकट करके जो लीलाएं की हैं वे सात अध्यायोंसे कही जाती हैं. इन लीलाओंसे यादवोंको अपनेमें आसक्ति तथा वैसे ही दुष्टोंका वध किया है. प्रमेय प्रकरणमें सात भक्त और उतने ही शत्रु भी हैं.

व्याख्या–इस प्रकरणकी लीलाएं प्रमेय लीलाएं हैं, कारण कि ये लीलाएं भगवानने प्रमेय बल प्रकट करके की है. 'प्रमेय' अर्थात् भगवानने साधन पर ध्यान न देकर अपने ही बलसे ये लीलाएं की हैं, इसलिये यह 'प्रमेय' प्रकरण कहा जाता है. इस प्रकरणमें जिनके साथ लीलाएं की हैंवे सात मित्र और सात शत्रु थे. इसलिये इसमें सात अध्याय हैं ।।१५६,१५७ ।।

देवकी वसुदेवश्च सर्व एव च यादवाः ।
आध्यात्मिकप्रकारेण द्वावेतौ परिकीर्तितौ ।।१५८ ।।

देवकी और वसुदेव तथा जो सब यादव थे, इन दोनोंके वर्णन आध्यात्मिक प्रकारसे किये हैं ।।१५८ ।।

व्याख्या–अध्याय ४१ व ४२में देवकी और वसुदेवकी अपनेमें आसक्ति करानेकी लीला की है. ४२वें अध्यायके १५ से १९ श्लोकों तकके चार श्लोकोंमें यादवोंकी आसक्ति है, इसी तरह लीला द्वारा दोनोंके मनमें सन्तोष उत्पन्न कर उनकी अपनेमें जो आसक्ति कराई है उसका वर्णन है ।।१५८ ।।

अधिदेवो गुरु प्रोक्तः पुत्रदानात् स मोचितः ।
नन्दः पत्नीयुतश्चैव गोपिकाः कुब्जया युताः ।।१५९ ।।
अक्रूरः पाण्डवाश्चैव सप्तैते निःप्रपञ्चिताः ।

गुरु अधिष्ठाता देव है, उनको पुत्र लाकर दिया, वे जिससे मुक्त हो गये. पत्नी सहित नन्द, कुब्जा सहित गोपिकाएं, अक्रूर तथा पांडव ये सात निष्प्रपञ्चित किये।।१५९।।

व्याख्या–अधिष्ठाता देव गुरुको पुत्र लाकर दिया, जिसके मिलनेसे उसकी 'पुं' नाम नरकसे मुक्ति हुई, इसी प्रकार गुरुका प्रपञ्च सदाके लिये नष्ट कर दिया. नन्द, यथोदा, गोपीजन, कुब्जा, अक्रूर, पाण्डव तथा गुरु इन सातोंका भगवानने इस प्रकरणमें की हुई लीलाओं द्वारा प्रपञ्च छुड़ा दिया अर्थात् प्रमेय बलसे उनका उद्धार किया है ।।१५९।।

गजः पञ्च तथा मल्लाः सप्तमः कंस उच्यते ।।१६०।।
भ्रातरस्तत्प्रसङ्गेन हताः सप्तैव दोषतः ।

हाथी, पांच मल्ल और कंस ये सात तथा उस (कंस)के प्रसङ्गसे उसके भाई मारे गये. ये सातों अपने दोषसे ही मरे हैं ।।१६० ।।

व्याख्या–कुवलयापीड हस्ती, चाणूर, मुष्टिक, कूटपाल तथा तोशाल ये पांच मल्ल एवं सातवां कंस, ये सात भगवद्द्वेषी थे, अतः इस दोषसे मरे, कंसके आठ भाई कंसके वैरका बदला लेने आए, तब मारे गये, इसलिये सात ही दोषके कारण मारे गये और ये आठ वधके प्रसङ्गमें आए इसलिये मरे हैं, अतः वधकी अधिकता नहीं है ।।१६०।।।।

एतावानेव रूपे हि स्नेहद्वेषविनिर्णयः ।।१६१।।
जीवन्तो मुक्तिम् आयान्ति भक्ता द्विष्टा हताः पुनः ।

स्वरूपमें (भगवानसे) जो स्नेह रखते हैं, उनकी मुक्ति जीते हुए ही होती है और जो द्वेष करते हैं, उनकी मुक्ति मरनेके बादमें होती है. यह ही स्नेह और द्वेष का निर्णय है अर्थात् स्नेह और द्वेष करनेके फल प्राप्तिमें भेद है.

व्याख्या–भगवानके साथ किसी प्रकार भी सम्बन्ध जोड़नेसे मुक्ति होती है. किन्तु उसमें भेद है, उस भेदका इस कारिकामें निर्णय किया है कि जो भगवान् से प्रेम द्वारा सम्बन्ध करते हैं वे भक्त जीते हुए ही मुक्त हो जाते हैं और जो अभक्त शत्रु भावसे सम्बन्ध जोड़ते हैं, वे मरनेके अनन्तर मुक्ति पाते हैं ।।१६१।।।।

रूपं सर्वविमोक्षाय स्नेहासक्तिनिवारकम् ।।१६२।।
भयं यस्मात् तस्य वधः कारणं तत्पुरोदितम् ।
अध्यायद्वितयेनैव बहिरन्तर्व्यवस्थया ।।१६३।।

भगवत् स्वरूप सबके मोक्षके लिये प्रकट हुआ है, उस (स्वरूप)में होनेवाले स्नेह तथा आसक्तिको रोकनेवाला भय है, डरे हुएका तद्रूप होनेमें वह भय ही कारण है, वह पहले कह दिया है. इन दो अध्यायोंमें बाहर और भीतरकी व्यवस्था करनेसे कही है.

व्याख्या–भगवत्स्वरूपका प्राकट्य सर्व प्रकारसे सम्बन्ध करनेवाले एवं निःसाधनोंके उद्धार केलिये हुआ है. इस प्राकट्यसे ही भगवानने अपने प्रमेयबल को सूचित किया है, यदि यों है तो यहां ही क्यों कहा? कहीं अन्यत्र कहना था? और साधनाभावमें मोक्ष भी कैसे होगा? इस शंकाके निवारणार्थ कहते हैं कि स्नेह एवं आसक्ति स्वरूपमें ही होती है, वह किसी भी प्रकारसे हो तो मुक्ति प्राप्त होती है. जो पहले अर्थात् ''**गोप्यः कामात् भयात् कंस**'' इस पद्य द्वारा सप्तममें कहा है. यहां स्नेह वृद्धि होनेके लिये कहा है किन्तु भयके कारण स्नेह एवं आसक्ति नहीं होती है तो भी भयसे ही असुरोंको मरते हुए भगवानमें लय हुआ है. जैसे भंवरी भयसे तद्रूप हो जाती है. ४१वें अध्यायमें मल्लोंको तथा भयभीत कंसको वध कर उनको मुक्त करते हैं. यह बाहरकी अर्थात् शत्रुओंकी व्यवस्था हुई है, इसी तरह भगवान् माता–पिता यादव आदिको अपनेमें आसक्ति कराते हैं, वह व्यवस्था भीतरकी है, इसी तरह दो अध्यायोंसे व्यवस्था की गई है।।१६३।।

ततः कालस्य सर्वेषां भयहेतोर्निवारणम्।
तेनैव सिद्धं माहात्म्यम् आसक्तः स्याद् भयादपि।।१६४।।
एवं त्रिभिरिहाऽध्यायैः आसक्तौ साधनं जगौ।

सबोंके भयके कारण कालका भगवान् निवारण करते हैं, जिससे भगवान्का माहात्म्य सिद्ध होता है. भयसे भी जीव भगवान्में आसक्त होता है, इसी तरह यहां तीन अध्यायोंसे आसक्तिके साधनका वर्णन किया है।।१६४।।।

व्याख्या–यहां अध्याय ४२, श्लोक १९में ''तत्र प्रवर सोप्यास युवाने'' अर्थात् वृद्ध भी जवान हो गये है, यों निरूपण करनेका क्या प्रयोजन है? इस पर 'ततः' कारिकासे बताते हैं कि जब तक भगवानके माहात्म्यका ज्ञान नहीं हुआ है स्नेह तब तक भक्तिरूप नहीं बनता है, इसलिये माहात्म्यके ज्ञान करानेके लिये इसके वर्णनका प्रयोजन है, इसी कारणसे भगवान् कालका निवारण करते हैं. शंका: यद्यपि भयकी निवृत्ति स्नेहका अङ्ग है तो भी भय उसका विरोध है, इसलिये उसका यहां निरूपण न कर अन्यत्र करना उचित था! इस पर कहते हैं कि

'आसक्तः स्याद् भयादपि' भयसे भी आसक्ति सिद्ध होती है इसलिये यहां कहा है. आसक्तिका तात्पर्य एकतानता है, वह एकतानता ही यहां मोक्षके प्रति व्यापार (कारण) है, वह आसक्ति जैसे स्नेहसे होती है, वैसे ही भयसे भी होती है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण मकड़ी है. यहां इस स्कन्धमें वह (आसक्ति) ही प्रतिपादित हैं अतः भय, स्नेहके विरोधी होते हुए भी यहां उसका वर्णन करना अनुचित नहीं है. ४० से ४२ अध्याय तक भगवान्में आसक्ति करनेके साधन कहे हैं ।।१६४ ।।

स्निग्धानां सान्त्वनाभावे प्रतिबन्धो भवेद् इह ।।१६५ ।।
अतश्चतुर्भिर्भूतानां त्रिविधानां च सान्त्वनम् ।
कालजं सान्त्वने व्यर्थम् अतः सद्भिर्निवारितम् ।।१६६ ।।

स्नेहीजनोंको यदि सान्त्वना न दी जावे तो इस विषयमें रुकावट हो जाए इसलिये ४ अध्यायों (४३ से ४६ तक)से तीन तरहके जीवोंको सान्त्वना दी.

सान्त्वना करने पर भी यदि कालसे दुःख प्राप्त होता रहे तो सान्त्वना व्यर्थ है, इसलिये सान्त्वनकी व्यर्थता न हो, जिसके लिये उत्तम पुरुषोंके द्वारा कालसे उत्पन्न दुःखको रोक दिया है ।।१६६ ।।

अज्ञाने सान्त्वनं युक्तं तेन द्वाभ्यां व्रजे जगौ ।
यशोदा वाथ नन्दो वा गोपिका वा यदा यदा ।।१६७ ।।
कृष्णासक्तैकहृदयाः तदाविर्भावम् एति हि ।
बहिर्मुखदशायां तु न पश्यन्तीति दुःखिताः ।।१६८ ।।

अज्ञान होने पर सान्त्वन देना उचित है, इसलिये दो अध्यायोंसे व्रजमें सान्त्वना दी है. यशोदा अथवा नन्द एवं गोपियोंका हृदय जब-जब केवल श्रीकृष्णमें ही आसक्तिवाला होता है, तब-तब श्रीकृष्णका प्राकट्य निश्चयसे हुआ है, उनका चित्त जिस समय बहिर्मुख होता है, उस समय वे दर्शन नहीं कर सकते हैं, जिससे दुःखी होते हैं.

अतः प्रबोध एवात्र कर्त्तव्यो न ततोऽधिकः ।
लोकवत्तु व्यवस्थानं लोकधर्मविनाशनः ।।१६९ ।।
नन्दादीनां न कर्तव्यः पिष्टपेषो न युज्यते ।
प्रपञ्चपातने सक्ताः ते कृष्णस्य न सर्वथा ।।१७० ।।
अन्तुर्मुखे त्वाविरासीत् तत्तो बोधनम् उत्तमम् ।

अतः इस विषयमें उनको जागृत ही करना चाहिये, इससे अधिक नहीं.

निर्णय तो लौकिक नीतिसे ही करना चाहिये. पिसे हुए अन्नको फिर पीसना उचित नहीं है, जो प्रपंचमें पड़े रहते हैं, उनकी श्रीकृष्णमें सर्वथा आसक्ति नहीं रही है ।।१६६-१७० ।।

व्याख्या-स्नेहीजनोंकी आसक्तिमें विघ्न न पड़े इसलिये सान्त्वनाकी आवश्यकता है अतः ४३ से ४६ तकके चार अध्यायोंमें तामस और सात्विक गुणोंवाले मनुष्योंका सान्त्वनत्व किया है.

माहात्म्यज्ञानके लिये कालका तो निवारण जहां किया है वह क्यों? यह तो भयाध्याय है इसी अपेक्षा पर कहते हैं कि सान्त्वन देने पर भी यदि कालसे उत्पन्न, दुःख होता रहे तो सान्त्वना व्यर्थ हो जाय, इस परभी कहा है कि 'सद्भिर्निवारितम्', उस कालज दुःखका उद्धव आदि महान् पुरुषोंसे दिये हुए ज्ञान द्वारा मिटा दिया है.

आसक्तिमें प्रपंच (रुकावट) न हो यह ही सान्त्वना देनेका प्रयोजन है. वह आसक्ति यदि पूर्ण रीतिसे हो गई हो(जिसको मिटाया न जावे) तो फिर सान्त्वनाका क्या प्रयोजन? जैसे व्रजवासियोंकी भगवानमें पूर्ण (दृढ़) आसक्ति हो गई थी जो मिटाने जैसे न रही थी, तब वहां सान्त्वनाकी कौनसी आवश्यकता थी? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं, ''अज्ञान सान्तवन युक्त भगवान् सर्व व्याप्त हैं'' इस प्रकार ज्ञान न होने पर सान्त्वना देना उचित है, इसलिये ४३-४४ इन दो अध्यायोंमे ब्रजमें नन्द-यशोदा और गोपीजनों को सान्त्वन दिया है. कारण कि इनको भगवान् सर्वत्र है ऐसा ज्ञान स्थिर नहीं था. वस्तुतः भगवान् सर्वत्र होनेसे ही जब-जब उनका मन प्रभुमें आसक्त होता, तब दर्शनरूपी पीयूषके पानकी अभिलाषा बढ़ती है तब प्रभु उसी समय वहां ही प्रकट होकर उनको दर्शन न देते और जब उनका चंचल चित्त भटकता (बहिर्मुख होता) आसक्ति हीन होता है तब उनको भगवानके दर्शन नहीं होते जिससे उस समय वे दुःखी हो जाते इसलिये सान्त्वनकी विशेष आवश्यकता थी.

नन्द आदिको भगवान् सर्वव्यापी होनेसे सर्वत्र हैं ऐसा ज्ञान न होनेसे, उनको इसी प्रकारका ही केवल ज्ञान देना चाहिये था, विशेष नहीं. ऐसी दशामें, भगवान्का बाहर प्रकट होनेकी आवश्यकता नहीं इस विषयमें लोककी भांति ही निर्णय करना चाहिये. नन्दादिके लोकधर्मका नाश न करना अर्थात् बाहर जो स्वानुभव हो रहा है जिसको मिटाना नहीं. पिसे हुएको पीसना नहीं. अयुक्तपनका

प्रतिपादन करते हैं कि प्रपंचमें आसक्ति होने तक अनुभव वा दर्शन नहीं होता है. जब प्रपंचकी विस्मृति होकर भगवद् सम्बन्धि आसक्ति हो जायेगी तब अनुभवादि होगा ।।१७० ।।

चौर्यादिकं यथापूर्वं प्रपञ्चस्मृतिशान्तये ।।१७१ ।।
तथा बहिर्मुखत्वेऽपि दुःखं यच्छत्यबोधतः ।

अन्तर्मुख अर्थात् भगवत्सम्बन्धि दृष्टि होने पर तो भगवान् प्रकट होते हैं, इस कारणसे, बोध देना उत्तम है. जैसे पहले प्रपंचकी स्मृति मिट जाय, इसलिये चोरी आदि लीलाएं की, अब अज्ञानसे बहिर्मुखता मिटानेकेलिये दुःख देनेकी लीलाएं करते हैं ।।१७१।। ।।

व्याख्या–पहले जब इन व्रजवासियोंका चित्त प्रपंचमें आसक्त होने लगता तब प्रभु चोरी आदि मन आकर्षक लीलाएं कर उनके चित्तको प्रपंचसे निकालकर अपनेमें आसक्त करते ते जब अज्ञानसे भगवदासक्ति छूट, बहिर्मुखता होने लगती है, लीलाओंमें दोष दृष्टि हो जाती है तब दुःख देकर उनकी बहिर्मुखता छुड़ोते हैं. भगवानकी किसी भी लीलामें लेशमात्र भी दोष नहीं है अतः भगवानकी किसी प्रकारकी भी लीला अनुचित नहीं है ।।१७१।। ।।

मथुरास्था नाऽधुनाऽपि निःप्रपञ्चा न सर्वथा ।।१७२ ।।
अतः प्रपञ्चधर्माणां सङ्गहस्तां विचार्य हि ।

मथुराके रहनेवाले अभी तक सर्व प्रकारके प्रपंचसे छूटे नहीं थे, इस कारणसे, उस अपूर्णताका विचारकर भगवानने उनके प्रपंच धर्मोंको स्वीकार किया है ।।१७२ ।।

व्याख्या–जब कि भगवनाने गोकुलवासियोंके प्रपंचको मिटानेका बहुत प्रयत्न कर, उनकी अपनेमें आसक्ति कराई अर्थात् निरोध किया तब मथुरावासियोंके लिये क्यों प्रयत्न किये ? जब कि इनका भी निरोध कराना समान था. इस पर कहा हैं कि मथुरावासी अब तक प्रपंच रहित नहीं हुए थे, अर्थात् प्रपंचमें मग्न थे इसलिये अब तक उनको निरोधका अधिकारी न समझ, उनका प्रपंच धर्म (पुत्रादि) बढ़ाया. है अपनेमें असक्ति (निरोध) भगवान् ही निश्चय पूर्वक कराते हैं ।।१७२।। ।।

जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोषभावं नयन्ति हि ।।१७३ ।।
सर्वमेव स्वसम्बन्धात् तथा कृष्णेऽपि सङ्गताः ।

जीव स्वभावसे दुष्ट हैं जिससे वे सर्वमें दोष ही देखते हैं. जैसे बभ्रुवाहन और उग्रसेन आदि राजाओंके गुणोंके प्रसंगमें हुआ था, इसलिये इस समय उनके प्रपंचका नाश उचित न समझा, इसलिये तदर्थ प्रयत्न न कर केवल गोकुलवासियोंके प्रपंच नाशका प्रयत्न करना उचित समझा ।।१७३।। ।।

व्याख्या–'जीवाः स्वभावतो दुष्टाः' जीव स्वभावसे दुष्ट होनेके कारण, स्वार्थी होते हैं. उनका स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर जिनने उनका उपकार किया है उनका भी वे त्याग कर देते हैं. जिनने उनके दुःखका अनुभव कर उनके दुःखको दूर किया है उनके उपकारको भी वे भूल जाते हैं. इतना ही नहीं, उन (उपकारी)के दोष भी देखते हैं यह ही जीवका स्वाभाविक दोष है. जैसे श्रीकृष्णसे संलग्न गोपीजनोंने भगवानमें दोष न होते हुए भी दोषारोपण किया. जिस प्रकार ज्वर-पीड़ित जनकी रसना(जिह्वा) मीठे पदार्थोंको भी कड़वा समझती है. इस प्रकारके दोषाभावके लिये ही भगवानने पहले संयोग लीलासे गोपीजनोंके प्रपंचकी विस्मृति की.

प्रपञ्चविस्मृतिः पूर्वं दोषाभावाय कारिता ।।१७४ ।।
कृष्णविस्मरणं तत्र न युक्तम् इति बोधनम् ।

गोकुलवासियोंमें दोष न रहे इसलिये भगवानने पहले तो उनकी प्रपंच विस्मृति कराई और आगे चलकर वे लोग भगवानको भूल जावे, यह उचित नहीं, इसलिये उनको ज्ञान कराया.

व्याख्या–व्रजवासियोंको भगवानकी आसक्ति और प्रपंचकी विस्मृति पहले ही हो चुके थे फिर ज्ञान करानेका क्या प्रयोजन था.

प्रबोधे दोषहानिः स्याद् आत्मत्वे सुतरामपि ।।१७५ ।।
तदुद्धवेन गुरुणा बोधयामास केशवः ।

ज्ञान होने पर दोष नष्ट हो जाते हैं, भगवान् ही सर्वके आत्मा हैं इस प्रकारका ज्ञान होन पर दोष पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं इसलिये भगवना श्रीकृष्णने उद्धवको गुरु बनाकर गोकुलवासियोंको ज्ञान कराया.

व्याख्या–ज्ञान हो जाने पर दोषकी हानि हो जाती है. भगवान् ही सबकी आत्मा हैं ऐसा ज्ञान होने पर दोष सर्वथा नष्ट हो जाते हैं और ज्ञान बिना गुरुके होता नहीं है अतः भगवानके गुरु बनकर जानेसे संयोग हो जाता अतः विप्रयोगमें ज्ञान करानेके लिये उद्धवको गुरु बनाकर भेजा.

य एव स्याद् उपायोऽत्र स कर्त्तव्यो न चेतरः ।।१७६ ।।

अतो बोधनमत्रोक्तं न तु साक्षात् स्वयं गतः ।

इस विषयमें जो उपाय उचित हो, वही करना चाहिये न कि दूसरा, इस कारणसे ही, यहां ज्ञान दिलाना ही युक्त समझ गोपियोंको वह (ज्ञान) दिलाया, न कि आप स्वयं प्रकट रूपसे पधारे ।।१७६।। ।।

व्याख्या–भगवान्ने उद्धवजीसे ज्ञान दिलाया, आप नहीं पधारे. यदि आप स्वयं पधारते तो भी यह कार्य हो सकता था किन्तु अपना प्रकट पधारना उचित न समझा, जिस उचितताको निम्न कारिकाओंमें स्पष्ट करते हैं ।।१७६।।।।

आगतः सर्वदैवास्ते तदा चायाति सत्यवाक् ।।१७७ ।।

इदं तु बोधनात् सिद्धे दोषोऽपि विनिवर्त्तते ।

गोकुलमें आये हुए भगवान् वहां सदैव विराजते हैं, सत्यवक्ता प्रभु उस समय भी पधारे हुए हैं, उद्धवजीके दिये हुए ज्ञानसे गोपियोंमें जो दोष रहा हुआ था वह निवृत्त हो जाता है ।।१७७।।।।

व्याख्या–मथुरा पधारते समय भगवान्ने व्रजसीमन्तनियोंको कहा था कि ''मैं आऊंगा'', नन्दजीको भी यों ही कहा, यदि भगवान् गोकुलमें न पधारें तो असत्यके वक्ता बन जायें! इस शंकाको मिटानेके लिये भगवान् नन्दजीके पास पधारे यों अध्याय.४३ कारिका ३४–३८में कहा गया है. तथा भगवान् स्वयं तो सदैव गोकुलमें विराजते ही हैं, केवल गोपीजनोंके दोषोंको दूर करनेके लिये उद्धवसे ज्ञान दिलानेकी लीला की है ।।१७७ ।।

दोषश्चतुर्धा टीकायां विस्तरेण प्रपञ्चितः ।।१७८।। ।।

तत्क्षान्तिश्चाऽपि बोधेन तेन नात्रोच्यते स्फुटः ।

दोष चार प्रकारके हैं, उनका विस्तारसे वर्णन टीकामें किया है. वहां ज्ञान द्वारा उन दोषोंसे छूटना होगा, यों भी कहा है, इसलिये यहां स्पष्ट रीतिसे नहीं कहा गया है ।।१७८।।।।

व्याख्या–गोपियोंने चार प्रकारके दोष किये थे वे श्रीसुबोधिनीजीमें (अध्याय ४४के कारिका ३–११ तक) विस्तारसे वर्णन किये हैं और वहां उद्धवके दिये हुए ज्ञानसे गोपियां दोष मुक्त होंगी, यों भी कहा है इसलिये यहां (निबन्धमें) स्पष्ट नहीं कहा है कि गोपियोंके ये चार दोष हैं.

कुब्जा तु राजसी नारी तथाक्रूरश्च यादवः ।।१७९ ।।

उपलक्षरभावेन द्वावेतो विनिरूपितौ ।

कुब्जा राजसी नारी है, वैसे ही अक्रूर भी यादव होनेसे राजस हैं इन दोनोंका उपलक्षण भावसे (अर्थात् दृष्टान्त रूपसे) निरूपण किया है ।।१७९।। ।।

व्याख्या–इसी तरह साढे १२ कारिकाओंमें तामस भक्तोंको सान्त्वना देनेका समर्थन किया अब राजस भक्तोंके सान्त्वनको इस कारिकासे प्रारम्भ करते हैं: इन राजस भक्तोंका सान्त्वन एक ही अध्याय ४५में किया है, कुब्जाका सान्त्वन इस अध्यायके १ से लेकर १० कारिका तक किया है, एवं अक्रूरका ११ से ३६ कारिका तक किया है. इन दोनों राजस स्त्री पुरुषोंका सान्त्वन दृष्टान्तके रूपसे किया है ।।१७९।। ।।

कुन्ती च पाण्डवाश्चैव सात्त्विकौ पूर्ववद् मतौ ।।१८० ।।
धृतराष्ट्रकृते दुःखे तस्यापि स्यात्तु बोधनम् ।
स तु सात्विकवर्यो हि पुत्रस्नेहात् तथाऽकरोत् ।।१८१ ।।
अतः प्रबोध उचितः तस्यापि स्याद् न संशयः ।

कुन्ती और पाण्डव विचारानुसार सात्त्विक थे. धृतराष्ट्रने उनको दुःख दिये अतः इनका सान्त्वन करना भी युक्त है. यद्यपि धृतराष्ट्र स्वयं श्रेष्ठ सात्त्विक था किन्तु पुत्र स्नेहके कारण इनको दुःख दिये इसलिये इस (धृतराष्ट्र)को भी ज्ञान देना उचित था इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है ।।१८०,१८१ ।।

व्याख्या–इनका भी निरोध करना है इसलिये ये भी सान्त्वन योग्य हैं. धृतराष्ट्र पुत्रस्नेहसे राजस भावके कारण इनको दुःख न दे, इसलिये धृतराष्ट्रको भी ज्ञान देना आवश्यक था, जिससे उसका राजस भाव निवृत्त हो जाये. इसलिये ४६वें अध्यायमें कुन्ती, पाण्डव तथा धृतराष्ट्र को अक्रूर द्वारा ज्ञान दिया. धृतराष्ट्र श्रेष्ठ सात्त्विक हैं यह अक्रूरको उसके दिये हुए उत्तरसे प्रमाणित होता है. इस कारणसे वह मुक्त भी हुआ है. जिसका वर्णन प्रथम स्कन्धमें किया गया है.

एवं चतुर्भिरध्यायैः सान्त्वनं विनिरूपितम् ।।१८२ ।।

इसी तरह चार अध्यायोंसे सान्त्वनका निरूपण किया है ।।१८२ ।।

व्याख्या–४३ से ४६ अध्याय तक सान्त्वन वर्णन किया ।।१८२ ।।

प्रमाणेऽपि प्रमेयेपि भगवान् सप्तरूपधृक् ।
क्रमेणैवाऽत्र संयोज्यः तेन नोक्तो विशेषतः ।।१८३ ।।

प्रमाण तथा प्रमेय में भी भगवान् सप्त रूपधारी हैं जिसका सम्बन्ध

क्रमानुसार किया जाता है अतः उसका विशेष वर्णन नहीं किया है ।।१८३ ।।

व्याख्या–प्रकरणके अर्थका निर्णय कर ''एवं चतुर्भि'' कारिकासे इस प्रकरणका उपसंहार किया है. यहां अध्यायका अर्थ विशेष प्रकारसे क्यों नहीं कहा, जिसके लये यह कारिका है: राजस प्रमाण प्रकरणमें तथा राजस–प्रमेय प्रकरणमें भी भगवानके ऐश्वर्य आदि गुण तथा धर्मी स्वरूप क्रमशः सात अध्यायोंमें वर्णित है अतः यहां विशेष प्रकारसे वर्णन नहीं है ।।१८३ ।।

अलौकिकेन भावेन यावद्धि भगवत्कृतः ।
स पूर्वार्धो हरेः स्वस्य धर्मस्तादृश उच्यते ।।१८४ ।।

जहां भगवान्ने अलौकिक भाव दिखाया तथा लीलाएं की है, वह पूर्वार्ध है, भगवानका अपना धर्म वैसा ही कहा जाता है.

व्याख्या–भागवतमें यहां पूर्वार्ध समाप्त होता है, यहां तक पूर्वार्ध क्यों ? उसका कारण इस कारिकासे बताया है कि भगवान्ने आलौकिक प्रकारसे जो–जो लीलाएं कर अपना गुण प्रकट किया वे लीलाएं पूर्वार्धमे कही गई हैं. इस भागमें की हुई भगवान्की लीलाएं स्वेच्छासे नहीं, किन्तु अन्योंके (भक्त आदिके) इच्छानुसार की हुई है. उत्तरार्द्धकी लीलाएं भगवान्ने स्वेच्छानुसार की हैं, यों आचार्यश्रीने सुबोधिनीजीमें स्पष्ट किया है ।।१८४ ।।

लोकधर्मं पुरस्कृत्य यत् चकार यदूद्वहः ।
अस्वभावाद् उत्तरार्द्धं कार्यं तत्तु प्रकीर्तितम् ।।१८५ ।।
प्रमेयं च तथा चार्द्धं राजसप्रक्रियार्द्धतः ।
एवं प्रमेयबलतः कृष्णासक्ताऽभवद् मुदा ।।१८६ ।।

यादव–श्रेष्ठ भगवान्ने, लोकधर्मको सामने रखकर, अपने स्वभावसे विपरीत होते हुए भी, जो लीलाएं जिस भागमें की उस भागको उत्तरार्ध कहा है, यहां आधे भागमें राजस प्रक्रिया है और आधे भागमें प्रमेय बलसे की हुई लीलाएं हैं, इसी तरह प्रमेय बलसे की हुई लीलाओं द्वारा राजस भक्तोंकी भगवानमें प्रेम पूर्वक आसक्ति हो गई ।।१८५–१८६ ।।

व्याख्या–लौकिक धर्मका आदरकर, लौकिककी तरह, भगवान्ने जो लीलाएं की वे लीलाएं उत्तरार्धमें कही गई हैं, साढे ३० कारिकाओंसे राजस प्रमेय प्रकरणका विचार किया है.

राजस प्रमेय प्रकरण समाप्त.

।। श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रं स्तोत्रम् ।।

दशमस्कन्धान्तर्गत राजस प्रमाण–प्रमेय प्रकरणके नाम

(८६७) अरिष्टमथनः

सांडके स्वरूपको धारण करनेवाले अरिष्टासुरको मारनेवाले भगवान्.

(८६८) दैत्यबुद्धिव्यामोहकारकः

दैत्य कंसराजाकी बुद्धिको नारदजीके वचनों द्वारा व्यामोह करानेवाले परमात्मा. अपने अष्टमगर्भके बालकको वसुदेवजीने प्रपंच करके नंदरायजीके यहां स्थापन किया है. ऐसा नारदजीने जब कंसराजाको बताया तो कंसराजाने वसुदेवजीका मुख्य अपराध माना. ऐसे कंसराजाकी बुद्धिमें भेद पड़ा. इस प्रकार नारदमुनिके द्वारा कंसको मोह उपजानेवाले आप प्रभु ही हैं. अपने प्रकाश होनेके समय अब आ गया है. ऐसा जानकर आपने नारद द्वारा कंसकी बुद्धिमें मोह उपजाकर उसके नाश करनेका उपाय विचारा है. यह भाव सूचनार्थ इस नामको कहा गया है.

केशीघाती नारदेष्टो व्योमासुरविनाशकः ।
अक्रूरभक्तिसंराद्धपादरेणुमहानिधिः ।।१८९।।

(८६९) केशीघाती– अश्वरूप धारण कर वृन्दावनमें आये केशी दैत्यके नाशक.

(८७०) नारदेष्टः – नारद मुनिके इष्टदेव स्वरूप भगवान्.

(८७१) व्योमासुरविनाशकः – मयदानवके पुत्र व्योमासुरका नाश करनेवाले.

(८७२) अक्रूरभक्तिसंराद्धपादरेणुमहानिधिः

१.अक्रूरजीको प्रेमलक्षणा भक्तिके द्वारा चरणकमलकी रेणुरूप महानिधि प्राप्त करानेवाले. २. अक्रूरजी भक्तराजको परमभक्ति द्वारा प्रभुके चरण रजकी प्राप्ति हुई है ऐसी महान निधि–ऐसा अधिक लाभ जिनसे प्राप्त किया है ऐसे श्रीकृष्ण परमात्मा.

व्रजमें जाते समय अक्रूरजीके हृदयमें प्रेममय भाव प्रकट हुये थे. और व्रजकी रजमें स्वयंको शिरमें धारण किया है. यह ही परम लाभ अक्रूरजीको प्राप्त हुआ है. ऐसा उत्तम लाभ प्रदान करनेवाले आप प्रभु स्वयं ही हैं. इस आशयसे यह नाम लिया गया है.

रथावरोहशुद्धात्मा गोपीमानस हारकः ।
हृदसंदर्शिताशेषवैकुण्ठाक्रूरसंस्तुतः ।।१९०।।

(८७३) रथावरोहशुद्धात्मा

रथ पर बिराजनेके समय विशुद्ध विकार रहित जिनका अंत:करण है ऐसे.

अक्रूरके साथ मथुरा नगरमें पधारते समय आप रथमें बिराजे तब सब गोपीजनोंने आपके मार्गको अवरुद्ध करके मर्मात्मक कटाक्षपूर्वक अनेक प्रकारके वचन कह कर विभिन्न भावोंको दर्शाया है. लेकिन आप उनके इस प्रकारके भावोंसे लेशमात्रभी विकारयुक्त नहीं हुये एवं धैर्य रखकर रथको चलानेकी अक्रूरजीसे विनती करी है. उस आशयको लेकर यह नाम प्रकट किया गया है.

(८७४) गोपीमानसहारक: – गोपीजनोंके मनको हरण करनेवाले श्रीकृष्ण.

(८७५) हृदसंदर्शिताशेषवैकुण्ठाक्रूरसंस्तुत:

श्रीयमुनाजीके बढ़े जलाशयमें भलीभांति सम्पूर्ण वैकुण्ठलोकका दर्शन प्राप्त करनेवाले अक्रूरजी द्वारा उत्तमरूपमें जिनकी स्तुतिकी गयी है ऐसे भगवान्.

मथुरागमनोत्साहो मथुराभाग्यभाजनम्।
मथुरानगरीशोभादर्शनोत्सुकमानस: ।।१९१।।

(८७६) मथुरागमनोत्साह:

१.मथुरा नगरीमें जानेके लिये उत्साह रखनेवाले. २.मथुरानगरीमें निवास करनेवाले पुण्यवान् जनोंको अपनी शोभाका सौंदर्यका दर्शन देनेके लिये जिनका हृदय बहुत ही उत्साहित हो रहा है, ऐसे भगवान्.

(८७७) मथुराभाग्यभाजनम् – मथुरा नगरीके भाग्यका उदय करनेवाले.

(८७८) मथुरानगरीशोभादर्शनोत्सुकमानस:

मथुरा नगरीकी शोभाको देखनेकेलिये जिनका मन उत्साहयुक्त है ऐसे भगवान् वासुदेव.

दुष्टरञ्जकघाती च वायकार्चितविग्रह:।
वस्त्रमालासुशोभाङ्ग कुब्जालेपनभूषित: ।।१९२।।

(८७९) दुष्टरञ्जकघाती:

१.दुष्ट कंसादिकोंको वस्त्र देकर प्रसन्न करनेवाले धोबीको मारनेवाले भगवान्. २.दुष्ट कंस राजाके मनका रंजन करनेवालोंका घात करनेवाले भगवान्.

(८८०) वायकार्चितविग्रह:

दर्जीने जिनके श्रीअङ्गको विविध वस्त्रोंसे शोभायुक्त बनाया है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण.

(८८१) वस्त्रमालासुशोभाङ्गः

वस्त्रके ऊपर पुष्प मालायें धारण करनेसे जिनका अङ्ग अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ऐसे भगवान्.

(८८२) कुब्जालेपनभूषितः

कुब्जाके द्वारा सुगन्धियुक्त लगाये हुए चन्दनसे जिनका श्रीअङ्ग रमणीय बन रहा है ऐसे श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण.

कुब्जासुरूपकर्ता च कुब्जारतिवरप्रदः ।
प्रसादरूपसंतुष्टहरकोदण्डखण्डनः ।।१९३।।

(८८३) कुब्जासुरूपकर्ता

शरीर तीन स्थानपर वक्र होनेसे रूपहीन कुब्जाको सुन्दर स्वरूप देनेवाले

(८८४) कुब्जारतिवरप्रदः

कुब्जाके साथ रमण करनेका वरदान देनेवाले दयालु भगवान् श्रीकृष्ण.

(८८५) प्रसादरूपसंतुष्टहरकोदण्डखण्डनः

यज्ञस्थानमें स्थित कंसको प्रसन्न होकर महादेवजीके द्वारा दिये हुए धनुषको तोड़नेवाले महाबलवान भगवान् श्रीकृष्ण.

शकलाहतकंसाप्तधनूरक्षकसैनिकः ।
जाग्रत्स्वपनभयव्याप्तमृत्युलक्षणबोधकः ।।१९४।।

(८८६) शकलाहतकंसाप्तधनूरक्षकसैनिकः

स्वयं तोड़े हुये धनुषके टुकड़ोंके द्वारा धनुषके रक्षण करनेवाले कंस राजाके प्रिय धनुष–रक्षक सैनिकोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(८८७) जाग्रत्स्वपनभयव्याप्तमृत्युलक्षणबोधकः

जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था और निद्रावस्था इन तीनों अवस्थाओंमें भय व्याप्त कंस राजाको मृत्यु चिन्ह बतानेवाले भगवान्.

श्रीकृष्ण मेरे काल हैं. ऐसा जानकर भयभीत बने कंसको रात्रि दिवस श्रीकृष्ण ही हर ओर दिखाई पड़ते थे तथा अपनी मृत्युसूचक चिन्ह भी उसको नजर आने लगे. इस प्रकार अध्याय ४२में स्पष्ट वर्णन किया गया है. उस उद्देश्यसे ही यह नामकी रचनाकी गई है.

मथुरामल्लओजस्वी मल्लयुद्धविशारदः ।
सद्यःकुवलयापीडघातीचाणूरमर्दनः ।।१९५।।

(८८८) मथुरामल्ल:

मथुरापुरीके मल्लके समान स्वछन्द लीला करनेवाले श्रीकृष्ण.

(८८९) ओजस्वी – युद्धमें उत्साह रखनेवाले प्रभावशाली प्रभु.

(८९०) मल्लयुद्धविशारद: –मल्लोंके साथ युद्ध करनेमें चतुर ऐसे परमात्मा.

(८९१) सद्य:कुवलयापीडघाती–शीघ्रही कुवलयापीड़ हाथीका घात करनेवाले.

(८९२) चाणूरमर्दन: –बलवाले मल्ल चाणूरका मर्दन करनेवाले श्रीकृष्ण.

लीलाहतमहामल्ल: शलतोशलघातक: ।
कंसान्तको जितामित्रोवसुदेवविमोचक: ।।१९६।।

(८९३) लीलाहतमहामल्ल:–बिना प्रयासके ही बड़े बड़े मल्लोंको मारनेवाले.

(८९४) शलतोशलघातक: – शल तथा तोशल नामक मल्लोंको मारनेवाले.

(८९५) कंसान्तक: – कंसराजाका अन्त अथवा नाश करनेवाले प्रभु.

(८९६) जितामित्र: – समस्त शत्रुओंको जीतनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(८९७) वसुदेवविमोचक:–वसुदेवजीको बन्धनसे छुड़ानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

ज्ञाततत्त्वपितृज्ञानमोहनामृतवाङ्मय: ।
उग्रसेनप्रतिष्ठाता यादवाधिविनाशक: ।।१९७।।

(८९८) ज्ञाततत्त्वपितृज्ञानमोहनामृतवाङ्मय:

जिनको भगवत्सम्बन्धी तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हुआ है ऐसे मातापिता वसुदेव देवकीको मोहितकर अपने प्रति पुत्रभाव उत्पन्न होनेके लिये अमृतमय मधुर वचनोंका उच्चार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(८९९) उग्रसेनप्रतिष्ठाता

१.उग्रसेनको राज्यसिंहासनपर प्रतिष्टित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण. २.मर्यादाका पालन करनेके लिये उग्रसेन राजाके सन्मुख स्थिति करनेवाले–नम्रतासे बिराजनेवाले. अर्थात् उग्रसेनको राज्यासन देकर स्वयं उनकी आज्ञा मानके सारे कार्यभारको सम्भालनेवाले नीतिकुशल श्रीकृष्ण.

(९००) यादवाधिविनाशक:

यादवोंकी समस्त पीड़ाको नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण. कंसराजाके भयसे जैसे तैसे भयसे गुप्तरीतिसे भटकते हुये सब यादवोंको बुलाकर समृद्धिपूर्वक मथुरा नगरीमें बसानेवाले एवं उनके अनेक दु:खोंको दूर करनेवाले. अतएव यादवोंकी पीड़ाको नाश करनेवाले ऐसे परमात्मा कहा गया है.

नन्दादिसांत्वनकरो ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः।
गुरुशुश्रूणपरोविद्यापारमितेश्वरः ।।१९८।।

(९०१) नन्दादिसांत्वनकरः

नन्दरायजी जिनमें मुख्य हैं ऐसे गोपजनोंको मधुर वचनके द्वारा शान्त करनेवाले भगवान् नन्दनन्दन.

(९०२) ब्रह्मचर्यव्रतेस्थितः

उपनयन–यज्ञोपवीत धारण करनेवाले ब्रह्मचर्यव्रतकी दीक्षा ले विद्याभ्यास करनेके लिये गुरुकुलमें निवास करनेवाले ब्रह्मचारी श्रीकृष्ण.

(९०३) गुरुशुश्रूणणपरः

गुरु सान्दीपनिमुनि जो अवन्तिकापुरीमें बिराजमान थे उनकी सेवा करनेमें सदा सावधान ऐसे गुरुभक्तिपरायण प्रभु.

(९०४) विद्यापारमितेश्वरः

सर्व विद्याओंके अन्तको प्राप्त करनेवाले सर्वज्ञ सर्वेश्वर श्रीकृष्ण.

सांदीपनिमृतापत्यदाताकालान्तकादिजित्।
गोकुलाश्वासनपरो यशोदानन्दपोषकः ।।१९९।।

(९०५) सांदीपनिमृतापत्यदाता

गुरु सांदीपनिमुनिको समुद्रमें प्राप्त हुये पुत्रको सजीवन कर उनको पुत्र देनेवाले समर्थ श्रीकृष्ण.

(९०६) कालान्तकादिजित्

काल अर्थात् मृत्यु अन्तक–यम इत्यादिकके विविध प्रकारके विघ्नोंको मिटाकर उनके अपने आधीन बनानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(९०७) गोकुलश्वासनपरः

१.उद्धवजीके द्वारा गोकुल निवासी निजजनोंके अंतःकरणका समाधान करनेमें उद्यमशील. २.गोकुलनिवासी स्वजनोंके चित्तका समाधान करना ये ही जिनका सर्वोत्तम कार्य है ऐसे प्रभु. ३.गोकुलवासी आप्तजनोंका समाधान कर उनको शांति प्रदान करनेवाले.

(९०८) यशोदानंदपोषकः

उद्धवजीके द्वारा संदेश भेजकर यशोदाजी और नन्दरायजीके प्राणोंका पोषण करनेवाले सबके प्राणरूप परमेश्वर.

गोपिकाविरहव्याजमनोगतिरतिप्रदः।
समोद्धवभ्रमरवाग्गोपिकामोहनाशकः ।।२००।।

(९०९) गोपिकाविरहव्याजमनोगतिरतिप्रदः

गोपिकाओंके बाह्य दृष्टिसे विदित होनेवाले विरहके उपदेशसे अर्थात् उस निमित्तको मानकर व्रजमें पधारकर उनके मनमन्दिरमें बिराजकर उनको प्रेमका आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(९१०) समोद्धवभ्रमरवाक्

भगवान्के समान भक्त उद्धवजीके वहांपर विराजते रहते हुए भी गोपीजनोंके प्रति भ्रमरके गुञ्जाररूप जिनकी वाणी है ऐसे भगवान्.

(९११) गोपिकामोहनाशकः

गोपिकाओंको भगवान्के विरहसे प्रकटित मोहको उद्धवजीके वचन द्वारा निवृत्त करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

कुब्जारतिप्रदोऽक्रूरपवित्रीकृतभूगृहः।
पृथादुःखप्रणेता च पाण्डवानां सुखप्रदः ।।२०१।।

(९१२) कुब्जारतिप्रदः

पूर्वकी प्रतिज्ञानुसार कुब्जाको रति–सुरतानन्ददाता समर्थ परमात्मा.

(९१३) अक्रूरपवित्रीकृतभूगृहः

भक्तराज अक्रूरजीके यहां पधारकर उनके घर तथा समग्र सामग्रीको पवित्र करनेवाले भक्तप्रिय भगवान् वासुदेव.

(९१४) पृथादुःखप्रणेताः

पृथा अर्थात् कुन्तीजीको कौरवोंके द्वारा दिये हुए दुःखोंका वृत्तान्त अक्रूरजीको कहनेवाले अथवा अपने सन्देश द्वारा कुन्तीजीके अनेक कष्टोंको भलीभांति नष्ट करनेवाले श्रीहरि.

(९१५) पाण्डवानांसुखप्रदः

अक्रूरजीके द्वारा सन्देश भेजकर पाण्डवोंको सुख शान्तिदाता आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण.

श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित सुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद

दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)

राजस प्रमाण प्रकरण

अध्याय ३३/३६

अरिष्टासुरका उद्धार और कंसका अक्रूरको व्रज भेजना

गुणातीतस्वरूपेण तामसत्वाद् व्रजस्थिताः।
निरुद्धास्तत्त्वसङ्ख्यातैरध्यायैरिति वर्णितम्।।का.१।।

कारिकार्थ: व्रजवासी तामस थे. इसलिए उनके गुणातीत स्वरूपसे तत्त्वसंख्यति अठ्ठाईस अध्यायों में निरोधका वर्णन हो चुका(निरोध सिद्ध किया–यह वर्णन कर दिया).

लेख : इस अध्यायसे आगेका(भिन्न) प्रकरण प्रारम्भ होता है. इसलिए पहले प्रकरणकी इसके साथ संगति प्रदर्शित करनेके लिए 'गुणातीत' इत्यादि कारिकासे पूर्व प्रकरण(तामस) का अर्थ कहते हैं.

तामस भक्तोंने तत्त्वोंका उल्लङ्घन कर दिया यह बात कहनी चाहिए, इसलिए तामस प्रकरण पहले कहा है. फिर क्रमसे तामसके बाद, राजस प्रकरण आता है. इससे दोनोंकी सङ्गति होती है. तामस प्रकरणके द्वारा तामस भावको दूर करके, उन भक्तोंको राजस भाव प्राप्त कराया. राजस प्रकरणसे राजस भावको निवृत करके सात्त्विक भाव प्राप्त करावेंगे और फिर उन सात्त्विक भक्तोंके सात्त्विक भावको भी दूर करके, उन्हें निर्गुण बनाकर ग्यारहवें स्कन्धमें मुक्ति प्राप्त करायेंगे. यह क्रम निबन्ध(भागवतार्थ प्रकरण) में बतलाया है. इसलिए यहां हेतु और सङ्गति कही गई है. तामस भक्तोंके द्वारा तत्त्वोंका उल्लङ्घन कर देनेके कारण ही वह प्रकरण(तत्त्वोंकी संख्या) अठ्ठाईस अध्यायों में वर्णित है.

वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध क्रमसे गुणातीत तामस, राजस तथा सात्त्विक हैं. इनमें वासुदेव तामस भक्तोंका, प्रद्युम्न राजसोंका, अनिरुद्ध सात्त्विकोंका और गुणातीत वासुदेवमें स्वरूपसे विराजमान भगवान्ने वासुदेव व्यूहको आगे करके तामसोंका निरोध किया है यह तात्पर्य है. यह अर्थ तामस–

*** प्रक्षिप्त तीन अध्यायोंको छोडकर श्रीसुबोधिनी अनुसार अध्याय ३३/प्रचलित क्रमानुसार अध्याय ३६**

प्रमाण प्रकरणके उपोद्घातके आधारसे निरोध शब्दकी व्युत्पत्तिसे होनेवाले अर्थके अनुसार इस निबन्धमें दशम स्कन्धके प्रारम्भमें उस यौगिक, व्यूह कृत निरोधका वर्णन है. केवल पुरुषोत्तमका कार्यरूप निरोध तो ''निरोधो अस्य अनुशयनम्'' (२।१०।६) संकर्षणका चरित्र ग्यारहवें स्कन्धमें कहा गया है. इस प्रकार दशवें तथा ग्यारहवें इन दो स्कन्धोमें चार व्यूहोंका चरित्र कहा है. यह स्थूल विचारसे निर्णय है, सूक्ष्म विचारके अनुसार तो वहां वैसे-वैसे स्वयं ही निर्णय कर लेना चाहिए ।।१ ।।

प्रद्युम्न रूपो भगवान् वसुदेवहिताय हि।
रजोलीलां तथा चक्रे राजसानां निरोधकृत्।।का.२।।
असम्बद्धाः पूर्वम् उक्ताः सम्बद्धा राजसाश्च हि।
उभयेषां निरोधोतः सर्वान्ते फलितो भवेत्।।का.३।।

कारिकार्थ: बिना सम्बन्धवालोंको पहले कह दिया है और राजस सम्बन्धवाले हैं. इसलिए सबके अन्तमें दोनोंको निरोध फलदायक हो-इस उद्देश्यसे राजसोंका निरोध करनेवाले प्रद्युम्नरूप भगवान्ने वसुदेवजीके हितके लिए उसी प्रकार तत्त्वोंका उल्लङ्घन कराकर लीला की.

लेख : कारिकामें 'असम्बद्धाः' पदका अर्थ कुल तथा देह का सम्बन्ध रहित. क्योंकि व्रजमें ऐसा सम्बन्ध करनेवाले प्रद्युम्न व्यूहका अवतार तब तक नहीं हुआ था. 'सर्वान्ते' सबके अन्तमें अर्थात् (१०।८७।४८)श्लोकमें 'व्रजपुर-वनितानां'(व्रज तथा पुर की वनिताओं के) इस शब्दसे ऐसा अर्थ है. 'वसुदेव-हिताय' वसुदेवजीके हितकेलिए प्रद्युम्न व्यूहको आगे करना योग्य ही है; क्योंकि कुल तथा देह का सम्बन्ध करानेवाला प्रद्युम्न व्यूह ही है. इस अर्थको कारिकामें स्थित 'हि' शब्द सूचित करता है. 'तथा' अर्थात् तत्त्वोंको लांघकर अर्थ है.

तत्त्वसङ्ख्यैरथाध्यायैश्चतुर्धा पूर्ववद्धरिः।
गुणैः स्वरूपतो लीलां क्रमादेव तथाकरोत्।।का.४।।

कारिकार्थ: फिर भगवान्ने, पहले की तरह ही, तत्त्वोंकी संख्याके समान अठ्ठाईस अध्यायोंमें चार(प्रमाण,प्रमेय,साधन और फल) प्रकारसे गुणों (ऐश्वर्य-वीर्यादि छः)के तथा स्वरूप(सातवें स्वयं धर्मी) के अनुक्रमसे प्रत्येक प्रकरणमें सात-सात अध्यायोंसे लीला की है।।४ ।।

बन्धूनां तु सुखं दत्वा वंशवृद्धिं चकार ह।
एतावता निरुद्धास्ते खण्डद्वयम् अतोत्र हि।।का.५।।

कारिकार्थः बन्धुओंको सुख देकर वंशकी वृद्धि की. इससे उनका निरोध हुआ. इसलिए प्रद्युम्नके चरित्रमें दो विभाग होनेसे–आधा पूर्वार्धमें और आधा उत्तरार्धमें है. (इस प्रकार) इसमें दो खण्ड हैं ।।५ ।।

लेखः 'खण्डद्वयम् अतोत्र' का तात्पर्य यह है कि इस प्रद्युम्नके चरित्रमें दो खण्ड विभाग हैं. उनमें आधा चरित्र पूर्वार्धमें और आधा उत्तरार्धमें वर्णित है.

उद्यमो मानतां यातः सप्तभिः स निरूपितः।
सप्तभिः सुखदानं च विवाहश्चापि सप्तभिः।।का.६।।
त्रिविधोन्ये फलांशे हि प्रविशन्ति यथा सुताः।
उषाहरणपर्यन्तम् इदं प्रकरणं मतम्।।का.७।।

कारिकार्थः प्रमाण रूप(ज्ञान करानेवाले) उद्यमका सात अध्यायोंमें निरूपण है. सात अध्यायोंसे भगवान् सुखका दान करते हैं और फिर सात अध्यायोंसे तीन प्रकारके –रुक्मणिजी, सत्यभामाजी तथा जाम्बवतीजी– विवाहका वर्णन है. अन्य विवाहोंका पुत्रोंकी तरह फलके अंशमें समावेश है. यह प्रकरण(उषाहरण तक चलता है) उषाहरण तक माना है ।।६–७ ।।

लेख : इस प्रकारके उद्यमको कोई दूसरे नहीं कर सकते हैं. इसलिए इन राजसोंका उद्यम श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम है–यह ज्ञान करानेवाला है.

सुखका दान करना यह स्वरूप कार्य है. इसलिए उस(सुखदान)का वर्णन राजस प्रमेय प्रकरणमें है. 'त्रिविधः' रूक्मणी, सत्यभामा, जाम्बवतीके विवाहका वर्णन सात अध्यायोंसे किया है. इनको भगवत्प्राप्ति विवाहके द्वारा ही हुई. इसलिए साधन प्रकरणमें विवाह साधनका वर्णन है.

''अन्ये फलांशे प्रविशन्ति'' अन्य विवाहोंका फल भागमें प्रवेश–समावेश है. इसलिए राजसफल प्रकरणमें उनका वर्णन किया गया है. 'इति शेषः' यह अध्याहार है. इसकी विशेषता यथा स्थान निरूपण की जाएगी.

न कालनियमोन्यत्र सात्विके नापि च क्रमः।
क्रमः पूर्वत्र संसिद्धः सात्विका विरला यतः।।का.८।।

कारिकार्थः सात्त्विकमें कालकी मर्यादा नहीं होती है और पहले जैसा (छः धर्म, सातवें धर्मी) क्रम भी नहीं होता ; क्योंकि सात्त्विक विरले ही होते हैं.

लेख : प्रसङ्गात्–इत्यादि सात्त्विक प्रकरण इक्कीस अध्यायों में कहा गया है. इसका कारण प्रसङ्गसे जाना जाता है. सात्त्विकोंको कालकी मर्यादा नहीं

है यह सिद्ध करना है. काल(परमास) हेमन्त शिशिरको एक मानकर ५ ऋतुएं, ३ लोक और आदित्य, इक्कीस प्रकारका है. इसलिए सात्त्विक प्रकरण इक्कीस अध्यायोंसे कहा गया है–ऐसा अर्थ है.

'नापि च क्रमः' सात्त्विक प्रकरणमें छः धर्म और सातवें धर्मी–इस प्रकार प्रत्येक अवान्तर प्रकरणमें होनेका क्रम भी नहीं है. यहां तो छः धर्मोंका निरूपण करनेवाले छः–छः अध्यायोंको पहले कहकर अन्तिम तीन अध्यायोंको धर्मीका निरूपण करनेवाले कहे हैं; क्योंकि सात्त्विक तो विरले ही होते हैं. उनका उस प्रकरणमें स्पष्ट रीतिसे वर्णन किया गया है.

नारदो द्विविधो ह्यत्र प्रमाणे विनिरूप्यते।
कर्मज्ञानविभेदेन ह्यक्रूरो भक्तिबोधकः।।का.९।।

कारिकार्थ: यहां 'प्रमाण' उपप्रकरणमें कर्म और ज्ञान के भेदसे नारदजी का दो प्रकारसे वर्णन किया है और अक्रूरजी भक्तिका बोध करानेवाले हैं।।९।।

लेख : प्रथम(प्रमाण) प्रकरणके अध्यायोंका विभाग करते हैं. पहले तेतीसवें अध्यायमें कर्ममार्गीय नारद और दूसरे चौतीसवें अध्यायमें ज्ञानमार्गीय नारद कहे गए हैं. विशेषणोंके भेदसे ऐसा भेद है. पहले तेतीसवें अध्यायमें कंसको नारदजीसे यह ज्ञान होता है, कि श्रीकृष्ण भागवन् हैं. धनुर्यागके बहानेसे भगवान्को मथुरा बुलाना चाहिए, ऐसा कंसको भान हुआ. इसलिए धनुर्यागका बोध करानेवाले नारदजी कर्ममार्गीय हैं–यह स्पष्ट समझमें आने जैसा है–यह अभिप्राय है. दूसरे–आगेके चौतीसवें अध्यायमें भगवान्की भावी(आगेकी) लीलाओंका वर्णन करनेवाले नारदजी ज्ञानमार्गीय हैं जो स्पष्ट ही है.

''अक्रूरो भक्ति बोधकः'' भक्तिका बोध करानेवाले अक्रूरजी हैं; क्योंकि भगवान्के अतिरिक्त किसी अन्यमें इस प्रकारसे भक्ति नहीं करायी जाती है. इसलिए अक्रूरजी जिनकी भक्ति करते हैं; वे भगवान् हैं–ऐसा ज्ञान इस अध्यायके सुननेवालोंको हो जाता है.

प्रेमार्थबोधिका गोप्यो भगवद्बोधकश्च सः।
कार्यं च ज्ञापयामास कंसः सम्भृतिबोधकः।।का.१०।।

कारिकार्थ: ''प्रेमरूपी पदार्थका बोध करानेवाली गोपियां हैं. उनके प्रेमसे श्रीकृष्ण भगवान् हैं'' यह ज्ञान होता है. अक्रूरजी भगवान्का बोध करानेवाले हैं; क्योंकि उनकी की हुई स्तुति श्रीकृष्ण, भगवान् हैं यह प्रकट करती

है और उन्होंने अपना श्रीकृष्णको गोकुलसे मथुरा ले आनारूप कार्य तथा भगवान्का मथुरा देखना आदि कंसको बतला दिया. कंस अपनी मृत्युकी तैयारी करना, बतलानेवाला है. इस प्रकार नवी, दसवीं, कारिकाओं में इस राजस-'प्रमाण' उपप्रकरणके सात अध्यायोंका विभाग किया है ।।१० ।।

एवं सप्तभिरध्यायैः प्रमाणमिह रूप्यते।

तत्राद्यः कर्ममार्गस्य ततो भक्त्या विरुद्ध्यते।।का.११।।

कारिकार्थः इस प्रकार यहां सात अध्यायों में 'प्रमाण' उपप्रकरणका निरूपण किया गया है. उनमें पहला अध्याय कर्ममार्गका है, जो भक्तिमार्गके विपरीत है, क्योंकि कंसको यह ज्ञान होते हुए भी कि श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं-वसुदेवजी व देवकी आदि भक्तोंको उसने दुःख दिया. अतः यह कार्य भक्ति विरुद्ध है-ऐसा अर्थ है ।।११ ।।

साधनं च फलं तस्य त्रयमत्र निरूप्यते।

लौकिकारिष्टगमने कर्ममार्गः प्रवर्तते।।का.१२।।

कारिकार्थः भगवान्का ज्ञान, भगवान्के ज्ञानका साधन और ज्ञानका फल-इन तीनोंका यहां निरूपण किया गया है. लौकिक अरिष्टासुरके आनेसे कर्ममार्गकी प्रवृत्ति होती है ।।१२ ।।।

लेख : भगवत्प्रमा अर्थात् श्रीकृष्ण भगवान् हैं-ऐसा ज्ञान, ऐसे ज्ञानका साधन-अरिष्टका व्रजमें आना, मारा जाना आदि साधन हैं; क्योंकि इसके बादमें नारदजीने आकर कंसको श्रीकृष्णका साक्षात् भगवान् होना बतलाया है. तथा फल अर्थात् केशी और अक्रूरजीको व्रजमें भेजना, मंत्रणा करना ये सब कंसके उद्यम उसको-श्रीकृष्ण, भगवान् हैं-ऐसे ज्ञान होनेके फल हैं.

अतोरिष्टवधो हेतुः सर्ववस्त्वर्थबोधने।

फलमुद्यम एवात्र कंसस्य व्यग्रभावतः।।का.१३।।

कारिकार्थः इससे अरिष्टका वध सारे वृत्तान्तके प्रयोजनको प्रकट बतलानेका कारण है और कंसकी व्याकुलताके कारण उस(कंस)का उद्यम करना यहां फल है ।।१३ ।।

लेख : अतः जो सोलहवें श्लोकसे स्पष्ट समझमें आता है. 'सर्ववस्त्वर्थ बोधने' वसुदेवजीका जातमात्र, श्रीकृष्णको गोकुल ले जाकर वहां रख आना आदि सारे कार्यका प्रयोजन कंसको मारना ही है-यह नारदजीने कंसको बतला दिया.

''अरिष्टे निहते दैत्ये'' इन सबका हेतु अरिष्टका वध ही है. नारदजीके बोधसे कंसको श्रीकृष्णको धनुर्यागके मिषसे मथुरा बुलानेका ज्ञान हुआ. इसलिए नारदजीका यह ज्ञान देना कर्ममार्गीय है, ऐसा अभिप्राय है.

सात्विकं तामसं चैव प्रेषयामास राजसः।
अत्र वध्या राजसा हि प्रसङ्गादपरेपि च।।का.१४।।

कारिकार्थ: कंसने सात्त्विक, राजस, और तामसों को व्रजमें भेजा. उनमें राजस ही वध करने योग्य हैं; किन्तु प्रसंगसे दूसरे भी वध्य हो जाते हैं ।।१४ ।।

लेख : इस प्रकरणमें मुख्य रीतिसे राजसोंका ही वध करना उचित है; किन्तु फिर भी प्रसङ्ग वश औरोंका भी वध हुआ है. इसलिए यहां राजस प्रकरणमें तामस केशीका वध कैसे हुआ ऐसी शंका नहीं रहती है.

त्रयस्त्रिंशे ततोध्याये ह्यरिष्टवध उच्यते।
नारदोक्तिस्तथा कंसमन्त्रणं च रजो महत्।।का.१५।।

कारिकार्थ: इस कारणसे तैतीसवें अध्यायमें अरिष्टके वधका वर्णन है. नारदजीके वचन तथा कंस की मंत्रणा भी अत्यन्त राजस है ।।१५ ।।

लेख : ततः– मुख्यतया राजसोंका वध करना होनेसे तैतीसवें अध्यायमें अरिष्टका वध वर्णित है.

कलाभिः साधिकैराद्यः सार्धाभ्यां वचनं तथा।
त्रयोविंशतिभिः शिष्टविद्याः प्राकृतिकास्तथा।।का.१६।।

कारिकार्थ: साढे पन्द्रह श्लोकोंसे पहला, ढाई श्लोकों से वचन और तेवीस श्लोकोंसे उसी तरह प्रपञ्चकी शेष विद्याओंका वर्णन किया है ।।१६ ।।

लेख : श्लोक शब्द पुल्लिङ्ग है. इसलिए श्लोक शब्दका विशेषण होनेके कारण 'साधिकैः' पुल्लिङ्ग दिया है क्योंकि विशेषणके विभक्ति, लिंग तथा वचन विशेष्यके अनुसार ही है. इस प्रकार इस अध्यायमें (१५।।+२।।+२३ = ४१) श्लोक हैं. किन्तु नवें और सतरहवें श्लोकोंमें आधे–आधे श्लोकोंकी संख्या अधिक लगा देनेके कारण एक श्लोक कम हो जाता है. अतः तैतीसवें अध्यायमें कुल चालिस श्लोक हैं.

श्रीशुक उवाच
अथ तर्ह्यागतो गोष्ठम् अरिष्टो वृषभासुरः।
महीं महाककुत्कायः कम्पयन् खुरविक्षताम्।।१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहते हैं–हे राजन्! इसी अवसरमें अरिष्ट नामका एक असुर बैलके रूपमें धरतीको खुरोंसे खोदता और कंपाता हुआ ब्रजमें आकर उपस्थित हुआ. उसके पीठके ऊपर कूबर–कांध और(वह) बहुत ऊंचा और लम्बा चौड़ा था ।।१ ।।

व्याख्यार्थ: प्रथम तामस प्रकरणमें व्रज भक्त गोपीजन प्रभृतिको निरोध सिद्धिका वर्णन करके अब इस राजस प्रकरणमें भगवान्के द्वारा अन्य जीवोंको निरोध सिद्धिका वर्णन करनेकेलिये राजस प्रकरणका प्रारम्भ–अथ–इत्यादि प्रथम श्लोकसे करते हैं. अरिष्टासुरने जब ही यह जाना, कि भगवान्ने व्रज भक्तोंको निरोध सिद्ध कर दिया है, तब उसी समय वह व्रजमें आ गया. बैलका ब्रजमें आना कोई आश्चर्य जनक नहीं होता, किन्तु यह तो बैलका रूपधारी 'अरिष्ट' नामका असुर पृथ्वीको कंपाता हुआ आया. इस कथनसे राजसोंमें विशेष सामर्थ्य होती है, इसका निरूपण किया गया है. उसकी कान्ध बड़ी मोटी और देह बड़ी विशाल थी. वह पृथ्वीको अदृष्ट द्वारा प्रभावसे केवल कम्पित नहीं कर रहा था, किन्तु उसके विशाल खुरोंसे धरतीको क्षत विक्षत करता खोदता हुआ भी वहां आया।।१।।

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन् महीम्।
उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन्।।२।।

श्लोकार्थ : वह कानोंको फोड़ देना जैसा कठोर शब्द करता हुआ पैरोंसे पृथ्वीको खोदता और पूंछको उठाकर सींगोंकी नोंकसे(अग्र भागसे) दीवारों और कंगारोंको तोड़ रहा था ।।२ ।।

व्याख्यार्थ: ढाई श्लोकोंसे उसका आना कहते हैं, जिनमें पहला श्लोक कह दिया. अब अगले डेढ श्लोकसे उसकी चेष्टाका निरूपण करते हैं. उसकी चेष्टाको बतलाते हैं, कि वह अत्यन्त कठोर जैसा रांभने लगा(जैसे कि बैल मस्त होकर कर्णकटु शब्द किया करते हैं) और किसी एक पांवसे धरतीको खोद रहा था. पशु प्रायः कुछ अगला काम सोचने लगते हैं, तब अपने खुरसे भूमिको खोदा करते हैं, फिर पूंछ उठाकर(सींगकी नोकसे तीखे) शूलकी तरह तीखी सींगकी नोकसे गोकुलके निकटकी दीवारोंको उखाड़ने लगा. वह बैलरूपसे आया था इसलिये पशु जैसी चेष्टा करने लगा. दोनों सीगोंसे एक साथ दीवारों तथा किनारोंको उखाड़नेमें पूरी–पूरी शक्तिका प्रयोग अत्यधिक नहीं हो पाता. इसलिये

वह क्रमसे,एकसे फिर दूसरे सींगसे किनारों और दीवारोंको तोड़ रहा था और कहीं दोनों ही सीगोंसे थोड़ा-थोड़ा उखाड़नेका काम कर रहा था।।२।।

किञ्चित् किञ्चिच्छकृन् मुञ्चन् मूत्रयन् स्तब्धलोचनः।
यस्य निर्हादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम्।।३।।
पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै।
निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया।।४।।

श्लोकार्थ : बीच-बीचमें वह थोड़ा मल मूत्र त्याग करता जाता था. वह लाल-लाल डरावनी आंखे फैलाकर गरज रहा था. महाराज, उसकी कठोर गर्जनाको सुनकर गायें और व्रजके गोपी ग्वाल अत्यन्त भयभीत हो गए. असमयमें ही उनके गर्भ गिर गए और बहने लगे. उसकी कांध इतनी ऊंची थी कि बादल, पर्वतके धोखेसे, उस पर ठहर जाते थे ।।३-४ ।।

व्याख्यार्थ: वह थोड़ा-थोड़ा मल मूत्र गोमय, गोमूत्रका त्यागकर अपने उन्मत्त स्वभावको प्रकट कर रहा था. उसकी आंखें टिठक रही थीं, जिनसे ऐसा प्रकट हो रहा था मानो अत्यन्त क्रोधी वह रजोगुणके कारण किसी विचार-सोचमें पड़ रहा है, अर्थात् कुछ भी सोच रहा हो. इस कारणसे और भगवान्की इच्छा तथा व्रजके अधिष्ठाता प्रभुके द्वारा निरोध प्राप्त व्रज भक्तोंके माहात्म्य(प्रभाव) से भी वह गोष्ठमें एका एक घुस नहीं सका. उसके आकर खुरोंसे पृथ्वी खोदने सींगोंसे दीवारों और कड्गारोंकों तोड़ने आदिसे हुवे उपद्रव तो स्पष्ट ही थे. इसलिये उनका वर्णन न करके उसके रांभनेसे होनेवाले उत्पातको बतलाते हैं, कि कानोंके छिद्रोंसे हृदयमें घुस कर भी मार देनेवाली उसकी कठोर गर्जनासे भयभीत गायें और गोपियोंके तीसरे चौथे मासके गर्भोंका स्राव तथा पांचवे छठे महिनोंके गर्भ गिर जाते थे. भयसे ही उनके गर्भ स्राव और पात होने लगे थे, मन्त्र जनित अदृष्टके द्वारा होनेवाली किसी उपद्रवकी तरह उसकी गर्जना गर्भ स्राव पातका कारण नहीं थी. यदि मन्त्र जनित उपद्रवकी तरह मारण उच्चाटनके मन्त्रोंसे होनेवाले विघ्नोंकी तरह गर्भपात गर्भस्रावको दैविक आपत्ति मान लें तो उसके लौकिक शरीरकी ऊंचाई, लम्बाई, चौड़ाई तथा शक्तिका प्रभाव ही घट जायेगा. यहां तो उसकी ऊंचाईका वर्णन करते हैं कि बादल उसकी कान्ध पर पर्वतके धोखेसे ठहरने लगते थे. इस कथनसे उसके देहकी विशालताकी व्याख्या की गई है।।३-४।।

तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः।
पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन् सन्त्यज्य गोकुलम्।।५।।

श्लोकार्थ : बड़े पैने सींग उठाए हुए उस असुरको व्रजमें आते देखकर गोप और गोपीजन बहुत ही भयभीत हो उठे. सारे पशु भी रस्सियां तोड़कर व्रजसे इधर-उधर दौड़ने लगे ।।५ ।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार उस असुरके शरीर, कार्य, गर्जन और हृदयकी क्रूरताका निरूपण करके इन सबके द्वारा उत्पन्न हुई स्थितिका वर्णन करते हैं. अपने दोनों तीखें सींगोंको खूब ऊंचा उठाये उस असुरको देखकर गोप, गोपियों और पशु सब भयसे व्याकुल हो ऊठे.

भगवान्के द्वारा निरोध प्राप्त व्रजवासी जीव कदाचित् देहाभिमानके नष्ट हो जानेसे भयभीत नहीं होंगे? इस प्रकारकी शङ्का करके उनका मूलमें भयभीत होनेका निरूपण किया गया है. वहांके पशुओंमें भयके कारण उत्पन्न हुई विशेषता यह थी, कि वे(पशु) बन्धनोंको तोड़कर गोकुलको छोड़कर इस प्रकार भाग पड़े मानों वे फिर गोकुलमें लौट आनेकी अपेक्षा छोड़ चुके हों. सावधान रहनेकेलिये 'मूल'में राजाको 'राजन्' कहकर सम्बोधित किया है।।५।।

कृष्ण! कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः।
भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविह्वलम्।।६।।
मा भैष्टेति गिराश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत्।
गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः किमसत्तम।।७।।

श्लोकार्थ : गोकुलमें रहनेवाले लोग-''हे कृष्ण, हे महायोगेश्वर! बैलका रूप रखकर आए हुए इस असुरसे हमारी रक्षा करो'' यह कहते हुए गोविन्द भगवान्की शरणमें आए. भगवान् कृष्ण चन्द्रने सब गायों और गोप गोपियोंको भय और व्याकुलताके मारे प्राणोंकी रक्षाके लिए इधर-उधर दौड़ते हुए देखकर-अभयवाणीसे 'मत डरो, मत डरो' कहकर उनको आश्वासन दिया. फिर वृषभासुरको ललकारकर बोले ''अरे कायर, महा दुष्ट, इन गोपों और पशुओं को वृथा क्यों डरा रहा है''।।६-७ ।।

व्याख्यार्थ: तब सारे भयोमें भगवान् ही रक्षक हैं यह जानकर,वे सब हे कृष्ण, हे कृष्ण कहते हुवे भगवान्की शरणमें गये रक्षा करना, भगवान्के हृदयमें रहनेवाला सहज धर्म है, जो भक्तों पर अत्यन्त भय उपस्थित होने आने पर

भगवान्के मुखारविन्दसे निकल पड़ता है. और फिर इन व्रजवासियोंके तो भगवान् कृष्ण ही सब प्रकारसे रक्षक हैं. इसलिये वे सब हे कृष्ण, हे कृष्ण कहकर अपने स्वामी गोविन्दकी शरण गये. व्रजवासियोंके इस प्रकार कातर वचन सुनकर, स्वयं भी उस असुरको देखकर(मत डरो कहकर) भयसे व्याकुल हुवे गौकुलको डरो नहीं ऐसा आश्वासन दिया और मनसे उस वृषासुरके वधकी प्रतिज्ञा करके फिर उसको ललकारा, मिन्नतकेलिये. यह तो बैलरूपमें असुर था, दैत्यांश था. दैत्यांश ब्रह्माजीके पौत्र हिरण्यकशिपु आदिकी तरह, सभी मार देने योग्य है. देवांशोंको मारनेमें ही दोष है, दैत्यांशोंका वधकर देनेमें कोई दोष धर्म मर्यादाके अनुसार नहीं होता. इसलिये दैत्यांश बैलको मार देनेमें कोई दोष नहीं है. जनताके रोग, मलरूप असुर तो मार डालने योग्य ही है.

यह राजस लीला है, इसलिये मार डालनेसे पूर्व भगवान् उससे बोले गोपाल और पशु तेरी अपेक्षा निर्बल हैं. पशु तेरी जातिके हैं और गोपाल पशुओंका पालन करनेवाले हैं. बलवान् निर्बलोंके साथ तथा अपनी सी जातिवालोंके साथ युद्ध नहीं किया करते हैं. तुझको इस प्रकारका विचार नहीं है. इस कारण तू मूढ है. तू इन्हें यदि मार भी सकेगा तो निर्बल शत्रु पक्षको मारनेसे पातकी होगा. केवल इन्हें डरानेसे भी कोई फल नहीं है. प्रत्युत, सज्जन, प्राणियोंको व्यर्थ ही भयभीत करनेवाला मार देने योग्य होता है. इसीलिये मूलमें असत्तम अत्यन्त दुष्ट पदसे सम्बोधित किया गया है. बुरे कर्म करनेवाला 'असत्' दुष्ट और अन्तःकरण तथा स्वरूपसे भी क्रूर कर्म करनेवाला असत्तम अत्यन्त दुष्ट कहा जाता है।।६-७।।

बलदर्पहाहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम्।
इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन्।।८।।

श्लोकार्थ: ''तुझ सरीखे दुरात्मा दुष्टोंके बलके घमंडको चूर्ण करनेवाला मैं यहां खड़ा हूं. इधर आ'' यों कहकर श्रीकृष्णने ताल ठोककर उस असुरको और भी उत्तेजित और क्रोधित किया ।।८ ।।

व्याख्यार्थ: सत्पुरुषों और भगवद्भक्तोंको भय तथा पीड़ा पहुंचाना ही, दुष्ट पुरुषोंका कार्य ही होता है, जिसे वृषासुर कर रहा था, तो इसके उत्तरमें 'बलदर्पहाहं' श्लोक कहते हैं. भगवान् अपने पुरुषार्थको प्रकट करते हुवे बोले, कि मैं साधारणतया सभी दुष्टोंके बल और बलवान् होनेके गर्वको चूर्ण

करनेवाला हूं. फिर तुझ जैसे लोकोंको पीड़ा देनेवाले, अन्तःकरणसे, कर्मसे और शरीरसे भी दुष्टोंको तो मैं नष्ट कर ही देता हूं. यों कहकर अच्युत निर्भीक भगवान्ने मल्लकी तरह भुजाओंको ठोककर तालकी फटकारसे, उसे नगण्य और हीन दिखाकर क्रोध दिलाया.('बलदर्पहा' यह ''क्विप्प्रत्ययान्त'' पद है, क्योंकि ''बहुलं छन्दसि'' सूत्रके अनुसार ब्रह्मभ्रूणवृत्र शब्दोंके उपपद होने पर ही ''क्विप्'' प्रत्यय लगनेका नियम नहीं रहा)।।८।।

सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः।
सोऽप्येवं कोपितोरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन्।
उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत्।।९।।

श्लोकार्थ : भगवान् अपने एक मित्रके कन्धे पर हाथ रखे हुए खड़े थे. भगवान्के द्वारा इस प्रकार उत्तेजित और कुपित किया गया वह वृषासुर भी खुरोंसे धरतीको खोदता और पूंछ ऊंची तानकर बादलोंको चक्रसा घुमाता हुआ क्रोधसे भगवान्की ओर बढा।।९।।

व्याख्यार्थ: उसको नगण्य और तुच्छ समझकर, भगवान् क्रीड़ा करने लगे, यह 'सख्युरंसे' श्लोकसे कहते हैं. भगवान् अपनी विशाल भुजाको मित्रके कन्धे पर फैलाकर खड़े हो गये, क्योंकि, आप हरि जैसे दुष्टोंके प्राणोंको हर लेनेवाले हैं, और मुक्ति देनेवाले हैं, वैसे ही यह वृषासुर अन्त समयमें लीला युक्त भगवान्का दर्शन तथा ध्यान करता हुआ मुक्त होगा.

आक्षेपोंसे उत्तेजित और कुपित किया हुआ, जन्मजात अरिष्ट-विघ्नरूप वह असुर खुरसे पृथिवीको खोदने लगा, मानों भगवान् पर आक्रमण करना सोच रहा हो और फिर ऊंची तानी हुई अपनी पूंछकी चपेटसे बादलोंको इधर उधर तितर बितर करता हुआ सदानन्दघन भगवान् कृष्णकी ओर झपटा. क्रोधमें आकर ऐसा अनुचित कार्य करने लगा।।९।।

अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोच्युतम्।
कटाक्षिप्याद्रवत् तूर्णमिन्द्रमुक्तोशनिर्यथा।।१०।।

श्लोकार्थ : वह असुर अपने तीखे सींगोंको आगे किए, क्रोधसे लाल-लाल आखें निकाले और कृष्ण पर वक्रदृष्टि डालता हुआ इन्द्रके हाथसे फेंके गए वज्रकी तरह वेगसे आगे बढा।।१०।।

व्याख्यार्थ: उसको भगाकर भगवान्के निकट आनेकी रीति 'अग्रन्यस्त'

इत्यादि श्लोकसे बतलाते हैं. उसने अपने सींगोंकी तीखी नोकको आगे करके बाहरसे और लाल-लाल नेत्रोंको टेढे करके भीतर मनमें मारनेके उपाय किये और सोचे किन्तु अच्युत भगवान् पर उसके वे उपाय व्यर्थ हो गये. पहले उसने भगवान् पर भौहें टेढी करके दृष्टिसे ही प्रहार किया. जब उसका यह दृष्टि वेध व्यर्थ हुआ, कटाक्षसे भी भगवान् प्रहत नहीं हो सके तो भी वह कटाक्ष रहित निर्भय भगवान्को कटाक्षका लक्ष्य बनाकर उन पर वेगसे झपटा. बिना सोचे समझे, उसके भगवान्के आगे बढ़ने, और निष्फल होनेमें, उदाहरण देते हुवे, बतलाते हैं, कि जिस प्रकार दुर्दान्त, पङ्ख धारी उड़कर प्रजाओंका नाशकरदेनेवाले दुष्ट पर्वतोंके पङ्खोंका काटने और वृत्रासुर आदि दैत्योंको नाशकरदेनेवाला भी वज्र और भी कई जगह सफल होकर वैसे ही नमुचि नामक असुर पर इन्द्रके द्वारा बिना सोचे समझे फेंका जाकर निकम्मा और व्यर्थ सिद्ध हो गया. इसी तरह इस असुरके अच्युत भगवान् कृष्ण पर सारे आक्रमण निष्फल और निरर्थक रहे।।१०।।

गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं वै अष्टादशपदानि सः।
प्रत्यपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा।।११।।

श्लोकार्थ: जैसे कोई मस्त हाथी अपनेसे भिड़नेवाले दूसरे हाथीको रेलकर पीछे धकेल देता है, वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्रने दोनों सींग पकड़कर उस असुरको अठारह पेड पीछे धकेल दिया ।।११ ।।

व्याख्यार्थ: जब वह असुर अनिष्ट करनेकी इच्छासे आरोप पूर्वक भगवान्के सम्मुख झपटा, तब उस समय उस पर भगवान्का कर्त्तव्य-गृहीत्वा इत्यादि श्लोकसे वर्णन करते हैं. भगवान्ने उसे सींगोंमें पकड़कर अठारह पेड पीछे ढकेल दिया; क्योंकि लोकमें बैल, भैसा आदि सींगवाले पशुओंका अत्याधिक साहस सींगोंमें ही होता है और पशु(बैल) पशु विद्याके अठारह स्थानोंमें नहीं मारा जा सकता है. इसलिये पूर्ण पराक्रम और पूर्ण ज्ञानशाली भगवान् श्रीकृष्णने जैसे बलवान् महापुरुष एक बकरीको बिना किसी परिश्रमके धकेल देता है, उसी तरह उस असुरको अठारह पेड पीछे धकेल दिया. ज्ञानकी पूर्णतासे ही, अठारह विद्या स्थानोंमें, पशु असुर नहीं मारा जा सकता यह ज्ञान और पशुओंका बल, सींगोंमें होता है, इसलिये सींगोंमें पकड़कर उसे सहज पीछे धकेल देना यह पूर्ण पराक्रम दिखलाया.

शङ्का: भगवान्ने यदि अपना बल प्रदर्शित करके उस असुरको पीछे

धकेल दिया तो फिर वह लौटकर श्रीकृष्णके सामने कैसे आ गया? इसके उत्तरमें दृष्टान्त देते हैं, कि जैसे एक बलवान् हाथी अपने साथ भिड़नेवाले कुछ कम बलशाली हाथीको टक्कर मारकर पीछे धकेल देता है, वैसे ही भगवान्ने उस असुरको पीछे धकेलनेमें अपनी पूरी सामर्थ्य नहीं दिखाई, किन्तु उसकी शक्तिकी अपेक्षा कुछ ही अधिक शक्ति प्रदर्शित की. यदि भगवान् पूर्ण शक्ति प्रदर्शित करते, तो वह फिरकर वापस आ ही नहीं सकता था।।११।।

सोऽपि विद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः।
आपतत् स्विन्नसर्वाङ्गो निःश्वसन् क्रोधमूर्च्छितः।।१२।।

श्लोकार्थ: भगवान् श्रीकृष्णने उसे धकेल दिया था, परन्तु वह फिर सम्भलकर झपटा. उसका शरीर पसीना-पसीना हो गया था, तो भी वह लम्बी-लम्बी सांसे छोड़ता हुआ क्रोधान्ध होकर दौड़ा।।१२।।

व्याख्यार्थ: भगवान् उसको पकड़कर केवल इतनी दूर पीछे ले ही नहीं गये; किन्तु छोड़ते समय, उसे पृथिवी पर दे भी मारा था, तो भी पछाड़ा गया वह(लौट) सम्भलकर फिर लौट आया यह 'सोपि' इत्यादि श्लोकसे कहते हैं. भगवान्ने उसे यों धीरेसे ही पछाड़ा था, जिससे विशाल काय भी उसके अङ्ग भङ्ग नहीं हुवे थे. इस कारणसे वह फिर सम्भलकर पहलेकी अपेक्षा भी बड़े वेगसे झपटा; क्योंकि अब उसकी मृत्यु निकट आ गई थी और वह स्वयं भी मरनेके उपाय ही कर रहा था. उसके सारे अङ्गोंसे पसीना निकल रहा था और उसकी वैसी क्रोधान्ध दशासे जान पड़ता था कि वह बिना मरे या मारे नहीं रहेगा. तात्पर्य यह है, कि अन्तःकरणकी दुष्ट प्रवृत्ति मरने तक भी नहीं बदलती है।।१२।।

तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले।
निष्पीडयामास यथार्द्रमम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत्।।१३।।

श्लोकार्थ: तब भगवान्ने उसके दोनों सींग हाथोंसे पकड़ लिए और उसे पृथिवी पर गिरा दिया. फिर उसके शरीरको पांवसे दबाकर-जैसे गीले कपड़ेको निचोड़ते है, इस तरह मरोड़ डाला. उसके सींग उखाड़ लिए और सींगके प्रहारसे ही उसे मार डाला।।१३।।

व्याख्यार्थ: इस 'तमापतन्तं' श्लोकसे भगवान्के द्वारा उसके मरणका वर्णन करते हैं. ऊपर गिरकर दबानेकी इच्छावाले उस अरिष्टको, भगवान्ने उसके सींगोंको पकड़कर उसे बलहीन कर दिया और फिर पृथिवी पर गिराकर यज्ञीय

पशुकी तरह पांवसे दबाकर मरोड़ डाला. यद्यपि उसके हाथ पांव आदि अङ्ग क्षत विक्षत नहीं हुए थे, ज्योंके त्यों ही थे, तो भी उसके रोमकूपोंसे इस तरह खून बह रहा था जैसे धोबी लोगोंके द्वारा डंडेमें लेकर कपड़ेको उनके स्वरूपको न बिगाड़कर ही निचोड़ दिया जाता है. भगवान्ने उसके सींगोंको जिनसे वह मारने आया था उखाड़लिये और दोनों अथवा एक ही सींगको उसके पेटमें घुसेड़ दिया. तब तो, वह असुर गिर पड़ा और फिर नहीं उठ सका. सींगसे मारने, आनेवाले उस असुरको सींगसे ही मारकर ''ये यथा'' भगवान्ने जो मुझे जैसे भजता है, मैं भी, उसे वैसे ही भजता हूं अपनी सत्य प्रतिज्ञा प्रदर्शित की।।१३।।

असृग् वमन् मूत्रशकृत् समुत्सृजन् क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः।
जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः।।१४।।

श्लोकार्थ : उस अरिष्टासुरकी आंखे बाहर निकल आई, मुंहसे रुधिर बहने लगा, मलमूत्र एक साथ निकल पड़ा. वह बार-बार पैर पटक कर बड़े कष्टसे यमलोकको गया. तब देवगण भगवान् पर पुष्प वर्षाकर उनकी स्तुति करने लगे।।१४।।

व्याख्यार्थ: 'असृग् वमन्' इस श्लोकसे उसके प्राण निकलने तकका प्रकार बतलाते हैं. वह मरते समय मुंहसे खून बहाकर, बीचमें मूत्र और अन्तमें मलका त्याग करके अपने मरनेकेलिये बड़े भारी प्रयत्न करनेको सूचित कर रहा था. अर्थात् उसके प्राण बड़े कष्टसे निकल रहे थे. वह पैरोंको पीट रहा था. उसकी निकली हुई निश्चल आंखे अपने मार्गसे अपने प्राणोंका निकलना बतला रही थीं. पहले वह मूर्च्छित होकर सचेत नहीं हुआ, किन्तु यमराजके लोकको ही प्राप्त हो गया. अथवा पहले यमलोकको जाकर फिर अपने स्थान मोक्षको प्राप्त हो गया.

यद्यपि आकारकी समानतासे बैलको मारना अयोग्य अनुचित सा दिखाई देता है; किन्तु उसके वधसे प्रसन्न होकर देवोंके द्वारा पुष्पोंकी वृष्टि और स्तुति किये जाने पर उस बैलरूप धारी भी असुरका वध करना उचित ही था, क्योंकि असुरको मारकर भगवान्ने सुरों देवोंका दुःख दूर कर दिया था. 'मोदेत साधुरपि वृश्चिक सर्प हत्या' अर्थात् असाधुकी मृत्युसे साधु प्रसन्न ही होते हैं. देवता होनेके कारण कंसकी आज्ञासे इस अरिष्टके बैलके रूपमें व्रजका अनिष्ट करनेकेलिये खिरकमें आनेको वे जान ही रहे थे।।१४।।

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः।
विवेश गोष्टं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः।।१५।।

श्लोकार्थ : इस प्रकार उस वृषभासुरको मारकर गोपोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए, गोपिकाओंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीके साथ व्रजमें आए।।१५ ।।

व्याख्यार्थ: इस लीलाका 'एवं' इत्यादि श्लोकसे उपसंहार करते हैं. 'जातिश्चेदनलेनकिं' के अनुसार समान जातिवाले लोग उत्कृष्ट गुणवाले अपनी जातिके पुरुषकी स्तुति नहीं किया करते हैं, बड़े निठुर होते हैं; किन्तु अरिष्टरूप अरिष्टका वध करने पर स्वजातिके भी गोपजन भगवान्की स्तुति करने लगे. गोष्ठ व्रजके शत्रु असुरको मार भगवान् साक्षिभूत बलरामजीके साथ व्रजमें पधारे. श्रीकृष्णके दर्शनसे व्रज भक्त गोपीजनोंके नेत्रोंको बड़ा उत्सव आनन्द और सुख मिलता था. उनको वह निरोध सर्वात्मभाव सिद्ध हो गया था, जिसके पश्चात् अन्य कोई सम्बन्ध शेष नहीं रह गया था अर्थात् निरोध ही सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध है।।१५।।

लेख:'एवं-ककुद्मिनं'-श्लोककी व्याख्यामें-अनेन पदसे यह अभिप्राय कहा है,कि निरोध सिद्धिका सम्बन्ध फलरूप नहीं है किन्तु नित्यलीला सिद्ध सार्वदिक सम्बन्ध ही फलरूप।।१५।।

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः।।१६।।

श्लोकार्थ : अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान्ने जब अरिष्टासुरको मारकर यमलोक भेज दिया; तब दिव्य दृष्टि रखनेवाले देवर्षि नारदजीने, भगवान्की इच्छाके अनुसार कंससे जाकर कहा ।।१६ ।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार अरिष्ट वध जिसकेलिये ही भगवान् अब तक व्रजमें बिराजते रहेको कहकर आगे इस वधसे होनेवाले फलका निरूपण करते हुवे पहले 'अरिष्टे निहते' इत्यादि ढाई श्लोकोंसे उसके कार्यका वर्णन करते हैं. व्रजमें आये हुवे सभी दुःखोंका मूल कारण यह अरिष्ट ही था. अतः इसका नाशकर देनेके पश्चात् व्रजमें अब भगवान्का कोई कर्त्तव्य कार्य अवशिष्ट नहीं था. और अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् कृष्ण ''**कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्चनिर्वृति वाचकः, तयोरैक्यं परं ब्रह्म 'कृष्ण' इत्यभिधीयते**'' के अनुसार अरिष्ट वधमें कृष्णेन

साधनरूप हुवे सदानन्द ही हैं. इस कारणसे अपेक्षित सदानन्दकी प्राप्ति कराने केलिये भी व्रजमें करनेका कोई अन्य कार्य शेष नहीं रह गया था. भगवान्ने अरिष्टका वध करके उसे गोकुलमें ही रहने दिया, क्योंकि उसके पश्चात् भगवान्के मथुरा पधार जाने पर तभीसे व्रजमें दुःख ही दुःख बना रहा. इसलिये वध करके भी, गोकुलमें उसका स्थापनकर देना(यह भगवान्की विपरीत कर्मवाली अद्भुत कर्मता का वर्णन किया)भगवान्की यह विपरीत क्रियावाली अद्भुत कर्मता है.

भगवान्ने जब कंसादिके वधकेलिये मथुरा जानेका विचार किया, तभी भगवान् मथुरा पधार आवेंगे ऐसा जानकर नारदजी कंसके पास गये और भगवान्को बुलानेकेलिये रथादि भेजनेका उपाय करने लगे इस कारणसे, अर्थात् भगवान्की मथुरा आनेकी इच्छाको जान लेनेसे नारदजीको 'देवदर्शनः' भगवान्के तुल्य ज्ञानवान् कहा है. अथवा देवदर्शन विशेषणका दूसरा तात्पर्य यह है, कि कंसके वधकेलिये ही, उसके ही द्वारा रथादि भेजकर भगवान्को बुलाना यद्यपि लोक विरुद्धकाम किया गया, तो भी ऐसा करनेमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जैसे आराधना किये हुवे देवका साक्षात् दर्शन हो जाने पर आराधककी इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं, वैसे ही नारदजीके दर्शनसे सारी जनताके सारे ही मनोरथ सिद्ध हो गये. 'देवदर्शनः' पदका तृतीय तात्पर्य यह भी बताते हैं कि ''**अस्याः त्वाम् अष्टमो गर्भः**''(भा.१०।१।३४). यहां देवकीके आठवें गर्भको कंसकेलिये मृत्यु बतलानेवाले देवका दर्शन हो जाने पर जैसे सारे सन्देह दूर हो जाते हैं, वैसे ही नारदजीके दर्शन होने पर सभी सन्देहोंकी निवृत्ति हो गई।।१६।।

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च।
रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता।।
न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः।।१७।।

श्लोकार्थ : कि ''देवकीके आठवें गर्भसे कन्या नहीं हुई, वह कन्या तो यशोदा की थी. कृष्ण, देवकीके और बलराम रोहिणीके पुत्र हैं. वसुदेवजीने तुम्हारे भयसे अपने मित्र नन्दके यहां उनको रख दिया है. उन्हींने तुम्हारे भेजे हुए अनुच असुरोंको मारा है''।।१७।।

व्याख्यार्थ: 'यशोदायाः सुताम्' इत्यादि श्लोकसे नारदजीके वचन कहते हैं. पहले यह कहकर, कि ''कन्या न देवकीकी है, और न यशोदाका पुत्र है''

कंसकी इस विपरीत बुद्धिको कि ''दैव आकाशवाणी भी मिथ्यावादी होता है'' दूर किया गया है. नारदजीने कन्याको यशोदाकी पुत्री और कृष्णको देवकीका पुत्र कहा. इसी तरह बलरामजीको देवकी और रोहिणीका पुत्र भी बतलाया. बलरामजीकी तरह कृष्ण भी देवकी और रोहिणीके पुत्र तो हैं ही, किन्तु देवकी और यशोदाके पुत्र नहीं हैं. इन दोनोंका गोकुलमें रहनेका कारण तो यह है, कि तुम्हारे(कंसके) भयसे डरकर वसुदेवने अपने मित्र नन्दके यहां रख छोड़ा है. किन्तु वास्तवमें, यहां यह धरोहर साक्षात् भगवान् ही हैं इस बातको न नारदजी और न नन्दजी जानते थे. लोकमें जैसे मित्र अपने मित्रकी किसी बातको यथार्थ जानकरके भी उसे प्रकट नहीं करता, वैसे ही वसुदेवके मित्र नन्द, भगवान्के वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो जाने पर भी, प्रकट नहीं करेंगे इस अभिप्रायसे मूलमें 'मित्र' पदका प्रयोग है. उन साक्षात् भगवान् कृष्ण बलरामने तेरे(कंसके) अनुयायी प्रलम्ब आदि असुरोंको जिन्हें अन्य कोई भी नहीं मार सकता था मार गिराया है. इतना कहकर नारदजी चुप होकर कंसके निकट ही बैठे रहे।।१७।।

निशम्य तद्भोजपतिः कोपात् प्रचलितेन्द्रियः।
निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया।।१८।।

श्लोकार्थ : नारदजीके यह समाचार सुनकर, कंस क्रोधसे विह्वल हो उठा. वह एक तीक्ष्ण तलवार लेकर सभामें उपस्थित वसुदेवको मारनेकेलिए उद्यत हो गया ।।१८ ।।

व्याख्यार्थ: 'निशम्य' इस श्लोकसे कंसका कर्त्तव्य वर्णन करते हैं. नारदजीके कथनानुसार ''**कृष्णस्तु भगवान् स्वयं**'' ''**प्रमेयं हरिरेवैकः**'' साक्षात् प्रमेय स्वरूप भगवान्को वस्तुतः सुनकर भी वह भोज पति कंस अपने तथा अपने अनुयायियोंके जिनका वह स्वामी था बल पर क्रोधसे चञ्चल इन्द्रियोंवाला हो गया और उसने वसुदेवजीका अन्याय और अपराध समझकर, उन्हें मारनेकी इच्छासे अपनी तेज तलवार उठाई।।१८।।

निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः।
ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया।।१९।।

श्लोकार्थ : परन्तु नारदजीने समझा बुझाकर उसे रोक दिया. उन्होंने कहा कि वसुदेवजी तुम्हें(कंसको) कुछ हानि नहीं पहुंचा सकते; उनके दोनों पुत्र ही तुम्हारे(कंसके) काल हैं. तब कंसने वसुदेवके प्राण तो नहीं लिए, किन्तु देवकी

सहित उन्हें फिर लोहेकी बेड़ियोंसे बांधकर कारागारमें डाल दिया ।।१९ ।।

व्याख्यार्थ: सम्भवतः वसुदेवजी, वहां कंसकी सभामें ही मौजूद थे. दुष्ट कंस कहीं उन्हें मार न डाले, इस भयसे भयभीत हुवे नारदजीका उसे रोकना 'निवारितः' इत्यादि श्लोकसे कहते हैं. नारदजीके रोकनेसे उस दुष्ट कंसने भी वसुदेवजीको जीवित ही रहने दिया; क्योंकि देवोंकी तरह असुरोंमें भी, नारदजीका पूर्ण गौरव और सम्मान है. उनके कथनको देवोंकी तरह, असुर भी वैसे ही शिरोधार्य मानते हैं. तथापि, उसके काल कृष्ण व रामके, पिता होनेके कारण, उन्हें(वसुदेवजीको) शत्रु मानकर कारागारमें डाल दिया. उनके हाथों पावोंमें ही बेड़ियां नहीं डाली गई; किन्तु उनका सारा ही शरीर बेड़ियोंसे जकड़ दिया गया था. यद्यपि शत्रुके सम्बन्धी सारे ही शत्रु गिने जाते हैं, तो भी वसुदेवजीके भाईयों तथा सेवकोंको कारागारमें नहीं डाला गया; क्योंकि वे तो कंसके मध्यपाति अनुयायी ही थे. वसुदेवके दोनों पुत्र कंसका काल है 'तत्सुतौ' मूलमें यह द्विवचन दोनोंकेलिये साधारणतया दिया है, अथवा दोनोंमें से न जाने किसके हाथसे कंस मारा जायेगा इस सन्देहसे दिया है, यों कहकर नारदजी वहांसे चले गये.

कोई यहां यह कहते हैं, कि नारदजीने ही यों कह–कहकर कि वसुदेवको मार देने पर तो उसके पुत्र इधर–उधर कहीं भाग जायेंगे वसुदेवको कारागारमें बन्धन कर देनेकी सम्मति कंसको दी थी इत्यादि कथन मिथ्यावादके प्रसङ्गदोषके कारण माननीय नहीं है।।१९।।

लेख: 'निवारितः'–इस श्लोककी व्याख्यामें भ्रातृणा इत्यादि पदोंका अभिप्राय यह है कि वसुदेवजीके 'देव','भाग'आदि नौ भाई और उनके सभी सेवकभी, शत्रु पक्षके शत्रुके सम्बन्धी ही थे; कि वे सारे ही कंसके मध्यपाती–अनुयायी थे. इस कारणसे उन्हें कारागारमें नहीं डाला. केवल देवकी और वसुदेवजीको बन्धनमें डाला।।१९।।

प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम्।
प्रेषयामास हन्येतां भवता राममाधवौ।।२०।।

श्लोकार्थ: नारदजीके चले जाने पर कंसने केशी नामके असुरको बुलाया. उसको आज्ञा दी कि तुम व्रजमें जाकर कृष्ण और बलदेव को मार डालो।।२०।।

व्याख्यार्थ: यहां मूल श्लोकमें स्थित 'तु' शब्द यह बतलाता है, कि पहले नारदजीके कहनेसे वसुदेवजीका वध करनेसे रुके हुवे कंसने उन (नारदजी)के वहांसे चले जानेके बाद भी फिर उन(वसुदेव)पर अपनी विपरीत बुद्धि करके वसुदेवजीका वध नहीं किया; नारदजीकी आज्ञाको उनके सामनेकी तरह उनके पीछे भी मानता रहा और उसने वसुदेवजीका वध नारदजीके वहांसे चले जानेके बाद भी नहीं किया, क्योंकि, नारदजी देवर्षि-देवोंके भी मन्त्र दृष्टा ऋषि हैं.

तब कंसने निकट बैठे हुवे, घोड़ेके रूपधारी केशीको सम्बोधित करके गोकुल भेजा और कहा, कि वहां जाकर राम, कृष्ण दोनोंको मार आओ.''हन हिंसागत्योः'' 'हन'धातुका गमन(जाना) अर्थ भी है. घोड़ा किसीको बुलाने केलिये ही भेजा जाता है; किन्तु घोड़ेकी सवारी सुखकर नहीं होती. इस कारणसे कृष्ण-रामको लिवानेकेलिये फिर रथ भेजा जायेगा. घोड़ेके रूपमें गये हुवे उस केशी असुरकी शक्तिका वर्णन यहां अगले अध्यायमें नारदजीने किया है, कि 'यस्य ह्रेषित संत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषादिवम्' उसकी कर्ण कटु हिनहिनानेको सुनकर डरे हुवे देवगण देवलोकको खाली करके भाग निकले इस तरह किया है. मूलमें यहां 'राम-माधवौ' राम बलराम तो प्रसिद्ध हैं ही और मधुवंशमें उत्पन्न होनेके अभिप्रायसे माधव श्रीकृष्णकेलिये कहा गया है।।२०।।

ततो मुष्टिक-चाणूर-शल-तोशलकादिकान्।
अमात्यान् हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट्।।२१।।

श्लोकार्थ: इसके बाद, भोजराज कंसने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशलक आदि अपने महाबली पहलवानोंको कुवलयापीड़ हाथीके महावतोंको और अपने सभी मंत्रियोंको बुलाकर कहा ।।२१ ।।

व्याख्यार्थ: एक बार भी भगवान्का नाम ले लेने पर कहीं वह भक्त हो जाये इस कारणसे कंसके मुखसे भगवान् कृष्णका नाम न निकल सका हृदयमें बैर भावसे रहनेवाले भगवान् कार्य सिद्ध कर देंगे इस प्रकार जानकर उसके मुखसे मधुवंशमें उत्पन्न माधव ही निकला. कंसने सारे ही मन्त्रियोंको बुलाया यह 'ततः' इत्यादि श्लोकसे कहते हैं. मुष्टिक, चाणूर आदि नामके मल्लोंको, गृह मन्त्रियोंको, युद्धमें अतिनिपुण महावतोंको, अन्य सगे सम्बन्धियोंको तथा श्रीकृष्णके विरोधियोंको सभीको उनके घरोंसे बुलवाया. भोजतड़ यादवोंके राजा

कंसकी आज्ञा पाकर वे सब दरबारमें उपस्थित हो गये।।२१।।

भो भो निशम्यतामेतद् वीरचाणूरमुष्टिकौ।
नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः।।२२।।

श्लोकार्थ : हे चाणूर, मुष्टिक, आदि वीरबली पहलवानों सुनो. वसुदेव के लड़के कृष्ण और बलदेव नन्दके व्रजमें रहते हैं।।२२।।

व्याख्यार्थ: बुलानेसे, उनके वहां आ जाने पर, कंस 'भो भो' इस श्लोकसे अपना वृत्तान्त कहने लगा ''भो भो'' इस(दो बार कहे गये) साधारण सम्बोधनसे प्रत्येकसे उनका अलग-अलग नाम लेकर उन्हें सुननेमें सावधान करता हुआ बोला, कि सुनिये. वीर पद चाणूरका विशेषण है. यह युद्धके समयमें उचित ही है. अथवा वीर नामका एक कोई और मल्ल मान लिया जाये तो वीर 'चाणूर मुष्टिकाः' ऐसा बहुवचनका प्रयोग करना उचित है. इन मल्लोंमें चाणूर मुष्टिक प्रधान मल्ल होनेसे उनके नाम ही लिये हैं. जिस बातको वे लोग नहीं जानते थे, उसे उनसे कहने लगा. मन्त्रणामें कहनेवालेका नाम नहीं लेना चाहिये कि अमुकने ऐसा कहा है. इसलिये(कहनेवाले) नारदजीका नाम न लेकर अर्थात्, नारदजीने ऐसा कहा है. यों न कहकर मूलमें 'किल' कहा है. ये सभी बातें प्रसिद्ध ही हैं कि, रहते हैं, नन्दके व्रजमें हैं और आनक दुन्दुभि वसुदेवके बेटे हैं।।२२।।

रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः।
भवद्भ्यामिह सम्प्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया।।२३।।

श्लोकार्थ : (नारदजीने) मुझे बतलाया है कि उनके हाथसे मेरी मृत्यु है. मैं उन्हें यहां बुला लेता हूं. तुम अपने दावपेंचकी चतुराईसे उन्हें मार डालना।।२३।।

व्याख्यार्थ: 'रामकृष्णौ' इस श्लोकसे उनका प्रसिद्ध नाम लेकर भी कहता है. उन दोनोंको सबहीनें स्पष्टरूपसे मेरी मृत्यु(मेरा काल) बतलाया है. इसलिये भली भांति हर्ष पूर्वक यहां आये हुवे उन दोनोंको आप चाणूर और मुष्टिक दोनों ही मल्लकी लीला(खेल) ही में मार डालना. 'हन्येतां' ''हन्'' धातु गमनार्थक भी है 'हन्येतां' भगवान्के हाथसें आप मरकर 'ये ये हताश्चक्र धरेण' के अनुसार उत्तम गतिको प्राप्त कर लो ऐसा भी कंसके कथनका तात्पर्य होता है.

यहां यह अभिप्राय है, कि यदि कंस 'हन्येतां' रामकृष्णको मार डालनेका लौकिक शब्दके द्वारा उन्हें आदेश नहीं देता, तो भगवान् कृष्ण भी,

कंसका लोकरीतिसे वध नहीं करते. लौकिक विरोधकी भाषासे बोलनेके कारण ही भगवान्ने कंसको मारा था. राम कृष्ण कंसकी बहिन देवकीके पुत्र भानेज हैं. भानेजको प्रकटरूपसे अस्त्र शस्त्रोंसे मरवा देना उचित नहीं है. इसलिये 'मल्ललीलया' पहलवानोंके दाव पेचोंसे ही खेलमें ही उन्हें मार देनेका उनको आदेश दिया. इसी कारणसे ही, भगवान्ने भी कंसको शस्त्र और मुक्कोंसे न मारकर लीला(क्रीडा) पूर्वक ही आगे मारा है।।२३।।

मञ्चाः क्रियन्तां विविधाः मल्लरङ्गपरिश्रिताः।
पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम्।।२४।।

श्लोकार्थ : भांति-भांतिके मञ्चोंकी रचना करो और उनके बीचमें एक भारी अखाड़ा बनाओ. पुरों और गांवों में रहनेवाले लोग उन मञ्चों पर बैठकर इस दंगलको देखें ।।२४ ।।

व्याख्यार्थ: कंसके हृदयमें जो बात बुद्धि प्रेरक भगवान्ने उत्पन्न की, वही, वह चाणूर मुष्टिकको बुलाकर 'मञ्चाः क्रियन्तां' इस श्लोकमें उनसे बालकोंको ठगनेकेलिये कहने लगा, कि अखाड़ेके चारों और भांति-भांतिके अनेक मनोहर ऐसे सुन्दर मंचोंकी सजावट करो कि उन्हें देखकर रामकृष्णका भी मन आकर्षित हो जाये और तब, अन्य मनस्क मंचोंकी शोभा देखनेमें संलग्न मनवाले, उनको तुम सहज ही में मार सको. अखाड़ेके निकट सब तरफ मंच बना देनेसे, मल्लोंके साथ युद्ध आसान हो जाता है और दाव पेंच भी अखाड़ेमें ही उनके किये जा सकते हैं. पुर और प्रान्तके निवासी लोग उन(मंचों) पर बैठकर, अलग-अलग, उस स्वेच्छा युद्ध दंगलको देखें. उनके कोलाहल(शोरगुल)से रामकृष्णका भी चित्त बट जायेगा, वे अन्य मनस्क हो जायेंगे. तब वे सहज ही में मार दिये जा सकेंगे और दंगलमें उनके मारे जाने पर अपकीर्ति भी नहीं होगी।।२४।।

महामात्र त्वयाभद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम्।
द्विपः कुबलयापीडो जहि तेन ममाहितौ।।२५।।

श्लोकार्थ : हे महावत, तुम भी उस दिन रंगभूमि(अखाड़े)के दरवाजे पर कुवलयापीड़ हाथीको लाकर खड़ा कर देना और जब मेरे शत्रु वे दोनों भाई, अखाड़ेमें आने लगें; तब वहीं पर ही, पहले ही तुम उनको मार देना ।।२५ ।।

व्याख्यार्थ: यद्यपि भगवान् कृष्णका अनिष्ट करना सोचकर ही, कंसने

मल्लोंको आदेश दिया था; किन्तु उस उपायमें सन्देह करके 'महामात्र' इत्यादि श्लोकसे फिर दूसरा उपाय कहता है. कंसके सबसे प्रधान हाथीका नाम कुवलयापीड़ था. उसके सबसे मुख्य बालक(यन्ता) को प्रोत्साहन करता हुआ सम्बोधित करके कहता है, कि हे महामात्र, हे महावत, हे भद्र, निश्चिन्त होकर, तुम ही कुवलयापीड़को ही अखाडेके द्वार पर ले जाकर खड़ा करो. कोई दूसरा महावत किसी दूसरे हाथीको वहां खड़ा न करे.

सरस्वतीके संवादसे महावत अमाङ्गलिक माने जाते हैं, यह जानकर कंसने उसे अभद्र(अमाङ्गलिक) पदसे भी सम्बोधित किया है. यह हाथी 'कु'(पृथिवी) 'वलय, आपीड'(मण्डलका मुकुटरूप) है. इसलिये इस हाथीके द्वारा मेरे दोनों शत्रु(काम क्रोधों) को मार गिराओ. क्योंकि इन दोनोंके अतिरिक्त अन्य कोई शत्रु मनुष्यका नहीं होता. ये दोनों काम क्रोध ही सबके, सबसे बडे शत्रु हैं. इनके मार दिये जाने पर, ही केवल कंसका ही नहीं, मनुष्य मात्रका कल्याण है।।२५।।

आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि।
विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे।।२६।।

श्लोकार्थ : चौदसके दिन तन्त्रोक्त विधिके अनुसार शिवकी प्रसन्नताके लिए धनुषयज्ञका आरम्भ किया जाए और आशुतोष वरदानी भूतनाथ शिवकी पूजामें अनेक पशुओंका बलिदान किया जाए।।२६।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार कंस लौकिक उपायों द्वारा कृष्णका अनिष्ट करनेका आदेश देकर 'आरभ्यतां' इस श्लोकसे अलौकिक उपाय करनेको भी कहता है. वह कृष्णको विष्णुका अंश मान रहा था और इसलिये शिवजी ही कृष्णका प्रतिद्वन्दी बलवान् समान बलवाले हो सकते हैं, उनकी ही आराधना करनी चाहिये. शिव याग अनेक हैं, जो भिन्न-भिन्न कामनासे किये जाते हैं. उनमें से युद्धमें विजयकी आकाङ्क्षासे 'धनुर्याग' ही किया जाता है. इसलिये धनुर्याग करनेका ही वह आदेश देता हुआ कहता है कि धनुर्यागका आरम्भ किया जाये.

जिस 'याग' में धनुषमें शिवजीकी पूजा की जाती है, वह शिवतन्त्रमें धनुर्याग नामसे प्रसिद्ध है, और वह चर्तुदशी(चौदश) के दिन किया जाता है, क्योंकि, वह शिवजीकी तिथी है. उस दिन शिवतन्त्रमें बताई हुई विधिके अनुसार

अधिवासनादि पूर्वक अत्यन्त हिंसात्मक धनुर्याग किया जाये. शैवतन्त्रमें शिवजीके बहुत भेद बतलाये हैं. उनमें भूतनाथ भेद ही प्रचुर हिंसा प्रियरूप कहा है. इसलिये ऐसे प्रचुर हिंसात्मक धनुर्यागमें वैसे ही प्रचुर हिंसा प्रिय देव भूतनाथकेलिये बलि दी जाये. वे कामना पूर्ण करनेवाले और अवश्य ही फल देनेवाले हैं।।२६।।

इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम्।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरम् उवाच ह।।२७।।

श्लोकार्थ : स्वार्थ साधनेमें कुशल, कंसने इस तरह पहलवानों और महावतको आज्ञा देनेके अनन्तर यादवोंमें श्रेष्ठ अक्रूरको बुलाया और एकान्तमें ले जाकर अपने हाथमें उनका हाथ लेकर उनसे वह कहने लगा ।।२७ ।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार महावत और मल्लोंसे दृष्ट, अदृष्ट–लौकिक, अलौकिक उपाय करनेका आदेश देकर ये उपाय तो कृष्णके यहां आने पर ही किये जा सकेंगे इसलिये गोकुलसे कृष्णको लिवा लानेकेलिये अक्रूरको भेजनेकी इच्छासे 'इत्याज्ञाप्य' इस श्लोकमें कंसका अक्रूरको उसके घरसे बुलानेका वर्णन करते हैं. कार्य सिद्धिके उपायोंको जाननेमें निपुण कंसने यह जानकर कि एक अक्रूर ही कृष्णको यहां मथुरा ला सकता है, दूसरा कोई भी इस कामको सिद्ध नहीं कर सकता यादवोंमें श्रेष्ठ अक्रूरको जो स्वभावसे ही सोम्य(क्रूर नहीं) थे उसके घरसे बुलवाकर आदर पूर्वक हाथसे उसका हाथ पकड़कर अक्रूरको प्रसन्न जानकर उससे कहा. मूलमें 'ह' इस आश्चर्य बोधक अव्ययका यह तात्पर्य है कि अक्रूर जैसे भगवद्भक्तको कृष्णका अनिष्ट करनेके विचारसे उन्हें लिवा लानेकेलिये कंसका भिजवाना उचित नहीं है. यह आश्चर्य है।।२७।।

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रम् आदृतः।
नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु।।२८।।

श्लोकार्थ : हे दानाध्यक्ष अक्रूरजी आप मेरे परम मित्र और हितैषी हैं. यादवों में किसी अन्यका मैं आपसे बढ़कर आदर नहीं करता. आपसे बढ़कर हितैषी मेरा कोई नहीं है. इसीलिए आपको मेरा एक काम अवश्य करना होगा ।।२८ ।।

व्याख्यार्थ: सम्बोधनमें 'भो भो' यह दो बार कथन अक्रूरजीमें कंसका आदर सूचित करता है. दानपते सम्बोधनसे उनके दान धर्मका कीर्तन किया. बारह

वर्षों तक प्रतिदिन गोदान करते रहनेसे अक्रूरजी सभी दानोंके अधिष्ठाता हो गये थे. उनकी माताजी गान्दिनी गोदान करनेवाली थीं. अक्रूरजी जैसे आप दुःखियोंकेलिये उनकी अभिलषित वस्तु देते हो, वैसे ही पीड़ित मेरेलिये भगवान् कृष्णको दान करो. तुम मेरा(मित्रका) काम करो. तुम मेरे मित्र हो. जिसमें मित्रका हित हो, वैसा आदर पूर्वक करो. मैं आपका सम्मान करता हूं. यह एक ऐसा काम है जिसे तुम ही कर सकते हो, तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई भी इस कामको नहीं कर सकता है, क्योंकि, पितावंशज भोजोंमें और यदुवंशमें उत्पन्न होनेवाले वृष्णिवंशी यादवोंमें सामान्य रीतिसे, अथवा विशेष प्रकारसे, एक आप ही मेरे परम हितैषी हैं. दूसरा कोई भी मेरा हितैषी नहीं है।।२८।।

अतस्त्वाम् आश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम्।
यथेन्द्रो विष्णुम् आश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः।।२९।।

श्लोकार्थ : जैसे शक्तिशाली इन्द्रने विष्णुका आश्रय लेकर अपने सब काम सिद्धकर लिए वैसे ही, मैं भी अपने एक बड़े भारी कामको साधनेकेलिए आपका सहारा लेता हूं।।२९ ।।

व्याख्यार्थ: इस कारणसे 'अतस्त्वामाश्रितः'इस श्लोकसे आगेकी बात बतलाता है. कंसने अक्रूरसे कहा, कि अब तक तो तू(अक्रूर) मेरे आश्रित था और अब मैं तुम्हारे आश्रित हूं. कार्य जिसे कंस अक्रूरजीसे कराना चाहता है अत्यन्त गौरव पूर्ण है. उसके उपायके प्रति, उसको सिद्ध करनेकेलिये अथवा उसको पूरा करनेमें अक्रूरजी आश्रय सहारा लेनेके योग्य हैं यह बात 'सौम्य' (अक्रूरजी) पदसे उनको सम्बोधित करके, स्पष्ट की है, स्वामी(किसी काममें) कभी सेवकका आश्रय ले,(सहारा चाहे) यह तो अनुचित है. इसलिये दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं, कि जैसे शक्तिशाली(विभु) और बडे इन्द्रने भी असुरोंके द्वारा त्रिलोकी(स्वर्ग) को हर लेने पर, अपनेसे छोटे उपेन्द्र(विष्णु) का आश्रय(सहारा) लेकर अपना कार्य सिद्ध किया था. वैसे ही कार्य सिद्धिकेलिये मुझ बड़े(कंस) का अक्रूरका जो छोटा और सेवक है आश्रय लेना अनुचित एवं निन्दनीय नहीं है. इसी अभिप्रायसे, मूल श्लोकमें, इन्द्र उपेन्द्रका दृष्टान्त देकर, स्पष्ट किया है. असुरोंके स्वर्गको हर लेने पर, जैसे इन्द्रने उपेन्द्रका आश्रय लेकर, कार्य सिद्धि प्राप्त की थी, वैसे ही कार्य सिद्ध्यर्थ, बड़े(कंस) को छोटे(अक्रूर)का आश्रय चाहना अनुचित तथा निन्दनीय नहीं है।।२९।।

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः।
आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम्।।३०।।

श्लोकार्थ : हे तात, आप आज ही नन्दके व्रजमें जाईए. वहां वसुदेवके दो पुत्र कृष्ण और बलराम रहते हैं. उनको इस रथ पर बिठाकर शीघ्र यहां ले आईये, देर न कीजिए।।३० ।।

व्याख्यार्थ: 'गच्छ' इत्यादि श्लोकसे अक्रूरके करनेका काम कहता है. कंसने कहा, कि हे अक्रूर, तुम शीघ्र नन्दके व्रजमें जाओ और वहां जिनके जन्म कालमें देवोंने दुन्दुभि बजाकर यह प्रसन्नता प्रकट की थी कि इनके यहां साक्षात् भगवान् अवतरित होंगे उन आनक दुन्दुभि नामसे प्रसिद्ध वसुदेवजीके राम और कृष्ण दो पुत्र रहते हैं. उन दोनोंको इस रथ पर बिठाकर यहां शीघ्र ले आओ, विलम्ब मत करो।।३०।।

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः।
तावानय समं गोपैर्ननन्दाद्यैः साभ्युपायनैः।।३१।।

श्लोकार्थ : विष्णुका आश्रय लेकर रहनेवाले देवोंने, उन्हें मेरी मृत्युकेलिए सिरजा(उत्पन्न किया) है; यह निश्चित है. नन्द आदि गोपोंको भी तरह-तरह की भेटें लेकर यहां आनेकेलिए कहो और उनके साथ ही आप कृष्ण और बलदेव को भी लेते आवें।।३१ ।।

व्याख्यार्थ: 'निसृष्टः' इस श्लोकसे राम कृष्णको बुलानेका प्रयोजन कहता है. कंस पहलेकी तरह नारदजीका नाम न लेकर कहता है कि उन दोनों राम और कृष्णको विष्णु भगवान्का दृढ आश्रय रखनेवाले और दैत्योंके शत्रु देवोंने मेरा कालरूप उत्पन्न किया है. भगवान्के आश्रयसे देवोंका यह कार्य विपरीत नहीं होगा. यद्यपि कंसने अक्रूरको पहले रथमें बिठाकर, राम कृष्णको लिवा लानेका आदेश दे दिया है, किन्तु फिर भी यह सोचकर कि वे दोनों मेरी मृत्यु हैं इस कथनसे अक्रूर उन्हें अवश्य ले आवेगा, लिवा लानेका आदेश दे रहा है, कि उन दोनोंको यहां लिवा लाओ. यदि अकेले नहीं आवें तो गोप लोगोंके साथ ही लाओ और बालक स्वभावसे यदि गोपोंके साथ भी न आवें, तो उनके पिता नन्दजी और उनके मित्रोंके साथ ही लाओ तथा भेंट लेकर आनेके बहानेसे ले आओ. किसी भी प्रकारसे छल पूर्वक भी भेंट लानेके बहानेसे ही बुलानेका आदेश देता हुआ कहता है कि।।३१।।

इहानीतौ घातयिष्ये कालकल्पेन हस्तिना।
यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः।।३२।।

श्लोकार्थ : यहां आने पर उनको मैं कालके समान अपने हाथीसे मरवा डालूंगा. यदि वे किसी प्रकार हाथीसे बच भी गए, तो वे मेरे वज्रके समान कठिन, कठोर अंगवाले फुर्तीले पहलवान्(पट्ठे) उनको जीवित नहीं छोड़ेंगे ।।३२ ।।

व्याख्यार्थ: कंस अपने भगवान्की निर्दोषताकेलिये 'इहा नीतौ' इस श्लोकसे अपने हृदयके अभिप्रायको प्रकट करते हुवे कहता है, कि उनके यहां आ जाने पर, कालसे कुछ ही न्यून, काल जैसा ही कामकर देनेवाले, कुवलयापीड़ नामक अपने हाथीसे मरवा दूंगा कालके द्वारा सिद्ध किये जाने(होने) वाले कामको यह हाथी ही कर देगा.

यदि कदाचित् हाथीने उन्मत्त होकर, असावधानीसे उनको जीवित छोड़ भी दिया, तो भी भगवान् कृष्ण मुझे नहीं मार सकेगा; क्योंकि, हाथीसे बचकर अखाड़ेके भीतर आये हुवे उनको अखाड़ेमें उतरे हुवे बिजलीकी आग उल्कापातके समान अप्रतीकार्य(निरूपाय) अपने बलवान् मल्लोंके द्वारा तो मरवा ही दूंगा।।३२।।

तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान्।
तद्बन्धून् निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान्।।३३।।

श्लोकार्थ : उन दोनोंके मर जानेपर शोकसे व्याकुल वसुदेव आदि उनके बन्धुओं और अन्य भोज, वृष्णि, दाशार्ह आदि यादवोंकी शाखाओंके लोगोंको जो वसुदेव और उनके पुत्रोंसे सहानुभूति और मुझसे भीतरी बैर रखते हैं– सहज ही मैं मार डालूंगा ।।३३ ।।

व्याख्यार्थ: तदनन्तर, वह जो कार्य करना चाहता था, उनको 'तयोः' इस श्लोकसे प्रकट करता है. उन राम कृष्णका अनिष्ट मृत्युके पश्चात् उनके शोकसे सन्तप्त तथा युद्धादि करनेमें शक्ति हीन वसुदेव आदि प्रधान–प्रधान तथा उनके बन्धुओं और वृष्णि, भोज आदि शाखाके यादवोंको सहज ही में मार दूंगा।।३३।।

उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम्।
तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम।।३४।।

श्लोकार्थ: इसके बाद, बूढ़े होने पर भी, राज्य करनेकी लालसा रखनेवाले, अपने पिता उग्रसेनको, उनके भाई देवकको और अपने अन्य शत्रुओं को भी मार डालूंगा ।।३४ ।।

व्याख्यार्थ: यद्यपि उग्रसेन मेरे पिता हैं, तो भी वे दुष्ट हैं; क्योंकि, अत्यन्त वृद्ध भी वह राज्य करनेकी लालसा रखता है. उस दुष्ट पिता उग्रसेनको, जो मेरे शत्रुओंमें मेरा अपकार कर सकेगा, उनके भाई मेरे काका देवकको और जो कोई भी मुझसे बैर रखनेवाले हैं, उन सबको ही मार दूंगा तथा मरवा डालूंगा।।३४।।

ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका।
जरासन्धो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा।।३५।।
शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः।
तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान्।।३६।।

श्लोकार्थ: हे मित्र, तब इस पृथिवी पर मेरा कोई शत्रु शेष नहीं रह जाएगा. मैं निष्कण्टक होकर राज्य करूंगा. मेरे श्वसुर जरासन्ध, प्रिय मित्र द्विविद वानर, शम्बरासुर, नरकासुर और बाणासुर आदि अपने हितकारियोंकी सहायतासे देवोंका पक्ष करनेवाले राजाओंको मारकर सम्पूर्ण पृथ्वीका चक्रवर्ती राजा बन एकछत्र पृथ्वीको भोगूंगा ।।३५-३६ ।।

व्याख्यार्थ: भोग तो, सभीके जीवित रहते ही भोगे जाते हैं. सब ही के मर जाने, अथवा मार दिये जाने पर, भोग ही नहीं भोगे जा सकते, भोग-भोग ही नहीं रह सकते. तब सबको मार देनेसे, क्या लाभ है? इस शङ्काका उत्तर 'ततश्च' इस श्लोकसे देता है, कि यह पृथिवी निष्कण्टक हो जायेगी. पृथिवी पर पथिकोंकी तरह घूमनेवाले राजाओंमें जो प्रतिबन्धक, भोगमें विघ्नरूप हैं, उन कण्टकोंके न रहने पर, यह पृथिवी निष्कण्टक होती है.

कंसके इस अत्यन्त आग्रहके वर्णनसे इस बातका निरूपण किया है, कि जब भगवान् कंसकेलिये मोक्ष प्रदान करेंगे, तब उसका मनोरथ भी सिद्ध करेंगे. इसलिये उसके मनोरथके अनुसार भक्तोंका हित करनेकेलिये कंसको मारकर भगवान्ने पृथिवीको निष्कण्टक कर दिया उसके मनोरथको व्यर्थ नहीं होने दिया. आगे अध्यायमें स्वयं कण्टकरूप कंसका वध करदेनेपर, यह पृथिवी निष्कण्टक हो जायेगी इस विपरीत कथनका यह अभिप्राय है.

''ध्रियते यावदे कोपि रिपुस्तत्र कुतः सुखं''के अनुसार एक शत्रु (कण्टक)के रहते हुवे भी सुख भोग सुलभ नहीं हैं. निष्कण्टक पृथिवी पर सुख भोग सिद्ध होता है. इसी प्रकार सुख भोगमें सहायकोंका होना भी अपेक्षित है. अतः अपने सहायकोंका वर्णन करता है. जरासन्ध मेरे श्वसुर हैं, जो मुझे सदा हितका उपदेश देते रहते हैं. द्विविद नामका बन्दर मेरा सा स्वभाववाला होनेके कारण ''समानशील व्यसनेषु मैत्री'' मेरा प्यारा मित्र है.

दैत्योंमें भी परस्पर विरोध होने पर भोग सिद्धि नहीं हो सकती. इसलिये कहता है, कि शम्बर, नरक, बाण आदि असुर एक मुझ(कंस) पर ही प्रीति रखते हैं. उन्होंने मेरा पहले भी उपकार किया है और आगे भी करेंगे. उनके द्वारा ही एकाकी भी मैं असङ्ख्य देव पक्षोंका निराकरण कर दूंगा क्योंकि, वे सुख भोगमें ही मेरे(कंसके) साथी हैं और देव पक्ष(शत्रु)का नाश करनेमें भी सहायक हैं ही.

कंसका मनोरथ था, कि पहले यह पृथिवी, सारा राज्य और स्वर्ग, ये सभी दैत्यों ही के थे और इसी कारण दैत्योंको पूर्व देव कहा जाता था. देव तो ब्राह्मण पुरोहितकी तरह दैत्योंके पुरोहितसे थे. फिर उन ब्राह्मण पुरोहितके समान स्थित वे देवगण, नित्य सर्वदा सृष्टिके क्रमसे वेदका अध्ययन करके वेदोक्त विधिसे यज्ञ और भगवान्की आराधना करके देवता बन गये हैं. इसलिये वे कृत्रिम देव हैं, सहज नहीं हैं और इसी कारणसे, काल, दैत्योंका भी पक्षपात(सहायता) करता आया है और अभी भी पक्षपात करेगा ही. इस प्रकार, हे अक्रूर युधिष्ठिर आदि देव पक्षीय विरोधी राजाओं और विरोध कार्य पूर्णतया समाप्त हो जायेगा तब मैं(कंस) निष्कण्टक पृथिवीका भोग कर सकूंगा. तुम इस विषयमें कोई प्रकारका भय मत करो।।३५-३६।।

लेख: ''तैरहं सुर पक्षीयान्''३६वें श्लोकके द्वितीय चरणकी सुबोधिनीमें 'नित्यसृष्टि प्रकारेण' इत्यादि पंक्तियोंका तात्पर्य यह है कि पहले पुरोहितकी तरह रहनेवाले देवोंने विचार किया कि अभी तो दैत्य लोगोंका राज्य है; किन्तु सर्वदा सृष्टिके क्रमसे देवोंने वेदोंमें यज्ञोंकेद्वारा दैत्योंकी पराजय देखकर यज्ञोंसे दैत्योंकी पराजय करके देव हो गए, आसुरकल्पमें दैत्योंका ही राज्य था. असुर होनेसे स्वयं कंसने आसुरमतका अनुवाद किया है. इसलिए काल, दैत्योंका ही पक्ष लेता है।।३६।।

एतत् ज्ञात्वानय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ।

धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम्।।३७।।

श्लोकार्थ : यह जानकर हे अक्रूरजी! आप शीघ्र ही कृष्ण और बलराम को धनुषयज्ञ और मथुरापुरीकी शोभा दिखानेके बहानेसे यहां ले आईए।।३७।।

व्याख्यार्थ: 'एतत् ज्ञात्वा' यह जानकर, उन्हें यहां शीघ्र ले आओ, यद्यपि, वे दोनों बलशाली हैं. उनका सहज लिवा लाना साधारण नहीं हैं, किन्तु वे बालक हैं. बालक खेल कूद क्रीड़ाको देखनेके उत्साहसे चाहे जहां आ ही जाते हैं. इसलिये धनुर्याग और मथुराकी शोभा देखनेके बहाने ले आओ. उनसे वहां मेरे मनकी बात प्रकट मत करना. तुम मित्रभेद नहीं करोगे, यह जानकर, मैंने अपने मनकी बात तुमसे कह दी है.

यह अक्रूरजी दो स्वभाववाले जीवात्मा, सात्विक हैं, और कार्यकेलिये दैत्यके आवेशवाले हैं. दैत्याविष्ट जीव होनेके कारण ही, कंसने इनके आगे अपने सारे दुर्भाव प्रकट कर दिये, भगवान् कृष्णको लिवाने भेजा और दैत्योंके साथ इनकी प्रीति थी तथा दैत्य कंसकी प्रदत्त जीविकाका उपभोग करते थे. ऐसी स्थितिमें कंसके आदेशके अनुसार कार्य करना और स्यमन्तक मणि आदिका प्रसङ्ग अक्रूरकेलिये अनुचित नहीं है।।३७।।

अक्रूर उवाच

राजन् मनीषितं सम्यक् तव स्वावद्यमार्जनम्।
सिद्ध्यसिद्ध्यो समः कुर्याद् दैवं हि फलभावनम्।।३८।।

श्लोकार्थ : अक्रूरने कहा कि महाराज ! आपका विचार बहुत ही अच्छा है. अपने शत्रुको मारना, अपने अमंगलको मिटाना मनुष्यका पहला कर्तव्य है. परन्तु उस उद्योगका पूरा होना अथवा न होना मनुष्यके(अपने) वशकी बात नहीं है. फल देनेवाला दैव ही है।।३८।।

व्याख्यार्थ: सात्विक और दैत्याविष्ट भेदसे दो प्रकारके स्वभाववाले अक्रूरजी 'राजन्' इस श्लोकसे सन्देह संशयात्मा कंसके प्रति उत्तर देते हैं. राजन् इस सम्बोधनसे आज्ञापालनकी अवश्य कर्त्तव्यता और स्नेहको सूचित करते हुवे अक्रूरजीने कहा कि आप(कंस) का विचार ठीक ही है; क्योंकि, धनुर्याग और मथुराकी शोभाको देखनेके बहानेसे बुलाये गये और उत्साह पूर्वक स्वयं भी यहां आये हुवे उन दोनोंका अनिष्ट(मरण) करवा देने पर भी लौकिक जनताकी दृष्टिमें आप(कंस) अपराधी नहीं माने जाओगे. इस निरपराधी माने जानेके विचारको

कहकर, यह निरूपण किया है, कि काल राजा है, और कंस उस कालका सेवक है, क्योंकि यदि कंस राजा होता तो, कालसे वह क्यों डरता. फिरभी, यदि जनता भ्रमसे, कंसको ही राजा समझती रहे तो, काल, जनताको ही दुष्ट(दोषी) जानकर, उसे ही दण्ड देगा, तुम(कंस) को काल दण्ड नहीं देगा.

तात्पर्य यह है, कि जो लोग सेवक कंसको राजा और राजा कालको सेवक भूलसे समझनेवाले हैं, काल उन्हें ही दोषी समझकर, दण्ड देगा तुम(कंस) तो निरपराधी ही हो. इस प्रकारसे, दैत्य सिद्धान्तके अवलम्बनसे, दैत्य शास्त्र द्वारा भी विरोधकी निवृत्ति की है, क्योंकि देवोंके अधिकारमें ही, देवोंका राज्य रहता है और तब ही उनके कथनानुसार स्वर्ग, नरककी व्यवस्था है. दैत्योंके अधिकारमें, ऐसी व्यवस्था कुछ नहीं है और यदि दैत्योंके अधिकारमें भी, देवोंका राज्य ही मानें तो, दैत्य देवोंको जीत नहीं सकें. ग्रह तो साधारण ही हैं. इस कारणसे भी आप(कंस) का विचार उचित ही है.

अक्रूरजी सारे ही शास्त्र सिद्धान्तोंके ज्ञाता है. इस प्रकारसे दैत्य सिद्धान्तके अनुसार कालकी व्यवस्थाका वर्णन द्वारा विरोध परिहार करके, भगवान्की सर्व प्रकारताके वर्णन अर्थात् भगवान् सर्वरूप हैं के द्वारा भागवत सिद्धान्तके द्वारा भी विरोधका परिहार करते हैं. यदि भगवच्छास्त्रसे विरोध हो तो, दैत्योंकी मुक्तिका कथन न हो और विरोधी सिद्धान्तोंमें भागवत सिद्धान्तका माहात्म्य भी न हो.

भगवान्, कालग्रहमें प्रवेश करके, कालमें रहनेवाले, सभी भगवदीयोंको कालसे उद्धार करके निकाल लेते हैं. इसलिये भगवत्सम्बन्धी स्थान कालसे अतिरिक्त ही है, वहां कालका प्रभाव नहीं है. कालसे सब डरते हैं यह कथन तो व्यवहारिक है. भगवान् तो कालको ठगकर ही, भक्तोंका कालसे उद्धार कर लेते हैं और कालके 'कालः कलयतामहं' कालरूप भी हो जाते हैं. इसलिये भगवान् का अवतार, कालके अतिक्रमणकेलिये है. (यह प्रमेय बलस्वरूप बलकी सिद्धि है. प्रमाण बल तो सबकेलिए सामान्य और हितकर है). प्रमाण बलकी सर्व साधारणताके कारण ही देव, ब्राह्मण और धर्मकी प्रतिष्ठा चली आ रही है. यदि प्रमाण बल सर्व साधारण न हो तो, देवादि भी यथावस्थित प्रतिष्ठित न रहें.

देवकाल और दैत्यकालके भेदसे मध्यम काल दो प्रकारका है. मूल भूत कालतो समान ही है. इस कारण प्रमाणबल मध्यभाव सर्व सामान्य ही है और

प्रमेयबल तो मूल भूतका उल्लङ्घन भी करा देता है. यह देव भगवत् सिद्धान्तका रहस्य है. कंसने तो दैत्योंके सिद्धान्तके आश्रयसे अपने विचार कहे हैं. इसलिये दैत्य सिद्धान्तके अनुसार ठीक ही कहा है. मूल भूत कालका देव और दैत्य दोनों कालोंके साथ समान सम्बन्ध होनेके कारण दोनों कालोंमें मूल भूतकाल किस कालके अनुकूल है यह नहीं जाना जा सकता है. इसीलिये किसी एक पक्षका निर्णय सिद्ध नहीं किया जा सकता.

इस कारणसे, अक्रूरजी कंससे कहते हैं, कि प्रयत्नशील पुरुषको कार्यकी सफलता अथवा असफलतामें समान रहना चाहिये. किसी प्रकारका आग्रह नहीं करना चाहिये; क्योंकि, सिद्धि अथवा असिद्धि मनुष्यके वशकी बात नहीं है. प्रयत्न करना मात्र, मनुष्यका कर्त्तव्य है और फल देना तो दैवाधीन ही है. इस प्रकार फल प्राप्तिको दैवाधीन कहकर दोनों सिद्धि और असिद्धि पक्षोंकी समानताका निरूपण किया है।।३८।।

मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि।
युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते।।३९।।

श्लोकार्थ : मनुष्य बड़ी ऊंची-ऊंची अभिलाषाएं करता है. दैव यद्यपि उनमें प्रतिबन्धक होकर उनको पूरी नहीं होने देता. तथापि वह वाञ्छित कामनाके पूरा होने पर आनन्द प्राप्त करता है और पूर्ण न होने पर दुःखित भी होता है. तो भी, मैं अपनी ओरसे, आपकी आज्ञाका पालन करूंगा ।।३९ ।।

व्याख्यार्थ: किसी मनोरथकी सिद्धि होने अथवा असिद्धि होनेमें, संशय तो, भगवान्के अनवतार दशामें ही हो सकता है. इस समय भगवान्की अवतार दशामें तो, अल्प बुद्धिसे किये हुवे जीवके मनोरथोंकी असफलता ही निश्चित है. इस कारणसे, तेरा(कंसका) विचारा हुआ मनोरथ व्यर्थ ही है. यह 'मनोरथान्' इस श्लोकसे कहते हैं. सर्वेश्वरके ही सारे विचार पूरे हो सकते हैं. जीवका तो छोटा सा भी मनोरथ पूरा नहीं हो पाता. पुरुष, दैवके रोके हुवे बड़े-बड़े मनोरथ करता है. भगवान्ने अवतार लेते समय ही, कंसादिका वध सोच लिया था. इस कारण, कंसका मनोरथ दैवहत ही था. ऐसे दैवहत मनोरथोंका करनेवाला कंस भ्रममें पड़ा हुआ था. हां यदि जीव स्वेच्छासे स्वयं ही उत्पन्न हुआ हो तो, कदाचित् जीवका मनोरथ पूरा भी हो सकता है. जीव स्वयं जात तो नहीं है. स्वयं जात होता तो, किसीके गर्भमें रजोवीर्यरूपका आश्रय क्यों करता. इस कारणसे,

अपनी स्थिति पर, विचारकर ही मनोरथ करना चाहिये. अपनी स्थिति पर विचार न करके, मनोरथ करने पर सिद्धिमें प्रसन्न और अपूर्तिमें दुःखित होना पड़ता है. सिद्धि और असिद्धि रूपफल भगवान्(दैव)के अधीन ही जान पड़ता है तो भी मैं(अक्रूर) आप(कंस) की आज्ञाका पालन करूंगा. आज्ञा पालन न करनेसे तो तेरा(कंसका) मरण और मेरा(अक्रूरजीका) भगवद्दर्शनरूप कार्य सिद्ध ही नहीं होगा. इसलिये अवश्य जाकर राम कृष्णको ले आऊंगा।।३९।।

श्रीशुक उवाच

एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः।
प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम्।।४०।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहते हैं–महाराज, अक्रूरको इस प्रकार आज्ञा देकर, कंसने अपने मन्त्रियोंको, मल्लोंको और महावतको विदा किया और स्वयं अपने भवनमें गया. इधर अक्रूरजी भी अपने घरको गए।।४०।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार कंस और अक्रूरकी वार्तालापका वर्णन 'एवं' इस श्लोकसे दोनोंका अपने–अपने स्थान पर जानेका निरूपण करते हैं. अक्रूरजीके कथन पर कंसने कार्योंकी व्यग्रताके कारण विचार नहीं किया. इसलिये उसके कृत कार्यका अनुवाद करके उपसंहार करते हैं कि अक्रूरसे यों कहकर, कंस केशी, मल्लों, महावत और पुरवासियों और प्रान्त निवासियोंको बुलानेमें लगे हुवे मन्त्रियोंको बाहर सभा भवनमें ही छोड़कर स्वयं अपने भवनमें चला गया. अक्रूरजी भी अपने घर चले गये. उस दिन भवनसे बाहर नहीं निकला. भीतर बैठा ही विचार करता रहा. अक्रूरजीके जानेका प्रयत्न, रीति, कर्त्तव्य, वक्तव्य और विचार आदिका वर्णन यहीं पैतीसवें अध्यायमें करेंगे।।४०।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणके दशम स्कन्धके अध्याय ३३,
राजस–प्रमाण–अवान्तर प्रकरणके 'ऐश्वर्य निरूपक' प्रथम अध्यायकी
श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणकृत श्रीसुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ.

अध्याय ३४

केशी और व्योमासुर का उद्धार तथा नारदजी द्वारा भगवान्‌की स्तुति

चतुस्त्रिंशे प्रेषितस्य तामसस्य निरूप्यते।
कार्यं वाक्यानि च ऋषेर्लीलां काञ्चित् हरेः प्रियाम्।।का.१।।

कारिकार्थ : ३४ वें अध्यायमें कंसके भेजे हुए तामस(केशी– राक्षस)का कार्य, ऋषिके वाक्य और हरिकी प्रियलीला कर कुछ निरूपण है ।।१ ।।

हेतुकार्यफलान्यत्र पूर्ववद् बोधितानि हि।
केश्यागमनकार्यं तु ऋषिवाक्यात् न चान्यथा।।का.२।।

कारिकार्थ : इसमें हेतु(केशीवध)कार्य(ऋषिका आगमन)फल(आगे कही हुई लीला)पूर्वकी तरह समझाये हुए हैं–ऋषिके कहनेसे ही कंसने केशीको भेजा, यदि ऋषि न कहते तो केशी न आता, इसका आशय यह है कि ऋषिने ही वह अनर्थ कराया है, यदि भगवान्‌के द्वारा केशीका वध न होनेवाला होता तो ऋषि आते ही नहीं ।।२ ।।

वधेन जातेनागच्छेद् अनर्थं कृतवान् इति।
वधो निदर्शनं तस्मात् अतो वाक्यानि बोधने।।का.३।।

कारिकार्थ : अतः ऋषिके आने में केशीका वध ही हेतु(कारण)है, कंसादिके मारनेमें भी सामर्थ्य यह केशीका वध निदर्शन है, इसलिए भगवान् सामर्थ्यवान् हैं यों जानकर ही ऋषिने ऐसे बोधप्रद वाक्य कहे ।।३ ।।

बोधितश्चेत् हरिर्लीलां न कुर्यात् स्वेच्छया मुदा।
तदा प्रमेयरीतिर्हि दुर्बलैव भवेत् सदा।।का.४।।

कारिकार्थ : यदि बोधित हुए हो तो, हरि स्व(अपनी)इच्छासे प्रसन्नतापूर्वक लीला न करते, तब प्रमेयकी रीति सदा दुर्बल ही हो जाती ।।४ ।।

अतः फलार्थं लीला हि पूर्वजाता निरूप्यते।
सिंहावलोकनं चापि करिष्यति हरिः स्वयम्।।का.५।।

कारिकार्थ : अतः पूर्व की हुई लीला फलार्थ ही निरूपण की जाती है. इसका सिंहावलोकन भी हरि स्वयं ही करेंगे ।।५ ।।

अतो न गोकुले चिन्ता कापीत्यपि निरूप्यते।
केशी हतो गुणैः कृत्वा तथा व्योम ऋषिः पुनः।।का.६।।

कारिकार्थ : अतः गोकुलमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं हुई यों निरूपण है, केशी अपने गुणोंसे मरा, व्योम पदसे क्रम न समझना, व्योमसे जैसे पृथ्वीमें बिल कर प्रवेश किया वैसे यह(केशी)भी पृथ्वीको फोड़ता हुआ आ गया ।।६ ।।

कालमात्रम् उवाचेति नव षोडश वै नव।

काल मात्र कहा, यों 'नव षोडश' इति मूलमें कहा हुआ क्रम जानना चाहिए :

श्रीशुक उवाच

केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्दरयन् मनोजवः।
सटावधूताभ्रविमानसंकुलं कुर्वन् नभो हेषितभीषिताखिलः।।१।।

श्लोकार्थ: श्रीशुकदेवजी कहते हैं–राजन् ! कंसका भेजा हुआ केशी नामक असुर विशाल घोड़ेका रूप धरकर वहां गया, वह अपने खुरोंसे पृथ्वीको खोद रहा था. उसका वेग मनसे भी कहीं अधिक था. वह अपनी गर्दनके बालोंकी थपेड़से आकाशमें बादल और विमानोंको तितर–बितर कर रहा था. उसके भयंकर हींसनाको सुनकर सारा जगत् भयसे व्याकुल हो गया ।।१ ।।

व्याख्यार्थ: पहले तैतीसवें अध्यायमें कंसके द्वारा केशीको भेजे जानेका वर्णन किया जा चुका है. केशीने व्रजमें आकर जो उपद्रव किया, उसका वर्णन अगले नौ श्लोकोंमें किया जा रहा है. वत्स, बक आदि असुरोंकी तरह यह केशी असुर नहीं आया था. किन्तु यह किसी अन्य प्रकारसे ही आया था. इसलिये 'केशी तु' इस श्लोकसे आनेका दूसरे ढंगका वर्णन करते हैं, क्योंकि, पहिले आये हुए असुर तो साधारण रीतिसे, व्रजका अहित करनेकेलिये नियुक्त किये हुए थे और केशीको तो विशेषरूपसे कंसने ही भेजा था.

मनके समान वेगवाला, वह एक विशाल घोड़ेके रूपमें, वहां उपस्थित होकर, व्योमासुरके समान अपने टापोंसे भूमि खोदने लगा. वह अपने शिरके बालोंके झटकेसे, आकाशमें बादल और विमानोंको अस्त–व्यस्त कर रहा था और अपने हिनहिनाने(घोड़ेके शब्दसे)से ही सारे जगत्को भयभीत कर रहा था. इस कथनसे उसकी शारीरिक और वाचनिक शक्तिका निरूपण किया है. देव, नर और पशुपक्षियोंको ही नहीं, किन्तु वह दैत्योंको भी भयभीत कर रहा था. इसीलिये मूलमें 'अखिलः' साधारण प्रयोग किया है।।१।।

लेख: 'केशी तु' इसकी व्याख्यामें व्योमदेवका तात्पर्य यह है कि जिस तरह व्योमासुर

पृथ्वी पर बिल बनायेगा, वैसे ही यह भी पृथ्वीको खुरोंसे खोदने लगा. दोनोंकी समता और एकसा गुण वर्णन करनेकेलिए यहां पर नौ नौ श्लोकोंसे दोनोंका ही निरूपण है. अर्थात् इस अध्यायमें चौतीस श्लोक हैं. उनमें आदिके नौ श्लोकोंमें केशीके और अन्तिम् नौ श्लोकोंमें व्योमासुर के वध का वर्णन है और मध्यके १० वें श्लोकसे २५ वें श्लोक तक सोलह श्लोकोंमें नारद कृत भगवत्स्तुति और कार्य का वर्णन है.

विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाम्बुदोपमः।
दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नन्दस्य जगाम कम्पयन्।।२।।

श्लोकार्थः उसकी आंखें बड़ी मोटी-मोटी और मुख गुफाकी तरह भयंकर था. उसका कण्ठ विशाल था और वह बड़े विशाल काले बादलके समान दिखाई देता था. कंसका हितैषी वह दुष्ट बुरे विचारसे नन्दरायजीके व्रजमें गया. उसके चलने पर पृथ्वी थरथराती(थरथर कांपती)थी ।।२ ।।

व्याख्यार्थः आगे चलकर व्रजमें उसके कार्य तो भयङ्कर थे ही, किन्तु उन कार्योंके किए बिना भी, उसका केवलरूप भी बड़ा डारावना था यह 'विशाल नेत्रः' इस श्लोकसे कहते हैं. उसकी आंखें बड़ी मोटी-मोटी डरावनी थीं. उसका मुख गुफा जैसा और कण्ठ बड़ा विशाल था. उसका शरीर दूर तक फैले हुए बादलके समान काला था. यही नहीं; किन्तु काले और विशाल बादलकी उसके शरीरसे तुलना की जाती थी. तात्पर्य यह है, कि काले और दूर तक फैले हुवे बादलकी अपेक्षा भी उसकारूप अधिक काला और भयङ्कर था. इस प्रकार इस एक विशेषणसे उसके रूपका वर्णन किया है और पहले तीन विशेषणोंसे नेत्र, मुख और कण्ठका वर्णन है; क्योंकि मुखमें तीन गुण हैं. इस प्रकार उसकी बाहरी भयङ्करता और दुष्टताका वर्णन करके भीतरी दोषोंका वर्णन करते हैं कि वह जन्मजात दुष्ट तो था ही, किन्तु इस समय कंसका हित करनेकी इच्छासे ही आया था, इसलिये अत्यन्त ही दुष्ट हृदयवाला वह केशी भारी उपद्रव करनेकेलिये ही नन्दरायजीके व्रजमें उपस्थित हुआ।।२।।

लेखः 'विशाल नेत्रः' इस श्लोककी व्याख्यामें ''उपमानत्व निरूपणार्थम् उपमापदम्'' इत्यादि पंक्तिका तात्पर्य यह है कि मूलमें 'नीलमहाम्बुदोपमः' पद केशीको नीलघनका उपमान सूचित करनेकेलिए है; क्योंकि उपमान चन्द्रादिमें उपमेय मुखादिसे अधिकता होती है; किन्तु यहां उपमान नीलमेघको उपमेय और उपमेय उसके शरीरको उपमान बताया है. अर्थात् केशी काले बादलके समान नहीं; प्रत्युत

काला बादल केशीके शरीर सा था. चन्द्रादिमें जैसे मुखसे अधिक गुण दिखाई देते है वैसे ही बादलकी अपेक्षा केशीका शरीर अधिक भयङ्कर था.

तं त्रासयन्तं भगवान् स्वगोकुलं तद्धेषितैर्बालविघूर्णिताम्बुदम्।
आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणीरूपाह्वयन् स व्यनदत् मृगेन्द्रवत्।।३।।

श्लोकार्थः भगवान्ने देखा कि वह असुर अपने शब्दसे गोकुलको भयभीत बनाता हुआ युद्ध करनेकेलिए उन्हींको खोज रहा है, और उसकी पूंछके बालोंसे विदीर्ण मेघसमूह इधर-उधर बिखर रहे हैं. तब श्रीकृष्णने सामने आकर उसे ललकारा. कृष्णको देखकर केशी भी सिंहकी तरह गरजा ।।३ ।।

व्याख्यार्थः भगवान्ने पहले ही यह जानकर कि केशी आते ही जल्दीसे गोकुलका अनिष्टरूप अपना कार्य पूरा कर लेगा, उसको पहले ही से ललकारा यह 'तं त्रासयन्तं' श्लोकसे कहते हैं. उसके आते ही उसके रूपको देखकर ही सब भयभीत हो गये. श्रीकृष्ण भगवान् हैं इस कारणसे केशीके बुरे विचारोंको जान लेने और उसको मार देनेकी शक्ति उनमें थी. भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं. आपको किसी भी कार्यको करनेमें ''लोकवत्तु लीला केवल्यम्'' इस ब्रह्मसूत्रके अनुसार परिश्रम नहीं होता. आपने अपने बन्धु बान्धवों तथा अपनी गोओंके कुलको डरानेवाले केशीको ललकारा; क्योंकि वह देवोंको भी भयभीतकर देनेवाले अपने कर्णकटु हींसनेसे भगवान्के गोकुलको डरा रहा था.

वह अपनी पुंछके घुमाने मात्रसे जब बादलोंको तितर वितर और व्याकुल कर रहा था और देर करने पर तो न जाने क्या-क्या अनर्थ कर डालेगा इस विचारसे भगवान्ने उसे महान् अनर्थ करनेसे पहले ही ललकार दिया. वह गोकुलका नाश करनेका विचार लेकर नहीं आया था, गोकुलको तो वह अचानक ही मार देता. वह तो भगवान्के साथ युद्ध करना चाहता था. इस कारणसे वह तो संग्राममें श्रीकृष्णको ढूंढ रहा था कि कृष्ण कहां है? यद्यपि कृष्णसे कंस भी भयभीत था; तो भी वह अपनी धृष्टतासे कृष्णको युद्धकी इच्छासे इधर-उधर देख रहा था. वह प्रसिद्ध केशी अन्य वीरोंको हाथी सा मानता था इस कारण वह सिंहके समान दहाड़ने लगा. भगवान् अग्रणी हैं विघ्नोंको उनके आनेके पहले ही दूर कर देते हैं. इसलिये बलरामजीको आगे भेजकर, स्वयंने ही सामने जाकर, भगवान्ने ही, उसको ललकारा।।३।।

स तन्निशम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः।

जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं दुराशयश्चण्डजवो दुरत्ययः।।४।।

श्लोकार्थ: वह प्रचण्ड वेगवाला था, इसीलिए उसे कोई वशमें नहीं कर सकता था और न उसके पास जा सकता था. वह बड़ा क्रोध करके मानों आकाशको पी जाएगा इस तरह मुंह फैलाकर कृष्णके ऊपर झपटा और पासमें आकर उनपर उसने पीछे की दुलत्ती चलाई ।।४ ।।

व्याख्यार्थ: भगवान्की ललकारको सुनकर केशीने जो कुछ किया, उसका वर्णन 'स तं' इस श्लोकसे करते हैं. उसको ललकारके भगवान्ने गर्जना की. अथवा भगवान्को देखकर ही पहले केशीने गर्जना की और फिर भगवान्का वचन सुनकर मुखको फैलाकर आकाशको लीलतासा भगवान्के सामने बड़े वेगसे झपटा. वह भगवान्को निगल लेना चाहता था. क्योंकि आकाशको भी लील लेने पर, उस आकाशमें स्थित पदार्थ तो सहज ही निगले जा सकते हैं ही. यह कर केशीकी बाहरी चेष्टाका वर्णन किया. उसकी भीतरी चेष्टाका वर्णन करते हुए कहते हैं, कि वह बड़ा क्रोधी था. उसने अत्यन्त क्रुद्ध हो और मुड़कर अपने पीछेकी दुलत्तीका धेनुकासुरकी तरह भगवान् पर प्रहार किया.

कमलसे नेत्रवाले भगवान्की कोटि काम लजावन सुन्दरताको देखते हुए उस केशीकी भगवान् पर सामनेसे प्रहार करनेकी सामर्थ्य नहीं हुई. और तब दुष्ट हृदयवाला वह फिरकर उनको बिना देखे ही उन पर पीछेकी दुलत्ती चला सका. बलरामजी आदि कोई भी उसको न रोक सकते थे और न उसके पास ही जा सकते थे. वह बड़े वेगसे झपटता था. उसको रोक देनेकी बात तो कौन करें, उसके निकट आने पर उससे अपने प्राण बचाकर कोई भाग भी नहीं सकता था।।४।।

तद् वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः।
सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः।।५।।

श्लोकार्थ: भगवान् कृष्णने सहज ही में उस प्रहारसे अपने आपको बचा लिया और उसके दोनों पिछले पैर पकड़कर गरुड़ जैसे किसी साधारण सांपको झिटक देता है, वैसे ही केशीको ऊपर घुमाकर चार सौ हाथ दूरी पर फेंक दिया और आप जहांके तहां खड़े रहे ।।५ ।।।

व्याख्यार्थ: परम चतुर शिरोमणि भगवान्ने यह जानकर कि यह केशी देव और असुरोंसे तथा किन्हीं शस्त्रोंके द्वारा भी नहीं मारा जा सकता, तब उसका

समाधान जिस प्रकारसे किया उस प्रकारको 'तद्वञ्चयित्वा' इस श्लोकसे बतलाते हैं. भगवान्ने स्वयं झुककर उसकी उस दुलत्तीके प्रहारको निरर्थक बनाकर अपने आपको उसने बचा लिया और उसके पिछले दोनों पैरोंको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़कर ऊंचा उठा और घुमाकर चार सौ हाथ ही नहीं हजारों हाथ दूरी पर अनायास फेंक दिया.

यद्यपि केशी बड़े वेगसे दौड़कर भगवान्को मारनेके विचारसे ही आया था और उसने इसीलिये ही किसीसे भी न रुकनेवाली दुलत्तीको मारनेका साधन बनाकर ही भगवान् पर चलाई थी, तो भी वह व्यर्थ ही हो गई; क्योंकि, भगवान् अधोक्षज हैं. इन्द्रियोंका ज्ञान तथा कार्य उन तक नहीं पहुंच सकता. इसी कारणसे वह दुलत्ती भगवान्को स्पर्श नहीं कर सकी. यह उचित ही है, तथा अपने अलौकिक सामर्थ्यसे भगवान्का अपने आपको उसके आघातसे बचा लेना भी उचित ही है.

उसने पहले सामने आकर और फिर पीछे फिरकर, भगवान् पर दुलत्ती चलाई. इस कारणसे क्रुद्ध हुए निर्भीक भगवान्ने निडर केशीके पिछले पैरोंको दोनों श्रीहस्तोंसे पकड़ लिया और ऊंचा उठाकर घुमाकर, अनादर पूर्वक दूर फेंक दिया. उसने देवोंसे वरदान प्राप्त किया था. उसका उसे बड़ा गर्व था. उस गर्वका नाश करनेकेलिये ही सारे बलोंके बल भगवान्ने अनायास घुमाकर हजारों हाथ दूर फेंक दिया, जिससे वह फिर लौटकर वापस न आ सके.

वह असुर तो बड़ा विशालकाय था और भगवान् बालक थे. उस समय भगवान्ने अपनी अलौकिक सामर्थ्यको भी प्रकट नहीं किया था. तब बालक श्रीकृष्णने उस लम्बे चौड़े और मोटे ताजे प्रचण्ड शरीरवाले असुरको क्यों कर ऊंचा उठा लिया? इस शङ्काके उत्तरमें दृष्टान्त देते हैं. जैसे गरुड़जी बड़े भारी सांपको जो उनका सहज भोजन है पछाड़कर बलहीन कर देते हैं. वैसे ही, भगवान्ने भी उसे निर्बल करनेकेलिये घुमाकर फेंक दिया, क्योंकि बलके रहने पर तो फिर भी पराक्रम कर सकता है. उसे बहुत दूर फेंककर और इस कामको कोई बड़ा काम न मानकर भगवान् श्रीकृष्ण पहलेकी तरह ही जहांके तहां ही खड़े रहे।।५।।

स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसापतत् हरिम्।
सोप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन् प्रवेशयामास यथोरगं बिले।।६।।

श्लोकार्थः पहले तो वह असुर मूर्च्छित हो गया. फिर होश आने पर,

मुंह फैलाकर बड़े वेगसे कृष्णकी ओर झपटा. श्रीकृष्णने हंसते-हंसते अपनी भुजा उसके मुंहके आगे कर दी. जैसे सांप बिलमें चला जाता है, वैसे ही श्रीकृष्णकी भुजा उस केशीके मुखमें चली गई ।।६ ।।

व्याख्यार्थ: 'स लब्धसंज्ञः' इस श्लोकसे फेंक दिये जानेके बादका वृत्तान्त कहते हैं. पहले तो वह मूर्च्छित अचेत हो गया और फिर सचेत होकर होशमें आकर भी पीछे नहीं लौटा, किन्तु फिर खड़ा होकर खा जानेके अभिप्रायसे मुंहको फैलाकर वेगसे भगवान् पर झपटा. खानेकेलिये ही मानों मुंह फैलाकर आये हुए उसके मुंहमें भगवान्ने यों कहकर मानों खानेकेलिये आया है तो ले खाले अपनी बाईं भुजा हंसते-हंसते रख दी; क्योंकि, भगवान्की बाईं भुजा दैत्योंकी ही है. वह भगवान्की बाईं भुजा उसके मुखमें इस प्रकार प्रवेश कर गई; जैसे सांप बोंबीमें निःशङ्क घुस जाता है।।६।।

दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयःस्पृशो यथा।
बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथामयः संववृधे उपेक्षितः।।७।।

श्लोकार्थ: भगवान्की भुजाके छू जाते ही, केशीके सारे दांत इस तरह गिर गए जैसे तपा हुआ लोहा लगनेसे लोगोंके दांत गिर पड़ते हैं. जैसे उपेक्षा करनेसे शरीरमें रोग बढ़ने लगता है, वैसे ही भगवान्की भुजा उस असुरके शरीरमें घुसकर क्रमशः बढ़ने लगी ।।७ ।।

व्याख्यार्थ: उस असुरके मुंहमें अपनी भुजा प्रविष्ट(घुसाकर) भगवान्ने जिस प्रकार उसका नाश किया उस प्रकारको 'दन्ता निपेतुः' इस श्लोकमें बतलाते हैं. वह खानेकेलिये ही आया था. इसलिये उस कुख्यात केशीने जब भगवान्की भुजाको दांतोंसे, जिनसे वह देवोंको भी मार देता था, काटने लगा, तब तो भगवान्की भुजाको छूते ही उसके दांत इस तरहसे गिर गये जैसे आगकी तरह लाल अत्यन्त तपे लोहेको छू जाने पर लोगोंके दांत गिर पड़ते हैं. उसके वे दांत किसी अलौकिक रीतिसे, औषधि आदिके खानेसे, जैसे नहीं गिरे थे.

भगवान्की भुजा भी उसके शरीरमें घुसकर वैसे ही बढने लगी, जैसे आलस्य करनेसे, रोग निवृत्तिका उपाय न करनेसे रोग बढ़ता ही जाता है, क्योंकि देहकी वृद्धिमें जैसे व्यायाम, संयम, पौष्टिकपदार्थ सेवन आदि साधनोंकी अपेक्षा रहती है. इस तरह रोगकी वृद्धिमें किसी साधनकी अपेक्षा नहीं होती. रोग जैसे क्रमशः बढ़ता रहता है, वैसे ही भगवान्की भुजा उसके शरीरमें घुसकर बिना

किसी साधनके ही बढ़ने लगी।।७।।

शंका: उत्पन्न होना, ठहरना, बदलना, बढना आदि छः विकार तो मायासे प्रतीत होते हैं,और मायिक मृगमरीचिकामें जैसे जलका स्पर्श नहीं होता, उसी प्रकार मायासे होनेवाले बढनेरूप विकारवाली भुजाका अनुभव केशीको कैसे हुआ? और हुआ तो दोष युक्त हुआ? इसका निवारण मूलमें आये 'महात्मनः' इस पदसे करते हैं. भगवान्की आत्मा-स्वरूप-महान् है. वह व्यापक और सब ओर पाणि, पाद और अन्तवाले हैं. वे अपने जिस अवयवमें जितनीसी जगहमें मायाका उद्घाटन करने देते हैं, उसी अवयवसे वे बढ गए ऐसे कहे जाते हैं. इस कारणसे भुजाके बढनेमें मायासम्बन्ध रूप कोई दोष नहीं है और केशीके दान्तों तथा शरीरको उसके बढनेका अनुभव भी हुआ ही; क्योंकि भगवान् शुद्ध-माया सम्बन्ध-रहित हैं. मनुष्यके शरीरमें रोग जैसे उपेक्षा-लापरवाही करनेसे बढता है, वैसे ही केशीकी भगवान्को प्रणाम न करना और भगवान् पर झपटकर आना रूप-लापरवाही-उपेक्षाके कारण भगवान्की भुजा उसके शरीरमें पैठ कर बढने लगी.

लेख: 'दन्ता निपेतुः' इस श्लोककी व्याख्यामें षष्ठ्यर्थे पदका अर्थ है कि यह द्वितीया षष्ठीके अर्थको बताती है अर्थात् तपे हुए लोहेका स्पर्श करनेसे जैसे लोगोंके दांत गिर पड़ते हैं; वैसे ही भगवान्की भुजाका स्पर्श करते ही केशीके सारे दांत गिर पड़े. ''विकारित्वं'' इसीकी व्याख्यामें ''विकारित्वं''का तात्पर्य यह है कि शरीरके छः विकारोंमें बढ़ना चौथा विकार है. ये सारे विकार मायासे प्रतीत होते हैं, इस सिद्धान्तके अनुसार बढ़ना रूप मायाका विकारवाली भगवान्की भुजाका मायामरिचीकामें जलकी तरह दांतोंसे छूनेका अनुभव केशीको होना अनुचित है. और मायिक स्पर्शके कारण दोष युक्त भी है. नट विद्या इन्द्रजालमें जैसे मायिक पदार्थोंका स्पर्श होता है, उसी प्रकार माया विकारसे बढ़नेवाली भी भगवान्की भुजाका केशीके दातोंसे स्पर्श सम्भव मानकर इस अरुचिसे दूसरा दूषण देते हैं, कि इस प्रकार मायिक पदार्थोंका स्पर्श सब जगह नहीं हो सकता. इसलिए इसमें हेत्वाभासरूप दोष है.

इन दोनों प्रकारकी शंकाकी निवृत्ति 'महात्मनः'भगवान्की सर्वव्यापकता बतलाकर की गई है।।७।।

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन्।
प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचन पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः।।८।।

श्लोकार्थ: लगातार बढ़ रही भगवान्की भुजासे केशीके सांसका आना जाना रुक गया और दम घुटने लगा. वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और पैरोंको पछाड़ने लगा. उसकी आंखे बाहर निकल आईं. शरीरसे पसीना बह चला और मलके साथ ही उसके प्राण भी निकल गए ।।८ ।।

व्याख्यार्थ: 'समेधमानेन' इत्यादि श्लोकसे आगेकी बातका वर्णन करते हैं. भगवान् कृष्ण दैत्योंके नाशकेलिये ही अवतरित हुए हैं. भुजा कर्मप्रधान हैं. कर्म करना भुजाओंका कर्त्तव्य है. बढ़ती हुई कर्म प्रधान श्रीकृष्णकी भुजासे केशीका मुंह भर गया और वायुके रुकनेसे श्वास प्रश्वासका आना जाना बन्द हो गया. पांवोंको पटकने लगा तथा मरनेकेलिये यहां कृष्णके पास लानेवाले अपने दुष्ट पैरोंको और यहां भेजनेवाले कंसको भी अत्यधिक बुरा-भला कहने लगा. परिश्रमसे उसका शरीर पसीनेसे भीग गया, आंखें बाहर निकल आईं, उसके बाहरी और भीतरी ज्ञान तथा क्रियाका नाश हो गया; तब तो लीद करता हुआ वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया. वह पृथ्वी पर गिर पड़ा इस कथनसे सूचित किया कि उसके गिरने पर कोई उपद्रव नहीं हुआ।।८।।

तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद् व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः।
अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसूनवर्षैर्ववर्षद्भिरीडितः।।९।।

श्लोकार्थ: भगवान्ने पकी हुई फूटकी तरह बिखरे हुए केशीके मृत शरीरसे अपना हाथ निकाल लिया. भगवान्ने उस शत्रुको अनायास-बिना परिश्रम ही मार डाला, इसका उन्हें कुछ भी विस्मय नहीं हुआ, किन्तु देवता लोग जो यह सब चरित्र देख रहे थे बहुत ही विस्मित हुए. वे नन्दनन्दनके ऊपर फूल बरसाने लगे और उनकी स्तुति करने लगे ।।९ ।।

व्याख्यार्थ: तदनन्तर केशीका वधरूप कार्यके सिद्ध हो जाने पर, सब देवताओंने भगवान्का पूजन किया और भगवान् घर पर पधारे यह 'तद्देहतः' श्लोकसे कहते हैं. केशीके प्राणोंके निकल जाने पर भी भगवान्की भुजा तो बढ़ती ही रही और पकी फूटकी तरह उसके शरीरको विदीर्ण करके बाहर निकली. जब हाथ केशीके मुंहसे बाहर निकाला तब उसका बढ़ना रुका और उसे पहले जैसा था, वैसा ही भगवान्ने साधारण सा हाथ कर लिया.

वह असुर मर चुका था. मृत शरीर अपवित्र हो जाता है, इस कारणसे तथा असुरवधरूप कार्यके पूरे हो जानेसे श्रीकृष्णने अपनी भुजाको उसके

मृतशरीरसे बाहर निकाल लिया. भगवान् महाभुज–बड़ी भुजावाले हैं, वे भुजासे भी मुक्ति दे सकते हैं. इसलिये केशीकी मुक्तिमें भी सन्देह नहीं है. महाभुज कहकर, यह भी बतलाया कि भगवान्की भुजाकी क्रिया–शक्ति बहुत बड़ी है.

केशीको मार देने पर, श्रीकृष्णको कुछ भी विस्मय नहीं हुआ; क्योंकि घासको तोड़नेमें किसी मनुष्यको, मैंने घास तोड़ दिया, ऐसा अभिमान नहीं होता है, वैसे ही केशी तो भगवान्के आगे घासके बराबर नहीं था. उसको मारनेकेलिये भगवान्ने जरा भी प्रयत्न नहीं किया, अनायास ही मार डाला. कोई टीकाकार कहते हैं, कि अपनी आज्ञासे ही भगवान्ने मायाको दूर कर दिया. इसलिये उन्हें मायाको हटानेमें कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ा. तब सारे देवोंने प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षाके साथ–साथ भगवान्की स्तुति की. मूलमें स्तुतिके वचन नहीं हैं, किन्तु पुष्पोंकी वर्षाका ही वर्णन है. वह स्तुति पुष्पोंकी वर्षाकी तरह थी. इसलिये पुष्पोंकी वर्षा करनेके अधिकारी देवोंने पुष्पोंसे ही भगवान्की पूजा और स्तुति की. इस प्रकार कंस वधका हेतुरूपसे केशीके वधका निरूपण किया।।९।।

देवर्षिरूपसङ्गम्य भागवतप्रवरो नृप।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत।।१०।।

श्लोकार्थः इस अवसर पर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजी एकान्तमें सर्वशक्तिमान् भगवान्के निकट उपस्थित हुए और कहने लगे ।।१० ।।

व्याख्यार्थः आगे नारदजीके अपने अपराधकी पन्द्रह श्लोकोंसे क्षमायाचना पूर्वक आगमनका वर्णन पहले 'देवर्षि' इस श्लोकसे करते हैं. भगवान्ने जब केशी दैत्यका वध किया. उस समय उनके पास कोई भी गोप ग्वाल आदि नहीं था. इस बातको नारदजीने, देवर्षि होनेके कारण, जान लिया और उसी समय भगवान्के समीप जाकर परम भक्तकी तरह नमस्कार किया. नारदजी भक्त शिरोमणि हैं, भक्तिमार्गके उपदेशक हैं. इस कारणसे, अनभिप्रेत भी भगवान्की इच्छा को न जानकर भी आये हुए अपराधी नारदजी अक्लिष्ट कर्मा सर्व शक्तिमान, परमानन्दघन श्रीकृष्णके निकट स्वयं भी निर्भय होकर चले गये और स्तुति करते हुए एकान्तमें निवेदनात्मक वचन कहने लगे. भगवान्की तरह नारदजी भी स्वतः अदृश्य ही हैं. स्वेच्छासे ही दिखाई देते हैं. इसलिये एकान्तमें दोनोंको ही निवेदन करते, सुनते कोई नहीं देख सका. राजलीलामें अनभिप्रेतको देखना और उसकी बातको सुनना पड़ता है. इस अभिप्रायसे मूलमें 'नृप' यह

सम्बोधन किया है।।१०।।

लेख: 'देवर्षि' इस श्लोककी व्याख्यामें 'वाक्यानि' पदका भाव यह है कि पंद्रह श्लोकोंसे नारदजीके वाक्योंका निरूपण करते हुए पहले प्रथम एक श्लोकसे उनके आनेका वर्णन करते हैं. इस प्रकारसे १५+ १ मिलकर सोलह श्लोक होते हैं.

आगे इसी व्याख्यामें 'उच्चमानः' इत्यादि पदोंका तात्पर्य यह है कि नारदजीका आगमन कलह कारक होनेसे किसीको अच्छा नहीं लगता.फिर भी, नारदजी आ गए. तब सब भक्त मिलकर भगवान्से प्रार्थना करने लगे तो भगवान् नारदजीका अनिष्ट कर दें. इस बातका भय नारदजीको नहीं हुआ और वे सर्व शक्तिमान तथा परमानन्दघन श्रीकृष्णके निकट निर्भयता पूर्वक जाकर कहने लगे. 'स्वतोपि'का अभिप्राय यह है कि भगवान्की अक्लिष्ट कर्मता और परमानन्द-रूपताका विचार न करके भी स्वतः ही, नारदजी भगवान्के निकट चले गए.'अदृश्यत्वे' पदका अर्थ यह है कि योग बलसे दोनों ही(श्रीकृष्ण और नारदजी) किसीकी दृष्टिमें नहीं आए उन्हें कोई नहीं देख सका, क्योंकि 'इन्द्रियाणान्तु सामर्थ्याददृश्यं स्वेच्छ्या तु तत्' वह स्वेच्छा से ही दर्शन देते हैं, इन्द्रियों की शक्ति से वह अदृश्य है इन्द्रियां उसको नहीं देख सकती है।।१०।।

नारद उवाच

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगीश जगदीश्वर।
वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो।।११।।

श्लोकार्थ: हे कृष्ण ! हे सच्चिदानन्द ! हे अखण्ड स्वरूप ! हे योगेश्वर ! हे जगन्नाथ ! आप सब प्राणियों में व्याप्त हैं. आप सबका आश्रय हैं. हे यादव देव ! आप सर्व शक्तिमान् हैं।।११।।

व्याख्यार्थ: नारदजी प्रथम तो भगवान्को 'कृष्ण कृष्ण' इस श्लोकमें नौ प्रकारसे सम्बोधित करते हैं. 'कृष्ण' पदसे मूलरूपका निरूपण करते हुवे ''कृषिः भूवाचकः शब्द''के अनुसार सदानन्द कृष्ण ही मूलरूप हैं? यदि सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण मूलरूप न हो तो, जगत्की तद्रूपता और फलरूपता नहीं हो. इस विषयमें अगले दो सम्बोधनोंसे अनुभव और वेदका प्रमाण देते हैं. कृष्ण यह पुनरुक्ति आदर सूचक है; क्योंकि, परमानन्दका ही सब आदर करते हैं. यद्यपि उस परमानन्द स्वरूपका यह ऐसा और इतना है ''इदमित्थतया''(ज्योंका ज्यों) वास्तविक अनुभव नहीं होता है, तो भी, उस परमानन्दरूप वस्तुका यही स्वभाव ''इदमित्थतया''(अनुभवमें न आना ही) होनेके कारण आदर होता ही है.

वह परमानन्द कृष्ण अनुभववेद्य नहीं है, किन्तु वेदगम्य है. इसीलिये वेदोंकी रचना है. यह 'अप्रमेयात्मन्' इस सम्बोधनसे प्रमाणित करते हुए कहते हैं, कि परमानन्द कृष्णका स्वरूप किसी प्रमाणसे जानने योग्य ''**न तत्र वाग् गच्छति न मन यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**'' नहीं है. यद्यपि वह किसी प्रमाणसे सर्वथा जानने योग्य नहीं है, तो भी वह सबकी आत्मा है, इस कारण उसकी सत्तामें सन्देह नहीं है. इस कारणसे वह स्वयं ही ''**स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं**'', ''**अहम् आत्मात्मनां धात**'' गीता भागवतके अनुसार अपने स्वरूपका वर्णन कर सकता है.

इस प्रकार दो विशेषणोंसे श्रीकृष्णकी प्रमाण रूपता–स्वतः प्रमाणताका निरूपण करके साधनरूप भी वही है यह अगले 'योगीश', 'जगदीश्वर' इन दो विशेषणोंसे कहते हैं. क्योंकि जब वह योगका ईश्वर होनेके कारण बाह्य इन्द्रियोंका और जगत्का ईश्वर होकर अन्तः इन्द्रिय मनका नियमन करता है, तब ही आराधना साधन ठीक बन सकती है. अथवा वह सारे ही जगत्का ईश्वर होनेसे, सबका ही सेव्य आराध्य है. आगे वासुदेव, अखिलावास इन दो विशेषणोंसे कहते हैं, कि फलरूप भी वही श्रीकृष्ण ही है. आप वासुदेव मोक्ष देनेवाले हैं और अखिलावास सब प्राणियोंमें व्याप्त होनेके कारण मोक्ष प्राप्तिके योग्य जीवोंको जाननेवाले हैं. भोक्ता, जीवरूप और भोग्य–मोक्षरूप आप ही हैं. इसलिये फलरूप, आप श्रीकृष्ण हैं. इस प्रकार मर्यादामार्गके अनुसार भगवान्को फलरूप वर्णन करके अगले 'सात्वतां प्रवर, प्रभो' इन दो विशेषणोंके द्वारा भगवत् सिद्धान्त सिद्ध फलरूपताका निरूपण करते हैं. भक्तोंके आप प्रकृष्ट वर–वरनेके योग्य हैं अथवा सर्वोत्तम भर्ता–भक्तोंके द्वारा वरण किये होनेसे, आप ही प्रमेय हैं. आप प्रभु सबका पालन करनेमें समर्थ हैं, सबके पति हैं. 'स वै पतिः स्याद् अकुतोभयः स्वयं'के अनुसार आप पति उपास्य हैं और पालनीय जीव उपासक हैं. इस प्रकार इन अन्तिम दो विशेषणोंसे उपास्य, उपासकका निरूपण करनेवाले धर्मका, अर्थात् उपास्य उपासक धर्मका वर्णन किया गया है।।११।।

स्वापराधनिवृत्यर्थं त्रिधा स्तोत्रं चकार ह।
मूलरूपं तु सम्बोध्य मध्यकार्ये निरूपिते।।का.१।।

कारिकार्थ: अपने अपराधकी क्षमायाचनाकेलिए नारदजीने मूलरूप कृष्णको सम्बोधित करके तीन प्रकारसे उन मूलरूप श्रीकृष्णकी तीन प्रकारसे

ज्ञान, भक्ति और कर्म-स्तुतिकी मध्यभाव और कार्यभाव का निरूपण किया है ।।१ ।।

लेख : प्रथम कारिकामें 'त्रिधा' पदका तात्पर्य यह है, कि अन्तके 'सात्त्वतां प्रवर' इस विशेषणसे ज्ञानका, 'प्रभो'से भक्तिका और शेष सात-कृष्ण, कृष्ण इत्यादि विशेषणोंसे कर्मका वर्णन करके प्रथम सात विशेषणोंसे कर्मका, फिर एकसे ज्ञानका और अन्तिम विशेषणसे सम्बोधित करके भक्तिका निरूपण है. आगेके 'त्वमात्मा' इस श्लोकसे मध्यभाव तथा 'आत्मनात्माश्रय' इस श्लोकसे कार्य भाव प्रदर्शित किया गया है. इस प्रकारसे तीन ११,१२,१३ श्लोक होते हैं ।।१ ।।

ततोऽवतारकार्यस्य निरूपणमतः कृतम्।
अनुमोद्य करिष्यन् यः पञ्चभिस्तदुदीरितम्।।का.२।।

कारिकार्थ : इसके बाद एक श्लोकसे इसीलिए अवतारके कार्यका, एक श्लोकसे अनुमोदन करके पांच श्लोकोंसे आगे किए जानेवाले कार्योंका वर्णन किया है ।।२ ।।

लेख : फिर एक श्लोक ''सत्त्वं भूधरभूतानां''से भगवान्के अवतार धारण करनेका प्रयोजन, फिर 'दिष्ट्या' एक श्लोकसे अश्वरूपधारी केशी दैत्यके वधका अनुमोदन करके 'चाणूरं मुष्टिकं' इत्यादि १६ से २० पांच श्लोकोंसे आगे भावी चरित्रका वर्णन किया है ।।२ ।।

सामान्येन कृतं द्वेधा द्वाभ्यां स्वेन तथान्यतः।
ज्ञानभक्तिविभेदेन स्वरूपं च निरूपितम्।।का.३।।

कारिकार्थ : फिर दो २१ व २२ वें श्लोकोंसे भगवान्के द्वारा तथा अन्य अर्जुनके द्वारा की जानेवाली साधारण कृतिका वर्णन करके अन्तिम २३ व २४ वें दो श्लोकों से ज्ञान और भक्तिके भेदसे भगवान्के स्वरूपका निरूपण है ।।३ ।।

लेख : ततः 'सामान्येन कृतं द्वेधा' फिर 'यानि चान्यानि' 'अथ ते कालरूपस्य' इन २१ व २२ वें दो श्लोकोंसे आपके तथा अन्यके द्वारा होनेवाले कार्यका वर्णन करके 'विशुद्ध विज्ञानघनं' इस श्लोकसे ज्ञानका और 'त्वामीश्वरं' इस २४ वें श्लोकसे भक्तिका निरूपण किया है. आदिमें 'देवर्षिरूप-सगम्य' इस १० वें श्लोकसे उपक्रम और 'एवं यदुपतिं कृष्णं' इस अन्तिम नारदजीके विदा होनेका वर्णन है. इस प्रकारसे ये सब सोलह श्लोक हैं ।।३ ।।

आनन्दचित्सतां रूपं ज्ञाने भक्ताविहोद्गतिः।
कार्यार्थमवतीर्णत्वाद् भक्तिमार्गे न दूषणम्।।का.४।।

कारिकार्थ : ज्ञानमार्गमें ज्ञानियोंको आनन्दात्मक चित्स्वरूपका ज्ञान होता है और भक्तिमार्गमें भगवान्का प्राकट्य होता है. भगवान्का(आपका) 'कार्यार्थ' भूभारहरणार्थ अवतार हुआ है. इस कारणसे मेरा(नारदका) कंसको बोध कराना रूप कार्य भक्तिमार्ग दूषण नहीं है ।।४ ।।

लेख : इस उपयुक्त कारिकासे 'विशुद्ध विज्ञानघनं' इस ज्ञानका निरूपण करनेवाले श्लोकका विवरण किया है. तदनन्तर भक्ति होने पर भगवान्का प्राकट्य होना 'त्वामीश्वरं' वर्णित है. आप भगवान्का अवतार कंसवधादि कार्य करनेका साधक होनेसे मेरा कंसको बोध करा देना रूप दोष नहीं है, यह भक्तिका निरूपण करनेवाले अन्तिम 'त्वामीश्वरं' श्लोकमें निरूपण है।।४ ।।

कृतं तु भगवानेवेत्येवं सप्तभिरीर्यते।
कर्ममार्गेऽप्यदोषाय सामान्यद्वयमीर्यते।।का.५।।

कारिकार्थ : धर्म धर्मी भेदसे भगवान्के चरित्रका वर्णन सात श्लोकों(१६ वें से २२ वें तक)से किया है. कर्ममार्गके अनुसार भी नारदजीका कंसको बोध कर देना रूप दोष नहीं है. इसलिए सामान्य चरित्रका वर्णन है ।।५ ।।

लेख : 'कृतं तु' इस कारिकासे चरित्रको सामान्य विशेष भेदसे सात श्लोकोंसे वर्णन करनेका कारण कहते हैं. भगवच्चरित्र भगवद्रूप ही है. सामान्य चरित्रके वर्णन करनेका कारण यह है कि सामान्य रूपसे असुरोंका नाश करनेवाले भगवान् ही हैं. इसलिए कर्ममार्गानुसार भी मेरा कोई दोष नहीं है. इस बातको दोषाभावको सूचित करनेकेलिए कर्मका निरूपण करनेवाले श्लोकोंमें सामान्य चरित्रका वर्णन करनेवाले श्लोकों में सामान्य चरित्रका वर्णन किया है ।।५ ।।

ततोऽन्ते ज्ञानभक्ती च स्वापराधो यतो न हि।
उपक्रमगतिभ्यां च षोडशात्मा निरूपितः।।का.६।।

कारिकार्थ : अपने अपराधकी निवृत्ति अभावकेलिए अन्तमें दो श्लोकों से ज्ञान और भक्ति का नारदजीने वर्णन किया है. प्रथम १० वें श्लोकसे उपक्रम नारदजीका आगमन और अन्तिम 'एवं यदुपतिं' २५ वें श्लोकसे नारदजीका भगवान्के पाससे चले जानेका वर्णन है ।।६ ।।

लेख : ज्ञान–भक्तिका वर्णन अपने अपराधकी निवृत्तिकेलिए ही किया गया है. क्योंकि इस वर्णनसे नारदजीके अपराधका अभाव अपराधाभाव प्रदर्शित होता है ।।६।।

त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम्।
गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः।।१२।।

श्लोकार्थ: लकड़ियों में जैसे अग्नि व्याप्त है, वैसे ही, आप सब प्राणियोंके भीतर आत्माके रूपसे स्थित हैं. तथापि गूढ हैं, लोग आपको देख नहीं पाते. आप गुफाहृदयाकाश(बुद्धि)के भीतर रहनेवाले और उसके साक्षी हैं. आप महापुरुष–परमपुरुष और ईश्वर–परतंत्र सारे जीवोंका संचालन करते हैं ।।१२ ।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार नौ तरहसे मूलरूपका निरूपण करके, नारदजी अपने अपराधकी निवृत्तिकेलिये 'त्वमात्मा' इस श्लोकसे भगवान्की सर्वात्मकता (सर्वरूपता)का वर्णन करते हैं. यद्यपि 'आत्मा' शब्दका अर्थ जीव भी होता है; किन्तु इस श्लोकमें सब भूत प्राणियोंकी आप एक ही आत्मा हैं 'आत्मा' शब्द एक श्रीकृष्ण भगवान्का वाचक ही है; क्योंकि जीव तो प्रत्येक देहमें अलग–अलग होनेसे, असङ्ख्य हैं.

यह ''आत्मा'' शब्द ब्रह्मवादे परमात्मवाचक है, योगशास्त्रमें, 'आत्म' शब्दका अर्थ विभूति है. भागवत् शास्त्रमें गङ्गाके आधिदैविक स्वरूपकी तरह 'आत्मा'की आत्मा आधिदैविक श्रीकृष्ण मूलरूपका बोधक 'आत्मा' शब्द है. साङ्ख्य सिद्धान्तमें, तो जीव, ब्रह्मका विभाग नहीं है क्योंकि 'पुरुषेश्वरयोः' इत्यादि श्लोकसे विभागका निषेध किया है. इन चारों पक्षोंमें भगवान्के रूपकी विलक्षणता(भेद) नहीं है, एक रूपता ही है. भिन्न–भिन्न प्रतीति तो उपाधिके कारण गौण है. इस विषयको दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं कि सारे काष्ठोंमें जैसे अग्नि एक ही है, वैसे ही, सब प्राणियोंमें आत्मा एक आप ही हो. काष्ठके वर्णके अनुसार अग्नि भी भिन्न–भिन्न रङ्ग सी दिखाई देती है. इसलिये अग्नि सारे काष्ठोंमें एक है. वर्गान्तर(विभिन्न वर्गों)की प्रतीति काष्ठानुसार होनेसे औपाधिकी(गौण) है.

जैसे अङ्गारे ही लकड़ीके वर्णके अनुसार रङ्ग बिरङ्गें दिखाई देते हैं. अग्नि तो सबमें एकरूपसे ही व्याप्त रहती है, वैसे ही प्राणियोंमें रहनेवाले गुरुत्व, लघुत्व, ह्रस्वत्व, दीर्घत्व आदि विकार अंशी भगवान्में नहीं हैं. इस सम्बन्धसे अग्निका दृष्टान्त मूलमें दिया है.

इस प्रकार भगवान्को सब भूतप्राणियोंकी आत्मा कहकर दृष्टान्तमें भी 'अंशी' अग्निको सब लकड़ियोंकी आत्मा बतलाई है. अर्थात् लकड़ी अग्नि ही है. जब तक लकड़ी है, तब तक अग्नि है. लकड़ीके जल जाने पर स्वरूपसे अग्नि ही रह जाती है. इसलिये भगवान्को मूलमें 'गूढ' कहा है. सब काष्ठोंमें छिपी हुई

अग्निकी तरह सब प्राणियोंमें विद्यमान(स्थित) भी आपको कोई नहीं जानता है. काष्ठ स्थित वह अग्नि जैसे जलसे काष्ठके बुझा देने पर, अथवा दाह्य (जलाने) की कोई वस्तुके न रहने पर अपने आप ही शान्त होकर अग्निके स्वरूपको प्राप्त कर लेती है. वैसे ही दृश्यके न रहने पर सब जगत् भगवद्रूप ही हो जाता है. किन्तु जैसे वह काष्ठ स्थित अग्नि काष्ठ रूपी उपाधिसे आवृत्त(घिरी) है, तब तक वह न तो जलसे बुजती है और न किसी निकटस्थ काष्ठको जला ही सकती है. इसी प्रकार जगत्में सङ्घातके रहते हुए जीवात्मा साधन ज्ञानादिके द्वारा तथा बाधक अविद्याके द्वारा अपने स्वरूप(भगवत्स्वरूप) को प्राप्त नहीं हो सकता है. इसी समानताके कारण अग्निका दृष्टान्त दिया है.

दूधमें जैसे छिपा हुआ घृत मंथनके द्वारा प्रकट होता है. इसी तरह गूढ़ भी वह परमात्मा विद्यमान है. ''हृदि हृदि धिष्ठित मात्मकल्पितानां'' हृदयाकाशमें स्थित है. उसकी सत्तासे ही उस सर्वात्मासे ही सब प्रकाशित हैं. वह सबका साक्षी है, सबके कर्मोंको देखता है, क्योंकि यदि वह अपने अच्छे बुरे सब कर्मोंका साक्षी देखनेवाला न हो तो, यह मैं हूं, वह सबका दृष्टा है ऐसे बोध और कर्मानुसार फलकी प्राप्ति भी नहीं हो सकती. वह सर्वात्मा महापुरुष परमकाष्ठा-पन्न है, महामहिम है. जीव ऐसा नहीं हो सकता है. उक्त चारों पक्षोंमें ऐसे धर्मसे युक्त भगवान् ही हैं. आप ईश्वर सबके नियन्ता हो. जीव नियम्य(आपके आधीन-वशीभूत) है. जीवोंको तो जैसी प्रेरणा आप देते हो, वैसा ही वे करते हैं. आप प्रेरक हो इस सर्व साधारण नियमके अनुसार मेरे(नारदके) भी आप प्रेरक हैं. आपकी प्रेरणासे प्रेरित होकर ही मैंने कंसको बोध कराया है. इसलिये इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।।१२।।

लेख: त्वमात्मा इस श्लोककी व्याख्यामें 'दृष्टान्त' पदका तात्पर्य अनेक भूतोंमें सर्व भूतान्तरात्मा-सारे काष्ठोंमें एक अग्निकी तरह आप एक ही हैं. 'काष्ठानां मध्ये एकएव' आगके अंशभूत अंगारोंके अनेक होनेपर भी, अंशी अग्नि जैसे सबमें एक ही है वैसे ही ''अंशो नाना व्यपदेशात्'' अंशरूप अनेक प्राणियोंमें सर्वान्तरात्मा आप एक ही हैं. ''वर्णान्तर प्रतीतिस्तौपाधिकी''का अभिप्राय यह है कि एक ही अग्निके खैर आदि लकड़ीके अंगारोंमें लाल-गोल आदि भिन्न-भिन्न वर्ण तो काष्ठ आदिके कारण दिखाई देने लगते हैं. इसलिए वह विभिन्नकी प्रतीति तो गौण है. ''न तु तत्तेवेति'' अर्थात् लकडीके अनुसार अंगारे विभिन्न वर्णके

दिखाई देने लगते हैं. अंशी अग्नि जैसे एक ही है, वैसे ही नाना प्राणियोंमें स्थित दिखाई देनेवाला ह्रस्वत्व दीर्घत्वादि विकार अंशी भगवान्में नहीं है. इसी प्रकार ईंधन अंशभूत अंगारोंका और भूत प्राणी अंशरूप जीवोंका आधार है, अंशी आगका आधार है ईंधन जैसे नहीं हो सकता, वैसे ही भूत प्राणी अंशी भगवान्का आधार नहीं है, क्योंकि सारे आधेय जगत् और जगत्के सारे दृष्टश्रुत पदार्थ भगवद्रूप आधेय हैं, ऐसे ही, सबका आधाररूप भी भगवान्का ही धर्म है, अर्थात् श्रीकृष्ण ही आधेय और वे ही आधाररूप हैं.

'तत्ता नास्ति, सम्बन्धो निरूपितः' इत्यादि व्याख्याके पदोंका आशय बतलाते हैं, कि अशी अग्निमें विभिन्न वर्णता नहीं है, वैसे ही अंशी भगवान्में विकार नहीं है. इसी सम्बन्धकेलिए यहां अग्निका दृष्टान्त दिया गया है. अर्थात् दार्ष्टान्तिकमें भगवान्को सर्वभूतात्मा कहकर दृष्टान्तमें भी अग्निको सब काष्ठोंकी आत्मा बतलाया है. 'काष्ठता परमग्नेर्लय प्रतिबन्धिका' इन पदोंके कहनेका यह अभिप्राय है कि जब तक लकड़ीमें काष्ठता रहती है, तब तक काष्ठस्थित अग्नि न जलसे बुझ सकती है और न एक काष्ठके निकटकी अन्य लकड़ियोंको दाह्यके रहते हुए भी जला ही सकती है. वह काष्ठस्थित अग्नि अरणि आदिके द्वारा मंथन करनेपर प्रकट होकर काष्ठाकारसे दृष्टिगोचर हो जाती है. 'उभयथा स्वरूपं प्राप्नोति' पदों से यह स्पष्ट करते हैं, कि अग्नि भ्रातृव्य शत्रु जलसे बुझानेपर अथवा दाह्य अन्य काष्ठ आदिके न रहनेपर अंशभूत अंगारोंके रूपको त्यागकर अंशी अग्नि रूपमें ही स्थित रहती है. यहां काष्ठता उपाधि है. जब(तक)वह काष्ठता लकड़ीमें है, तब तक वह काष्ठस्थित अग्नि पानीसे नहीं बुझ सकती है, और निकटस्थ दाह्य पदार्थोंको जला भी नहीं सकती है.

'न साधनैर्नापिबाधकैः'का स्वारस्य यह है कि ज्ञान आदि साधनोंके द्वारा तथा पंचपर्वारूप अविद्याके बाधकोंके द्वारा आत्मा संघातके रहते हुए स्वरूपको प्राप्त नहीं कर सकता है. ''अन्यथा सर्व प्रकाशो न स्यात्'' अर्थात् यदि वह परमात्मा हृदयाकाशमें स्थित न हो तो, सबको सब पदार्थोंका ज्ञान ही न हो सके इसलिए हृदयाकाशमें परमात्मा स्थित है वह गुहाशय है. ''अन्यथा फल भोगोपि न स्यात्'' इस कथनमें यह गुढाभिसन्धि है कि यह परमात्मा सबके कर्मोंका साक्षी देखने वाला नहीं हो तो तत्तकृत कर्मोंका फल भी न हो और उनका भोग भी जीवोंको न हो. इसलिए ''फलमत उपपत्तेः'' ब्रह्मसूत्रके अनुसार वह सब

कर्मोंका साक्षी द्रष्टा भी है और इसीलिए जीवोंको कर्मानुसार फल भी देता है. ''जीव व्यावृत्त्यर्थ आह महापुरुष'' इत्यादि पदोंका स्पष्टीकरण यह है कि वह महापुरुष परमकाष्ठापन्न वस्तु है. एक जीव अथवा सारे जीव रूप अंशाकार नहीं हैं, किन्तु सबका अंशी है।।१२।।

आत्मनात्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान्।
तैरिदं सत्यसङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः।।१३।।

श्लोकार्थः आप सर्वतन्त्र स्वतन्त्र और सत्य संकल्प हैं. आपने किसी अन्य साधनकी अपेक्षा न रखकर अपनी शक्ति मायाके द्वारा गुणोंकी सृष्टि की है और उन गुणोंके द्वारा ही आप जगत्की सृष्टि पालन और संहार करते हैं।।१३।।

व्याख्यार्थः उत्पत्ति युक्ति द्वारा नारदजी अपना दोषाभाव बतलाकर, उत्पत्तिके अनुसार भी अपने आपको कंसको भी निर्दोषी आत्मनात्माश्रय इस श्लोकसे कहते हैं. आपने(हे श्रीकृष्ण) सारे जीवोंको भिन्न-भिन्न उत्पन्न किया है. इस कारणसे न कंसका दोष है और कंसको बोध कराने पर भी, न मैं(नारद) ही दोषी हूं. आप ही जगत्के कर्ता हैं. आप ही इसके साथ अपने आपके आश्रय हैं. आप स्वयं ही स्वरूपसे जगद्रूपसे विराजमान हैं. इस कारण-करण-जगत्के साधकतम भी आप ही हैं. माया सर्व-भवन-सामर्थ्यरूप आपकी आत्मशक्ति मायाके द्वारा और स्वयं आत्माके दोनोंके द्वारा पहले गुणोंको उत्पन्न करते हो. मायासे तो, लोकोंको विपरीत ज्ञान होनेकेलिये कहा है. आपने ही अपने सच्चिदानन्द सत्, चित्, आनन्दरूपसे सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुणकी सृष्टि की है. लोक तो प्रकृतिको जगत्कर्त्ता मानते हैं. प्रकृतिको जगत्का कर्त्ता मानने पर भगवान्का कर्तृत्व नहीं माना जायेगा और ''स्वतन्त्रःकर्ता'' कर्ता स्वतन्त्र होता है. इसलिये भगवान्की स्वतन्त्रतामें बाधा आ पड़ेगी. भगवान् और प्रकृति दोनोंको ही कर्त्ता माने जाने पर तो दोनोंको ही स्वतन्त्रता बाधित हो जाती है. इस कारण आप भगवान् जगत्के कर्ता हैं और प्रकृति आपके आधीन है. यह मानना उचित है.

आपने अपने आप स्वयं ही गुणोंकी सृष्टि करते हुए मायाको भी करणरूपसे ग्रहण कर लिया है. उन गुणोंका उपादान(समवायिकारण) आत्मा आपका स्वरूप ही है. भगवत्स्वरूप भगवान्की शक्ति, मायाका व्यापार तो केवल विरुद्ध प्रतीति-मायिकत्वभानकेलिये है. फिर आप इन गुणोंसे इस

जगत्को उत्पन्न करते हो इसका पालन और संहार करते हो, क्योंकि ईश्वर कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथाकर्तुं सर्व शक्तिमान् है. आपकी इच्छा नियन्त्रण किसीसे भी नहीं किया जा सकता. यदि ईश्वरकी इच्छा भी सीमित(बाधित) कर दी(हो) जाये तो अपने विचारसे, और लीलासे भी, सृष्टि करनेका कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता. इसलिये आपका ऐश्वर्य ही नियामक है. इस कारणसे आपने ही गुणोंकी सृष्टि करके गुणोंके द्वारा ही जगत्की रचना की है और अगले कर्त्तव्यका भी निर्णय सोच लिया है. इस प्रकार किसीका भी दोष नहीं है.

साक्षात् भगवान्से ही सबकी उत्पत्ति हुई है, यह पक्ष यहां सङ्गत नहीं है; क्योंकि, तब तो जगत्की विलक्षणताका कोई कारण न रहनेसे अपना (नारदजीका) अपराध ज्योंका त्यों बना रहेगा और अपने कृत(किये) कार्यकी व्यर्थता भी हो जायेगी. इस कारणसे गुणोंके द्वारा सृष्टि करनेका पक्ष ही स्वीकृत किया(माना) है।।१३।।

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम्।
अवतीर्णो विनाशाय साधूनां रक्षणाय च।।१४।।

श्लोकार्थ: वही विशुद्ध सत्त्वस्वरूप परम काष्ठापन्न आप रजोगुणी राजाओंके रूपसे पृथ्वी पर अत्याचार करनेवाले तमोगुणी दानव दैत्य, असुर-गणोंका संहार और सज्जनोंकी रक्षाकेलिए मनुष्य लोकमें प्रकट हुए हो ।।१४ ।।।

व्याख्यार्थ: आप भगवान्के अवतार लेनेके कारणको बतलाते हुए कहते हैं, कि जब आपने दैत्यवधार्थ ही अवतार लिया है, तब आपके सेवकों को भी आपके अवतारानुकूल ही कार्य करना चाहिये. इसलिये कंसको आपके स्वरूपका ज्ञान करा देनेमें मेरा अपराध नहीं है. यह इस 'स त्वं' श्लोकसे कहते हैं. भूधर-राजा लोग ही(भूधर) पर्वतरूप पृथ्वी पर भार बनकर पृथ्वीका पालक पनेका स्वाङ्गधारी हो रहे हैं. वास्तवमें तो, ये दैत्य ही हैं. इनमें प्रथम, सात्विक हैं और यक्ष राजस तथा राक्षस तामस हैं. ये तीनों ही सबका नाशकर देनेवाले हैं. भक्षकों(नाशकों)से पालनकी आशा नितान्त असम्भव ही है. इसलिये जो(भूधर) राजा लोग केवल(भूधर) पर्वतरूपी भारभूत ही पृथिवी पर हो रहे हैं. उन ऐसे दुष्ट राजाओंका नाश करनेको ही आपका अवतार है; क्योंकि उनके नाशकर देने पर पृथ्वीका भार हलका हो जाता है.

आपके अवतारका दूसरा प्रयोजन साधु पुरुषोंकी रक्षा करना है. जिस

राज्यमें जहां कोई राजा नहीं होता है, वहां साधु पुरुषोंकी रक्षा नहीं हो सकती और वहां सारी प्रजा असाधु(दुष्ट) बन जाती है. ऐसी दशामें केवल दैत्योंका वधकरदेने मात्रसे शान्ति स्थापित नहीं हो सकती और सबका ही नाश कर देने पर तो प्रलय ही निश्चित है. इसलिये राजाका निर्माण करके ही दैत्योंका नाश करना चाहिये.(इसी कारणसे साधु पुरूषों तथा भक्ति की रक्षार्थ भगवान्ने स्वयं अवतार धारण किया है). अतः आपके सेवकोंको भी आपके अवतारानुकूल कार्य करना उचित है. इस मैंने(नारदने) भी जो कुछ किया उचित ही किया है।।१४।।

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयायं हयाकृतिः।
यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम्।।१५।।

श्लोकार्थः बड़े सौभाग्यकी बात है कि उस केशी असुरको जिसके प्रचण्ड शब्दको सुनकर ही भयभीत हुए देवता स्वर्गको छोड़कर भाग निकलते थे– आपने लीलापूर्वक यमलोकका अतिथि बना दिया ।।१५ ।।।

व्याख्यार्थः 'दिष्ट्या' इस श्लोकसे दृष्टान्त पूर्वक भगवान्की कृतिका नारदजी अनुमोदन करते हैं. हे प्रभो! केवल आकार मात्रसे घोड़ा सा दिखाई देनेवाले इस बड़े भारी दैत्य केशीको लीला मात्रसे(अनायास) ही मार डाला. यह मेरा(नारदका) बड़ा सौभाग्य है. यदि भगवान्को इस केशी वधमें तनिक भी परिश्रम होता तो वह सेवकका अपराध ही समझा जाता. इसलिये मैं बड़ भागी हूं, कि इस महान् दैत्यको मारनेमें आपको तनिक भी परिश्रम नहीं आया, खेलमें, सहजमें, ही मार दिया.

तुच्छ तो सहज ही, मार दिया जाता ही है. तुच्छ केशीको भगवान्ने बिना परिश्रम ही खेलमें ही मार दिया इसमें आश्चर्यकी बात क्या हुई? इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं, कि वह केशी कोई छोटी सी बला नहीं थी; किन्तु उसके शब्द(हिनहिनाने) मात्रसे ही देवगण भयभीत हो, अपना स्वर्ग छोड़कर, भागते थे. वे अनिमिष अर्थात् दृढ ज्ञान–शक्तिवाले हैं, तो भी उनकी स्थिर ज्ञान शक्तिका भयसे नाश हो जाता था. वे देवगण अनिमिष हैं, उनको एक क्षणमात्र मूर्च्छादि होना असम्भव है, उनका भयाकुल होना तो नितान्त अनुचित है, वे ऐसे भी देवगण जिसके शब्द मात्रसे ही डर जाते थे, वे केवल डर ही नहीं जाते थे; किन्तु डरकर अपने समृद्धिशाली, सर्वोत्कृष्ट स्थान स्वर्गको लोकको जिसकी धार्मिक लोग यज्ञादि करके कामना करते हैं छोड़कर भाग जाते थे. ऐसे महान् दैत्यका वध

करनेमें भगवान्‌को परिश्रम उठाना ही पड़ता. इसलिये मेरा बड़ा भाग्य है कि ऐसे महान् दैत्यको भी आपने बिना परिश्रमके अनायास ही मार दिया।।१५।।

चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम्।
कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो।।१६।।

श्लोकार्थ: अब मैं परसों शीघ्र ही आपके द्वारा होनेवाले–चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानोंका, कुवलयापीड हाथीका और कंसके नाशको भी देखूंगा ।।१६ ।।

व्याख्यार्थ: इसके आगे होनेवाली और भी आपकी सारी क्रीडा सभी चरित्रोंको मैं देखूंगा. इसलिये मैंने अपने आनन्दकेलिये ही यह कंस वधकी सारी योजना बनाई है. इस प्रकारसे, नारदजी अपनी उत्कण्ठाको प्रकट करते हैं और अपने दोषका स्वयं निरूपण करते हुए 'चाणूरं' इस श्लोकसे कहते हैं, कि मैं अपने योगजन्य ज्ञानसे कहता हूं, कि परसों मैं इन चाणूर आदि सबको आपके द्वारा मार दिये गयेको देख लूंगा. योगजन्य ज्ञानसे त्रिकाल(भूत, भविष्यत्, वर्तमान)की सारी बातें क्रमसे नहीं जानी जा सकती हैं. यही कारण है, कि इस श्लोकमें आगेका चरित्र पीछे और पीछे होनेवाली लीलाका पहले वर्णन किया है. मुष्टिक और चाणूर दोनों कंसके सेवकोंमें प्रधान थे. इसीलिये यहां इनका नाम लिया गया है. यद्यपि मुष्टिक वध बलभद्रजीने किया था, तथापि योगजज्ञानकी अयथार्थता और भगवान्‌के आवेशसे ही किया था. इसलिये उसे भी भगवान्‌का कार्य ही कहा है. कंसके साथ आपके युद्धको और उसकी मृत्युको देखूंगा. आज सायंकाल अक्रूरजी आयेंगे. कल आप मथुरा जायेंगे और परसों वहां ये सब मार दिये जायेंगे. परसों दिनमें ही सब मारे जायेंगे. रात्रि तकका विलम्ब नहीं होगा. और परसों दिनमें ही यह कथन भी गौण हैं; क्योंकि दिन तो बारह घण्टोंका होता है और शल आदि मल्लोंको, धनुषके रक्षकोंको तथा कंसके भाईयोंको परसों सुबह ही मार दिया था. ये नारदजी हैं. इसलिये इनकी ऐसी कामनाएं हैं. भगवान् सर्व शक्तिमान् हैं. इस विभो सम्बोधनसे यह सूचित किया है कि सर्वव्यापक भगवान् निश्चय ही यह सब कुछ कर देंगे।।१६।।

तस्यानु शङ्खयवनमुराणां नरकस्य च।
पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम्।।१७।।

श्लोकार्थ: कंस वधके बाद शंखासुर, कालयवन, मुरदानव, नरकासुर

आदिको भी आप मारेंगे. इन्द्रको जीतकर आप स्वर्गसे कल्पवृक्षको ले आवेंगे।।१७।।

व्याख्यार्थः कंसका वध कर देनेके बाद भी, आप अन्य राक्षसोंको मारेंगे. उनको 'तस्यानु' श्लोकसे नाम लेकर बतलाते हैं. कंसके वधके पीछे शङ्खासुर(पञ्चजन), कालयवन और नरकासुरका मित्र मुरदैत्य और नरकासुर का भी वध देखूंगा. नरकासुर भगवान्का पुत्र होनेके कारण अलग गिनाया है और यह शङ्खादिकी अपेक्षा उच्च कोटिका है. इसी प्रकार कंसके अन्य पीठ आदि सेवकोंका नाश भी देखूंगा. इन असुरोंके वधको देखनेके अतिरिक्त स्वर्गसे कल्प वृक्षको लानेकेलिये इन्द्रके आपसे युद्धमें परायजको भी देखूंगा।।१७।।

उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम्।
नृगस्य मोक्षणं पापाद् द्वारकायां जगत्पते।।१८।।

श्लोकार्थः अपना पराक्रम ही मूल्य देकर आप भौमासुरके यहांसे १६००० कन्याओंको मुक्त करके उनके साथ विवाह करोगे. इसी प्रकार रुक्मिणी आदि आठ पटराणियोंको भी पराक्रमसे जीतकर उनके साथ भी ब्याह करोगे. द्वारकापुरीमें राजा नृगको शांपसे छुड़ाओगे।।१८।।

व्याख्यार्थः भौमासुरके द्वारा रोकी हुई कन्यायें विभिन्न जातिकी(चाहे जिसकी) नहीं थीं, किन्तु वे सब वीर क्षत्रियोंकी कन्यायें थीं. उनको आप पराक्रमका मूल्य देकर खरीद लेंगे और फिर उनकी इच्छानुसार उन सबोंके साथ विवाह करोगे. चित्तकी प्रसन्नता अथवा गान्धर्व विधीसे विवाह करोगे. वे तो वीरोंकी कन्यायें ही थीं, बाजारमें बिकती वस्तु सब पवित्र होती है इस न्यायसे पराक्रमका मूल्य देकर खरीदी हुई उन कन्याओंके विजातीय होने पर भी, उनके साथ विवाह कर लेना अनुचित नहीं था. उत्तम फलकी प्राप्तिका कारण केवल दान ही नहीं है अर्थात् केवल दान करनेसे ही उत्तम गति नहीं होती, क्योंकि दानी शिरोमणि नृग राजाको दान देनेका ब्राह्मणकी गाय ले लेना रूप पाप, अथवा गिरगिटकी योनिमें गिर जानेके अतिरिक्त क्या फल मिला. राजा नृग भगवान्का भक्त था. इसी कारणसे उसका द्वारकामें उद्धार किया. यद्यपि ब्राह्मणकी और गायको चुरा लेनेका पापसे, कभी किसी प्रकार भी छुटकारा नहीं हो सकता, किन्तु आप जगत्पति, जगत्का नियमन करनेवाले, सर्व समर्थ हैं. इसी कारण ऐसे अमिट पापसे भी नृगको छुटकारा मिल गया।।१८।।

स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया।

मृतपुत्रोपदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः।।१९।।

श्लोकार्थः जाम्बवती और सत्यभामा के साथ ही स्यमन्तक मणिको प्राप्त करोगे. यमलोकसे गुरुजीके मरे हुए पुत्र और अपने मूल स्थानसे ब्राह्मणके मृत पुत्रोंको लाकर दोगे।।१९।।

व्याख्यार्थः सत्राजितकेप्रसङ्गमें, स्यमन्तक मणिका लाना, फिर जाम्बवान्का(सत्राजितके) भाईको मारकर उस मणिका ले जाना, और आपका उसकी गुफामें जाकर उसको युद्धमें जीतना और फिर उस जाम्बवान्के द्वारा उसकी कन्या जाम्बवतीके साथ मणिका ले आना आदि आपके चरित्रोंको मैं देखूंगा. तदनन्तर यमलोकसे गुरुजीके मरे हुए पुत्रको तथा अपने धाम.(मूल स्थान) से ब्राह्मणके मृत पुत्रोंको आप ले आओगे. यह सब मैं देखूंगा. यह पहले कह आये हैं, कि योगीको योगजन्य ज्ञानसे विद्यमान(मौजूदा) पदार्थ ही दिखाई देते हैं. जो पदार्थ मूलमें नहीं हैं? जिनका अस्तित्व नहीं है. वे पदार्थ योगज धर्मसे दिखाई नहीं दे सकते. इस कारणके आविर्भाव और तिरोभाव ही जगत्का मानना उचित हैं. आविर्भावमें पदार्थ दृष्टि गोचर होने लगता है और तिरोभावमें किसी रूपान्तरमें कभी-कभी स्वस्वरूपमें रहकर भी दिखाई नहीं देता. जैसे महाभारतमें प्रसिद्ध है. अतः उत्पत्ति और विनाशकी प्रक्रिया असङ्गत है. इसीलिये निबन्धमें श्रीमदाचार्य चरणोंकी आज्ञा है कि ''आविर्भाव तिरोभावौ शक्ति वै मुरवैरिणः आविर्भावै प्रतीयेत् तिरोभावे तु नेच्छया'' आविर्भाव और तिरोभाव नामवाली मुरारि भगवान्की शक्तियां हैं, आविर्भावमें पदार्थकी प्रतीति होती है और तिरोभावमें भगवान्की इच्छासे वही पदार्थ दिखाई नहीं देता है।।१९।।

पौण्ड्रकस्य वधं पश्चाद् काशिपुर्याश्च दीपनम्।

दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ।।२०।।

श्लोकार्थः आप पौण्ड्रकको मारेंगे, सुदर्शनचक्रके तेजसे काशीपुरीको जलायेंगे और युधिष्ठिरके महायज्ञमें शिशुपाल तथा दन्तवक्रको मारेंगे. ये सब चरित्र मैं देखूंगा।।२०।।

व्याख्यार्थः फिर मैं पौण्ड्रक मिथ्या वासुदेव और काशीराजके वधको भी देखुंगा. आप अपने सुदर्शनके चक्रसे काशीपुरीको जलायेंगे. तदनन्तर आप धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय नामक महायज्ञमें शिशुपालको मारेंगे तथा दन्तवक्र

का वध वैसे ही करोगे जैसे वाराह और रामावतारमें हिरण्याक्ष और कुम्भकर्णको उनके सब सम्बन्धियों असुरों सहित मारे थे. यह सब मैं देखूंगा।।२०।।

यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन् भवान्।
कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि।।२१।।

श्लोकार्थः द्वारकामें रहकर आप और भी जो-जो पराक्रमके चरित्र करेंगे, उन्हें भी मैं देखूंगा. उन पवित्र चरित्रोंको कविजन पृथिवी पर गाएंगे ।।२१ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार विशेष चरितोंका वर्णन करके, सामान्य लीलाओं का निरूपण 'यानि' इस श्लोकसे करते हैं. आप द्वारकामें रहकर शाल्ववध आदि पराक्रमके चरित्रोंको, पटराणियों सहित सोलह हजार पत्नियोंके महलोंमें लीलाओंको तथा जीवोंकेसे अन्य कार्योंको आप करेंगे. उनको मैं इसलिये देखूंगा कि कवि लोगोंने उन चरितोंकी महिमा गाई है और मैं भी उनको साक्षात् प्रत्यक्ष देखकर जनताको उपदेश करूंगा, जिनके सुनने और गान करनेसे भूमि पर उत्पन्न होनेवाली भावी जनता मोक्ष प्राप्त कर सकेगी(मुक्त हो सकेगी)।।२१।।

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै।
अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः।।२२।।

श्लोकार्थः फिर कालरूप आप भूमिका भार उतारनेकी इच्छासे महाभारत संग्राममें अर्जुनके सारथि बनकर असंख्य कई अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करेंगे यह सब भी मैं देखूंगा ।।२२ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकारके साक्षात् भगवान्के चरित्रोंका वर्णन करके भगवान्के द्वारा अर्जुनसे कराये गये चरितोंको 'अथ ते' इस श्लोकसे कहते हैं. साक्षात् स्वयंने न करके, भूमिका भार हरनेकी इच्छावाले कालरूप आपने अर्जुनके हाथों कई अक्षौहिणी सेनाका नाश करवाया. इस कथनसे यह जाना जाता है, कि कालरूप होकर भगवान्ने महाभारत संग्राम किया था. ''कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्'' इस वाक्यानुसार आप केवल कालरूप ही नहीं हैं, किन्तु कालके कालनियन्ता भी हैं. काल तो केवल भूभारको हरनेकी इच्छावाले आपका निमित्त मात्र है. सेनाके १.पत्ति २.सैनामुख ३.गुल्म ४.गण ५.वाहिनी ६.प्रतना ७.चमू ८.अनीकिनी और ९.अक्षौहिणी नौ भेद हैं. इनमें प्रथम 'पत्ति' नामकी सेनामें एक रथ, एक हाथी, ३ घोड़े पांच पैदल होते हैं. इसके आगे सैनामुख भेदसे लगाकर अनीकिनी सेनाके आठवें भेद तक पत्ति सेनाके भेदकी आगे तिगुनी-तिगुनी

सङ्ख्या होती रहती है और अक्षौहिणी सेनामें तो अनीकिनी भेदवाली सेनाकी सङ्ख्यासे दशगुनी सङ्ख्या हाथी, रथ, घोड़े, और पैदलोंकी होती है. ऐसी एक अक्षौहिणीकी सङ्ख्या है.

इस प्रकारकी सङ्ख्यावाले अक्षौहिणीयोंका भगवान्के द्वारा अर्जुनके हाथों कराये गये वधको भी मैं देखूंगा।।२२।।

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम्।
स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायागुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि।।२३।।

श्लोकार्थः हे श्रीकृष्ण ! केवल विशुद्ध ज्ञान ही आपका स्वरूप है. आपको अपने परमानन्दमय रूपसे ही सारे अर्थ प्राप्त हैं. इसलिए आप पूर्णकाम हैं. आपकी इच्छाशक्ति अमोघ है. मायाका कार्य गुणोंके प्रवाहको आप अपने तेजसे, आपसे अलग रखे हुए हो. हे परमेश्वर ! में आपकी शरण हूं।।२३ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार नारदजी भगवान्के शकटासुर, पूतना, अरिष्टासुर आदिका वधरूप भूत और कंसादि दैत्योंका वधरूप भावी चरित्रका निरूपण करके अवतारी भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म हैं और आपने ये सब चरित्र लीला मात्रसे ही किये हैं. इसलिये ज्ञान और भक्तिके सिद्धान्तका निरूपण करनेवाले दो श्लोकोंसे भगवान्के स्वरूपका वर्णन करते हैं क्योंकि लौकिक दृष्टिसे ही देखनेवाले लोग अपने आपकी तरह भगवान्को लौकिक पुरुष ही समझते हैं. इसलिये पहले 'विशुद्ध विज्ञानघनं' इस श्लोकसे श्रीकृष्णकी ज्ञान स्वरूपताका वर्णन करते हैं. आप स्वरूपसे ज्ञानरूप हैं. और वह ज्ञान अन्यसे उत्पन्न हुआ जन्य नहीं है और न सविषय आपके स्वरूपसे भिन्न जानने योग्य-वेद्य पदार्थवाला ही है. वह ज्ञान तो विशुद्ध आपका स्वरूप ही है; क्योंकि ज्ञानशक्ति विशुद्ध(विशेष शुद्ध) तब ही होती है, जब वह अन्य जन्य न होकर भी सविषय होती है. वह विज्ञान ब्रह्मरूप है. इसीलिये मूल श्लोकमें 'घन' पदका प्रयोग है, क्योंकि घन ही बृहत्वान्,(व्यापकावाद) ब्रह्म-ब्रह्मरूप होता है.

इस प्रकारके विशुद्ध विज्ञानघन ब्रह्मका स्वरूप ही जगत्का कारण होनेमें जगत्को उत्पन्न करनेमें सारी आधार, आधेय भूत सामग्रीरूप और फलरूप है; क्योंकि यदि स्वरूपको ही सामग्री और फलरूप न मानेंगे तो 'असङ्गोऽयं पुरुषः ब्रह्म' असङ्ग नहीं रहेगा, तथा विकारी हो जायेगा. इसलिये सबको ब्रह्मरूप माननेके पक्षमें तो आप भगवान् सारी सामग्रीरूप और फलरूपसे प्रकट होते हैं.

इसमें तो कोई असङ्गादि दोष सिद्ध ही नहीं होता. इसी अभिप्रायको मूलस्थ'स्वसंस्थया'(अपने आपमें ही अच्छी तरह अवस्थितिसे) पद सूचित करता है. स्वरूपसे ही सम्यक् स्थितिके कारण ही आपके सारे ही अर्थ परिसमाप्त हैं; क्योंकि बार-बार और अतिशयरूपसे उत्पन्न होनेवाले सभी पुरुषार्थरूप ही आपका स्वरूप है. यह स्वरूपमें स्थितिसे ही हो सकता है, बाह्य स्थिति होने पर नहीं हो सकता. इसलिये भगवान् ही सदा स्वरूपमें स्थित हैं दूसरा कोई नहीं है और इसी कारणसे उसके सारे काम पुरुषार्थ सिद्ध हैं.

स्वरूप स्थितिसे केवल इष्टकी सिद्धि ही नहीं होती, किन्तु अनिष्टकी निवृत्ति भी होती हैं. इसीलिये मूलमें 'स्वतेजसा' इत्यादि विशेषण जोड़ा है. आपने करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशवाले, स्वतः प्रकाश अपने तेजके द्वारा ही मायाके सत्व, रज, तम गुणोंके प्रवाहको(कार्य परम्पराको) आपसे निवृत्त(दूर) कर दिया है. मायाके ये गुण और इन गुणोंका कार्य आपमें नहीं है. अन्धकारकी तरह ये माया जन्य दोष सदा सब जगह होते हैं; किन्तु सूर्य मण्डलमें जैसे अन्धेरा नहीं रह सकता है, वैसे ही भगवान्में ये दोष नहीं होते हैं. भगवान्ने अपने तेजसे इन दोषोंको सदा अपने स्वरूपसे हटाकर(दूरकर) रखा है. यदि अपने तेजसे भगवान् इन मायागुणकृत दोषोंको अपने आपसे नहीं हटाते तो, सब जगह ही फैले हुए ये दोष भगवान्में भी होते, निवृत्त नहीं होते. भगवान्के तेजसे ही ये दोष वहां तक नहीं जा सकते हैं. 'सत्' 'चित्' और 'आनन्द' गुण तो भगवान्में नित्य स्थित हैं. ये गुण तो जड़, जीव और अन्तर्यामी स्वरूप जगत्को उत्पन्न करनेमें उपयोगी हैं; किन्तु मायाके गुण उनमें नहीं हैं. इसी अभिप्रायसे अर्थात् यहां गुण पदसे सच्चिदानन्द गुणोंका भगवान्में अभाव है ऐसा अर्थ नहीं हैं; किन्तु मायाके गुण उनमें नहीं है मूल श्लोकमें 'माया' शब्द दिया है. इस प्रकार ज्ञान स्वरूप भी आप(औडुलोमि ऋषि ब्रह्मको निर्गुण, निराकार मानते हैं). औडुलोमि ऋषिके मतानुसार निर्गुण, निराकार नहीं है; किन्तु आप तो भगवान् षडैश्वर्य सम्पन्न हैं. इस प्रकारके ऐश्वर्य, वीर्यादि पूर्ण छः गुणोंसे युक्त आपकी मैं शरण हूं।।२३।।

लेख: 'विशुद्ध विज्ञानघनं'-इस श्लोककी व्याख्यामें 'लौकिकं मत्वा' का अर्थ है कि भगवान्को भी अपनी तरह लौकिक ज्ञान वाला ही मान लेंगे।।२३।।

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम्।
क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम्।।२४।।

श्लोकार्थः आप ईश्वर और स्वतन्त्र हैं, आप अपने आधीन अपनी मायाके द्वारा सारे महत्तत्व आदि विशेषोंकी कल्पना(रचना)करते हो. इस समय क्रीड़ा करनेको आपने यह नररूप धारण किया है. आप यदु, वृष्णि और सात्त्वत वंशके यादवों में श्रेष्ठ हैं ।।२४।।

व्याख्यार्थः 'त्वामीश्वरं' इस श्लोकसे भक्तिके अनुसार भगवान्का निरूपण करते हैं. आप भगवान् सबका नियमन(शासन) करनेवाले ईश्वर हैं. ब्रह्मादि देवता सब आपके शास्य(आज्ञा पालक) हैं. सबके नियन्ता होकर भी, आप(लौकिक स्वामी जैसे अपने सेवकोंको अपेक्षा रखता है) इस तरह, अपने शास्य-सेवक देवोंकी अपेक्षा नहीं रखते हैं; क्योंकि स्वाश्रय हैं, अपनी आत्माका ही आश्रय लेकर स्थित हैं. जैसे गरुड़ आदि अपने आपमें ही प्रयत्नशील होते हैं अपने ही आश्रित होते हैं, वैसे आप स्वाश्रित ही हैं. वे गरुडादि तो उनका प्रयत्न शिथिल हो जाने पर कभी अन्यके आश्रित भी हो जाते हैं, किन्तु भगवान्का प्रयत्न तो नित्य है, कभी शिथिल नहीं होता. इस कारणसे भगवान् कभी अन्यका आश्रय नहीं लेते हैं. वे तो सबसे जुडे हुए(सम्बद्ध) से दिखाई देते हैं. परन्तु सबमें होते हुए भी सबसे अलग(असम्बद्ध) ही हैं. इसीलिये 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' वेदमें उनको पृथिवीमें रहते हुए पृथिवी उनको नहीं जानती पृथिवीसे अलग कहा है. आप सबमें मिले होने पर भी असंयुक्त नहीं मिले हुए हो.

वास्तवमें तो आपके साथ साक्षात् संयोग भी नहीं है. क्योंकि, विपरीत बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले सारे विकल्पोंको आप भगवान्ने अपनी आत्म मायाके द्वारा ही रचे हैं, वे सारे सम्बन्ध विकल्प आत्म मायासे ही दिखाई देते हैं. स्वरूप तो आपका षडगुणैश्वर्य सम्पन्न ही है और असङ्ग भी हैं. यद्यपि अवतार दशामें, भगवान्में देह इन्द्रियादिके धर्म दिखाई देते हैं, तथापि वे सब धर्म क्रीड़ाकेलिये ही ग्रहण किये हुए हैं. जैसे क्रीडामें कोई मनुष्य लूला, लंगडा, कूबडा बन जाता है; किन्तु वास्तवमें वह वैसा नहीं होता, वे लूला आदि धर्म उस मनुष्यके सहज वास्तविक धर्म नहीं होते, केवल दिखावटी ही होते हैं, वैसे ही, परमानन्द भगवान्में, देह, आकार, स्वभाव आदि मनुष्योंके से धर्म क्रीडार्थ मानलिये जाते हैं. वे धर्म वास्तवमें भगवान्के सहज धर्म नहीं हैं. भगवान्में दिखाई देनेवाले वे मनुष्य साधारण धर्म उनके स्वभाविक(सहज) धर्म नहीं हैं, तो भी उन धर्मोंका कार्य तो मनुष्य धर्मोंका जैसा ही होता है. इसीलिये वह व्यक्ति फल देनेवाला

होता है. यदि उन बनावटी धर्मोंको भगवान्के सहज धर्म ही मान लेंगे, तो वे भगवान्में दोषरूप हैं. और दोषरूप होनेसे फल साधक भी नहीं होंगे. इसीलिये यादवों, वृष्णियों और सात्वतोंके अथवा यादव, वृष्णि भक्तोंके धुर्य सब ही भारको(योगक्षेमको) वहन करनेवाले, निर्दोष पूर्णगुण विग्रह और सारे भक्तोंका उद्धार करनेवाले आप भगवान्को मैं नमस्कार करता हूं।।२४।।

लेख: 'त्वामीश्वरं' इस श्लोककी व्याख्यामें 'कुब्जत्वादय' इत्यादि पदोंका तात्पर्य यह है कि क्रीडामें जैसे कोई पुरुष कूबड़ा बनकर कूबड़ेकी तरह चलने लगता है, किन्तु वास्तवमें वह कूबड़ा नही होता है. क्रीड़ामें कोई गाय बैलसा बनकर उनकासा व्यापार करने लगता है. वास्तवमें तो न वह कूबड़ा ही होता है और न गाय बैल ही होता है. केवल जैसे दिखावा मात्र होता है. वैसे ही अवतार दशामें भगवान्में भी मनुष्यकेसे धर्म केवल प्रदर्शनार्थ ही हैं. वे सहज भगवद्धर्म नहीं हैं।।२४।।

श्रीशुक उवाच

एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः।
प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः।।२५।।

श्लोकार्थ: श्रीशुकदेवजी कहते हैं –हे राजन् ! श्रीकृष्णके दर्शनसे परम आनन्दित हुए भागवत श्रेष्ठ नारदमुनिने इस तरह स्तुति करके प्रणाम किया और भगवान्से आज्ञा लेकर चले गए।।२५ ।।

व्याख्यार्थ: नारदको भ्रम हो गया है, ऐसा समझकर उनके इतना कहने पर भी भगवान् कुछ नहीं बोले. केवल उन्होंने उन्हें जानेकी आज्ञा दी, जो 'एवं' इत्यादि इस श्लोकसे कहते हैं. नारदजीने ऊपरके श्लोकोंमें जो कुछ कहा है, भगवान् वह सब कार्य अवश्य करेंगे; क्योंकि भगवान् यादवोंके स्वामी हैं.अपने दास यादवोंका कार्य करेंगे ही. भगवान् कुछ भी प्रयत्न न करनेपर भी, स्वतः पुरूषार्थरूप हैं.

नारदजी भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं. अपने जाने हुए और अपने किए हुए कार्यको अपने स्वामीके आगे निवेदन करना सेवकका कर्तव्य है. इसलिए नारदजीने यह सब भगवान्के आगे निवेदन किया,नारदजीको भविष्य कालका ज्ञान भी है, क्योंकि वे मुनि हैं. इस प्रकारसे प्रार्थना करके नारदजीने श्रीकृष्णसे जानेकी आज्ञा मांगी और फिर उनकी आज्ञा पाकर वे चले गए. लोकमें उत्सवको महाफल मानते हैं. वह भगवान्के दर्शनका उत्सव(परम फल) नारदजीको मिल गया और वे

वहांसे चले गये।।२५।।

भगवान्पि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे।
पशूनपालयत् पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः।।२६।।

श्लोकार्थः व्रजको सुख देनेवाले गोविन्द भी युद्धमें केशीको मारकर प्रसन्न मनवाले गोपोंके साथ गायें चराने गए।।२६।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार बीचमें नारदजीका आगमन तथा भगवान्की स्तुति करके चले जानेका सोलह १० से २५ श्लोकों तकसे कहकर केशी वधके बाद नहीं बताये गये भगवान्के गोकुलमें पधार जानेका 'भगवानपि' इस श्लोकसे उपसंहार करते हैं. आप गोविन्द हैं. इसलिये गोकुलमें आपका पधारना उचित ही है. जैसे नारदजी चले गये वैसे ही भगवान् भी गोकुलमें पधारकर चले गये. युद्धमें केशीको मारकर भगवान् प्रसन्न चित्तवाले गोपोंके साथ पहले जैसे ही, पशुओंका पालन करने लगे, क्योंकि, नारदजीके कथन तथा स्तुतिसे भगवान्को जो कुछ गर्व तथा खेद नहीं हुआ. केशीको भगवान्ने युद्धमें मारा था. इसलिये इस राजस प्रकरणमें इसका वर्णन किया है. अपनी मन चाही बात ही नारदजीके मुखसे सुनकर, गोप लोग बहुत प्रसन्न हुए. भगवान् स्वयं भी रात दिन सदा व्रजको सुखदानी हैं. यह तो गोप जनोंकी प्रसन्नताका कारण था ही।।२६।।

एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु।
चक्रुर्निलायनक्रीडांश्चौरपालापदेशतः।।२७।।

श्लोकार्थः एक दिन सब गोप पर्वतके शिखर पर पशुओंको चराते-चराते आपसमें चोर और पशुपाल बनकर छिपनेका खेल खेलने लगे।।२७।।

व्याख्यार्थः यद्यपि आगेकी कथा उसी दिन नहीं की गई थी, तो भी सिंहावलोकनके न्यायसे उसका निरूपण करके यह सूचित करते हैं, कि यहांसे जाकर भी भगवान् गोकुलका पालन करेंगे. यह 'एकदा' इत्यादि नौ श्लोकोंसे कहते हैं. इस कथाका प्रकरण पहले नहीं होनेसे, इस कथाका वर्णन समय पर, वर्णन न करके, यहां कही गई है. कभी किसी दिन वे सारे गोप गोवर्धन पर्वतके ऊंचे शिखर पर जहांसे दूरसे भी देखा जा सके, पशुओंको चराते हुए निलायन(छिपने) का खेल खेलने लगे. इस खेलमें कुछ बालक छिप जाते हैं और कितनेक, उन छिपनेवालोंको ढूंढते हैं. उनमें भी जो छिपते हैं, वे चोर होते हैं और उनको ढूंढनेवाले बालक पाल कहे जाते हैं।।२७।।

तत्रासन् कतिचित् चौराः पालाश्च कतिचित् नृप।
मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः।।२८।।

श्लोकार्थः हे राजन् ! उनमें कुछ चोर, कुछ भेड़ और कुछ चरवाहे बने. उनमें चोर बननेवाले, भेड़ बननेवालेको चुराकर ले जाने लगे. इस तरह वे निधड़क खेलने लगे ।।२८ ।।

व्याख्यार्थः चोरीके विषयकी सिद्धिकेलिये 'तत्रासन्' इस श्लोकसे कुछ विशेष बातें बतलाते हैं. वे सारे ही गोप कुछ चोर, कुछ चोरीका विषय वस्तु आदि भेड़रूप और कुछ उनको ढूंढनेवाले पालरूप इस प्रकारसे अपने-अपने प्रयत्नोंकी अधिकतासे तीन प्रकारके हो गये, और फिर खेल पूरा हो जाने पर, सबके सब बदलकर वापस अपने वास्तविक(असली) रूपमें ही आ जाते हैं. यह एक लीला क्रीड़ा मात्र है, जैसे राजा लोग शिकार खेलना आदि स्वेच्छासे ही किया करते हैं. इस अभिप्रायसे, मूलमें 'नृप' यह सम्बोधन पद दिया है. भेड़ोंको कोई कहीं ले जाता है, तो वे चुपचाप उसे ले जानेवालेके साथ बिना कुछ बोले शब्द किये चुपचाप ही चले जाते हैं. बकरे, बकरीकी तरह वे चिल्लाते नहीं है. इस कारणसे, ये कुछ असमर्थ गोपोंको मेषायिन भेड़ोंका सा, आचरण करनेवाले कहा है. भगवान्के भरोसे वे सब व्रजवासी निर्भय थे और निर्भय होकर ही 'खेल' खेलते थे. ऐसा ज्ञात होता है, कि उस दिन भगवान् कृष्ण और बलभद्रजी गोचारणकेलिये नहीं गये होंगे; क्योंकि, यदि गोपोंके साथ ही भगवान् होते तो, व्योमासुरको देखते ही मार देते. अथवा गोकुलमें ही यह समाचार सुनकर वहां जाकर उसे मार दिया. ऐसा भी उचित ही है।।२८।।

मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक्।
मेषायितानपोवाह प्रायश्चौरायितो बहून्।।२९।।

श्लोकार्थः इसी अवसरमें, मयासुरका पुत्र महामायावी व्योमासुर, गोपरूपको धारण करके उन गोपों(बालकों)में मिल गया और भेड़ पशु बने हुए बहुतसे बालकोंको उठा ले गया ।।२९ ।।

व्याख्यार्थः कंस भी दैत्यांश ही था. इसलिये उस कंसका हितैषी मयासुरका पुत्र व्योमासुर वहां उनके खेलमें मिलकर गोपोंका उपद्रव करने लगा यह 'मयपुत्रः' इस श्लोकसे कहते हैं, वह बड़ी माया जानता था, बड़ा मायावी था. इस कारणसे, वह उन गोपोंको ठगनेमें तथा मार डालनेमें समर्थ था. वह, यदि

असुरके भयानकरूपमें ही वहां आता तो, वे गोप लोग डरकर भाग जाते. इसलिये वह उन्हें चुराकर ले जानेवाले गोपोंका सा, गोपालरूप धारण करके 'मेषायित' गिरकर पड़े हुए भेड़रूप गोप बालकोंको अन्य चुराकर ले जानेवाले गोपोंकी तरह चुराकर ले जाने लगा. परन्तु खेलमें, जब चोर बने गोप, पशु भेड़ बने हुए, ग्वाल बालकोंको ले जाते थे, तब तो अन्य चोर बने हुए पाल बालक उसको ले जाता देखते ही थे, सब जगते ही रहते थे; किन्तु जब वह महामायावी व्योमासुर अपने लिये(आत्मने पद) अथवा कंसके हितार्थ(परस्मैपद) पशुरूप गोपोंको ले जाता था, तब उसे उसकी मायाके कारण, कोई नहीं देख पाता था कोई भी जगता नहीं था. इस प्रकार, वह बहुतसे अकर्मठ पशुरूप गोपोंको उठा(चुरा) ले गया।।२९।।

लेख: 'मय पुत्रः' इस श्लोककी व्याख्यामें 'नीयमाने नयति सति' पदोंका अभिप्राय यह है कि जब वह असुर उन भेड़रूप गोप बालकोंको स्व अर्थ उठाकर ले गया तो क्रिया फल, स्वार्थगामी, होनेसे, आत्मने पदमें ''शानच्''प्रत्यय लगा तब नीयमाने कथन साभिप्राय है और जब कंस के हितार्थ पशुभूत गोपो को ले जाना अर्थ करने पर तो क्रिया फल परगामी होनेसे, नयति यह ''शत्'' प्रत्ययान्त प्रयोग उचित है. अपने हित तथा कंसके हितकेलिए उन पशुरूप ग्वाल बालकोंको चुराकर ले गया।।२९।।

गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः।
शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चावशेषिताः।।३०।।

श्लोकार्थ: वह असुर जिन बालकोंको ले जाता, उनको एक पर्वतकी कन्दरामें डालकर उसका दरवाजा भारी पत्थर(शिला)से बन्द कर आता था. इस तरह घटते-घटते मैदानमें चार-पांच बालक ही बच गए, और सबको वह ले गया।।३०।।

व्याख्यार्थ: 'गिरिदर्यां' इस श्लोकमें प्रदर्शित(दिखाई जानेवाली) उसकी आगेकी करतूतसे जाना जाता है, कि वह उन्हें उनके साथ खेलनेकेलिये उठाकर नहीं ले जा रहा था, किन्तु उन्हें मारनेकेलिये ही ले जाता था. बहुतोंको एक बारमें ही उठाकर ले गया अथवा एक-एकको एक-एक बारमें गुफामें ले जाता रहा. 'नीतं नीतं' एक-एकको ले गया इस कथनसे जान पड़ता है, कि उस पर्वतकी गुफाका दरवाजा बहुत सूक्ष्म(संकड़ा) होगा. वह महासुर अत्यन्त आसुर स्वभाववाला व्योमासुर सहज दयनीय(दयाके पात्र) बालकोंको भी, अपने निर्दय स्वभावके कारण, पर्वतकी कन्दरामें फेंक आता था और इतना ही नहीं; किन्तु

बड़ी शिलासे उसका द्वार भी मून्द आता था. इस प्रकार इस क्रीड़ामें, जब पशु भूत गोपोंको घटते-घटते कमी होती जाती है, तब तो वे चोर बने, और ढूंढने बाले-पाल बने हुए गोप भी क्रमसे भेड़ पशुरूप बनते जाते, इस तरह ले जाते, ले जाते, उस उठाये हुए मेषायित गोप बालक सहित पांच अथवा केवल चार बालक ही जब शेष रह गये।।३०।।

तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम्।
गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा।।३१।।

श्लोकार्थः साधु(सज्जनों)की रक्षा करनेवाले कृष्णचन्द्रने जान लिया कि यह काम इस गोप रूपधारी असुरका ही है. वह असुर अबकी बार, जब फिर बालकोंको उठा ले चला, तब श्रीकृष्णने झपटकर, उसे वैसे ही दबा लिया जैसे महाबली सिंह किसी भेड़िएको दबोच लेता है।।३१।।

व्याख्यार्थः जब वह एक-एक करके सारे गोप बालकोंको उठाकर ले जाता रहा और पर्वतकी गुफामें फेंककर बड़ी शिलासे उस गुफाके द्वारको बन्द कर देता रहा, उस समय भगवान् वहां उस क्रीड़ामें शालिम नहीं थे. कहीं दूसरे स्थान पर थे. किन्तु भगवान् कृष्ण सदानन्द हैं. इस कारणसे, व्योमासुरके इस प्रकारके कार्यको जान गये यह 'तस्य तत्कर्म' इस श्लोकसे कहते हैं. भगवान्ने उस असुरके इस प्रकारके कार्यको प्रत्यक्ष सा देख लिया. वे गोप लोग, धर्मी सदानन्द रूप भगवान्के धर्मीरूप सदात्मक केवल गणितानन्द ही थे इस कारणसे वे सद्रूप ही थे; क्योंकि धर्मीरूप आनन्दका उनमें तिरोभाव था. और इसी कारणसे वह असुर उन बालकोंको उठाकर ले जा सका था.

सर्वान्तर्यामी, सबके रक्षक भगवान्ने, उसके इस कामको जान वहीं प्रकट होकर अथवा वहां जाकर बहुतसे गोप बालकोंको ले जानेवाले, उस व्योमासुरको इस तरह सभी अङ्गोंसे घेरकर पकड़ लिया, जैसे सिंह किसी भेड़ियेके सारे अङ्गोंको दबाकर पकड़ लेता है. भगवान् यद्यपि अक्लिष्ट कर्मा और शत्रु मित्र सबमें समान हैं, तो भी उस व्योमासुरको दबोचनेका कारण यह है, कि वे सज्जनोंके रक्षक हैं; क्योंकि, वे शरणागत भक्तोंकी सभी दशामें, पालन न करें तो कोई भी उनके शरणमें नहीं जाये. उनके शरणमें जाना छोड़ दे, और शरणदान ही न हो. तब तो सज्जनोंके मनमें भी बड़ा दुःख हो जाये और शास्त्रकी मर्यादा भी नष्ट हो जाये. इसलिये इन सब मर्यादाओंकी रक्षाकेलिये ही शरणागत पालक

भगवान्ने समदर्शी होते हुए भी, उस असुरको दबोच दिया।।३१।।

लेख :'तस्य तत्कर्म' इस श्लोककी व्याख्यामें ''सद्रूपाश्चते''इन पदोंका तात्पर्य यह है, कि उन सद्रूप गोपोंको भगवान्से ही आनन्दकी प्राप्ति हुई थी. वे स्वयं तो धर्मि सद्रूप और गणितानन्द ही थे. क्योंकि आनन्द तो प्रधान प्रभुका है 'पूर्णानन्दो हरिः'।।३१।।

स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली।
इच्छन् विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद् ग्रहणातुरः।।३२।।

श्लोकार्थ: तब उस महाबली असुरने एक बड़े पहाड़ जैसा अपना असली रूप प्रकट कर लिया. उसने छूटनेका बहुत प्रयत्न किया, पर वह न छूट सका।।३२।।

व्याख्यार्थ: तब उस व्योमासुरने विचार किया, कि यद्यपि भगवान् मेरी और सारे जगत्की भी अपेक्षा महान् तो हैं, किन्तु इस समय तो, मनुष्यके अवतारमें छोटे ही हैं. इसलिये मैं यदि अपना असलीरूप ग्रहण कर लूंगा तब तो, भगवान् मेरे सामने छोटेसे दिखाई पड़ेंगे और मुझको मार नहीं सकेंगे. यदि भगवान्ने भी अपना वास्तविकरूप धारण किया, तब तो अवतारकी समाप्ति हो जायेगी और कंसादि तथा हमारी मृत्यु भी नहीं हो सकेगी इस अभिप्रायसे उसने अपना असलीरूप धारण कर लिया यह 'स निजं' इस श्लोकसे कहते हैं. बलवान् उस व्योमासुरने बड़े भारी पहाड़के समान जो किसीके पकड़में न आ सके अपना असली आसुरीरूप प्रकट कर लिया. तब भी वह अपने आपको भगवान्के पंजे(हाथों)से छूटनेका भारी प्रयत्न करने पर भी मुक्त नहीं हो सका. छूटनेकी तो बात दूर रही, वह तो भगवान्के द्वारा पकड़े जाने पर ही मरनासन्न हो गया. पकड़नेसे ही उसकी अन्तिम मरणावस्था हो गई।।३२।।

तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले।
पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत्।।३३।।

श्लोकार्थ: भगवान्ने उस दुष्ट दैत्यको दोनों हाथोंसे पकड़कर, पृथिवी पर पटक दिया और आकाशमें देवोंके देखते-देखते पशुओंकी सी मारसे मार डाला।।३३।।

व्याख्यार्थ: इतने पर भी, वह दुष्ट लीन तो होगा नहीं, इस विचारसे, भगवान्ने स्वयं उसे मार डाला, यह इस 'तं निगृह्य' श्लोकसे कहते हैं. भूमि पर रहनेवाले देवता उसको न त्यागे, इस अभिप्रायसे भगवान्ने उसको भूमि पर

गिराकर और उसका वध यज्ञकेलिये हो इस प्रकारसे धर्मके निरूपणकेलिये देवगणोंके देखते-देखते पशुओंकी सी मौतसे मार डाला. उसके मुखको मून्दकर गर्दनको मोड़ दिया. इस असुरकी मृत्युसे देवता सुखी हुए. इसलिये वे देखने लगे. यदि देवोंको सुख नहीं होता और वे नहीं देख सकते तो, अक्लिष्ट कर्मा भगवान् उसको इस प्रकारसे नहीं मारते. उन्हें सुख हुआ इसलिये उनके देखते दुष्ट असुरका वध कर दिया।।३३।।

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान् निःसार्य कृच्छ्रतः।
स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम्।।३४।।

श्लोकार्थ: उस दुष्ट दैत्यको इस प्रकारसे मार देनेके बाद भगवान् उस कन्दराके पास पहुंचे और उसके शिलासे बन्द दरवाजेंको खोलकर उसमें बन्द गोप बालकोंको कष्टसे मुक्त किया. तदनन्तर गोपगण और देवगण के मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए श्रीकृष्ण व्रजमें पधारे ।।३४ ।।

व्याख्यार्थ: उसके वधके बाद, भगवान्ने जो वहां किया उसका वर्णन 'गुहापिधानं' इस श्लोकसे करते हैं. उस असुरके द्वारा मायासे बनाये हुए उस गुफाकी शिलाके किवाड़को तोड़कर उन गोप बालकोंको वहांसे बाहर निकालकर उन्हें संकटसे मुक्त कर दिया. कन्दराको इसको इस तरह नष्ट भ्रष्ट कर दिया, कि वह फिर कन्दरा ही नहीं रहने दी. जिसमें कोई और भी किसीको नहीं छिपा सके।।३४।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणके दशम स्कन्धके अध्याय ३४,
राजस-प्रमाण-अवान्तर प्रकरणके 'वीर्य निरूपक' द्वितीय अध्यायकी
श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणकृत श्रीसुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ.

अध्याय ३५

अक्रूरजीकी व्रजयात्रा

पञ्चत्रिंशे भक्तिमार्गस्थापनाय निरूप्यते।
अक्रूरागमनं भक्तिः फलं चैव हि मानसम्।।का.१।।

कारिकार्थः इस पैतीसवें अध्यायमें भक्तिमार्गकी स्थापना(प्रतिष्ठा) केलिए अक्रूरजीके गोकुल आनेका और मानसिक भक्तिका फल निरुपित किया जा रहा है ।।१।।

सात्त्विकश्चेदभिमुखः तदा भवति भक्तिमान्।
अन्यथा दैत्यसंसर्गे स्तब्धा भक्तिर्भवेद् ध्रुवम्।।का.२।।

कारिकार्थः सात्त्विक(जीव) यदि भगवान्के सम्मुख आ जाता है, तो वह अवश्य भक्त बन जाता है. भगवान्की शरण न आने पर दैत्यके संसर्गमें उसकी वह भक्ति निश्चितरूपसे स्तब्ध(कुण्ठित) होती है।।२ ।।

श्रीशुक उवाच
अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम्।।१।।

श्लोकार्थः श्रीशुकदेवजी कहते हैं–हे राजन्! बड़े बुद्धिमान् अक्रूरजी उस रात्रिको वहीं(मथुरामें ही) निवास करके दूसरे दिन बड़े सवेरे रथ पर बैठकर नन्दजीके गोकुलको चले।।१ ।।

व्याख्यार्थः गत तैतीसवें अध्यायमें कंसके द्वारा अक्रूरजीको गोकुल भेजनेका उपक्रम किया गया है. उनका गोकुल आनेका वर्णन 'अक्रूरोपि च' इस श्लोकसे करते हैं. मथुराकी भूमिमें अधिष्ठाता भगवान् ही हैं. इसलिये भगवान्, मथुरा अथवा भगवान्का कोई भक्त यदि गोकुल जानेकेलिये निषेध(मना) कर देगा कि मैं नहीं जाऊंगा तो ऐसा निश्चय करके अक्रूरजी उस रातको(जब कि कंसने आज्ञा दे दी थी) तो भी मथुरामें ही ठहर गये. फिर दूसरे दिन प्रातः, वे अति निपुण बुद्धिवाले अक्रूरजी(भगवान्को मथुरा ले आने पर सबका हित हो जायेगा. इसलिये उन्हें ले आना चाहिये) गोकुल गमनको उचित समझकर कंसके दिये हुए दिव्य रथ पर सारथिरूपसे स्वयं ही बैठ गए और बाहर तथा मनमें सन्तोष पूर्वक एवं घरमें भी सलाह करके नन्दरायजीके गोकुलको रवाना हुए।।१।।

लेख: 'अक्रूरोपि' इस श्लोककी व्याख्यामें 'सारथि रूपः' पदका तात्पर्य यह है कि अगले छत्तीसवें अध्यायमें अक्रूरजीका रथ हांकनेका वर्णन किया जाएगा. इस कारणसे यहां इस पैंतीसवें अध्यायमें अक्रूरजीका सारथि रूपसे कह दिया गया है।।१।।

गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे।
भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत्।।२।।

श्लोकार्थ: मार्गमें जाते समय बड़े भाग्यशाली अक्रूरजीके हृदयमें कमलसे नेत्रवाले भगवान्की परा(परम) भक्तिका उदय हो गया और(वे गद-गद होकर) इस प्रकार यह सोचने लगे ।।२ ।।

व्याख्यार्थ: सात्विक पुरुष यदि भगवान्के अभिमुख होता है, तब उसके मनमें भक्तिका उदय होता है. यह इस 'गच्छन् पथि' श्लोकसे कहते हैं. जब अक्रूरजी मार्गमें गोकुलकी तरफ जा रहे थे, उनका भगवत्सम्बन्धी मनोरथ हुआ; क्योंकि, सन्मार्गमें चलनेवालेकी भगवान्में भक्ति होना उचित ही है. उन्मार्ग (कुपथ) गामी दुष्ट पुरुष भक्त नहीं हो सकते हैं. इसीलिये मार्गमें चलनेवाले अक्रूरजीको भगवान्में भक्ति उत्पन्न हुई. इस कथनसे यह सूचित किया, कि उन्हें रथ हांकनेकी अपेक्षा नहीं रही थी. रथ स्वयं चल रहा था.

अक्रूरजी महाभाग थे, जो दुष्ट कंसके संसर्गमें रहते हुए और उस दुष्टकी प्रेरणासे ही जानेवाले होकर भी, भगवान्के भक्त हो गए. पहलेका सञ्चित पुण्य-पुञ्ज सारा ही आज फलीभूत हो गया. उनकी साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्में(किसी विभूतिरूपमें नहीं) परा(प्रेम) लक्षणा भक्ति उत्पन्न हो गई. उन कमल नयन दृष्टिसे ही सन्तापको मिटानेवाले फलका दान करनेवाले, भगवान्में भक्ति हो जाना उचित ही है.

उनकी पहले भगवान्में भक्ति थी तो सही किन्तु बीचमें उसका तिरोभाव हो गया था. अब वह गई हुई भक्ति, स्वयं आई और अपने आप प्रवेश न पाकर, भगवान्के माहात्म्य ज्ञान पूर्वक(कामना द्वारा) प्रविष्ट हुई. इससे जैसे अपना उत्कर्ष चाहता हो, वैसे भक्तिने अक्रूरजीको चिन्ता युक्त कर दिया. वे इस प्रकारसे विचार करने लगे।।२।।

किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यत् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम्।।३।।

श्लोकार्थ: कि मैंने कौनसा ऐसा पुण्य अथवा उत्कृष्ट तप किया है, अथवा किसी सत्पात्रको दान दिया है, जिसके फलसे आज मैं गोविन्द(केशव) भगवान्के दर्शन करूंगा ।।३ ।।

व्याख्यार्थ: भक्ति दृढ़ हो इसलिये पहले भगवद्धर्मोंका माहात्म्य, 'किं मया' इस श्लोकसे बतलाते हैं. उन सारे ही भागवद्धर्मोंमें भगवान्का दर्शन सब धर्मोंसे उत्कृष्ट है. स्वधर्म, भगवद्धर्म तथा अन्य सभी धर्म इस प्रकारसे धर्मके तीन विभाग हैं. इन विभागोंके सहज अथवा आये हुए(आगन्तुक) उत्कृष्ट धर्मोंसे सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं. यह जाना जाता है और उनके प्रसन्न होने पर ही, उनका दर्शन हो सकता है; क्योंकि, वे भगवान् ब्रह्माजीको सुख और शिवजीको भी मोक्ष देनेवाले हैं.

प्रथम, स्वधर्म सदाचार, दूसरा, भगवद् धर्म तपस्या और सारे लोकोंका उपकार करनेवाला दानधर्म सर्वधर्म है. उनका अक्रूरजी वर्णन करते हैं कि 'आचार प्रभवो धर्मः' के अनुसार मैंने कौन परम पवित्र सदाचारका पालन किया है, अथवा 'तपो मे हृदयं साक्षात्' इस वाक्यके अनुसार मैंने कौनसा भगवान्की शक्तिरूप तप ही किया है, जो जीव साध्य नहीं; किन्तु परम उत्कृष्ट तप है, अथवा सर्वोपकारी दान धर्म ही किसी पूज्य सत्पात्र, भगवान्के भक्तकेलिये, भगवान्केलिये ही सब अर्पण है. इस भगवद्बुद्धिसे, श्रद्धा पूर्वक दिया ही दान है, कि जिसका फलरूप आज ही मैं भगवान्के दर्शन करूंगा. इस कथनसे जान पडता है, कि उन उक्त तीन धर्मोंसे अतिरिक्त कोई अन्य पुण्य धर्मका ही आचरण अक्रूरजीने किया था; क्योंकि, इन उक्त धर्मोंके आचरणसे तो इतना शीघ्र फल आज ही भगवान्का दर्शन नहीं मिलता।।३।।

ममैतद् दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम्।
विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः।।४।।

श्लोकार्थ: मैं अत्यन्त विषयासक्त हूं. इसीलिए मुझे तो पुण्य(पवित्र) कीर्तिवाले भगवान्का दर्शन मिलना वैसा ही दुर्लभ जान पड़ता है जैसा शूद्रके लिए वेदोंका पढना दुर्लभ है।।४ ।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार पूर्व श्लोकानुसार कार्यकी आवश्यकताको जानकर और कारणकी कल्पना सहित बाधककी शङ्का करके, 'ममैतद्' इत्यादि दो श्लोकोंसे उसका निराकरण करते हैं. युक्ति द्वारा यह निश्चित होता है, कि मुझे

भगवान्के दर्शन नहीं होंगे. इस तर्कसे भगवान्की अलौकिकता सूचित होती है; क्योंकि भगवान्को अक्रूरजी लौकिक जानते तो उनके मनमें दर्शन न होनेकी शङ्का ही नहीं होती.(लौकिक अक्रूरजी लौकिक भगवान्को देख लेते).

भगवान्का दर्शन न होनेके दो कारण हैं. एक तो भगवान्की अत्यन्त उत्कृष्टता और दूसरा अपनी(अक्रूरजीकी) अत्यन्त अधमता. पहला कारण तो यह है, कि वे भगवान् स्वयं उत्तम श्लोक हैं, उत्तम सर्वज्ञकी भक्त केवल स्तुति ही कर सकते हैं. दर्शन तो उन्हें भी नहीं मिलते हैं. दूसरा कारण दर्शन न होनेका यह है, कि मैं अत्यन्त विषयात्मा हूं. विषयोंसे केवल दर्शन ही नहीं रुकता; क्योंकि विषयोंकी अनित्यता(सदा स्थिति न रहने)के कारण कभी दर्शन हो भी जाये किन्तु वे(विषय) तो दर्शनकी योग्यता(अधिकार) को भी नष्ट कर देते हैं. इस कारणसे, भगवान्का दर्शन सिद्ध और सुलभ हो जाने पर भी, अधिकार हीन विषयासक्त मुझे दर्शन दुर्लभ ही हैं, क्योंकि मैं दर्शन कर सकूं इस योग्य ही नहीं हूं. इसमें दृष्टान्त देते हैं, कि शूद्रका वेदोच्चारणमें अधिकार नहीं होता, यदि वह पूर्व जन्ममें ब्राह्मण भी हो, सर्वज्ञता भी हो और वेदोच्चारण करनेमे समर्थ भी क्यों न हो; किन्तु यदि यहां अभी शूद्रके बीज(वीर्य) से उत्पन्न हुआ हो, तो वह वेदोंके उच्चारणका अधिकारी नहीं है. इसी तरह विषयोंमें आसक्त मैं(अक्रूर) भी भगवान्के दर्शनका अधिकारी कदापि नहीं हूं।।४।।

मैवमेवाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम्।
ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित् तरति कश्चन।।५।।
ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः।
यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम्।।६।।

श्लोकार्थः अथवा मेरा यह सोचना भूल है कि मैं अधम हूं, तो भी भगवान्के दर्शन मुझे मिल भी सकते हैं, क्योंकि जैसे नदीमें बहते तृणोंमें से कोई-कोई तृण किनारे भी लग जाता है, वैसे ही कालके प्रवाहमें कर्मवश बहनेवाले जीवोंमेंसे कितनेक जीव संसारके पार भी पहुंच जाते हैं ।।५ ।।

श्लोकार्थः निश्चय ही आज मेरे सारे पातक मिट गए मेरा जन्म सफल हो गया; क्योंकि मैं व्रजमें जाकर श्रीकृष्णके उन चरणकमलोंको प्रणाम करूंगा, जिनका ध्यान योगीजन सदा किया करते हैं ।।६ ।।

व्याख्यार्थः ऊपरके श्लोकमें अक्रूरजी अपनेको भगवान्के दर्शनका

सकारण अनधिकारी बतलाकर उस तर्कका इस, 'मैवमेव' श्लोकसे खण्डन करते हुए कहते हैं. अक्रूरजीका ऊपरके श्लोकमें अपनेको विषयासक्त होनेसे भगवद् दर्शनका अनधिकारी कहना, विषयोंको भगवद्दर्शनमें बाधक बतलाना और महापुरुषोंको भी भगवान्का दर्शन तो दुर्लभ ही है, केवल वे उनकी स्तुति ही कर सकते हैं,(करते रहते हैं) इस प्रकार अक्रूरजीका विचार करना अनुचित ही है; क्योंकि, अधमको भी भगवान् दर्शन दे ही देते हैं. इन्द्रियोंके विषय, पुरुषको केवल अधमाधिकारी बना सकते हैं, उसके भगवद्दर्शनके अधिकारको दूर नहीं कर सकते. विषयासक्त मनुष्य भी भगवद्दर्शनका अधिकारी तो है ही. हां ''असूर्यः शूद्रः'' इस श्रुतिके अनुसार आसुरी जीवको दर्शनका भी अधिकार नहीं होता.

विषय, विषयासक्त मनुष्यके भगवद्दर्शनमें बाधक भी नहीं हो सकते, क्योंकि, ''यद्यदिष्टतमं लोके'' प्यारीसे प्यारी वस्तु तथा विषयोंके द्वारा भगवान्का भजन, दर्शन शास्त्रमें बतलाया गया है. इसलिये विषय न तो मनुष्यके भगवद्दर्शनके अधिकारको ही छीन सकते हैं और न उसके भगवद्दर्शनमें बाधक हो सकते हैं. विषय तो केवल उसको अधमाधिकारी ही बना सकते हैं.

उत्तमाधिकारी भगवद्दर्शनका वह है जिसके मनमें भीतर तथा बाहर विषयोंका लेश भी कभी न हो, जिसके हृदयमें विषयेच्छा है; किन्तु बाहर विषयासक्ति नहीं दिखाता हो वह मध्यमाधिकारी है और जो बाहर भी, भीतर मनमें भी, विषयोंमें आसक्त मनुष्य अधमाधिकारी माना जाता है. ऐसे अधमको भी कभी अच्युत स्वरूपसे(धर्मसे भी च्युति रहित) भगवान्का दर्शन हो ही जाता है यदि अधमाधिकारी दर्शन सर्वथा नहीं कर सकता हो, तो फिर अधिकारका तृतीय भेद अधमाधिकारी होवे ही नहीं, भगवान्का यदि कीर्तन किया जाता है तो वह भगवान्का नाम संकीर्तन भी व्यर्थ(निष्फल) नहीं होता है. कीर्तनका भगवान् ही फल हैं और वे कभी दर्शन दे ही देते हैं. इसलिये भगवान्का दर्शन होवेगा ही. ऊपर दर्शन नहीं हो सकनेमें जैसे शूद्रका वेदोच्चारणका बाधक दृष्टान्त दिया गया था, वैसे ही दर्शन हो सकनेमें साधक दृष्टान्त देते हैं, कि कालरूपी नदीके द्वारा बहाया गया तृण कभी, अथवा स्वयं पड़ी हुई नाव भी एक किनारेसे दूसरे किनारे पर लग ही जाती है. इसी तरह नदीरूप काल जो भगवान् और जीवोंके बीचमें बहता हैं और जो विषय मायाके जलसे पूर्ण है विषयरूप जलसे पूर्ण वह नदीरूप काल किनारे पर बैठे हुए जीवोंको प्रवाहमें डालकर कभी दूसरे किनारे पर पार

लगा ही देता है. इस दृष्टान्तसे किसी-किसीके मतसे, यह भी सिद्ध होता है, कि काल भी मोक्ष प्राप्तिका साधक है. किन्तु भगवान्का अवतार इस कथनमें नियामक है, भगवान्के अवतारमें ही काल मोक्ष प्राप्तिका साधक हो सकता है अन्यथा नहीं।।५-६।।

कंसो बताद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः।
कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेतरन् यन्नखमण्डलत्विषा।।७।।

श्लोकार्थः अहो ! कंसने आज मुझपर बड़ी ही कृपा की. उसीके भेजनेसे मैं पृथ्वीपर अवतरित हुए भगवान्के चरणकमलोंके दर्शन करूंगा, जिनके नख मण्डलके प्रकाशमें अम्बरीष, प्रह्लादादि भक्त इस घोर, अन्धकारमय संसार सागरको पार कर गए हैं।।७।।

व्याख्यार्थः काल जो मोक्ष प्राप्तिका बाधक है वह मोक्षका साधक कैसे हो सकता है? इस शङ्काका उत्तर 'कंसोवत्' इस श्लोकसे देते हैं, कि बाधक भी कभी साधक हो जाते हैं. विष खा लेने पर मृत्यु निश्चित ही हो जानी चाहिये, किन्तु विष खाकर जीवित रहता है ऐसा लोकमें प्रसिद्ध है. अक्रूरजी सहर्ष कहते हैं, कि जो भगवद्दर्शनका ही नहीं, भगवन्नामस्मरण तकमें बाधक था, उसी कंसने मेरे उपर आज अनुग्रह किया है. साधारण अनुग्रह तो अन्न, वस्त्र, जीविका आदि लौकिक वस्तुके द्वारा भी किया जा सकता है, किन्तु वास्तविक अनुग्रहको तो, भगवान्के दर्शन करानेवाला ही करता है. इसलिये कंसने मुझ पर बड़ी दया की है, क्योंकि इसके द्वारा भेजा हुआ मैं सबके, सब दुःखोंको हरनेवाले भगवान् के चरणकमलोंका दर्शन करूंगा. कंसने अपने दूषित विचारसे श्रीकृष्णको, मथुरामें बुला लानेकेलिये मुझे भेजा है, तो भी, मुझे तो यह यात्रा फलदायिका ही है; क्योंकि भगवान्के साथ कोई सा भी सम्बन्ध होना चाहिये. वह भगवद्दर्शन सम्बन्ध कंसने कराया है, यह उसका ही मुझ पर अनुग्रह है.

भगवान्के साथ भय, द्वेष, स्नेह आदि कोई सा भी(गोप्यः कामाद् भयात् कंस) सम्बन्ध जोड़ लेना ही परम फल है और जीवोंका अपने साथ कोई सा भी सम्बन्ध जुड़ानेकेलिये ही, भगवान्का अवतार है भगवान् अवतार लेते हैं इस कथनकी पुष्टिके प्रमाण देते हैं, कि जिस प्रकार एक ही सूर्य मण्डल सारे विश्वका अन्धकार दूर कर देता है, उसी प्रकार, असङ्ख्य भक्त उनके दोनों चरणोंको अपने हृदयमें स्थापित करके और उनके दश नख मण्डलकी कान्तिसे अज्ञानरूपी

अन्धकार के सर्वथा नष्ट हो जानेसे, संसारको पार कर गए हैं. चरणोंके जहाजके बलसे संसार सागरको पार किया जा सकता है. और जब जिनके चरणोंका ध्यान करके केवल ध्यानके द्वारा हुए चरण सम्बन्धसे असङ्ख्य भक्त संसारसे पार हो चुके, तो फिर, उनके साक्षात् दर्शन कर लेनेवाले मेरे संसारके पार लग जानेमें सन्देह ही क्या है? अर्थात् उन भगवान्का साक्षात् दर्शन करके मैं भी संसारसे पार हो ही जाऊंगा।।७।।

यदर्चितं ब्रह्मशिवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिश्च सात्वतैः।
गोचारणायानुचरैश्चरद् वने यद् गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम्।।८।।

श्लोकार्थः शिव, ब्रह्मा, आदि देवता, लक्ष्मी देवी, मुनिगण और भक्तजन जिनकी सदा पूजा करते हैं; गाएं चराते समय, जो सेवक ग्वाल बालकोंके साथ, वनमें चलते हैं और जो गोपीजनोंके वक्षःस्थल पर लगे हुए कुंकुमसे अनुरञ्जित रहते हैं भगवान्के उन चरणोंके आज मैं दर्शन करूंगा।।८।।

व्याख्यार्थः अक्रूरजी इस प्रकार अपने भगवद्दर्शनरूप फल और अपने दर्शनाधिकारका निश्चय करके 'यदर्चितं' इस श्लोकसे भगवान् मोक्षके देनेवाले हैं अनेक वादियोंके द्वारा स्वीकृत किये हुए भगवान्के मोक्षदातापनको सिद्ध करते हैं. मोक्ष कोई वस्तु है और वह किसीके वशमें है ऐसा अवश्य मानना चाहिये.

सन्मार्गके अनुसार, लोकमें ब्रह्माजी बड़े हैं, लक्ष्मीजी विषयरूपसे बड़ी हैं, ज्ञानमार्गमें मुनि जन और भक्तिमार्गमें भक्त श्रेष्ठ हैं. इस कृष्णावतारमें चतुर्व्यूह युक्त अवतारी श्रीकृष्णके ये चारों ब्रह्माशिवादि, लक्ष्मी, मुनिजन और सात्वत् श्रेष्ठ भक्त हैं. यहां व्रजमें दिन और रातके सेवक गोप और गोपीजन हैं. धृष्ट और अज्ञानी तो किसीको मानते ही नहीं हैं. उनमें स्त्रियां और स्त्रियोंमें भी व्रजरमणियोंकी जैसी सेविका और नहीं हैं. भगवान्के चरणोंमें भक्तिका निवास है इसलिये सबमें भक्तिकी प्रधानताके कारण, चरण शब्द कहा गया है. जगत्में ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों मुख्य देव हैं. ब्रह्मा और शिव सभी देवोंके आदि (प्रथम) हैं. सात्विक कल्पमें, सत्व गुणावतार विष्णुको भगवान् कहा गया है. ये सारे ही इन्द्रादि देवगण अपने मनोरथोंकी सिद्धिकेलिए जिन चरणोंका पूजन करते हैं. देवी लक्ष्मीजी पहलेसे ही अपने स्वामीको जानकर जिनके चरणोंका सेवन करती है. मुनि जन, कर्मठ लोग, अपने मनोरथ सिद्धीकेलिये और 'सात्वतैः' सात्विक वैष्णव जन जिन चरणोंकी अर्चना करते हैं. भगवान्से अलौकिक

गोचारण सीखनेकेलिये अनुचर(पहलेसे ही सेवक) गोपोंके द्वारा वनमें वन्दना पूजे गये और स्त्रियों–व्रजवासियोंके द्वारा हृदयमें और बाहर अपने वक्षःस्थलों पर भी स्थापित करके सेवन किये गये उन भगवच्चरण युगलका मैं दर्शन करूंगा।।८।।

ऐश्वर्यं श्रीस्तथा ज्ञानं कीर्तिर्धर्मो विरागता।
षड्गुणास्त्वत्र निर्दिष्टाः क्रमो नात्र विवक्षितः।।का.१–८।।

कारिकार्थः इस आठवें श्लोकसे भगवान्के चरणोंके ऐश्वर्य, श्री, ज्ञान, कीर्ति, धर्म और वैराग्य–छः गुणोंका निर्देश किया गया है, अर्थात् सुर, श्री, मुनि, सात्त्वत, गोप और गोपीजन–इन छहोंके द्वारा अर्चित भगवच्चरण उक्त इन ऐश्वर्य आदि छः गुणोंसे युक्त हैं, किन्तु यहां क्रम विवक्षित नहीं है.

लेखः 'यदर्चितम्' इस श्लोककी व्याख्यामें एतदवतारे चतुर्धा पदोंका अभिप्राय यह है कि धर्मार्थी ब्रह्मादि देवोंने धर्म प्रवर्तक अनिरुद्ध व्यूहकी, पंचम स्कन्धमें लक्ष्मीके द्वारा कामदेवकी पूजाके निरूपणसे श्रीके द्वारा प्रद्युम्न व्यूहकी अविद्या(अज्ञान) का नाश चाहनेवाले होनेके कारण, मुनिजनोंके द्वारा अविद्या नाशक संकर्षण व्यूहकी और एक मात्र सत्त्वनिष्ठ सात्त्वत भगवद्भक्तोंके वासुदेव व्यूहकी पूजा की जाती है. इसलिए इस कृष्णावतारमें चारों ही हैं.

(सात्विक कल्पे) इस कथनका तात्पर्य यह है, कि उस सात्त्विक कल्पमें विष्णुरूप होकर सृष्टि करते हैं. और ब्रह्मा तथा शिवको उन(ब्रह्म) उन(शिव) दोनोंके कल्पों में सृष्टि करनेकी आज्ञा देते हैं ।।१–८ ।।

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम्।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः।।९।।

श्लोकार्थः मेरे अहो भाग्य ! सुन्दर कपोल, नासिका, मन्द मुस्कान, कृपापूर्ण दृष्टि अरुण कमलसे लाल नेत्र और घूंघरवाली अलकों से सुशोभित (मुकुन्द भगवान्के) मनोहर मुखारविन्दको मैं अवश्य देखूंगा; क्योंकि, हरिण मेरे दाहिने ओर जा रहे हैं. यह शकुन मुझे इसी शुभकी सूचना दे रहा है ।।९ ।।

व्याख्यार्थः इस तरह सारा निश्चय करके गोकुलजाते हुए अक्रूरजीने मार्गमें शुभ शकुन देखकर यह निश्चय कर ही लिया कि मैं अवश्य ही भगवान्के मुखारविन्दके दर्शन करूंगा ही; क्योंकि ये हरिण मेरे दाहिनी तरफ निशङ्क होकर घूम रहे हैं. भयसे भाग नहीं रहे हैं. मुझको कंसका सेवक समझकर भगवान् मेरेलिये, अपने मुखारविन्दके दर्शन नहीं देंगे, ऐसी कोई बात नहीं है; क्योंकि, मैं

तो उनके मुख कमलको देखूंगा. यह भी सम्भव है, कि मेरे अपराधका विचार करके रुष्ट हो सामने बिराजे रहें, ऐसा भी नहीं है; क्योंकि, क्रोधमें तो कपोल और नासिका टेड़ी हो जाती है. भगवान्के कपोल तथा नासिका तो बड़े सुन्दर, भक्ति और भक्ति रसको सूचित करनेवाले हैं. इस मुखारविन्दके विशेषणसे ज्ञात होता है, कि भगवान् रुष्ट नहीं, बडे प्रसन्न हैं.

यद्यपि मैं अपकार (अनिष्ट) करनेकेलिये भगवान्को लिवाने जा रहा हूं, तो भी वे मुझे अङ्गीकृत कर ही लेंगे; क्योंकि, उनका मुखारविन्द 'हासो जनोन्मादकरी च माया' व्यामोहक मन्द मुस्कानसे युक्त है. उस मन्द स्मितसे व्यामुग्ध होकर ही मैं उन्हें अपकारार्थ बुलाने जा रहा हूं. अतः इसमें मेरा अपराध नहीं है. वह मुख कमल केवल चाक्षुषज्ञान ही नहीं सारे ही ज्ञानोंका आधार भूत लाल कमल सी आंखोंसे सुशोभित है. नेत्रोंकी लालिमासे युद्ध सूचित होता है.

मोक्षदाता भगवान् मुकुन्दके ऐसे मुख कमलके दर्शनसे सभी फल सिद्ध हो जायेगा. यद्यपि भगवान्, मुख कमलके दर्शन मात्रसे मुक्ति प्रदान कर देते हैं इस सिद्धान्तको कुछ वेदान्ती लोग नहीं मानते हैं तो भी घुंघराली अलकोंसे अलङ्कृत मुखारविन्दका दर्शन मोक्ष दायक है इसमें कोई विवाद नहीं है, क्योंकि अलकें तत्त्वज्ञानी हैं यह पहले ध्यानके प्रसङ्गमें कह चुके हैं. वे भी अलकें(तत्त्वज्ञानी) जो स्वभावसे ही फैलने.(लम्बी लटकनेवाली हैं) ईर्ष्या छोड़कर गोलाकार होकर सभी मिलाकर भगवान्का आश्रय कर लेते हैं, तो फिर, उनके मोक्ष प्रदान कर देनेमें किसीको कोई सन्देह ही नहीं हो सकता. ये यहां बताई हुई सारी बातें मेरी इच्छासे ही हो रही हैं, अथवा मेरेलिये ही शुभ शकुन कर रही हैं. इसमें 'वै' कोई सन्देह नहीं है।।९।।

अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया।
लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं मह्यं न न स्यात् फलमञ्जसा दृशः।।१०।।

श्लोकार्थ: भगवान् श्रीकृष्णने अपनी इच्छासे ही-भूमिका भार उतारने केलिए नररूप धारण किया है. उनके उस त्रिभुवन कमनीय परम मनोहर श्याम शरीरके दर्शन क्या मैं आज कर सकूंगा? यदि दर्शन कर पाया तो अवश्य ही मेरे नेत्र सफल हो जाऐंगे।।१०।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकारके अक्रूरजी मार्गमें शुभ शकुनको भी देखकर भगवद्दर्शनका निर्धार करके 'अप्यद्य' इस श्लोकसे आज ही होनेका मनोरथ

करते हैं. यह दिन मेरेलिये बड़ा ही दुर्लभ होगा जब कि लीला करनेकेलिये अपनी और अपने भक्त ब्रह्मादिकी इच्छासे नर देह धारण करनेवाले, तथा सुन्दरताके एक मात्र स्थानभूत और मोक्ष दाता भगवान् विष्णुका,(किसी विभूतिरूपका नहीं) मैं निकटमें दर्शन कर सकूंगा. तब वह मेरेलिये ही होगा और मेरे नेत्रोंका परम(सहज) फल भी मेरेलिये ही होगा. मेरी आत्मा तो अवश्य ही मुक्त हो ही जायेगी तथा इन्द्रियोंकी सफलता होनेसे, मेरा जन्म भी सफल हो जायेगा।।१०।।

य ईक्षिताहंरहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रमः।
स्वमाययात्मन्रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते।।११।।

श्लोकार्थः जो सर्व द्रष्टा हैं, कार्यकारणके कर्ता होकर भी, जो अहंकारसे रहित हैं. जिन्होंने अज्ञानसे उत्पन्न भेदभावके भ्रमको अपने तेजसे ही दूर कर रखा है, किन्तु उस भेद(भ्रम)को देखनेकी इच्छासे अपनी मायाके द्वारा प्राण, इन्द्रिय बुद्धियुक्त देहधारी होकर जो अपने रचे हुए जीवोंके साथ व्रजभक्तोंके घरोंमें क्रीड़ा करते हुए संसारी जीव जैसे प्रतीत होते हैं ।।११ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार अक्रूरजीने हेतु तथा शुभ शकुनके द्वारा भगवान्के दर्शन शीघ्र हो जानेकी सम्भावना की. किन्तु यदि अवतार दशामें प्राकृत धर्मोंका सम्बन्ध हो, तो यह पूर्व कथित सम्भावना विपरीत हो जाती है. इसलिये सम्भावनाकी यथार्थताकेलिये अवतार दशामें भी उनमें प्राकृत धर्मोंके सम्बन्धका निषेध 'य ईक्षिता', इस श्लोकसे करते हैं. भगवान्में प्राकृत धर्म इसलिये नहीं हैं, कि अहङ्कार, गुण, गुणोंका कार्य तथा लौकिक परिमित शक्तिवाली इन्द्रियां उनमें नहीं हैं. जहां अहङ्कारादि नहीं होते, वहां प्राकृत धर्म भी नहीं होते. उनमें तो दिखाई देनेवाले अहङ्कारके कार्य लौकिक धर्म भी स्वरूपसे अभिन्न ही हैं. स्वरूपसे ही, वे धर्म भगवान्में दृष्टिगोचर होते हैं. उनका प्राकृत धर्मोंसे अल्प भी सम्बन्ध नहीं है.

भगवान्में कर्तृत्व दृष्टत्व आदिका अभिमान न होने पर भी, वे असत् सत् कार्य कारणके दृष्टा हैं. लौकिक दृष्टा अहङ्कार युक्त होता है; क्योंकि इन्द्रियोंमें अहं भावके अध्यासके बिना दृष्टा ही नहीं बन सकता. इन्द्रियोंमें अहं भावका अध्यास अथवा ममता होने पर ही अहङ्कार होता है. इसलिये वैदिक सिद्धान्तसे तथा तदतिरिक्त स्मार्त तथा पौराणिक सिद्धान्तोंमें भी अविद्या कृत **''स्वरूपाज्ञानमेक हि पर्व देहेन्द्रियासवः अन्तःकरणमेषां हि चतुर्धाध्यास उच्यते''**

अध्यास ही अहम्भावका मूल कारण है. ममताके पक्षको स्वीकार करने पर भी अहङ्कारकी अपेक्षा है ही, अर्थात् अहङ्कार होने पर ही, अन्य(लौकिक) धर्मका सम्बन्ध हो सकता है. भगवान् तो आनन्द मात्र करपादुमुखोदरादि ''चक्षुषश्चक्षु'' पाद नख श्रीमस्तक सर्वाङ्ग आनन्दमय हैं और सर्वथा अहङ्कार रहित होकर भी 'सतां–वानृत' सत् आनन्दका कार्य कारणका सर्व दृष्टा हैं और यह सब उसका ही कार्य है. उनका ज्ञान निर्विषय है, जो दीपककी तरह है. जैसे घरके एक कोनेमें धरा हुआ दीपक सारे भवनमें प्रकाश कर देता है उसी तरहसे भगवान्के ज्ञानमें सभी लोक प्रकाशित हो रहे हैं और प्रकाश्य पदार्थ गत दोषोंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है.

उन भगवान्में जैसे विषय दोष सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही गुणोंके द्वारा होनेवाले दोषोंका सम्बन्ध भी नहीं है, क्योंकि, उन्होंने अपने तेजसे ही सारे अज्ञान तथा अज्ञान जनित राजस और विश्वकी प्रतीतिरूप सात्विक भेदके भ्रमको अपनेसे दूर कर दिया है. अज्ञान–अन्धकारके दूरकर देने पर अन्धकारका तथा चोर आदिका भय फिर नहीं हो सकता है.(अवतार दशामें) भगवान्का स्वांशभूत जीवोंकी देह इन्द्रियादिका सम्बन्ध उनकी आज्ञा कारिणी, 'गच्छ देवि व्रजं भद्रे' सर्व भवन समर्था मायासे ही प्रतीत होता है वास्तविक नहीं है. उस अपनी मायाके द्वारा ब्रह्मरूप अपनेमें ही रचित प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरणोंसे युक्त सारे ही शरीररूपी घरोंमें वह भगवान् प्रकाशित हो रहा है. स्ववशीभूत मायासे ही जीवोंके देहादिकी प्रतीति होती है और वह इनमें आत्म प्रतीति हो ऐसी इच्छासे आत्म प्रतीतिकी सिद्धिकेलिये ही वे आत्म रचित अपनी आत्मामें ही भगवान्ने निर्मित किये हैं. ''तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्''.

वास्तवमें तो, सभी जगह सबमें भगवान् ही प्रतीत हो रहे हैं. इस प्रकारसे जब सभी शरीरोंमें(शरीररूप घरोंमें) विराजमान भी वे भगवान् उन देहादिके धर्मोंसे सम्बन्ध नहीं रखते हैं तो केवल वे स्वयं मायिक धर्मोंसे सम्बन्धवाले क्यों कर हो सकते हैं. तात्पर्य यह है, कि जीवोंमें भी, भगवान्की इच्छासे ही भगवद्रूप अलौकिक वे धर्म मायाके द्वारा लौकिकसे दिखाई देते हैं तो फिर साक्षात् भगवान्में वे लौकिक कभी नहीं हो सकते हैं. सदनोंमें विभिन्न(अनेक) देहोंमें जैसे उनके धर्मोंका उससे सम्बन्ध न होते हुए भी, मायासे सम्बद्धसे दिखाई देते हैं, वैसे ही सदनेषु–गोपीजनोंके घरोंमें नहीं रह करके भी वहां स्थितसे दीख पड़ते हैं,

क्योंकि आपमें ही मायासे ऐसी प्रतीति हो रही है. शरीर और घरकी समानता प्रत्यक्ष ही है. इसलिये 'इवादि' पदोंसे दोनोंका दृष्टान्त भाव मूलमें नहीं बतलाया है. अर्थके द्वारा तो दोनों(देह और घरों) में समानता ही है. वास्तवमें विचार करने पर तो यह 'आत्मा–आत्मैवेदं सर्व ही' यह सब जगत् है तब फिर वह किसके दोषसे युक्त हो. उससे भिन्न यहां कुछ भी नहीं है।।११।।

लेख: 'य ईक्षिता' इस श्लोककी व्याख्यामें 'ममत्तायां'पदका तात्पर्य यह है कि मेरी आंखसे मैं देखता हुं इस प्रकारसे ममतामें भी अध्यास ही मूल कारण है; क्योंकि अहन्ता ही ममताको उत्पन्न करती है, ममताकी जननी है. वैदिकेपि अर्थात् वैदिक पक्षमें तो ''सर्वमात्मैवाभूत्, तत्केन कंपश्येत्''वस्तुतः सब स्थानोंमें आत्म बुद्धि ही है, वहां अध्यास नहीं है. 'निर्विषयमेव' भगवान्के ज्ञानको निर्विषय बतलानेका आशय यह है कि वह सबका आत्मरूपसे ही ग्रहण करता है, विषय पदार्थ–रूप से ग्रहण नहीं करता. प्रकाशते अर्थात् प्रकाश भगवद्धर्म होनेसे सभी शरीरोंमें वही प्रकाशित हो रहा है. विभिन्न देह धारी जीवोंकी सृष्टि करके सबमें वही प्रविष्ठ है. इसीलिए इनमें प्रविष्ट हुए भगवान् ही प्रकाशित हो रहे हैं. जड़ देहेन्द्रियादिका अपना प्रकाश नहीं है.

उस प्रकाशमें, एकमात्र आश्रय भगवान्में देहादिका भान, माया कृत ही है; क्योंकि असलमें सबमें अनुप्रविष्ट हुए भगवान् ही उस जगत्के रूपसे प्रकाशका आधार भूत हैं. देह और प्राणादि समान ही हैं. इसलिए देहको प्राणादिसे अलग कथनसे उत्पन्न हुई अरुचिसे 'सदन'का दूसरा अर्थ गोपीजनोंका घर किया है. अर्थात् गोपीजनोंके घरोंसे सम्बन्ध नहीं रखनेवाले भी सम्बन्ध रखनेवालेसे प्रतीत हो रहे हैं. 'उभयोस्तुल्यत्वात्' इसी तरह प्राणादि भी भगवत् स्वरूप ही हैं तब प्राणादि सहित कहना उचित नहीं हो सकता; क्योंकि साथी तो स्वरूपसे भिन्न होने पर ही कहा जा सकता है. तात्पर्य यह है कि जैसे गोपिकाओंके घरोंमें नहीं रहते हुए भी भगवान् उनके घरोंमें स्थितसे प्रतीत होते हैं. इसी तरह प्राणादिसे असम्बद्ध भी प्राणादिवालोंसे प्रतीत हो रहे हैं. मूलमें इवादि पदोंके न होने पर अर्थके द्वारा देहों और गोपीजनोंके घरोंकी समानता है. इसीलिए दोनोंका दृष्टान्त भाव परस्परमें अर्थसे सूचित होता है।।११।।

यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगत् यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः।।१२।।

श्लोकार्थ: जिन श्रीकृष्ण भगवान्के गुण कर्म और जन्म की मंगलमय कथाएं सब पापोंको नष्ट कर देती हैं तथा जगत्को पवित्र और सुशोभित करती हैं; वे व्रजमें विराजमान हैं. जिन कथाओं में भगवान्की चर्चा नहीं रहती है, वे अलंकारोंसे पूर्ण होने पर भी वस्त्र आभूषणों से युक्त शव शरीरकी तरह व्यर्थ ही हैं।।१२।।

व्याख्यार्थ: और यदि भगवान्में प्राकृत धर्मोंका लेश भी हो, तो फिर प्राकृत पुरुषोंके गुण गान करनेसे जैसे किसीके पापोंका नाश नहीं होगा वैसे ही भगवान्के गुण, नाम आदिका कीर्तन करने पर भी पाप क्षय नहीं हो; किन्तु पापोंका क्षय भगवद्गुणानुवादसे अवश्य हो जाता है यह 'यस्याखिलामीवहभिः' इस श्लोकसे कहते हैं. भगवान्के नाम सभीके सब पापोंको नष्ट कर देते हैं. केवल पापोंका ही नाश नहीं करते; किन्तु वे परम मङ्गल दायक भी हैं. भगवान्के उन नाम, गुण सत्व आदि, गोवर्धन धारण आदि कर्म तथा देवकी पुत्र आदि पदोंसे कहे जानेवाले जन्मोंसे युक्त जिनकी वाणियां हैं अर्थात् जो अपनी वाणीके द्वारा भगवान्के नाम, गुण, कर्म और अवतारोंका कीर्तन करते रहते हैं, उन जीवोंकी उनसे युक्त वाणियां ही जीवित हैं; क्योंकि भगवान्के गुण वाणीके प्राणरूप हैं. वे ही सुशोभित, परिपुष्ट और महिमा युक्त होकर सारे विश्वको पवित्र कर देती हैं.

शरीरमें जैसे प्राण, धर्म और अन्न हैं, वैसे ही वाणी और मनमें, भगवान् के गुण, जन्म और कर्म ये तीनों प्राण, अन्न तथा धर्मरूप हैं. उनके गुण, जन्म, कर्म तो इन प्राणादि तीनोंसे भी अधिक हैं; क्योंकि, सिद्ध वस्तुमें, फिर भी साध्य वाक्य बोलनेसे उस सिद्ध वस्तुकी अधिकता ही बोधित होती है. अर्थात् प्रमाण सिद्ध वस्तुको फिर प्रमाणान्तरसे सिद्ध करें, तो उस वस्तुकी दृढ़ता–उत्कर्ष ही जाना जाता है और जो वाणियां भगवान्के नाम गुणादिका कीर्तन नहीं करती, वे जैसे निर्जीव शरीरको फिर वस्त्र, आभूषणोंसे अलङ्कृत करने पर भी अमङ्गल ही रहता है, वैसे ही वाणियां भी अमङ्गलरूप ही हैं; क्योंकि न तो भगवान्के गुणरूप प्राण हैं, न उन प्राणोंका पोषक भगवज्जन्म कीर्तनरूप अन्न है, और न उनके कर्मरूप प्राण कार्य धर्म ही हैं. इससे यह सिद्ध है कि भगवान्में प्राकृत धर्मोंका किञ्चिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं है।।१२।।

स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत्।
यशो वितन्वन् व्रज आस्त ईश्वरो गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम्।।१३।।

श्लोकार्थः जो अपनी बनाई हुई वर्णाश्रम धर्मकी मर्यादाके पालक देवोंका कल्याण करनेवाले हैं, जिनके परम मङ्गलमय यशका देवगण गान करते हैं, वही परमेश्वर यदुवंशमें अवतार लेकर अपने पवित्र यशको फैलाते हुए इस परम व्रजको सुशोभित कर रहे हैं।।१३।।

व्याख्यार्थः वहीं यह भगवान् अपने ऐश्वर्य वीर्यादि सकल दिव्य धर्मों सहित अवतीर्ण हुए हैं यह 'स चावतीर्णः' इस श्लोकसे कहते हैं. वह भगवान् ही अन्तर्यामीरूपसे हृदयमें, फिर बाहर भी, अथवा बलदेवजीमें शेषजीके रूपसे अवतीर्ण हुए हैं. 'किल' इसमें लोक वेद प्रमाण है. वह भगवद्भक्त(वैष्णव) यादवोंके वंशमें वंशकी प्रसिद्धिकेलिये अवतीर्ण हुए हैं; क्योंकि ऐसे 'महतो महीयान्'का अवतार चाहे कहीं साधारण वंशमें नहीं होता.

उन(भगवान्)के अवतार लेनेके दो कारण हैं. एक तो यह है कि जगत्में उनकी बनाई हुई मर्यादाकी रक्षा करनेवाले देवोंको सुख देना है. उन देवोंको जिस प्रकारसे सुख हो, वैसा ही करते हैं. वह देवसुख अवतारके द्वारा ही होता है. इसीलिये अवतार धारण करते हैं. अवतारका दूसरा मुख्य प्रयोजन अपने यशका विस्तार करना है. जिससे उस यशका गान करके आगे उत्पन्न होनेवाले जीवोंको भी मोक्ष प्राप्ति हो जावे. वे भगवान् अपने उन कर्मोंके सिद्ध होने तक व्रजमें बिराज रहे हैं.

किसी उत्कृष्ट(तीर्थादि) स्थानमें न बिराजकर व्रजमें बिराजकर, विचित्र चरित करनेका कारण यह है, कि वह ईश्वर(सर्व समर्थ) है. रहस्य सिद्धान्तमें सिद्ध कर दिया गया है, कि हीन स्थानमें रहकर भी, वे ऐसी क्रीड़ा लीला करते हैं, जिससे, सबको मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है. इसीलिये उनके चरित्रोंको सारे जीव और सभी देवगण भी गाते हैं; क्योंकि वे देव, तिर्यङ्, नर, देवादि सभीका मङ्गल करते हैं।।१३।।

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम्।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः।।१४।।

श्लोकार्थः उनके त्रिभुवन सुन्दर रूपको देखकर सभी नेत्रवाले प्राणी परम आनन्दित होते हैं. महात्मा पुरुषोंके एकमात्र रक्षक तथा गुरु श्रीकृष्णका वही मनोहर रूप, आज मैं देखूंगा, जिसको लक्ष्मीजी बड़ी प्रीतिसे चाहती है; क्योंकि आज सबेरे ही सबेरे मुझे अच्छे-अच्छे शकुन दिखाई दे रहे हैं।।१४।।

व्याख्यार्थः इस प्रकारसे भगवान्‌की महिमा कहकर, उनकी अलौकिकता सिद्ध की. उनका दर्शन स्वतः पुरुषार्थरूप है. इसलिये 'तं त्वद्य' इस श्लोकसे अक्रूरजी भगवान्‌के दर्शनकी कामना करते हैं. मैं आज ही उन भगवान्‌के निश्चय ही दर्शन करूंगा. वे महापुरुषोंके प्राप्तव्य अथवा ज्ञानरूप और उपदेशक हैं. ज्ञान प्राप्तिके साधनरूप गुरु हैं. इस प्रकार वैदिक रीतिसे उनकी पुरुषोत्तमता का वर्णन करके लौकिक रीतिसे भी वे पुरुषोत्तम हैं, यह सिद्ध करते हैं. वे त्रिभुवनमें सुन्दर अथवा त्रिभुवनोंके पति हैं. वे 'चक्षुष्मतां फल मिदं' नेत्र धारियों (ज्ञान नेत्रवाले)के परम फल हैं. भगवान्‌के दर्शन करके उन्हें बड़ा आनन्द होता है. वे त्रिभुवन सुन्दर और सबके पति होनेसे, लौकिक फलरूप हैं; क्योंकि, लोकमें सबको ही उत्सव और पतिकी अपेक्षा होती है. इस तरह लौकिक तथा वैदिक रीतिसे फलरूप वर्णन करके, यह सूचित किया कि उनका दर्शन परम फलरूप है.

इस लोकमें 'तया विनाक्व देवत्वं' लक्ष्मी सकल पुरुषार्थरूप है. ऐसी लक्ष्मीके भी वे एक मात्र मनोनीत आश्रय हैं, निवास स्थान अभिलषित है. वे मेरेलिये आज अवश्य दर्शन देवेंगे ही; क्योंकि आज ये प्रभात शुभ शकुन दिखाकर मुझे क्षण–क्षणमें आनन्दित कर रहे हैं।।१४।।

अथावरूढः सपदीशयो रथात् प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये।
धिया धृतं योगिकिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन् व्रजौकसः।।१५।।

श्लोकार्थः उन त्रिभुवन कमनीय भगवान्‌के दर्शन करते ही मैं रथसे उतर जाऊंगा. योगीजन अपने लाभकेलिए प्रधान पुरुष श्रीकृष्ण बलदेवके जिन चरणोंको केवल बुद्धि(भावना)के द्वारा हृदयमें स्थापित करते हैं–साक्षात् दर्शन नहीं पाते–उनका प्रत्यक्ष दर्शन करके मैं प्रणाम करूंगा. तदनन्तर उनके सखा गोपों को भी प्रणाम करूंगा ।।१५ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार अक्रूरजी भगवद्दर्शनके मनोरथको कहकर, 'अथावरूढः' इस श्लोकसे दर्शनके बादका मनोरथ करते हैं. मैं सम्भावित भगवद्दर्शन करते ही, रथसे उतर जाऊंगा और उनके चरणको प्रणाम करूंगा. वे बालक नहीं हैं. वे तो प्रधान पुरुष और ईश्वर हैं, माता पिताके भी स्वामी हैं. उनके अतिरिक्त सभी जीव गर्भसे ही दास हैं. केवल वे ही सारे गर्भ दासोंके स्वामी हैं. आवेशावतार बलभद्र और साक्षात् अवतारी श्रीकृष्णके चरणोंमें भेद न होनेके

कारण मूलमें 'चरणं' एक वचनका प्रयोग किया गया है.

शङ्का: जब उनका दर्शन मात्र ही सारे पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला है, तब फिर नमस्कार करनेका प्रयोजन क्या है? इसका समाधान 'स्वलब्धये' इत्यादि चार पदोंसे करते हैं. जिस चरणारविन्दका योगी लोग आत्म प्राप्तिकेलिये बुद्धिसे मानसिक ध्यान धरते हैं. जब भावनासे हृदयमें धारण किया हुआ भी वह भगवच्चरणारविन्द योगियोंको आत्मगति दे देता है, तो फिर साक्षात् नमस्कार किया गया वह चरण कमल क्या-क्या नहीं कर सकेगा? इसलिये भगवच्चरण कमलको नमस्कार करनेका मनोरथ भी उचित है.

भगवान्के चरणमें नमस्कार करनेका मनोरथ करके अक्रूरजी, योगियोंकी तरह मोक्षकी प्रार्थना न करके चरणसे भक्तिकी ही सिद्धि चाहते हैं. वे आगे कहते हैं, कि भगवान् रामकृष्णके साथ-साथ उनके सखा गोपालोंको तथा सभी व्रजवासियोंको नमस्कार करूंगा. इस प्रकार भगवान्के सारे ही धर्मोंका सबसे उत्कृष्ट ज्ञान होना भक्तिका कारण है. भक्तिको सिद्ध करनेवाला है।।१५।।

अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम्।
दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम्।।१६।।

श्लोकार्थ: मैं उन सर्व शक्तिमान् भगवान्के चरणों में गिर पडूंगा, तब वे वेगशाली कालरूपी सर्पसे घबराए हुए, शरण चाहनेवाले प्राणियोंको अभय कर देनेवाले अपने हस्तकमलको क्या मेरे शिरपर धरेंगे? अवश्य ही धरेंगे ।।१६ ।।

व्याख्यार्थ: अब अक्रूरजी इस 'अप्यंघ्रिमूले' श्लोकसे भगवान्की कृपारूप मनोरथ करते हैं. प्रेम भक्तिके अतिशयसे नमस्कार न करके, पहले चरणोंमें गिर जाऊंगा. वे ज्ञान तथा कृपा करनेमें समर्थ हैं. इसलिये चरणोंमे पड़े हुए, अपरिचित भी, मेरे शिर पर अपना श्रीहस्त कमल रख ही देंगे. श्रीहस्तके मेरे मस्तक पर रखनेसे ही मैं परम सुखी हो जाऊंगा. श्रीहस्तको कमल सदृश कहनेका तात्पर्य यह है कि कमल भी वही कार्य कर सकता है, जो जलसे हो सकता है. विष तापरूप है. तापकी शान्ति जैसे जलसे होती है, वैसे ही, हस्त कमल भी तापको शान्त(दूर) कर देता है.

यहां तो काल ही महा सर्प है, जिसके वेगसे, दूरसे देखकर ही, भयभीत हुए, काल ग्रस लेगा, ऐसा समझकर घर कुटुम्बको छोड़ देनेवाले, सन्यासी, ज्ञानी तथा गृहस्थी लोग भगवान्की शरण खोजते हैं. उनको भगवान्का वह श्रीहस्त

कमल, अभय प्रदान करनेवाला है. कारण यह है, कि जलमें रहे कमलमें प्रवेश करनेवालेको, सांपका भय नहीं रहता, क्योंकि, कमलमें सांप प्रवेश नहीं करता. इसीलिये श्रीहस्तको कमल सदृश बतलाया है. देव आदि योनिवाले तो अन्य साधन भी कर सकते हैं. पशु पक्षी योनि अज्ञानी ही हैं. इसीलिये मूलमें मनुष्यों केलिये ही केवल भगवान्‌की शरणमें जाना कहा है।।१६।।

समर्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम्।
यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत्।।१७।।

श्लोकार्थः उस करकमलमें केवल जल तथा साधारण पूजा सामग्री अर्पण करके ही राजा बलि और इन्द्रको त्रिभुवनका राज्य प्राप्त हुआ है. भगवान् श्रीकृष्णने उत्तम कमल गन्धसे युक्त अपने उसी करकमलसे व्रज रमणियोंकी विहारकी थकावट दूर की है ।।१७ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार भगवान्‌के चरणारविन्दकी अनिष्ट निवारकरूपसे स्तुति करके, 'समर्हणं यत्र' इस श्लोकसे उनके करकमलकी इष्ट दातारूपसे अक्रूरजी स्तुति करते हैं. भगवान्‌के श्रीहस्तमें थोड़ी सी देनेकी वस्तु(पूजा सामग्री) समर्पण करके इन्द्रने और बलि राजाने भी त्रिलोकीका राज्य प्राप्त कर लिया है. यह इन्द्र पूर्व जन्ममें कौशिक गोत्रमें उत्पन्न है और राजा बलिकी तरह इसने भी भगवान्‌के श्रीहस्तमें सर्वस्व निवेदन कर दिया था. उसकी कथा कहीं प्रसिद्ध होगी. बलि राजाकी कथा तो प्रसिद्ध ही है.

अवापः इस मूलस्थ अनद्यतन परोक्ष भूत कालके प्रयोगसे ज्ञात होता है, कि इस सृष्टि प्रवाहके सदा इसी प्रकार चलते रहने(नित्य होने)के कारण पहले भी बलि राजाने इन्द्र पदको प्राप्त कर लिया होगा.

अथवाः ''छन्दसि लुङ्, लङ्, लिट्'' इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार यह अवाप लिट् भविष्यत् अर्थमें प्रयुक्त हुआ है. इस प्रकार सर्व शक्तिमान् भगवान्‌का चरण कमल अनिष्टको दूर करनेवाला है और श्रीहस्त कमल वाञ्छित् मनोरथको देनेवाला है अनिष्ट निवारक तथा इष्ट दायकताका वर्णन करके आगे 'यद्वा विहारे' इत्यादि मूलस्थ पदोंसे बतलाते हैं कि आपका हस्त कमल एक मित्रकी तरह भी कार्य करता है. सुगन्धित श्वेत पुष्पकी सी गन्धवाले उस श्रीहस्त कमलने स्पर्श मात्रसे ही, व्रज सीमन्तिनी सम्बन्धी विहारमें, उनके सहज सुगन्धित श्रम जलको दूर कर दिया है.

सुगन्धित, शीतल, मन्द–इन तीन प्रकारकी वायुसे थकान दूर होती है. भगवान्‌के, पवन जैसे मन्द, सुगन्धित और शीतल, श्रीहस्त स्पर्शसे ही उनकी थकावट(श्रमजल)को दूर करनेवाला है. इस कथनसे यह सूचित किया गया है, कि अक्रूरजी सदा ही भगवान्‌के चरितोंका अनुसन्धान(चिन्तन) करते थे. और दूसरी बात यह भी सूचित की गई है कि वह करकमल सभी लोगोंको उनके मनोरथानुसार सारे ही फल देनेवाला है. मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंको मुक्ति, सकाम जनोंको अभ्युदय और भक्तजनोंको परमानन्द देनेवाला है।।१७।।

लेख : 'यद्वा विहारे' इस श्लोककी व्याख्यामें 'सौगन्धिक–गन्धि'यह प्रथमान्त पद श्री हस्त कमलका विशेषण है. यह पद यहां कर्तृपद है और श्रम यह कर्म है. 'गतमिति' पदका तात्पर्य श्रम जल चला गया है, जो श्री हस्तको वायुके तुल्य सूचित करनेकेलिए कहा है. 'मान्धं च सिद्धं' पदोंका अभिप्राय यह है कि श्रम जलका श्रीहस्तसे पोंछना न कहकर केवल स्पर्शमात्रसे ही दूर कर देना कहनेसे श्रीहस्तकी वन्दता सिद्ध होती है।।१७।।

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक्।
योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा।।१८।।

श्लोकार्थ: अक्रूरजी आगे मन ही मन में सोचते हैं कि यद्यपि मैं कंसका दूत बनकर उसके भेजनेसे ही जा रहा हूं तो भी वे सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण मुझे अपना शत्रु कभी नहीं समझेंगे. वे अपनी ज्ञान दृष्टिसे केवल मेरे मनकी ही नहीं, सारे ही जगत्‌की बाहरी तथा भीतरी चेष्टाओंको भी देखते रहते हैं।।१८।।

व्याख्यार्थ: शङ्का शत्रुका कार्य सिद्ध करनेवाला भी तो शत्रु ही होता है. इसलिये अक्रूरजी आप तो भगवान्‌के शत्रु ही हो. अतः वे श्रीकृष्ण केशी आदिकी तरह आपका भी वध ही करेंगे. उनसे आप कृपाकी आशा क्यों कर रहे हो? इसका उत्तर वे स्वयं, 'न मय्युपैष्यति' इस श्लोकसे दे रहे हैं. भगवान् श्रीकृष्ण मुझ पर शत्रु बुद्धि नहीं करेंगे. वे मुझे शत्रु नहीं मानेंगे; क्योंकि, वे तो अच्युत हैं. उन्हें तो किसीसे भय नहीं है. इसलिये अपकारकरूपसे उनका कोई भी बैरी नहीं है. दैत्योंका वध तो उन्होंने उन दैत्योंके और लोकोंके उपकारकेलिये किया है.

यद्यपि मैं कंसका दूत हूं, कंसने ही मुझे भेजा है, और जितना उसने कहा है, उतना ही सब करूंगा. इसलिये लोक दृष्टिसे तो, मुझ पर शत्रु बुद्धि करना

चाहिये, तो भी वे अच्युत भगवान् मुझको शत्रु नहीं समझेंगे. मार देनेकी तो आशङ्का ही नहीं है. क्योंकि मैंने कोई ऐसा भारी अपराध ही नहीं किया है. कदाचित् यही अपराध मानकर कि मैं मुख दर्शनके बहानेसे, उनका अपकार कराने ले जाऊंगा वे मेरा वध भी कर देंगें तो वह मेरे ही हितकेलिये करेंगे, क्योंकि वे सारे विश्वके दृष्टा हैं. उनके साथ छलकी सम्भावना नहीं है. वे यह जानते हैं, कि यह, मैं उनके साथ कपट नहीं कर रहा हूं और न उनका अतिक्रमण ही कर रहा हूं.

वे तो स्वरूपसे स्थित रह कर ही चित्तकी बाहरकी और भीतरकी सारी चेष्टाओंको देखते हैं. यदि कभी चित्तकी वृत्ति अहित करनेकी हो जाये तो वध कर देना ही उचित है. चित्तमें अहितकी भावना नहीं है. तो वे नहीं मारेंगे. केवल यह ही नहीं; वे तो क्षेत्रज्ञ भी हैं. ''महाभूतान्यहङ्कारः'' इस वाक्यानुसार वे सारे शरीरोंको जानते हैं. वो भी निर्मल चक्षुसे देखते हैं. 'चक्षुषश्चक्षुः' आंखसे भी आंख निर्मल होती है. और निर्मल आंख ही वस्तुकी वास्तविकता देख सकती है. इसलिये जब सारा वृत्तान्त उनके प्रत्यक्ष(सामने) हैं तो मेरे वृत्तान्तको भी वे जानते हैं. इसलिये मुझ पर वे शत्रु बुद्धि नहीं करेंगे. चित्तके तीनरूप हैं बाहरी कार्य, भीतरी इच्छा और ज्ञान. इस प्रकारसे ज्ञानेच्छा प्रयत्नके कारण चित्तकी सच्चिदानन्द रूपता होती है।।१८।।

लेख: 'न मय्युपैष्यति'–इस श्लोकमें 'चेतसोऽन्तर्बहिरीहितं' मूलस्थ पदोंकी व्याख्यामें 'चित्तस्य बहिः कार्यम्' इत्यादि पदोंका अभिप्राय यह है कि चित्तकी बाहरी चेष्टा कार्य करना और भीतरी चेष्टा इच्छा और ज्ञान है. ज्ञानचिद्रूप है, इच्छा सुखका धर्म है इसलिए आनन्दरुपा है और कार्य सद्रूप है. इस प्रकार चित्त चिद्रूप, आनन्दरूप और सद्रूप है।।१८।।

अप्यंहिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं मामीक्षितासौ स्मितमार्द्रया दृशा।
सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम्।।१९।।

श्लोकार्थ: उनके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर जब मैं उनके आगे खड़ा हो जाऊंगा तब क्या वे मन्द मुस्कानके साथ दया दृष्टिसे मेरी और देखेंगे? यदि ऐसा हुआ तो उसी समय मेरे समस्त पातक नष्ट हो जायेंगे और निःशङ्क होकर परम आनन्दको पाऊंगा।।१९।।

व्याख्यार्थ: फिर भी दुष्ट कंसका संसर्ग दोष तथा कंसके द्वारा मिले हुए अन्नका भक्षण करनेके दोषसे भगवान् अक्रूरको अङ्गीकार नहीं करेंगे ऐसी

आशङ्काको दूर करते हुए अक्रूरजी 'अप्यंह्रिमूले' इस श्लोकसे मनोरथ कहते हैं. मैं अपने पहिले किये हुए पुण्योंके कारण भगवान्‌के दर्शन करते ही उनके चरणोंमें गिर पड़ूंगा. तब मेरा सब अपराध नष्ट हो जायेगा और मुझ पर भगवान्‌को दया आ जावेगी. उनकी दया दृष्टिसे मेरे सारे पाप नष्ट हो जायेंगे और निर्भय होकर परम आनन्दको प्राप्त करूंगा. तभीसे मैं निःशङ्क तथा शक्ति सम्पन्न हो जाऊंगा. उर्जित(शक्ति शाली) हुए बिना भगवान्‌के आगे जाया ही नहीं जाता है.

मैं अन्य मनस्ककी तरहसे आक्रमण अथवा उल्लङ्घन करके नहीं जाऊंगा; मैं तो सावधान होकर सावधानीसे ही उनके अनन्य शरणागत हो जाऊंगा. हाथ जोड़कर खड़े हुए मुझ पर उनकी शत्रुबुद्धि नहीं रहेगी. इसीलिये ये भावनामें ही प्रत्यक्ष हुए भगवान् मेरी ओर अवश्य देखेंगें और फिर सामने चला जाऊंगा तब तो अवश्य ही देखेंगें ही. मेरे व्यवहार तथा पहलेके दुरात्मभावका स्मरण करके वे मुस्कुरायेंगे और उनकी दृष्टि प्रेमार्द्र हो जावेगी. इस प्रकारसे भगवान्‌की दया दृष्टि, मन्द हास और स्नेह–इन तीनोंके युक्त हो जाने पर पापोंके नाश होनेमें देश, काल तथा कर्मकी अपेक्षा ही नहीं रहेगी और मैं शीघ्र ही निष्पाप हो जाऊंगा. मेरी पापोंकी वासना भी दूर जा गिरेगी. इस तरह(भगवान्‌ने मुझ पर बड़ा ही उपकार किया है) फलकी सिद्धिसे मुझे अत्यन्त सन्तोष मिलेगा. पहले जितना अपराध आगे नहीं होवेगा और प्रथमका अपराध क्षमा कर देंगे तो आगेके अपराधकी क्षमामें भी कोई सन्देह नहीं है. इस प्रकारसे मैं सभी प्रकारसे शङ्कारहित तथा भगवान्‌के भक्तोंमें तथा भगवत्–सम्बन्धी कार्योंको करनेमें मैं समर्थ हो गया. इन सभी बातोंका मूल कारण भगवान्‌का दर्शन है. उनके दर्शनसे ही मैं सब प्रकारसे आनन्दित, निष्पाप, सन्तुष्ट, निःशङ्क तथा समर्थ हो जाऊंगा।।१९।।

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम्।
आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे बन्धश्च कर्मात्मक ऊच्छ्वसित्यतः।।२०।।

श्लोकार्थः मैं श्रीकृष्णका परम मित्र और सजातीय हूं. उनके सिवाय कोई और इष्टदेव नहीं है. यदि वे अपनी विशाल भुजाओंके द्वारा मुझे अपने हृदयसे लगा लेंगे तो मेरी आत्मा देह–तीर्थके समान अत्यन्त पवित्र हो जायेगी और इस देहके सारे कर्म बन्धन ढीले पड़ जायेंगे।।२०।।

व्याख्यार्थः 'सुहृत्तमम्' इस श्लोकसे अक्रूरजी फिर अन्य मनोरथ करते

हैं. वे कहते हैं कि भगवान् अपनी विशाल भूजाओंसे क्या 'उनका' मेरा आलिङ्गन करेंगे? यदि ऐसा किया तो मेरा शरीर जो अभी तीर्थ नहीं है तीर्थरूप हो जायेगा. तीर्थ तो दूसरोंका भी उद्धार कर देता है, तो फिर मेरा उद्धार तो निश्चित.

आलिङ्गन: अन्तःकरण सम्बन्धियोंका, देह देह सम्बन्धियोंका तथा भक्तोंका शास्त्रानुसार तीनोंका होता है. मैं भगवान्का अत्यन्त स्नेही(सुहृत्तम) उनके गोत्रका तथा भक्त एक मात्र उन्हींको देवता माननेवाला हूं. यद्यपि लोकमें मेरी उनके साथ घनिष्टता प्रसिद्ध नहीं है तो भी वे अपने अनुभवसे स्वयंको दृढता पूर्वक भगवान्का सुहृत्तम बतलाते हैं. इस प्रकारसे भगवान्के साथ ये तीनों सम्बन्ध रखनेवाले मेरा आलिङ्गन वे अवश्य ही करेंगे.

मूलमें आलिङ्गन करनेके सुहृत्तम, ज्ञाति, अनन्यदैवत ये तीन कारण बाधक न होने, आवश्यक होने और कार्यकेलिये लिखे गये हैं. यहां देहको आत्मा कहना अक्रूरजीकी मनुष्य बुद्धिके अनुसार कहा गया है. अथवा भगवान्का स्पर्श होने पर देहकी उत्तमताको विख्यात करनेकेलिये देहको आत्मा कहा है. और यह कहना उचित ही है. अक्रूरजीकी मनुष्य बुद्धिका अनुसरण करके व्याख्यामें लिखा गया है कि श्रीअङ्गमें अन्यकर मस्तकादि अङ्गोंकी अपेक्षा हीन अङ्ग है. ऐसे भगवच्चरणसे भी सारे त्रिभुवनोंको पवित्र करनेवाले गङ्गादि तीर्थोंका उद्गम होता है. तो चरणसे उत्तम अन्य भगवान्के अन्य अङ्गोंसे असङ्ख्य तीर्थ उत्पन्न होते हैं. तब तो उनके आलिङ्गनकर लेने पर देह गङ्गादि तीर्थोंसे भी उत्तम और माहात्म्य युक्त हो जाता है; तथा शरीरके अथवा मेरे (अक्रूरके) कर्म बन्धन उसी क्षण कट जाते हैं।।२०।।

लब्धाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः।
तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत्।।२१।।

श्लोकार्थ: इस प्रकार श्रीअङ्ग स्पर्शका सुख पाकर हाथ जोड़कर जब मैं नम्र भावसे उनके सामने खड़ा होऊंगा, तब महायशस्वी श्रीकृष्ण 'हे तात! हे अकूर!' कहकर मुझसे संभाषण करेंगे. तब मेरा यह मानुष जन्म सफल हो जावेगा. जो जन परम पूज्य श्रीहरिके आदरका पात्र नहीं है, उसके जन्मको धिक्कार है।।२१।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार गत दो श्लोकोंसे मन और शरीरके सम्बन्धकी प्रार्थना करके अक्रूरजी 'लब्धाङ्गसङ्गं' इस श्लोकसे वाणीके सम्बन्धकी प्रार्थना

करते हैं. पहले कहे हुए धर्मोंका पुनः अनुवाद अनुवृत्तिका सूचक है, विकल्पका सूचक नहीं है. भगवान्के श्रीअङ्गका स्पर्श करके तीर्थरूप हुए नम्र 'तो भी गर्व नहीं करनेवाले', और हाथ जोड़कर खड़े हुए मुझसे वे 'हे अक्रूर हे तात ' मेरा नाम लेकर सम्भाषण करेंगे; क्योंकि नाम लेकर सम्बोधित करना महत्व, पिताकी समानता तथा स्नेहका सूचक होता है. भगवान्का सभी जगह सम्मान, कीर्ति और प्रतिष्ठा होती है. इसलिये ये सारी वस्तुएं(उरुश्रवा) उनके पास अत्यधिक हैं. जिसके पास जो वस्तु अधिक होती है, वह उसके पास आनेवालोंको वही वस्तु देता है. इस सर्व साधारण नियममें भगवान् मेरा सम्मान करेंगे.

अक्रूरजी तो स्वभावसे और कुलसे भी महापुरुष ही हैं. तब ही तो इनका यादवकुलमें जन्म हुआ. इसलिये श्रीकृष्णने यदि इनका अङ्गीकार-सम्मानादि नहीं किया तब भी इनकी क्या हानि होगी? क्या बिगडेगा? इस शङ्काके उत्तरमें स्वयं कहते हैं कि 'महतो महीयान्' भगवान् जिसका आदर न करें, उस मनुष्यके जन्मको धिक्कार है. यद्यपि सदा सम्मानकी अपेक्षा नहीं होती, तो भी समय पर सम्मानित नहीं हुए पुरुषका जन्म व्यर्थ ही है; क्योंकि उसके ऐसे जन्मसे कुछ लौकिक कार्य भी सिद्ध नहीं होता है. इसी बातको बतलानेकेलिये मूलमें धिक् शब्द कहा है।।२१।।

न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा।
तथापि भक्तान् भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः।।२२।।

श्लोकार्थः वास्तवमें भगवान् समदर्शी हैं उन्हें न कोई प्रिय है न अतिप्रिय है, न शत्रु है और न कोई उपेक्षाका ही पात्र है. फिर भी जैसे कल्पवृक्ष अपने पास आनेवालेकी कामनाको पूरी करता है, वैसे ही उनको जो जिस भावसे भजता है, उसको वे भी उसी भावसे भजते हैं।।२२।।

व्याख्यार्थः यद्यपि यह सत्य है कि वे भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम हैं, उन्हें जाति, गोत्र तथा बन्धुकी अपेक्षा नहीं है. मैं तो अत्यन्त हीन हूं, तो भी वे मेरा आदर करेंगे ही, मेरा मनोरथ सिद्ध ही होगा यह 'न तस्य' इत्यादि श्लोकसे कहते हैं. वास्तवमें भगवान् सबके ही स्वरूप हैं, तो भी बीचमें भगवान्के साथ पांच व्यवधान होनेसे वे सर्वरूप प्रतीत नहीं से हो रहे हैं. लोकमें जीवोंके आपसमें एक दूसरेके साथ पांच सम्बन्ध होते हैं. अपेक्षा, उपेक्षा और द्वेष भेदसे बुद्धि तीन प्रकारकी है. देह सम्बन्ध और मित्र भाव भेदोंसे अपेक्षा दो प्रकारकी है. स्वयं बैर

करने अथवा किसीके अपकार करने पर. द्वेष भी दो प्रकारका होता है. उनमें अत्यन्त प्रिय देह सम्बन्धसे होता है और अत्यन्त सुहृत् मित्रभावसे होता है. भगवान् सबके मित्र हैं, यही नहीं, वे तो सबके घनिष्ट मित्र हैं, सुहृत्तम हैं.

भगवान्का कोई अप्रिय द्वेष पात्र तथा द्वेष्टा द्वेषका हेतु तथा विपरीत भी कोई नहीं है. वे तो किसीके कुछ भी नहीं है. क्योंकि ये सारे शत्रु मित्रादि देहके ही धर्म हैं. इसलिये आनन्द मात्र आकार भगवान्से लोक रीत्यानुसार न कोई आदर पाता है और न कोई तिरस्कार ही; क्योंकि वे किसीका अथवा कोई उनका अपकार तथा द्वेष पात्र नहीं है. यद्यपि यह सब सत्य है, तो भी वे मेरा भक्ति शास्त्रके अनुसार सब प्रकार आदर करेंगे ही; क्योंकि 'ये यथा मां' अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भक्तोंको वैसे ही भजते हैं; जैसे भक्त उनको भजते हैं.

शङ्का: भक्त तो भगवान्को नमस्कार करता है. उनके पाद-सवाहन-पांव दबाता है. और तुलसी पत्र अर्पण करता है. बदलेमें भगवान् भी भक्तके साथ वैसा ही भजने करने लग जाये, तब तो बड़ा ही अनर्थ होगा? इस शङ्काकी निवृत्ति यहां कल्पवृक्षके दृष्टान्तसे की है. जैसे कल्प वृक्ष उसके निकट जानेवालेको ही उस जानेवालेका वाञ्छित ही अपेक्षित ही फल देनेसे विषम नहीं होता, वैसे ही सर्वात्मक भी भगवान् सदा निकट भजनेवाले भक्तोंका ही उनका अपेक्षित ही देते हैं उनकी कृति अथवा अपनी इच्छासे नहीं देते और विषम भी नहीं होते. "**वैषम्यनैर्घृण्ये न, सापेक्षत्वात्**" निकटस्थोंको भक्तोंको अपेक्षितका दान करनेसे विषमता मान ली जायेगी तो कोई व्यवस्था ही नहीं रहेगी. कर्मानुसार फल देते हैं उनका आश्रय करनेसे क्यों? यह कहना तो तुच्छ है; क्योंकि कर्मानुसार फल देनेसे तो भगवान्का कुछ उत्कर्ष नहीं रह जाता. इसलिये कल्प वृक्षकी तरह वे उनके आश्रितोंकेलिये ही पुरुषार्थ देते हैं, उनका आश्रय नहीं करनेवालोंको नहीं देते हैं. इस प्रकारसे सारी व्यवस्था ठीक हो जाती है।।२२।।

किं वाग्रजो मावनतं यदूत्तमः स्मयन् परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ।
गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं सम्प्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु।।२३।।

श्लोकार्थ: मैं जब शिर झुकाये और हाथ जोड़कर सामने खड़ा होऊंगा तब प्रसन्न मुख बलदेवजी मेरा आलिङ्गन करेंगे और मेरा हाथ पकड़कर घरके भीतर लिवा ले जायेंगे. वहां भोजन आदिसे मेरा सत्कार करके माता, पिता, बन्धु बान्धवोंकी कुशल तथा उनके साथ कंसके व्यवहारको भी पूछेंगे ।।२३ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार अक्रूरजी देह, वाणी और मनरूप अपना भगवान् सम्बन्धी मनोरथका वर्णन करके अब 'किं वाग्रजो' इस श्लोकसे बलदेवजी सम्बन्धी अपना मनोरथ कहते हैं. वे भगवान्के बड़े भाई हैं. मैं उनके सारे ही वृत्तान्तको जाननेवाला हूं. इसलिये वे प्रणाम करनेवाले मुझ पर कृपा करेंगे. वे यादवोंमें उत्तम हैं. अतः मुझसे आयुसे छोटे होने पर भी वे मेरे प्रणम्य हैं. कंसका वध करानेकेलिये मैं उन्हें लिवाने जाऊंगा यह अपनी अलौकिक दृष्टिसे जानकर तथा मैं उनका अत्यन्त निकट सम्बन्धी बन्धु हूं इस कारण वे हंसकर मेरा आलिङ्गन करेंगे और बड़े सम्मानके साथ मेरा हाथ पकड़कर मुझे घरके भीतर ले जावेंगे. वहां भोजनादि सब विधीसे सत्कार ग्रहण करके विश्राम करनेवाले मुझसे अपने बन्धु बान्धवोंको कुशल तथा उनके साथ कंसके व्यवहारको पूछेंगे. भगवान् महतो महीयान् हैं. इसलिये अक्रूरजी ऐसे मनोरथ करते जा रहे हैं।।२३।।

श्रीशुक उवाच

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप।।२४।।

श्लोकार्थः श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन्, श्वफल्कके पुत्र अक्रूरजी रास्ते भर इसी तरह श्रीकृष्णके विषयमें सोचते और उन्हीं के ध्यानमें मग्न रहे. सूर्यके अस्त होते–होते अक्रूरजी गोकुल पहुंचे ।।२४ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार मार्गमें रथको ठहराकर अक्रूरजी सायङ्काल तक अनेक मनोरथ ही करते रहे; तो भी भगवान्के सन्मुख होनेवाले भक्तके जड़ चेतन सारे ही अनुकूल हो जाते हैं. इसलिये रथने ही उनको गोकुल पहुंचा दिया यह 'इति सञ्चिन्तयन्' इस श्लोकसे कहते हैं. महाभाग वे श्वफल्क पुत्र अक्रूरजीने जब भगवान्को ध्यानसे हृदयमें प्राप्त किया, तब रथ उन्हें गोकुल ले गया. भगवान् स्त्रियोंकेलिये ही आनन्दरूप हैं. इसलिये सन्ध्या समय रात्रिमें ही रथ गोकुल पहुंचा. यह पहले कहा जा चुका है कि भगवान्के अभिमुख होनेवालेके सभी अनुकूल हो जाते हैं. इसलिये सब प्रकारसे अनुकूल हुए सूर्यदेव भी भक्तोंके मनोरथकी सिद्धिकेलिये अस्त हो गये. मूलमें 'नृप' सम्बोधन मन्त्रणा गुप्त रीतिसे करना चाहिये इसका सूचक है. और अस्तगिरि यहां अस्त शब्दकी अमङ्गलतारूप अश्लील दोषको मिटानेकेलिये गिरि शब्दका साथमें प्रयोग किया है. अक्रूरजीके पिता श्वफल्कजी परम महानुभाव हैं. उनके नामसे अक्रूरजीका निर्देश करनेका

तात्पर्य यह है कि अक्रूरजी भी पिताके समान ही महानुभाव हैं. यदि महानुभाव नहीं होते तो अनिष्टरूप शत्रुके सेवक और तदन्नपोषितरूपसे वे भगवान्‌के सम्मुख नहीं जाते।।२४।।

लेख: 'इति सञ्चिन्तयन्' इस श्लोककी व्याख्यामें 'भगवान् आनन्दरूप' पदोंका अभिप्राय यह है कि भगवान् गोपोंके साथ गोचारणसे परिश्रान्त होकर रात्रिमें घर पर आते हैं और वहां यशोदा आदि तथा गोपी आदि स्त्रियोंके ही उन उनके योग्य आनन्द विलासोंके द्वारा उनकेलिए आनन्द निरूपक होते हैं. इसलिए सन्ध्या तक रात्रिमें ही जाना चाहिए इस प्रकारके मनोरथकी सिद्धिकेलिए सायङ्काल होनेकी प्रतीक्षासे रथको बाहर ही रोककर ठहरे रहे।।२४।।

पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः।।२५।।

श्लोकार्थ: जिनके चरणोंकी रजको बड़े-बड़े लोकपाल सादर शीश पर चढाते हैं, उन श्रीकृष्णके परम पवित्र, पृथ्वीको विभूषित करनेवाले चरणोंके चिह्नोंको अक्रूरजीने पद्म, यव, अंकुश आदि अपूर्व रेखाओंसे पहचान लिया।।२५।।

व्याख्यार्थ: यहां मध्यमें अक्रूरजीकी भगवद्भक्तिकी उत्कृष्टता तथा लोक प्रसिद्धिकेलिये उनका कायिक व्यापारका निरूपण भी आवश्यक है. इसलयि हेतु क्रिया और फलका निरूपण करनेवाले पदानि इत्यादि तीन श्लोकोंसे अक्रूरजीके देह सम्बन्धी व्यापारका वर्णन करते हैं. जिन भगवान्‌की भावना वे हृदयमें फलरूप कर रहे थे, भक्तोंके शरीरोंको भगवदीय बना देनेवाली धूलमें दिखाई देनेवाले उनके चरणोंको देखा. उस रेणुको भगवान्‌के द्वारा ही महान् ऐश्वर्य और उन्नत पद प्राप्त किये हुए बड़े-बड़े देव तथा दैत्य आदि लोकपाल अपने किरीट मुकुटादि सभी आभूषणोंसे सुशोभित मस्तकों पर धारण करते हैं, वह रज ग्रहण करने योग्य ही है.

वे देव दैत्य आदि लोकपाल उस रजको धर्म बुद्धिसे शीश पर नहीं चढ़ाते हैं, क्योंकि धर्मबुद्धिवाला तो शरीरसे ही नमस्कार करता है. सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित हुआ तो ईश्वरको ही नमस्कार करता है, धूलिको नहीं. यह वह रास्तेकी धूलि नहीं है, जो मार्गमें चलनेवाले लोगोंके किरीटों पर पैरोंके आघातसे उड़कर जा लगती है. यह तो परम पवित्र(पावन) रज है. भगवान्‌के चरणोंके सम्बन्धसे ही

इस धूलिकी महिमा है. कस्तुरीकी तरह इस केवल रजका स्वरूपसे कोई महत्व नहीं है. उनके चरणोंको अक्रूरजीने ऐसे देखा मानों उन्हें कोई निधि मिल गई हो.

भगवान्के उन चरणोंको अक्रूरजीने पद्म, यव, अङ्कुश आदि असाधारण रेखाओंसे पहचान लिया. भगवान्की सेवा आसानीसे की जा सकती है, और फल देनेवाले हैं. यह चरणमें कमलाकर रेखासे सूचित होता है, जो की रेखा कीर्तिको प्रकट करती है. वनरूपी मदोन्मत्त हाथीको वशमें करनेकेलिये अङ्कुशकी रेखा है. इसी प्रकार ध्वजा आदिकी रेखाएं भी प्रभुके चरणोंमें हैं. ऐसे अपने दुर्लभ चरणोंको भगवान्ने पृथिवी पर रसको प्रकट करने क्षिति कौतुककेलिये और यहां रहनेवाले जीवोंके हृदयोंमें भक्तिकी सिद्धिकेलिये प्रकट किया है. जो यहां थोड़ेसे रजरूप स्थानमें स्थित रहकर भी बड़ेसे बड़े फलोंको देनेवाला है।।२५।।

लेख: 'पदानि' इत्यादि श्लोककी व्याख्यामें 'निधान प्राप्ति' पदका अभिप्राय यह है कि जैसे पृथिवी पर चरण धरे, वैसे मुझ अक्रूर पर भी स्थापन करेंगे।।२५।।

तद्ददर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः।
रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति।।२६।।

श्लोकार्थ: उन चरण चिह्नोंको देखते ही दर्शनके आनन्दकी उमड़से अक्रूरजी रथसे उतर पड़े और झपटकर ''अहो ये मेरे प्रभुके चरणोंकी रज है'' यह कहते हुए उसी भक्तिसे गद्-गद् होकर उसी स्थान पर लौटने लगे. प्रेमके प्रभावसे अक्रूरजीके शरीरमें रोमाञ्च हो आए और आंखोंमें आनन्दके आंसू भर आए।।२६।।

व्याख्यार्थ: भगवान्के चरणोंका दर्शन होने पर भक्तकी जैसी दशा होनी चाहिये, अक्रूरजीकी वैसी ही स्थितिका वर्णन इस 'तद्दर्शनाह्लाद' श्लोकसे करते हैं. शरीरको भगवदीय बना देनेवाली उस रेणुके दर्शन होते ही शरीरकी पूर्व स्थिति लौकिकता दूर होकर उनमें भक्ति रस प्रविष्ट हो जाता है. उस भक्ति रसने अक्रूरकी देहादिमें अपने भक्ति रसके धर्मोंको प्रकट करके प्राकृत देहके धर्मोंको दूर कर दिये. यह ही बतलाते हैं कि उन श्रीचरणोंके दर्शनसे उत्पन्न हुए परम आह्लादसे उत्कण्ठारूप मानसिक धर्म बढ़ गया, प्रेमसे रोमाञ्चितरूप दैहिक धर्म तथा नेत्रोंका अश्रुकलाओंसे भर आना रूप इन्द्रिय धर्मके निरूपणसे मन देह

इन्द्रियोंके पहले धर्म दूर होकर नूतन-उत्कण्ठा वृद्धि, रोमाञ्च और प्रेमाश्रुरूप धर्म प्रकट हो गये.

तब तो वे अचेतनसे हो रथसे पृथिवी पर गिर पड़े और भगवच्चरण रजके प्रभावसे वे प्रसिद्ध अक्रूर बन गये. उनका वासनात्मक आभ्यन्तर शरीर भगवदीय बन गया और अपने बाह्य शरीरको भी भगवदीय करनेकेलिये वे श्रीहरिके उस चरण रजमें बार-बार लौटने लगे. उन्हें बाह्य देहानुसन्धान नहीं रहा, केवल चेष्टा मात्र करते रहे. अब तक तो वे भगवान्‌को शास्त्रार्थरूपसे ईश्वर, महापुरुष अथवा अपना सम्बन्धी बान्धव ही जान रहे थे; किन्तु अब वे अपनेको शुद्ध सेवक और श्रीकृष्णको अपना स्वामी मानने लगे. इस स्वामी सेवक भावके उदय होने पर वे सोचने लगे कि यह परम दुर्लभ चरण रज यों पृथिवी पर ही क्यों पड़ी रहे ? उनके मनमें यह भावोदय हुआ कि यह सारी धूलि मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो(समा जाये) इसीलिये वे उनमें तब तक लौटते ही रहे, जब तक वह सारी रज उनके शरीरमें प्रविष्ट नहीं हो गई. वे चरण रजका माहात्म्य जानकर आश्चर्य रसमें मग्न भी हो गये।।२६।।

देहं भृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम्।
सन्देशाद् यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः।।२७।।

श्लोकार्थ: प्राणियोंके देह धारण करनेकी सफलता इसीमें है कि वे छल, भय, शोक, आदिको छोड़कर अक्रूरजीकी तरह स्वाभाविक निष्काम भक्तिसे आनन्दपूर्वक-संदेश, दर्शन, श्रवण आदिके द्वारा श्रीहरिका भजन और सेवा करें।।२७।।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार अक्रूरजीका भगवान्‌के चरण चिह्नोंसे चिह्नित रेणुमें लोटनेका वर्णन करके इस 'देहंभृतां' श्लोकसे ऐसा करनेके फलको वर्णन करते हैं, जो अक्रूरजीको हुआ. बस देहधारियोंका यही पुरुषार्थ जन्मकी सफलता हैं. देहधारीको उत्पन्न होकर जन्म ग्रहण करके परम पुरुषार्थ प्राप्त करना चाहिये. वह भगवदीय भाव ही परम पुरुषार्थ है. इसलिये भगवदीय भावकी सिद्धिकेलिये तदनुकूल वैसा ही प्रयत्न करना ही चाहिये, जिससे उस भावकी सिद्धि हो सके. ज्ञानादिकी प्राप्ति तो गौण फल है. मोक्षकी अपेक्षा भी मोक्षसे भी 'भगवदीय भाव भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्त सर्वार्थाः' के अनुसार उत्तम है. इसलिये इसीमें जन्मकी सफलता है, केवल यही पुरुषार्थकी सिद्धि है. क्लेशमय देहको प्राप्त करके यदि परम पुरुषार्थका लाभ नहीं किया तो जन्मग्रहण व्यर्थ ही है.

अक्रूरजीको भगवदीय भावकी प्राप्तिमें सन्देश ही कारण है; क्योंकि सन्देश लेकर जानेके बाद ही उनका चित्त भगवत्परायण हुआ और बढ़ते-बढ़ते उसने आगे भगवदीय भावको उत्पन्न करके भगवान्‌के माहात्म्यका ज्ञान करा दिया. अर्थात् प्रथम भगवान्‌के चरणोंका दर्शन फिर उनके स्पर्शसे सायुज्यप्राप्ति और उस स्पर्शसे भगवदीय भाव तथा माहात्म्य ज्ञान इस क्रमसे ये सब सन्देशके कारण हुए. किसी अन्यकेलिये भेजा गया वाक्य भी इतना फल सिद्ध कर देता है. अर्थात् सहजमें ही बड़ा भारी फल देनेवाला हो जाता है.

परन्तु मनुष्यको इस भगवदीय भावरूप परम फलकी प्राप्तिमें बाधक दोषों दम्भ, भय, शोकका सर्वथा त्यागकर देना चाहिये. इनमें दम्भ राजस तथा बाह्य दोष है, भय सात्विक तथा शरीर सम्बन्धी और शोक तामस तथा अन्तःकरणका दोष है. अक्रूरजीको भी इन तीनों दोषोंका त्याग करने पर ही भगवदीय भावरूप परम पुरुषार्थ सिद्ध हुआ था. उन्होंने कंसके वाक्यको यथावत् कहकर दम्भ(कपट)को सुनकर भगवान् मेरे साथ क्या करेंगे? ऐसे भयका और भगवान्‌को लेकर मथुरा जाऊंगा तब कंस क्या करेगा? इस प्रकारके शोकको भी त्याग दिया था; माहात्म्य ज्ञान न होने तक ही शोक रह सकता है; माहात्म्य ज्ञान हो जाने पर शोकादि कुछ नहीं रहते. इसी तरह परम पुरुषार्थको पानेकेलिये औरोंको भी लौकिक तथा अलौकिक ये सारे ही दोष छोड़ ही देने चाहिये।।२७।।

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ।
पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ।।२८।।

श्लोकार्थः व्रजमें पहुंचकर अक्रूरजीने पीताम्बर तथा नीलाम्बर पहने हुए कृष्ण बलदेवको गोदोहनार्थ खिरक-गोशालामें बिराजमान देखा. उनके नेत्र शरत्कालके कमलके समान सुशोभित हैं।।२८।।

व्याख्यार्थः अक्रूरजीने भगवद्दर्शनके योग्य उत्तम शरीर हो जाने पर भगवान्‌के दर्शन किये. यह 'ददर्श' इस श्लोकसे कहते हैं. इस प्रकार सेवकके स्वरूपको कहकर अगले छः श्लोकोंसे भगवान्‌के स्वरूपका जिसका अक्रूरको दर्शन हुआ वर्णन करेंगे. पहले उनके दृश्यमान स्वरूपका वर्णन करते हैं. आगेके पांच श्लोकोंसे अवस्था, देह इन्द्रियकी चेष्टा, शोभास्वरूप तथा उनकी अलौकिक शोभाका वर्णन किया जायेगा. अक्रूरजी भक्त थे, इसलिये पहले उन्हें श्रीकृष्णके दर्शन हुए. तदनन्तर आवेशावतार बलदेवजीको देखा. वे दोनों भाई

व्रजमें और व्रजमें भी खिरक(जहां गायें दोही जाती है) स्थानमें विराजमान हुए देखे. श्रीकृष्णजी पीताम्बर और बलदेवजी नीला धौत वस्त्र धारण किये हुए थे. उनके नेत्रोंने शरत्कालके कमलोंकी शोभाको हर लिया था. दोनों भाईयोंके नेत्र शरद् ऋतुके कमलोंसे सुशोभित थे. तात्पर्य यह है कि वे भगवान् देश कालके विपरीत होने पर भी ज्ञानेन्द्रियादिको अनुकूल शक्ति प्रदान करके ज्ञान आदि सकल पुरुषार्थको दे देते हैं; क्योंकि कमल शरद् ऋतुमें तथा जलमें ही सुशोभित रहते हैं; किन्तु यहां भाद्रपद मासमें कालकी विपरीतता और नेत्र कमलमें देश जल भी विपरीत है. तथापि भगवान्ने नेत्र कमलको सुशोभित ही कर दिया।।२८।।

किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ।
सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ।।२९।।

श्लोकार्थ: उनकी किशोर अवस्था है, श्याम और श्वेत वर्ण है, बड़ी-बड़ी विशाल भुजाए हैं. दोनों भाई लक्ष्मीके निवास स्थान और त्रिभुवन सुन्दर हैं. उनका विक्रम विचित्र बाल गजराजसे भी अधिक है और अत्यन्त मनोहर मुखारविन्द है।।२९।।

व्याख्यार्थ: 'किशोरौ' इस श्लोकसे उनके अवस्था आदि स्वरूपका वर्णन करते हैं. नव वर्षसे आगेकी और(षोडश) सोलह वर्ष तककी किशोर अवस्था है. वे दोनों ग्यारह वर्षके हैं. गोकुल वासियोंमें रहे हुए कालको उन्होंने अपनेमें ले लिया था, उसे प्रकट करनेकेलिये भगवान् ग्यारहके हो रहे हैं. इसके आगे प्रयोजनके न होनेके कारण अवस्था कालका वर्णन नहीं किया जायेगा. भक्तों पर कृपा करके 'श्रीप्रभु सन्त वयसि कैशोरे' किशोर अवस्थाको अङ्गीकार करते हैं. इसी अवस्थामें रूप प्रकट होता है. इसलिये एक श्याम है और एक श्वेत है. भगवान्का असाधारण चिह्न श्रीवत्स जो वस्त्रसे ढका नहीं था, उसी समय प्रकट हुआ था-से सुशोभित हैं. उनकी विशाल भुजाएं उनकी क्रियाशक्तिको प्रकट कर रही हैं. दोनोंका मुखारविन्द परम सुन्दर और सुशान्त है, जिसका दर्शन करते ही भक्तोंके सब पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं.

'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति' सुन्दर आकारवालोंमें अत्याधिक गुण होते हैं इस नियमसे परम सुन्दर वे गुणोंके निधि हैं और बाल गजराजके समान पराक्रमी अर्थात् मनुष्योंसे अत्यधिक पराक्रमवाले हैं. आपश्रीने यहां व्याख्यामें बाल गजराजकी समानता द्योतक दो कारिकाएं दी है :

सौन्दर्यं च तथा पुष्टिः प्रदृश्यत्वमसृण्यता।
निर्भयत्वं स्वतः सिद्धसाधनत्वं च रूप्यते।।का.१।।
अरण्य एव तद्वृद्धिः सुखं तस्य गृहं पुनः।
नान्यत्रेति च बोधाय विदेशक्लेशबाधने।।का.२।।

कारिकार्थः सुन्दरता, स्वानन्दतुन्दिता, मनोहरता, निरङ्कुशता, निर्भयता, परमुखापेक्षाका अभाव, वनमें ही बढना और सुखदायक वन ही घर, ये सारी वस्तुएं अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती हैं. उनका यहां वर्णन भगवान्को गोकुलरूप विदेशमें विराजनेसे उत्पन्न हुए विदेश क्लेशकी निवृत्तिकेलिए किया गया है ।।१-२ ।।

व्याख्यार्थः ऐसे बाल गजराजके समान पराक्रमी वे दोनों भाई सारे गोप ग्वालोंको अपने पास नहीं भटकने देते हैं ऐसा निरूपण किया गया है।।२९।।

ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम्।
शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ।।३०।।

श्लोकार्थः महापुरुष वे दोनों भाई ध्वजा, वज्र, अंकुश आदि चिह्नोंसे माहात्म्य प्रकट करनेवाले चरणोंके चिह्नोंसे व्रजको सुशोभित कर रहे हैं. उनकी दृष्टिसे अनुग्रह और मुस्कानसे प्रसन्नता प्रकट हो रही है ।।३० ।।।

व्याख्यार्थः भगवान् धर्मोंको कहकर अब उनके बाह्य चिह्नोंका वर्णन 'ध्वजवज्राङ्कुश' इस श्लोकसे करते हैं. चारों पुरुषार्थोंके देनेवाले ध्वज वज्र, अङ्कुश, अम्भोज इस चारो चिह्नोंसे चिह्नित तथा पृथिवी पर दिखाई देनेवाले वे उनके चरणारविन्द उन्हीं(भगवान्)की कृपासे व्रजकी शोभा बढ़ा रहे हैं. भगवान् व्रजका इससे बढ़कर और क्या हित करते. उनका स्वरूप परम महान् है. यह धर्मी भगवान्का निर्देश उनके धर्मोंके उत्कर्षका बोधक है.

इस प्रकार उनकी महिमाका वर्णन किया गया. अब आगे उनकी दयालुताका वर्णन करते हैं. उनकी चितवन अवलोकन दया और मन्दमुसकानसे युक्त है. दीनों पर दया, समानों पर मन्द हास और उत्तमों पर ज्ञानवर्षण करनेवाली चितवन है. संसारमें दुखियों पर ही दया की जाती है, फिर कर्मसे अथवा कर्मका परित्याग करके थोड़ेसे जगत्में मोहके कारण उन दुखियोंको सुख देना, उस सुखदानके द्वारा भक्त जीवों पर माहात्म्य ज्ञानको स्थित करना, इस प्रकार वे प्रत्यक्षरूपसे दयाके द्वारा ही सुख प्राप्ति और मन्दस्मितके द्वारा ही भक्तोंको

परमानन्दका ज्ञानका दान कर रहे हैं।।३०।।

उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ।
पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ।।३१।।

श्लोकार्थ: उनकी क्रीड़ाएं उदार और मनमोहक हैं. वे कण्ठमें मणियोंकी माला और वनमाला पहने, अङ्गों में चन्दनादि अंगराग लगाए और स्नानान्तर निर्मल नवीन वस्त्रोंसे सुशोभित हैं ।।३१ ।।

व्याख्यार्थ: अब 'उदाररुचिरक्रीडौ' इस श्लोकसे उनकी लीलाका वर्णन करते हैं. भगवान्की लीला बड़ी उदार और मनोहर है. वह पात्रता अपात्रता-योग्यता अयोग्यताका विचार न करके सबको ही सारे पुरुषार्थ दे देती है. भगवान्की साधारणसे साधारण लीला भी जिसे लोग समझते हैं फलरूपा है, वह आभासरूप मिथ्या नहीं है.

भगवान्के स्वरूपका वर्णन करते हैं. श्रीहरिने श्रीकण्ठमें और श्रीमस्तक पर अनेक प्रकारकी मालाएं तथा श्रीमस्तकसे चरणारविन्द तक लम्बी विविध सुगन्धित पुष्पोंकी बनी हुई सुन्दर वनमाला ''आपादावलम्बिनी माला वनमाला'' धारण कर रखी है. यहां हीरा, पन्ना, मोतियोंकी मालाओं पर भ्रमर सहज सुगन्ध न होनेसे नहीं आते. इसीलिये भौरोंसे गुञ्जारित वनमालाका नाम अलग कहा गया है. सायङ्काल विश्राम करनेका समय होनेसे अथवा विश्राम(विराम)का सहायक होनेके कारण चन्दन, पुष्प, वस्त्र और आभूषणोंका ही यहां वर्णन किया गया है. स्नानसे पहले नाना सुगन्धित और उत्तमोत्तम पदार्थोंसे जो स्नानके अङ्गभूत हैं 'अभिलेप' उबटना करनेके बाद स्नान करके अनुलिप्त नवीन निर्मल वस्त्रोंसे सुशोभित हैं।।३१।।

लेख: 'उदाररुचिर क्रीडौ' इस श्लोककी व्याख्यामें 'विरत्यनोदनत्वाद् वा' ऐसे पाठके स्थानमें लेखमें 'वित्त्यनोदनत्वाद्वा' ऐसा पाठ करके यह अभिप्राय प्रदर्शित किया है कि ज्ञानके वर्धक बढ़ानेवाले होनेसे यहां चन्दन पुष्पादिका ही वर्णन श्रीअङ्गकी शोभार्थ किया है, क्योंकि वस्त्र तथा आभूषणोंके कारण श्रीअङ्गके दर्शन ठीक-ठीक नहीं होते और चन्दनादिके आभरणमें तो ठीक-ठीक दर्शन होते रहते हैं.

'अभिलेपा एव' इत्यादिका तात्पर्य यह है कि 'अभिलेप'स्नानके पूर्वाङ्गभूत-स्नानसे पहिले और 'अनुलेप' स्नानके उत्तराङ्ग स्नानके पीछे होता है,

क्योंकि मूलमें 'अनुलिप्ताङ्गौ' इस विशेषणके बाद 'स्नातौ' स्नान करना वर्णन किया है. अतः स्नान से पूर्व अभिलेप और स्नानकर लेनेके बाद अनुलेप किया जाता है, यह ज्ञान होता है।।३१।।

प्रधानपुरुषावाद्यो जगद्धेतू जगत्पती।
अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ।।३२।।

श्लोकार्थ: अक्रूरजीने उन श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाईयोंके प्रधान पुरुष, आदि पुरुष, जगत्के कारण और जगत्के ईश्वर तथा पृथ्वीका भार उतारनेकेलिए नररूपसे प्रकट हुएके दर्शन किए।।३२।।

व्याख्यार्थ: गोकुलमें निवास करनेवाले उन राम कृष्णकी इस प्रकार पूजातिशयका कारण 'प्रधान पुरुषौ' इस श्लोकसे बतलाते हैं, कि वे दोनों ही प्रधान पुरुष हैं. आजकलके प्रधानजीकी तरह साधारण प्रधान पुरुष नहीं; किन्तु ये आदि पुरुष हैं. ये जगत्के कारण हैं. जगत्का कारण ही आदि प्रधान पुरुष होता है, इसीलिये दोनों प्रधान पुरुष किंवा मुख्य पुरुष हैं. ये ही जगत्के स्वामी भरण पोषण करनेवाले हैं और जो भरण पोषण करनेवाले हैं, वही एक जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करता है. भगवान् सबका पालन करते हैं, यह तो सब ही जानते हैं, किन्तु अभी भी ये पृथिवीका भार दूर करनेकेलिये ही अवतरित हुए हैं, दैत्योंकी रक्षाकेलिये नहीं. ये व्रजमें प्रकट होकर अद्भुत चरित्र करेंगे, यह बात तो इनके नामोंसे हो रही है; क्योंकि क्रियाशक्ति प्रधान भगवान् बलरामजी उत्पत्ति, पालन और प्रलय कर्त्ता हैं और केशव भगवान् ब्रह्मादि देवोंको मोक्ष देनेवाले हैं।।३२।।

दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया।
यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाङ्किकतौ।।३३।।

श्लोकार्थ: ये दोनों भाई कृष्ण बलदेव अपने तेजके प्रभावसे दिशाओंके अन्धकारको दूर कर रहे हैं और स्वर्ण विभूषित नीलम तथा चांदीके पर्वत जैसे सुशोभित हो रहे हैं।।३३।।

व्याख्यार्थ: इस 'दिशो वितिमिरा' श्लोकसे उन भगवान्के प्राकट्यकी असाधारण सूचनाका वर्णन करते हैं. वे दोनों अपनी लोकोत्तर दिव्य कान्तिसे दशों दिशाओंके अन्धकारको दूर कर रहे हैं. उनकी उस सूर्यसे भी अधिक अलौकिक कान्ति, जो न ठण्डी, न गरम है और सबके सन्तापको दूर करके परम आनन्द देनेवाली है, से ही जाना जा रहा है कि ये साक्षात् परब्रह्म हैं. परीक्षित्को

अलौकिक वस्तुका ज्ञान करानेकेलिये मूलमें 'राजन्' सम्बोधनका प्रयोग है. उनका अभूत उपमासे वर्णन करते हैं. मरकत मणिका पर्वत भगवान् और कैलाशके समान चांदीका पर्वत बलदेव, दोनों ही यदि सोनेके शिखरोंसे युक्त हों तो उनकी सी शोभाको प्राप्त हों. भगवान् सबके आश्रय और परम महान् हैं. इसीलिये सभी जगह उनका शैलरूपसे वर्णन किया जाता है।।३३।।

रथात् तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः।
पपात चरणोपान्ते दण्डवद् रामकृष्णयोः।।३४।।

श्लोकार्थ: उन राम कृष्णको देखते ही अक्रूरजी जल्दी ही रथसे उतर पड़े और स्नेहसे विह्वल हो उनके चरणों में उन्होंने गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया ।।३४ ।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकारसे भगवान्का वर्णन करके उन ऐसे सर्वशक्तिमान् स्वामीके प्रति अक्रूर जैसे परम सेवकके कर्तव्यको बतलाते हुए आगे दश श्लोकोंसे सेवकके प्रति भगवान्के कर्तव्यको कहते हैं. इन दश श्लोकोंमें प्रथम दो श्लोकोंसे सेवक अक्रूरकी भक्ति और शरणागतिका तथा अगले आठ श्लोकोंसे अक्रूरकेलिये भगवान्का आठ प्रकारका ऐश्वर्य प्रदान करनेका वर्णन है. 'रथात्' इस श्लोकसे कहते हैं कि अक्रूरने रथ पर बैठे–बैठे ही पहले दूरसे ही दर्शन किये थे. अब वही अक्रूर जो अभी पूर्वमें भगवच्चरण रजमें लोटे थे ऊंचा स्थान रथसे उतरे नहीं, किन्तु उन भगवान् राम कृष्णके चरणोंके निकट ही भूमि पर गिर पड़े. भगवान्का साक्षात् दर्शन करके वे प्रेमसे अत्यन्त विह्वल हो गये और देहकी सुध भूल गये तथा काष्ठ दण्डकी तरह उनके चरणोंमें हठात् गिर पड़े. व्यवहारमें आयुका विचार मुख्यरूपसे रखना चाहिये, इसलिये वे पहले बलरामजीके और पीछे श्रीकृष्णजीके चरणोंमें गिरे।।३४।।

भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः।
पुलकाञ्चित औत्कण्ठ्यात् स्वाख्याने नाशकत् नृप।।३५।।

श्लोकार्थ: भगवान्के दर्शनसे अक्रूरजी परम आनन्दित हो गए. उनकी आंखों में प्रेमाश्रु भर आए और उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया. उत्कण्ठासे उनका कण्ठ रुंध गया और थोड़ी देर तक तो वह अपना परिचय भी नहीं दे सके ।।३५ ।।

व्याख्यार्थ: अक्रूरजीके अकस्मात् गिर पड़ने और अपना नाम भी न लेनेके कारण उत्पन्न हुई शङ्काको निवारण करनेकेलिये भगवद्दर्शन यह श्लोक

कहते हैं. भगवान्का साक्षात् दर्शन करके अक्रूरजीको परम आनन्द प्राप्त हुआ. वह अत्युत्कट आनन्द उनके हृदयमें नहीं समाया और नेत्रोंके मार्गसे प्रेमाश्रुरूपसे बाहर निकल पड़ा. उनकी आंखें आंसूओंसे भर आई. ज्ञानका फल श्रीहरिको पाकर उनका ज्ञान छिप गया, उन्हें कुछ विचार नहीं रहा. उनका सारा शरीर उत्कट प्रेमके कारण रोमाञ्चित हो गया और उस आनन्दके अतिशयसे वे इतने विवश हो गये कि अपना परिचय देना भी वे भूल गये. अपना परिचय भी नहीं दे सके. राजा इस उत्कट प्रेमकी महिमाको जान सके इसलिये अथवा आदरकेलिये मूलमें 'नृप' सम्बोधन पद कहा है।।३५।।

भगवांस्तमभिप्रेत्य रथाङ्गाङ्कितपाणिना।
परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः।।३६।।

श्लोकार्थ: तब भक्तवत्सल भगवान्ने अक्रूरके आनेका अभिप्राय उसके न कहने पर भी स्वयं ही जान लिया और प्रसन्नतापूर्वक अपने रथाङ्ग–चक्रधारण करनेवाले श्रीहस्तसे उठाकर उन्हें गलेसे लगा लिया ।।३६ ।।

व्याख्यार्थ: उनके अपना परिचय न देने पर भी भगवान्ने अक्रूरजीको पहचान लिया और उनके साथ उचित व्यवहार किया यह इस 'भगवान्' इत्यादि श्लोकसे कहते हैं. श्रीकृष्ण भगवान् हैं. इसलिये अक्रूरजीको पहचानकर उनके दुष्ट कंसके संसर्गसे उत्पन्न हुए दोषको भगवान्ने कालरूप चक्रसे अङ्कित अपने श्रीहस्तके स्पर्शसे दूर कर दिया और उनको अपने पास लाकर गाढ़ आलिङ्गन किया. इस प्रकार आलिङ्गन करके अक्रूरमें भगवान् प्रविष्ट हो गये और अपनेमें अक्रूरका प्रवेश कर लिया. दोनोंकी एकता प्राप्त कर ली. जिससे भगवान् लौकिक जैसा और अक्रूर अलौकिक जैसा कार्य करेंगे.

अक्रूरमें संसर्गसे होनेवाले दोष बहुत होने पर भी भक्तवत्सल भगवान् केवल प्रणाम करने मात्रसे ही उन पर प्रसन्न हो गये, क्योंकि भक्तों पर कृपा करनेवाले उन परम कृपालु भगवान्की कृपा स्तोत प्रवाह उनके चरणोंमें भक्तके प्रणाम करते ही बहने लग जाता है. इसलिये भक्त अक्रूरका आलिङ्गन उचित है. जिसको भगवान्ने अपना कर लिया और जो भगवान्के चरण चिह्नोंसे अङ्कित रेणुमें लोटनेसे भगवदीय हो गये थे. वह अक्रूर भगवान्में सायुज्यको प्राप्त ही हो गया और फिर वह भगवान्से अलग नहीं हुआ, क्योंकि यहां मूलमें भगवान्का उनको त्याग देना नहीं कहा है. ऐसा जान पड़ता है कि अक्रूरकी पहली

इच्छाओंको सिद्ध करनेकेलिये उसकी सी आकृतिवाला पुरुष भगवान्ने अपनेसे अलग कर दिया है, क्योंकि यह सम्भव ही नहीं है कि अत्युत्कट प्रेमसे भगवान्में सायुज्य पाकर फिर वह जीव उनसे अलग हो जाये और यदि अलग हो जाता है तो भक्ति ही व्यर्थ हो जायेगी, किन्तु अलग हुए बिना बलदेवजीका आलिङ्गन नहीं हो सकता. इसलिये अक्रूरको भगवान्से अलग होनेकी कल्पना की जाती है. अक्रूरको सायुज्य प्राप्ति होने पर ही भक्तिमार्ग सफल होता है. अन्यथा सायुज्य पाकर फिर लौकिक भाव हो जाने पर तो भक्तिमार्गका परम मुख्य फल सायुज्य नहीं रहेगा अर्थात् पाक्षिक गौण फल ही रह जायेगा।।३६।।

लेख: भगवान् इस श्लोककी व्याख्यामें 'तस्मिन् स्वप्रवेशे'का तात्पर्य यह है कि अक्रूरमें भगवान्का प्रवेश होने पर अक्रूरकी तरह उसमें प्रविष्ट भगवान् भी लौकिक कार्य और भगवान्में अक्रूरके प्रवेश होने पर वह भी प्रविष्ट हुए भगवान् की तरह अलौकिक कार्य करने लगेंगे. 'यो भगवता' इत्यादि व्याख्याके पदोंका अभिप्राय है कि सारे ही जीव भगवान्में हैं ही. उनमेंसे किसी वैसे दो स्वभाव वाले जीवको अक्रूर जैसा शरीर धारी करके अलग कर दिया, ऐसा लक्षित होता है. यदि यह कहा जायकि अक्रूरजी लौकिक प्रकारसे आए थे. इसीलिए सायुज्य देकर भी अलग कर दिया; तब तो भक्ति व्यर्थ हो जायगी. इसलिए भक्तिकी सार्थकता और अक्रूरकी बलभद्रजीको आलिङ्गन करनेकी इच्छाकी सी आकृतिवाला करके भगवान् अपनेसे भगवान्से अलग कर दिया ऐसी कल्पना की जाती है।।३६।।

सङ्कर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं अनयत् सानुजो गृहम्।।३७।।

श्लोकार्थ: इसके बाद नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े खड़े हुए अक्रूरको महामनस्वी बलभद्रजी हाथ पकड़कर–अपने भाई श्रीकृष्णके साथ घर ले गए।।३७।।

व्याख्यार्थ: जब अक्रूरने भगवान् श्रीकृष्णके समान ही बलदेवजीको भी प्रणाम किया तब तो बलदेवजीने भी उनका समान भाव देखकर श्रीकृष्णकी तरह ही अक्रूरका आलिङ्गनादि किया, यह 'सङ्कर्षणश्च' इस श्लोकसे कहते हैं. बलदेवजी, महामना उदार मनवाले हैं. लोक मर्यादाकी रक्षा करनेमें उनका विशेष आग्रह है. इसलिये ये काका अक्रूरजी आये यों कहकर अपने श्रीहस्तसे उनका

हाथ पकड़कर भगवान् कृष्णके साथ-साथ उन्हें आदर पूर्वक घरमें लिवा ले गये. अक्रूरकी मार्गमें की हुई कामना सिद्ध हो गई, यह इस श्लोकसे कहा है।।३७।।

पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम्।
प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत्।।३८।।

श्लोकार्थ: बलदेवजीने उन्हें घरमें ले जाकर स्वागत्-सत्कारके बाद उत्तम आसन पर बिठलाया. फिर यथा विधि उनके पांव धोकर मधुपर्क आदिसे उनका पूजन किया।।३८।।

व्याख्यार्थ: घरमें ले जाकर लौकिक वैदिक रीतिसे वहां उनका पूजन किया. यह इस 'पृष्ट्वाथ' श्लोकसे कहते हैं. वहां उनकी सकुटुम्ब कुशल मङ्गल पूछनेके बाद उन्हें बड़े सुन्दर तथा बहुमूल्य आसन पर बिठलाया. फिर अभ्यागतके उचित शास्त्र विधिसे उनके चरण धोकर मधुपर्क आदि उत्तम-उत्तम वस्तुओंसे पूजन किया।।३८।।

निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः।
अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद् विभुः।।३९।।

श्लोकार्थ: श्रीकृष्ण भगवान्ने फिर अपने अतिथि अक्रूरको एक सब गुणोंसे युक्त श्रेष्ठ गाय दान दी, और तैलाभ्यङ्ग मर्दन आदिसे उनके परिश्रम-थकानको दूर किया. तब बलदेवजीने अनेक गुणोंसे युक्त पवित्र अन्न लाकर बड़ी श्रद्धासे अक्रूरजीको भोजन कराया।।३९।।

व्याख्यार्थ: यद्यपि अक्रूरजी अभ्यागत ही थे; तो भी प्रथम आनेके कारण भगवान्ने ''महोक्षं वा महाजं वा'' इस स्मृतिके अनुसार उन्हें अतिथि मानकर उनको गायका दान दिया. यह भेंट भगवान्ने धर्म समझकर ही दी, उन्हें अपना सम्बन्धी मानकर नहीं दी. अन्य कोई व्याख्याकार कहते हैं कि अतिथि गोघाती होता है, इसलिये इसी अभिप्रायसे गाय भेंटमें दी.

तदनन्तर तैल मर्दन उबटना आदिसे उनकी थकानको उनके मार्गमें यातायातके परिश्रमको दूर किया. फिर बलदेवजीने अपनी माता रोहिणीजीसे बड़ी पवित्रतासे बनाये हुए, अनेक प्रकारके व्यञ्जनोंसे युक्त अन्न चावल आदिका भोजन किया. बलदेवजी सर्व समर्थ हैं, इसलिये असमयमें भी सारी सामग्रीका उसी समय सिद्ध हो जानेमें कोई आश्चर्य नहीं है. अक्रूर और बलदेवजी दोनों ही अतिथि धर्मके सदाचारको जाननेवाले हैं, अतः बलदेवजीने धर्मानुकूल आदर

सत्कार किया और अक्रूरने भी अतिथि सत्कार ग्रहण किया. वे दोनों आतिथेय और अतिथिरूपसे भिन्न-भिन्न भाववाले हो गये. इसलिये सत्कार और सत्कार्यमें कुछ विरोध नहीं रहा।।३९।।

लेख: 'निवेद्य गां' इस श्लोककी व्याख्यामें 'उभावापि भिन्न भावापन्नौ' पदोंका यह आशय है कि बलदेवजीका लौकिक भावमें आग्रह है और अक्रूर प्रतिकृति रूप है. इसलिए दोनोंके पृथक-पृथक् भावापन्न होनेके कारण कोई विरोध नहीं है।।३९।।

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित्।
मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात् पुनः।।४०।।

श्लोकार्थ: जब वह भोजन कर चुके, तब उत्तम धर्मके जाननेवाले बलदेवजीने मुखवास-पान इलायची देकर इत्र फुलेल आदि सुगन्धित द्रव्य लगाया तथा सुरभित माला पहनाकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्न किया।।४०।।

व्याख्यार्थ: भोजनके पश्चात् किये जानेवाले अतिथिके उपचार, सेवादि सत्कारका वर्णन 'तस्मै' इस श्लोकसे करते हैं. तृप्ति पूर्वक भोजनकर चुकने पर परम धर्मज्ञ बलदेवजीने बड़े स्नेहसे ताम्बूल, पान, इलायची तथा सुगन्धित द्रव्य, माला आदिसे उनका राजाकी तरह सत्कार करके उन्हें अत्यन्त प्रसन्न किया. अतिथिको अपना सा बना देना, यह भी एक असाधारण धर्म है; किन्तु वहां तो उस असाधारण धर्मसे भी अधिक सत्कार किया. यद्यपि पहले मधुपर्क आदिके द्वारा सत्कार करते समय माला पहनाना कह दिया है, तो भी प्रेमसे फिर माला पहनानेका वर्णन इसके लौकिक भावको सूचित करता है।।४०।।

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे।
कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः।।४१।।

श्लोकार्थ: इस प्रकार सत्कार हो चुकने पर नन्दरायजीने अक्रूरजीसे पूछा-हे दाशार्ह, हे अक्रूर, निर्दयी कंस अभी जीवित ही है. इसलिए कसाईके घरमें पली हुई भेड़ोंके समान तुम लोगोंको हर घडी ही अपने प्राणोंका खटका लगा ही रहता होगा. तुम पर आजकल कैसी बीतती है।।४१।।

व्याख्यार्थ: लोकमें कोई भी आगन्तुक बालकोंके द्वारा किये गये सम्मानको पाकर भी तब तक सन्तुष्ट होता, जब तक ग्रामाधिपति अथवा घरका स्वामी उसका सम्मान नहीं करता. घर या गांवके स्वामीसे आदर पाकर अतिथि

परम सन्तुष्ट होता है. इस लोक सामान्य रीतिके अनुसार पप्रच्छ इत्यादि तीन श्लोकोंसे नन्दरायजीके द्वारा किये गये सम्भाषणरूप अक्रूरके सम्मानका वर्णन करते हैं. पहले बालकोंने अक्रूरका यथा विधि भोजनादि पर्यन्त पूजन कर दिया होनेसे नन्दजी उनका पुनः पूजन न करके केवल उनसे पूछने ही लगे कि निर्दयी कंसके समीपमें आप कैसे रह रहे हैं. उस सतत् उपद्रव पूर्ण स्थानमें कुशल मङ्गलकी सम्भावना ही कैसे की जाये? क्योंकि उस दुष्ट कंसमें एक भी गुण नहीं है. वह तो अपकीर्ति पूर्वक जी रहा है, जो मरा हुआ ही है. मृतक-मुर्देके स्थान श्मशानमें कोई नहीं रहता है. आप कैसे रह रहे हैं?

यदि आप ''जननी जन्म भूमिश्च'' जन्म भूमि होनेके कारण ही वहां रह रहे हैं तो आपका यह भेड़ोंकी तरह बिना विचारे, गतानुगतिक वहां रहना सर्वथा अनुचित ही है. जैसे किसी नित्य मांस बेचनेवाले कसाईके पालन पोषणमें पलनेवाली और एकके पीछे दूसरी लगकर चलनेवाली विचार हीन भेड़े, एक दिन उसी कसाईके हाथसे मार दी जाती हैं. उन भेड़ोंका उस कसाईके पालन पोषणमें रहना जैसे सर्वथा अनुचित ही है, वैसे ही आपका भी कंसके पास रहना अनुचित है।।४१।।

योऽवधीत् स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः।
किं नु स्वित् तत् प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे।।४२।।

श्लोकार्थः वह दुष्ट कंस सदा अपने शरीरका ही पालन पोषण करनेकी चेष्टामें तत्पर रहता है. जिसने अपनी विलखती हुई दीन छोटी बहिनके निरीह नन्हें बच्चोंको उसके देखते-देखते मार डाला, उसकी प्रजाकी कुशल पूछना तो मेरी समझमें व्यर्थ ही है. उसकी प्रजाका तो जीवन भी दुर्लभ होगा।।४२।।

व्याख्यार्थः 'योऽवधीत्' इस श्लोकसे कंसकी निर्दयता बताते हैं. भानेज बहिनके पुत्र अत्यन्त आदरणीय होते हैं. वे भानेज भी अत्यन्त नन्हे बालक जात मात्र उनको अपनी बिलबिलाती हुई छोटी बहिन सती देवकीके देखते जिस कंसने मार डाला. यद्यपि कभी कहीं किसी विशेष कर्मसे पुत्रादिक तक मार डाले जाते हैं; फिर भानेजोंको मार डालनेमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है; किन्तु उसने तो केवल अपने प्राणोंका ही पोषण-रक्षा करनेकेलिये भानेजोंको मार डाला है, क्योंकि वे नहीं मारे जाते तो उसके अपने प्राण चले जाते. उनका वध जो उसने किया है, वह किसीकी सलाह सम्मतिसे अथवा किसी कर्म विशेषसे नहीं किया

है. उसने तो केवल अपनी दुष्टताके कारण ही ऐसा किया है; क्योंकि वह तो महान् दुष्ट है.

जहां ऐसा क्रूर स्वामी है, वहां उसके अधीन रहनेवाली प्रजारूप आपकी कुशलताका क्या विचार किया जाये? इस प्रकार यह सन्देहमें प्रश्न है. यहां इस प्रकारके सन्देहात्मक प्रश्नसे तो विपरीत भावना ही नन्दजीकी सूचित होती है, क्योंकि भिन्नरूपसे इस प्रकार कुशल प्रश्नमें ''बन्धु विरोधी यह अक्रूर दुष्ट है'' ऐसा कहा जा सकता है. इसीलिये कुशल सम्भावना होने पर भी सन्देहात्मक कुशल प्रश्न ही किया. सीधे शब्दोंमें कुशल नहीं पूछा।।४२।।

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः।
अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम्।।४३।।

श्लोकार्थ: इस प्रकार सत्कारके बाद नन्दरायजीने मीठे वचनोंसे अक्रूरसे उनकी कुशल पूछी. कृष्ण बलरामके सत्कारसे अक्रूरके मार्गका परिश्रम दूर हो गया और वे स्वस्थ हुए।।४३ ।।

व्याख्यार्थ: इस तरह नन्दरायजीके वाक्योंको कहकर 'इत्थं' इत्यादि श्लोकसे उपसंहार करते हैं. इस प्रकार नन्दरायजीकी वास्तविक सच्ची कोमल और सुख दायक वाणीके द्वारा भली भांति पूजे गये अक्रूरजीके अन्य किसी आग्रहसे अथवा स्मरणसे होनेवाले मार्गमें कायिक, वाचिक, मानसिक सारे परिश्रम दूर हो गये और वे सब प्रकारसे स्वस्थ हो गये।।४३।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणके दशम स्कन्धके अध्याय ३५,
राजस–प्रमाण–अवान्तर प्रकरणके 'यश निरूपक' तृतीय अध्यायकी
श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणकृत श्रीसुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ.

अध्याय ३६

श्रीकृष्ण बलरामका मथुरागमन

षट्त्रिंशे भक्तकृपया हरिरूपम् अदर्शयत्।
अत्यासक्तिं पूर्वसिद्धां त्यक्त्वापीति निरूप्यते।।का.१।।

कारिकार्थ: ३६ वें अध्यायमें पहले सिद्ध हुई अत्यासक्तिका त्याग करके भी भगवान्ने भक्त कृपासे अपने स्वरूपका दर्शन कराया ।।१।।

अक्रूरेण च संवादो गमनोद्यम एव च।
गोपिकानां विलापश्च भगवद्रूपवर्णनम्।।का.२।।

कारिकार्थ: निरूपित चार पदार्थोंको कहते हैं–१. अक्रूरजीके साथ संवाद, २. जानेका उद्यम, ३. गोपियोंका विलाप, ४. भगवान्के रूपका वर्णन ।।२।।

मनोरथस्य सिद्ध्यर्थं उद्यमस्य तथैव च।
तत्रागत्यागत्यभावे स भिन्न इति संशयात्।।का.३।।

कारिकार्थ: मनोरथ तथा उद्यमकी सिद्धिकेलिए यहां(मथुरामें) आकर फिर व्रजमें आकर, दोनों स्थानों पर भाव भिन्न हैं, यों शंका होने पर ।।३।।

चत्वारोऽर्थाः क्रमादुक्ताः पुरुषार्था यतो व्रजे।
सर्वे सिद्धा इति ज्ञाने भक्तो भूयात् तथा परः।।का.४।।

कारिकार्थ: ये चारों अर्थ जन्मसे कहे, क्योंकि पुरुषार्थ तो व्रजमें सर्व सिद्ध होते है, यों ज्ञान होने पर फिर भक्त पर होता है।।४।।

श्रीशुक उवाच
सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः।
लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान् स चकार ह।।१।।

श्लोकार्थ: श्रीशुकदेवजी कहते हैं–महाराज!, वहां अक्रूरजी सुखपूर्वक पलंग पर बैठ गए. उन्होंने आते समय मार्गमें जो–जो मनोरथ किए थे, उन सबको श्रीकृष्ण और बलदेवजीने भली–भांति सत्कार करके अच्छी तरह पूर्ण कर दिया ।।१ ।।

व्याख्यार्थ: गत अध्यायमें अक्रूरजीके मनोरथोंका निरूपण किया जा चुका है. यद्यपि वे सभी अभिप्रेत तथा आवश्यक नहीं थे, तो भी, वे भक्तिमार्गीय

भक्तके किये हुए मनोरथ थे. इस कारणसे भगवान्ने सभी पूर्ण कर दिये, यह इस 'सुखोपविष्टः' श्लोकसे कहते हैं. वहांसे श्रीनन्दके चले जानेके बाद श्रीकृष्ण और बलदेवजीने उन्हें सम्मानपूर्वक पलङ्ग पर बिठलाया और वे बैठ गये. लोक संसारमें बड़ा किसी छोटेका सम्मान करता है, तो यह निश्चित है कि वह महापुरुष उसका स्वयंसे कुछ लघु पुरुषका अवश्य ही हित करेगा. इस नियमसे अक्रूरजीके वे सारे ही मनोरथ पूरे कर दिये, जो उन्होंने आते समय मार्गमें किये थे. यों तो 'काममय एवायं पुरुषः' पुरुषकी हजारों कामनाएं होती हैं; किन्तु वे कामनाएं जो मार्गमें अक्रूरजीने की थीं, सारी उनने प्राप्त कर ली. आश्चर्य इस बातका है कि रास्तेमें की गई किसीकी कामना सिद्ध नहीं हुआ करती; किन्तु उन पूर्वसिद्ध अक्रूरजीके तो मार्गमें किये मनोरथ भी सिद्ध हो गये।।१।।

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने।
तथापि तत्परा राजन् न हि वाञ्छन्ति किञ्चन।।२।।

श्लोकार्थः लक्ष्मीके स्वामी नारायणके प्रसन्न होने पर कोई भी पदार्थ अलभ्य या दुर्लभ नहीं होता, तो भी भगवान्के भक्त भगवान्से कुछ भी नहीं मांगते।।२।।

व्याख्यार्थः यदि भगवान् भक्तोंकी यात्रामें की हुई कामनाको ही पूरा करते हैं, तो फिर, सबको, सब भक्तोंको भगवान्के समीप जाते समय ही, रास्तेमें कामना ही करनी चाहिये?

ऐसी आशङ्कामें निष्काम, उत्तम, भक्त श्रीशुकदेव मुनि 'किमलभ्यम्' इस श्लोकसे हीन सकाम भक्त अक्रूरकी व्याजपूर्वक निन्दा करते हुए कहते हैं. नित्य फल तो ऐश्वर्य, वीर्य आदि छः गुणरूप हैं, और नित्य फल अनित्य फल-भेदसे दो प्रकारका है. उनमें अनित्य फल लक्ष्मीके आधीन है. श्रीकृष्ण तो भगवान् षड्गुण सम्पन्न तथा लक्ष्मीके पति हैं. इसलिये नित्य, अनित्य सभी फल देनेमें समर्थ हैं. उनके प्रसन्न हो जाने पर उनके अधीन सारी वस्तुएं ही हैं, उनमेंसे कोई सी भी वस्तु अलभ्य नहीं है. अति प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण तो अपने आपको भी भक्तोंके अधीन कर देते हैं. अपने आपको भी दे देते हैं.

परन्तु उनकी प्रसन्नता ही दुर्लभ है, उनके प्रसन्न होने पर तो कुछ भी दुर्लभ नहीं है. उनके अप्रसन्न हो जाने पर तो कुछ भी फल नहीं मिलता है. इसलिये प्रसन्नताके कारणरूप भगवान्को प्राप्त करके यदि कोई भक्त उनसे कुछ

मांगता है तो वह बड़ी भूल करता है. क्योंकि भगवत्परायण भक्त उनसे किसी प्रकारकी कामना नहीं करता. कामना करनेवाले भक्त तो, विषय परायण ही होते हैं. पहले तो ये अक्रूरजी भी, भगवत्परायण ही थे, किन्तु बीचमें दुष्ट कंसके संसर्गसे मध्यमाधिकारी हो गये. इसीलिये उन्होंने भगवान्से कामना कर ली, उत्तमाधिकारी तो उनसे कुछ भी कामना नहीं करते. यदि सारे ही उत्तमाधिकारी भी कामना करने लग जायेंगे तो यह भक्तिमार्ग सर्वोत्तम ही नहीं रहेगा. यह मार्ग इसीलिये सबसे उत्तम है, क्योंकि भगवत्परायण भक्त उनसे किसी प्रकारकी मांग नहीं करते. स्नेहवश अथवा निष्कपट भाव प्रकट करनेकेलिये मूलमें, राजन् सम्बोधन पद दिया है।।२।।

सायन्तनाशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः।
सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम्।।३।।

श्लोकार्थः सायंकालका ब्यालू करके देवकीनन्दन भगवान् कृष्णचन्द्र अक्रुरजीके पास आकर बैठ गए और उनसे पूछने लगे कि कंस अपने जाति भाईयों तथा बन्धु बान्धवोंके साथ कैसा व्यवहार करता है?।।३।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार पूर्व श्लोकसे भक्तोंके कामना विषयक निर्णयको कहकर, कामनाके द्वारा भी निश्चयरूपसे कहे हुए कामनाके अङ्गभूतका वर्णन करते हुए, इस 'सायन्तनाशनं' श्लोकसे उसको समर्थनपूर्वक कहते हैं. श्रीनन्दके साथ बातचीत कर चुकने और उनके शैय्या पर सो जाने अथवा यशोदाजीके घर पर चले जानेके बाद सायङ्कालिक भोजन(ब्यालू) करके कंसके व्यवहारको पूछा. ब्यालूके पश्चात् कंसका, देवकीनन्दनका, वसुदेव आदि बन्धु-बान्धवोंके साथ व्यवहार पूछनेके दो कारण हैं. एक तो यह, कि भोजनसे पूर्व यदि कंसका व्यवहार, सुहृदोंका बन्धन आदि सुनते और उसका निवारण या निवारणार्थ कोई उद्योग न करने तक भोजन करना अनुचित था और दूसरा यह कि माता यशोदाने भोजनार्थ सिद्ध किये व्यञ्जनोंको माताजीके सन्तोषकेलिये भी ब्यालू पहले करके फिर उसके व्यवहारको जाननेकी बात पूछी.

यद्यपि भगवान् सब जानते ही हैं तथा लौकिकमें उन्हें कोई काम भी नहीं है तो भी, उनका अवतार ही, भक्तोंकेलिये ही, हुआ है, इसलिये ब्यालू कर लेनेके बाद ही व्यवहारका प्रश्न किया. जब कभी कंसको दैत्यावेश नहीं रहता है, तब उसका व्यवहार जाति भाई तथा परिवारके साथ अच्छा सुना जाता है.

इसलिये सन्देहसे प्रश्न किया है. अक्रूरको भी यह बात बतलानी हैं कि भगवान् सर्वज्ञ हैं. यह उनका मानुषभाव ही जानकर विपरीत न कह दे, इसलिये, गोपिकाओंकी जैसे परीक्षा ली वैसे ही इसकी भी परीक्षा लेनेकेलिये ही इस प्रकार सन्देहात्मक प्रश्न किया. इसी तरह अन्य उदासीन साधारण जनताके साथ भी उसने जो कुछ किया अथवा अब वह करना चाहता है सब पूछा. प्रश्न इसलिये किया गया कि कदाचित् आगन्तुक वह कहनेमें शङ्का(सङ्कोच) कर जाये अर्थात् बन्धुओंके बन्धन आदिको, जिसे वह कर चुका हो और आगे करने (मथुरा ले चलने)की बातको सङ्कोचवश न कहे, बिना पूछे स्वयं कहनेमें भक्त अक्रूरका दोष माना जाता. इसलिये श्रीशुकदेवजीने भक्तोंकी बुद्धिका ग्रहण करनेकेलिये इस प्रकारसे कहा है।।३।।

श्रीभगवानुवाच

तात सौम्यागतः कच्चित् स्वागतं भद्रमस्तु वः।
अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम्।।४।।

श्लोकार्थः श्रीभगवान्ने कहा–हे सौम्य ! चाचाजी ! आप भले पधारे. आपका कल्याण हो. आपके यहां सब कुशल तो है न? आपके सुहृज्जन, ज्ञातिवाले और बन्धु बान्धव तो सुखी हैं? वे शरीरसे तो निरोग हैं? ।।४।।

व्याख्यार्थः इन आगेके चार श्लोकोंसे भगवान्के वाक्योंका वर्णन करते हैं, जिनमें क्रमसे, 'तस्यतत्सुहृदां चैव पश्चात्तापोऽनुमोदनम्' अक्रूरजीका, उनके मित्रोंका कुशल–मङ्गल प्रश्न पश्चात्ताप(कंसके कार्योंकेलिये) और अक्रूरजीके आगमनका अनुमोदन किया गया है. उनमें इस 'तात' प्रथम श्लोकसे कुशल पूछते हैं. अक्रूरजीने अपने मनोरथकेलिये जिस 'तात' शब्दका प्रयोग किया था, भगवान् भी उसी 'तात' शब्दको प्रयुक्त करके पूछते हैं, कि हे तात! हे निर्दोष! तुम, जैसे सुखपूर्वक आया जाता है, उसी प्रकार सुखसे आये हो न? हे सौम्य! इस सम्बोधनसे यह सिद्ध होता है, कि इसमें अक्रूरका कोई दोष नहीं है. निर्दोषताको सूचित करनेकेलिये यह सम्बोधन है. विघ्नपूर्वक आये हो अथवा बिना किसी विघ्नके ही आये हो? इस प्रकारके सन्देहमें 'स्वागतं' इस क्रिया विशेषणका प्रयोग किया है.

उन्हें कंसने किसी दूसरे कामकेलिये भेजा हो, जिससे वे सङ्कोचवश सारी बाते न कह सके. इसलिये उन्हें निर्भय करनेकेलिये भली–भांति आश्वासन

देते हुए भगवान् कहते हैं कि तुम्हारा कल्याण हो. श्लोकमें 'वः'(तुम्हारा कल्याण हो) यह बहुवचन बतलाता है कि भगवान्के समीप केवल आ जाने मात्रसे ही सब लोकोंका शुभ–मङ्गल हो जायेगा.

इस श्लोकके उत्तरार्धमें भगवान् प्रश्न करते हैं कि स्व–भक्तोंका, अक्रूरजीके देह पुत्रादिकोंकी, अथवा स्वकीय आप लोगोंकी जाति सगोत्री भाईयोंकी और बन्धु, सगे सम्बन्धियोंकी निष्पापता तथा निरोगता तो है न? अर्थात् आप सब पापोंसे तथा रोगोंसे रहित हो न? दो बातें पापोंका तथा रोगोंका अभाव पूछी हैं; क्योंकि दुष्ट कंसके पास रहनेवालोंके ब्रह्महत्यादि पाप भी प्रतिदिन हो सकते हैं और दुष्टके संसर्गमात्रसे ही सदा बने रहनेवाले मानसिक(आधि) तथा शारीरिक(व्याधि) रोग भी हो ही सकते हैं. इसीलिये सबका पापाभाव और रोगाभाव पूछा है, जो दोनों ही पूछने योग्य हैं।।४।।

किं तु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये।
कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च।।५।।

श्लोकार्थः अथवा रोगके समान यदुकुलको पीड़ा देनेवाले हमारे मामा कंसका जब अभ्युदय है, तब आपकी, आपके आत्मियोंकी तथा उसकी प्रजाकी कुशल पूछना व्यर्थ ही है।।५ ।।

व्याख्यार्थः अक्रूरसे सबकी कुशल न पूछकर केवल पापों, अभाव तथा निरोगताका ही प्रश्न करनेका अभिप्राय यह है कि भगवान्को सारे बन्धुओंका कंससे अनिष्ट होनेका तो निश्चय ही हो रहा था. इसीको 'किं तु नः' इस श्लोकसे कहते हैं. मूलमें 'तु' शब्दका तात्पर्य यह है कि कुशल प्रश्न नहीं करना चाहिये. कुशल पूछनेसे रोकता है. 'नः' हम सब बान्धव हैं. पिता वसुदेवजी आदिको तो आत्मारूपसे ही निरूपण किया है. सारे कुलको ही अकुल नष्ट कर देनेवाले, सबका नाश कर देनेवाले, महा रोगके प्रतिदिन बढ़ते रहते उसका प्रतीकार(नाश) न करके क्या कुशल पूछी जाये?

कोई दूसरा रोग नहीं, यह कंस ही महान् रोगरूप है, जो प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है. इस रोगको अब तक बढ़ने देने(उपेक्षा करने), नष्ट न कर देनेका कारण यह है, कि इस रोगका 'मामा' नाम है. जैसे शत्रुका ब्राह्मण नाम हो और ब्राह्मणके नाते मारने योग्य नहीं माना जाता, वैसे ही मामा नाम नामधारी(देह) इस सबका क्षय कर देने पर भी रोगकी उपेक्षा ही की जा रही है. 'अङ्ग' यह सम्बोधन

वास्तविकता(सत्यता) का सूचक है, इससे यह सूचित किया है कि भगवान् स्वयं तो इस रोगको दूर करेंगे नहीं, परन्तु यदि वह मामा नामका कंसरूप रोग ही कुचेष्टा करेगा तो उसे मिटा देने, नष्ट कर देनेमें(मुझे) भगवान्को कोई थोड़ा भी प्रयास नहीं होगा, सहज ही मार दिया जायेगा. इसलिये अभी उस महारोगके रहते हुए अपने आत्मीय बन्धु-बान्धवों, बान्धवोंकी प्रजा तथा उस कंसकी भी प्रजाओंकी कुशल क्या पूछूं? अर्थात् उन पर तो आपत्तियोंके बादल सदा ही मंडराते रहते होंगे।।५।।

अहो अस्मदभूत् भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः।
यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः।।६।।

श्लोकार्थः अहो मेरे ही कारण, निरपराधी माता-पिताको अब तक अनेक कष्ट मिले और मिल रहे हैं. मेरे ही कारण उनके पुत्र मारे गए ओर जिससे वे स्वयं बन्धनमें पड़े।।६ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार कंसके राज्यमें बन्धु-बान्धवोंका अवश्य पीड़ित होना निश्चित करके कोई विशेष प्रश्न नहीं किया जायेगा तो अक्रूरके मनमें दुःख होगा, ऐसा मानकर कंसके द्वारा किये गये वध, बन्धनादिके विषयोंकी चिन्ता सी करते हुए 'अहो' इस श्लोकसे कहते हैं. भगवान् यदि कंसके द्वारा किये गये वध, बन्धनादिका शोक न करते तो, देवकीजी तथा वसुदेवजीके विषयकी तो इन्हें कुछ चिन्ता नहीं है, अक्रूरजीको ऐसा दुःख होता.

आश्चर्य तो यह है कि अन्य एकके कारणसे दूसरोंको दुःख उठाना पड़ रहा है; क्योंकि मेरे कारणसे ही माता-पिता जो वास्तवमें आर्य हैं, निरपराधी हैं, अत्यधिक दुःख उठा रहे हैं. इससे यही कहा जा सकता है कि मैंने ही उनका दुःख उत्पन्न किया. शब्दोंके द्वारा सम्भावित वह अत्यधिक कष्ट थोड़ा सा ही होगा, यों न जान लिया जाये इसलिये 'यद्धेतो पुत्रमरणम्' इन पदोंसे उसकी गणना करते हैं. इनका आठवां पुत्र मुझे मारेगा, इस प्रकारसे मेरे गुणको सुनकर व्यर्थमें ही उनके पुत्रोंको मार दिया. मैं उनका पुत्र हूं, इसी कारणसे पहले और अन्तमें उन्हें बन्धनमें डाल दिया गया।।६।।

दिष्ट्याद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम्।
सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम्।।७।।

श्लोकार्थः हे सौम्य! अहो भाग्य है, जो आज हमें अपने आत्मीय

बान्धव आपके दर्शन हुए. मैं भी बहुत दिनोंसे दर्शनकी अभिलाषा कर ही रहा था. हे तात ! अब आप कृपा करके अपने आनेका कारण कहिए ।।७ ।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार शोक प्रकट करके इस 'दिष्ट्याद्य' श्लोकसे उनके आने पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए, भगवान् उनके आगमनका प्रयोजन पूछते हैं. आज सौभाग्यसे ही अचानक आत्मीय आपके दर्शन हुए; क्योंकि भक्तोंको भगवान्के दर्शन भाग्यसे ही होते हैं. यह लौकिक भाषा है,(भागवतमें समाधि भाषा ही प्रमाण है, यह ध्यानमें रखना चाहिये) इसीलिये भगवान् लोक मतके अनुसार मेरे भाग्यसे मुझे आप(अक्रूर) के दर्शन हुए, यों कह रहे हैं. किन्तु यह कहना कि भगवान्के भाग्यसे भगवान्को किसीके दर्शन हो, तो सर्वथा अनुचित ही है, तो भी लौकिकभाषा होनेके कारण लोकमतका अनुसरण करके ही ऐसा कहा गया है. वास्तवमें तो भगवान्के दर्शन भक्तोंको भाग्यसे ही होते हैं, ऐसा कहना ठीक है और इसीलिये इस श्लोकके प्रथमचरणका अर्थ यहां उक्त प्रकारसे सङ्गत किया गया है.

हे सौम्य!(सज्जन) आपके दर्शन लोकरीति(लोकदृष्टि)से ही मेरा उपकार करनेकेलिये मुझे फल देनेकेलिये तथा जिसको मैं ही बहुत समय पहलेसे चाह रहा था कि कब दर्शन होंगे, आज सौभाग्यसे प्राप्त हुए हैं. मूलमें दिया 'हे सौम्य!' इस सम्बोधनसे सूचित होता है कि दर्शनकी इच्छा रखना और दर्शन होना दोनोंका कारण सत्त्व है. इस प्रकारसे अक्रूरका अभिनन्दन करके दो बातें पूछते हैं. एक तो यह कि आजकलके समाचार कहिये कि कंस वहां क्या कर रहा है और दूसरी बात यह कि आपके यहां आनेका प्रयोजन कहिये कि आप किस कारणसे यहां(गोकुलमें) आये हो ?।।७।।

श्रीशुक उवाच

पृष्टे भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः।
वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम्।।८।।

श्लोकार्थ: श्रीशुकदेवजी कहते हैं, राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके यों पूछने पर मधुवंशी अक्रूरने सारा वृत्तान्त कह सुनाया. उसने यह भी कहा कि कंस यादवोंसे घोर बैर बांधे हुए है और अभी-अभी वह वसुदेवजीको मार डालनेको भी उतारू हो गया था ।।८ ।।

व्याख्यार्थ: भगवान्के यों पूछने पर अक्रूरने मूलसे आरम्भ करके सभी

समाचार कह सुनाये, यह इस 'पृष्टे' श्लोकसे कहते हैं. भगवान्ने पूछा है, जो अन्तर्यामी, सब ईश्वर, सर्वज्ञ तथा सब आत्मा है और इसलिये अक्रूर स्वयं मधुवंशी है, भक्त है तथा समान गोत्री है, इसलिये भी, सब कह देना ही चाहिये. इस कारणसे, उसने कहा कि कंसका यादवोंके साथ घोर विरोध और वसुदेवजीको मार डालने तक उद्योग करना भी कह सुनाया।।८।।

यत् सन्देशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम्।
यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः।।९।।

श्लोकार्थः नारदजी उससे कहे गए हैं कि आप श्रीकृष्ण–वसुदेवजीके ही पुत्र हैं. इसके बाद कंसका संदेशा, उसका बुरा विचार तथा इसीलिए कृष्ण, बलदेव और नन्द आदिको उसकी आज्ञासे अपने साथ लिवा ले जानेकेलिए दूत बनकर व्रजमें आना, आदि सब बातें अक्रूरने कह सुनाई ।।९ ।।

व्याख्यार्थः स्वयंको कंसके द्वारा भेजे जानेका प्रकार भी कहा. वह सन्देशा, जो कंसने कहा था अर्थात् भगवान्को मुख(यज्ञ) दर्शनके बहानेसे लिवा ले जाना और जिस कार्यकेलिये कंसने अक्रूरको दूत बनाकर भेजा था अर्थात् भगवान्का अनिष्ट विचारकर बुला लानेका प्रयोजन भी कह दिया. इनके अतिरिक्त इन सबका मूल कारण नारदजीके जो वाक्य कंससे कहे गये थे कि आनकदुन्दुभि(वसुदेवजी)से भगवान्का प्राकट्य हो गया अथवा भगवान्की देहका जन्म आनकदुन्दुभिसे हुआ था, यह सब कह दिया. आनकदुन्दुभि शब्दसे सूचित किया गया है कि भगवान्के जन्मका कारण बतलाकर सब कह दिया. दो कार्योंका होना आठवें श्लोकसे कहा और अक्रूरके आनेका प्रयोजन तथा इन सबका मूल कारणभूत नारदजीके वाक्योंका वर्णन इस श्लोकसे अक्रूरजीने कर दिया।।९।।

श्रुत्वाक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा।
प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञादिष्टं विजज्ञतुः।।१०।।

श्लोकार्थः अक्रूरके ये वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा शत्रु वीरोंका संहार करनेवाले बलदेवजी हँसे और कंसकी वह आज्ञा अपने पिता नन्दजीको सुना दी ।।१०।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार अक्रूरके द्वारा कहे गये उपर्युक्त पांचों विषयोंको सुनकर, कंसका कालरूप श्रीकृष्ण और शत्रुके वीरोंका नाश करनेवाले

क्रियाशक्ति युक्त तथा कालका आवेशवाले बलदेवजी, जिनने इसीलिये अवतार लिया है, दोनों मुस्कुराये. हंसनेका कारण यह था कि जिस कामको वे दोनों भाई करते, उसे इस कंसने ही कर दिया. उस हंसीको दोनोंने नन्दरायजीसे छिपाया. नन्दजीसे छिपाकर उनके पिताभावपनकी रक्षा की, क्योंकि यदि उनसे उस अपनी हंसीको नहीं छिपाते तो, कदाचित् भयभीत नन्दजी जानेकी अनुमति नहीं देते. फिर उन्होंने कंस राजाकी मल्लोंकी क्रीड़ा देखनेकेलिये बुलानारूप आज्ञाको नन्दरायजीसे कहा।।१०।।

गोपान् समादिशत् सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः।
उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च।।११।।

श्लोकार्थ: नन्दजीने भी उसी समय सभी गोपोंको यह आज्ञा कर दी कि गोरस तथा भांति-भांति की भेटें लेकर सब अपने-अपने छकड़े तैयार करो।।११।।

व्याख्यार्थ: नन्दजीको पहले कंसकी तरफसे शङ्का थी ही, किन्तु फिर भी भगवान्की इच्छासे उन्होंने भी कंसके उस खेलके आयोजनको देखने तथा सामग्री तैयार करनेकेलिये गोपजनोंको आज्ञा दे दी अर्थात् व्रजकी रखवाली करनेवाले अधिकारी कोतवालके द्वारा नन्दजीके छः वाक्योंकी घोषणा करा दी. (१)सारा ही दूध दहीरूप गोरस ले चलनेकेलिये अलग ले लो. यह पहली घोषणा इसलिये कर दी गई कि महान् राजाकी तरह सभी गोप, प्रत्येक समर्थ तथा मण्डलाधिपति हैं. अतः बड़े सवेरे ही दहीका मन्थन तथा इच्छानुसार सभी दूधका उपयोग न कर दें. (२)सारा गोरस ले लो, इतना ही नहीं किन्तु भेटें भी लो. अत्यन्त सुन्दर प्यारे-प्यारे वस्त्रों तथा आभूषणोंको, जो भगवान्के उपयोगमें लिये जा सकें तथा जो मानों कंसके द्वारा भगवान्केलिये ही मंगाये हैं, भेंटरूपसे ले चलनेकी नन्दजीने घोषणा कराई. (३)इस प्रकार साथ ले चलनेके पदार्थोंको इकट्ठा करनेकी घोषणाके बाद इन पदार्थोंको ले चलनेके साधनोंकी भी घोषणा कराई कि सुन्दर तथा मजबूत गाड़े तथा बड़े तेज चलनेवाले वाहन, जो सब सामग्रीको ले जा सके, तैयार करो. साथ ही रथ, घोड़े आदिको भी सजाओ।।११।।

यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसं।
द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्व यान्ति जानपदाः किल।
एवमाघोषयत् क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले।।१२।।

श्लोकार्थ: नन्दरायजीने गोकुल गांवमें घोषणा करवा दी कि राजा कंस धनुष यज्ञ कर रहे हैं. उन्होंने उसमें हम सबको बुलावा भेजा है. सवेरे गोरस और भेटें लेकर हम लोग वहां चलेंगे. धनुष यज्ञका उत्सव देखनेकेलिए अन्य-अन्य गांवो और प्रान्तोंके लोग भी जा रहे हैं, हम लोग भी वहां चलेंगे ।।१२।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार सब सामग्रीको एकत्रित करने और छकड़े, रथ, घोड़े आदि सजानेका प्रयोजन 'यास्यामः' श्लोकसे कहते हैं. (४)हम सब सवेरे ही मथुरा चलेंगे और वहां राजा कंसकेलिये गोरस देंगे, क्योंकि राजाकेलिये जो रक्षा करता है, उसे छठा भाग अवश्य देना चाहिये. इसलिये(५)भोजनके उपयोगमें हम लोग जितना गोरस ले सकेंगे, उसकी अपेक्षा बहुत अधिक गोरस इकट्ठा करके ले चलें, जो राजा कंसकेलिये भी भेंट कर सके. इसी अभिप्रायसे मूल श्लोकमें 'नृपति' पद कहा है.

अब तक पहिले उसकेलिये गोरस आदि न देनेका कारण तो यह था कि वह हम लोगोंसे बैर करता था, किन्तु अब उसने क्रूरताका त्यागकर हमें भी उत्सवमें बुलवाया है. इसलिये अब वह अपने अनुकूल हो गया है, ऐसा जान पड़ता है. (६)कंसने कोई विशेष आग्रह तो किया ही नहीं हैं. साधारण बुलावा भेज दिया है, ऐसी दशामें उससे भय न रहने पर भी मथुरा कैसे चला जाये? इसके उत्तरमें कहते हैं कि वहां चलकर बहुत बड़ा उत्सव देखेंगे. यह चौदस बड़ा पर्व है. भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको भगवान् पूरे ग्यारह वर्षके हुए हैं और वहां(मथुरामें) धनुष यज्ञ हो रहा है, तो हमें इस अवसर पर अवश्य चलना चाहिये. इसमें कंसका कोई छल-कपट नहीं है, क्योंकि सभी गांवों और जनपदोंके लोग वहां जा रहे हैं. यह निश्चय ही प्रसिद्ध है, यह सातवां वाक्य प्रमाणरूपसे कहा गया है, इसलिये इसको अलग कहा है.

नन्दजीने यह घोषणा इस तरह कराई कि हर एक घरमें यह बात सुन ली जाये. यह घोषणा सारे रहस्यको जाननेवाले, जनानी ड्योढ़ीके दारोगोंसे करवाई अथवा सब गोपजनोंको अपने पास बुलाकर स्वयंने और अपने गोकुलमें अन्तःपुरके अध्यक्षके द्वारा घोषणा कर दी. भगवान्में सबकी अत्यधिक प्रीति है ही. इसलिये भगवान् सवेरे मथुरा पधारेंगे, ऐसी घोषणा न करके, हम सब चलेंगे, ऐसी अन्य प्रकारसे ही घोषणा करवाई।।१२।।

गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम्।

रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम्।।१३।।

श्लोकार्थ: राम कृष्णको मथुरा ले जानेकेलिए अक्रूर आए हैं. यह घोषणा सुनते ही गोपियां अत्यन्त व्याकुल हो उठीं ।।१३ ।।

व्याख्यार्थ: उस घोषणाको सुनकर गोपीजनोंकी वही दशा हुई अर्थात् उनकी भगवान्में प्रीति अत्यधिक बढ़ गई, यह 'गोप्यः' इससे आरम्भ करके छः श्लोकोंसे कहते हैं. वे गोपियां यह सुनकर कि भगवान् मथुरा जायेंगे, अत्यन्त दुःखित हो उठीं. यद्यपि उनके पास जाकर किसीने उनसे नहीं कहा था, क्योंकि उसके पास उस स्थानमें उनसे कहनेवाला नहीं था, तो भी लोगोंकी बातचीतसे ही इसको सुनकर वे अत्यन्त व्यथित हो गईं. वे अभी पूर्णरूपसे प्रपञ्चका त्याग नहीं कर सकीं थीं, केवल भगवान्केलिए ही उनने प्रपञ्चका त्याग किया था. इसलिए भगवान्के गोकुलसे पधार जाने पर तो उनका किया प्रपञ्चत्याग व्यर्थ हो जाएगा. इसलिए उनका दुःखित होना उचित ही है. जैसे घोर क्लेशोंके आ जाने पर भारी सन्तापसे प्राणोंको अत्यधिक पीड़ासे कोई मूर्च्छित हो जाता है, वैसी ही उनकी दशा हो गई.

कंसने उन्हें छलसे बुलाया हो, यह सोचकर वे दुःखी नहीं हुईं, वे तो सारी ही राम–कृष्ण दोनोंका ही गोकुलसे जाना सुनकर ही व्याकुल थीं, क्योंकि दोनोंमेंसे किसी एक(बलदेवजी)के गोकुलमें रह जाने पर तो भगवान्का पीछा आ जाना सम्भव भी है, किन्तु दोनोंको ही वह तो लिवाने आया है. इसलिये वे सबकी सब ही अत्यन्त व्यथित हो गईं, उनके शीघ्र वापस आ जानेकी सम्भावना नहीं है; क्योंकि नगरमें चले जानेवाले शीघ्र वापस नहीं आते हैं.

भगवान्के गोकुलसे चले जानेकी घोषणा झूठी तो नहीं हो सकती, क्योंकि उन्हें ले जानेकेलिये अक्रूर आया है. वह अपने इस अक्रूर(क्रूर नहीं) नामसे ही व्रजमें आ सका है, अन्यथा वह व्रजमें प्रवेश ही न कर पाता. भगवान्के वहांसे चले जानेकी बातको सुनकर उनमेंसे एक प्रकारकी गोपियां तो मूर्च्छित ही हो गईं अथवा पूर्णतया दुःखित हो गईं।।१३।।

काश्चित् तत्कृतहृत्ताप–श्वासम्लानमुखश्रियः।
स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन।।१४।।

श्लोकार्थ: कई गोपियोंके मुखकमल उस शोकसे उत्पन्न हुए सन्तापकी गर्म सांसोंसे मुरझा गए. कईं गोपियां ऐसी शिथिल हो गईं, कि उनको अपने दुपट्टे

और कङ्कणोंके गिर जाने तथा वेणीके खुल जाने तककी भी सुध नहीं रही ।।१४।।

व्याख्यार्थ: 'काश्चित्' इस श्लोकसे अन्य गोपियोंकी दशाका वर्णन करते हैं. ये सारी गोपियां(१)तामसी,(२)राजसी,(३)सात्त्विकी,(४)ज्ञानप्रधान गुणातीता तथा(५)भक्तिप्रधान गुणातीता भेदोंसे पांच प्रकारकी हैं. उनमें राजसी गोपियोंको, जिनका वर्णन ऊपरके १३वें श्लोकमें किया गया है, व्यथा हुई. सात्त्विक गोपीजनोंकी स्थितिका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं. उनमें सात्त्विक गोपीजनोंके मुखकमल भगवान्के मथुरा जानेके समाचार सुनकर होनेवाले हृदयके तापके कारण गरम-गरम सांसोंसे मुरझा गये. यद्यपि ये पूर्ण ज्ञानवाली ज्ञानप्रधाना थीं, तो भी ये थी तो(सात्त्विकी) गुणवाली ही. इसलिये भगवान्के पधार जानेकी घोषणासे उत्पन्न हुए अत्यधिक(बलिष्ठ) हृदयके सन्तापके कारण उनके सांस गरम हो गये और जिससे उनके मुखों पर म्लानता(मुरझाहट) छा ही गई.

कईं अन्य गोपियां भगवान्का पधार जाना सुनकर अत्यन्त भयभीत हो गईं और भयके कारण उनके शरीर सूख गये. उनके मनमें उत्पन्न हुए महान् भयसे ही सारा शरीर क्षीण हो गया, ऐसा शिथिल हो गया कि उन्हें अपने वस्त्रों और कङ्कण आदि आभूषणोंके गिरने तथा वेणियोंकी गांठोंके खुलने तककी भी सुधी नहीं रही.

अन्य कई व्याख्याताओंके मतसे ये गोपीजन सात्त्विकी हैं. श्रीमदाचार्यचरणोंने तो तमोगुणसे होनेवाले महाभयके कारण उनके देहोंका सूखना वर्णन करके उनको तामसी गोपीजन कहा है।।१४।।

अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः।
नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव।।१५।।

श्लोकार्थ: कईं व्रजबालाएं भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें ऐसी लवलीन हो गई कि उनकी सारी इन्द्रियां निश्चेष्ट हो गईं, उनकी सारी क्रियाएं रुक गईं. उन्हें आत्मलोकमें चले गए की तरह इस लोकका तनिक भान नहीं रहा ।।१५।।

व्याख्यार्थ: 'अन्याश्च' इस श्लोकसे ज्ञाननिष्ठ ज्ञानमें श्रद्धा रखनेवाली व्रजाङ्गनाओंका वर्णन करते हैं. उन्हें भगवान्का स्मरण हो आया और भगवान्के अत्युत्कट ध्यानसे उनकी इन्द्रियों, अन्तःकरण तथा देहोंके सारे व्यापार रुक गये. वे गाढ़ी निद्रामें सोई सी हो गईं. उन्हें इस लोकका भान नहीं रहा. ''अहरहः

ब्रह्मलोकं गच्छन्ति''(८।३।२) (प्रतिदिन ब्रह्मलोकको जाते हैं), इस छान्दोग्य उपनिषद्की श्रुतिके अनुसार आत्मा ही लोक है. वास्तवमें ये गोपीजन समाधिमें ही स्थित हैं. यह असम्प्रज्ञात समाधि हैं, जिसमें अपना भी भान नहीं रहता हैं. इसलिये यहां(व्याख्यामें) गाढ़ निद्राका दृष्टान्त दिया गया है।।१५।।

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः।
हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः।।१६।।

श्लोकार्थः कईं गोपियां श्रीकृष्णकी अनुराग भरी मुस्कानके साथ कहे गए मनको हर लेने वाले मीठे प्रेम भरे शब्दोंसे युक्त वचनोंको याद करके मोहित हो गईं।।१६।।

व्याख्यार्थः उनमें जो भक्त थीं, वे तो मूर्च्छित हो गईं. यह इस 'स्मरन्त्यः' श्लोकसे कहते हैं. अपर गोपीजन, जिन्होंने किसी समय कभी दूसरेके साथ प्रेम नहीं किया था और जो भगवान्की सेवक ही रही थीं, तथा अपने हृदयमें भगवान्के दर्शन भी कर रही थीं, वे तो मूर्च्छित हो गईं, क्योंकि वे भगवान्के अनुराग भरे मन्दहाससे प्रेरित होकर अपनी वास्तविक स्थितिमें विचलित हो गईं, अपने आपको भूल गईं. भगवान्का भक्तोंमें महान् अनुराग उनको परम आनन्द देनेकेलिये होता है और मन्दहाससे वे अलग-अलग रस प्राप्त करते हैं.

ये गोपीजन भगवान्के हृदयका स्पर्श करनेवाली परम प्रिया हैं. इसलिये इन्हें रसदानार्थ भगवान् मन्दस्मित अनुरागपूर्ण करते हैं अथवा 'हृदिस्पृशः' (हृदय को छूनेवाली), यह पद वाणीका विशेषण है. मैं तुम्हें नहीं छोडूंगा, तुम मेरे प्राणभूत हो, इस प्रकार भगवान्ने पहले जो विचित्र पदवाली वाणियां कही थी, उन्हें स्मरण करके वे मूर्च्छित हो गईं. भगवान्के ऐसे वचनामृत पदरूप थे. (वे वाक्य नहीं थे, क्योंकि पदोंके अर्थोंका स्मरण करानेवाले पद ही होते हैं. वाक्यार्थके न होनेसे) वे वाक्य नहीं होते हैं. इस समय भगवान् जा रहे हैं, ऐसा सुनकर और पहलेकी ''मैं नहीं जाऊंगा'' ऐसी वाणीको याद करके जब दोनों विरोधी वचनोंका निर्धार करनेका प्रयत्न करने पर भी वे कुछ निश्चय नहीं कर सकीं, तब एकाएक मूर्च्छित ही हो गईं, यह तात्पर्य है।।१६।।

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम्।
शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च।।१७।।
चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य भीता विरहकातराः।

समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योच्युताशयाः।।१८।।

श्लोकार्थः मुकुन्द भगवान् नन्दनन्दनकी सुललित चाल और चेष्टा, स्नेहपूर्ण हंसी और चितवन, शोकको हरनेवाली हास-परिहासकी बातें और उदार चरित्र, आदि जो अब उनके मथुरा चले जाने पर नहीं मिलेगी, उसका स्मरण करनेवाली तथा एकमात्र भगवान्में मन लगाए हुई वे व्रजबालाएं भावि वियोगसे दुःखित और भयसे व्याकुल हो गईं, तथा सभी इकट्ठी होकर यों विलाप करती हुई आंसू बहाने लगीं ।।१७-१८ ।।

व्याख्यार्थः फिर अन्य सारी ही गोपियां इकट्ठी होकर अपने जीवनके निर्वाहकेलिये विरह भरे वाक्य बोलने लगीं, यह विषय और क्रियाके भेदसे इन 'गतिं सुललिताम्', इत्यादि दो श्लोंकोमें कहते हैं. पहले सत्रहवें श्लोकमें उनके वाक्योंका विषय और अठारहवें श्लोकमें उनकी क्रिया, तदनन्तर उन्होंने जो कुछ किया उसका वर्णन है.

भगवान्की उनके पास आते समयकी चाल, आलिङ्गन करना आदि उनकी मनोंहर चेष्टा, कामलीलामें हासपूर्वक रसवर्धक चितवन, उन्हें कुछ समयका वियोक देकर बिछुड़कर फिर आकर उस प्रथम विरहजनित उनके शोक को दूर करनेकेलिये कहे गये परिहास, हंसी खुशीके वाक्य, मदोन्मत्त हाथीकी तरह उच्छृङ्खल(मर्यादारहित,) स्वच्छन्द लीला चरित, तथा अन्यान्य लीलाओं का चिन्तन करती हुईं, वे सब एक जगह इकट्ठी हो गईं।।१७-१८।।

शङ्काः व्यभिचारिणियोंके समान शास्त्रनिषिद्ध आचरणवाली इनका निरूपण क्यों किया जाता है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि वह तो अपने मोक्ष प्राप्तिकेलिए मोक्षदाता मुकुन्द भगवान्की लीलाओंका चिन्तन है. फिर भगवान्का मथुरा पधारना सुनकर अपनी पहली,सब सुखमूल, सर्वस्व धनरूप स्थितिका नाश होना समझकर, वे अत्यन्त भयभीत हो गईं. धीरजता आदिके न रहनेसे थोड़ेसे विरहमें भी शीतसे व्याकुलकी तरह अत्यन्त दीन हो गईं. फिर एकसे स्वभाववाली और समान दुःखवाली वे सब एक-एक मिलीं तथा समूहके भेदोंसे बीस प्रकारकी व्रजबालाएँ एकटोलीमें इकट्ठी होकर अपने उत्कट प्रेमपूर्ण भावको दिखाती हुई रोने लगीं. कामातुरोंकी भी ऐसी अवस्था हो जाती है, किन्तु वे तो एकमात्र भगवान्में ही चित्त लगाए हुई थीं. वे अपने एक दूसरेके जीवन निर्वाहकेलिए कहने लगीं।।१८।।

लेख: 'चिन्तयन्त्य' इस श्लोककी व्याख्यामें, 'विंशति भेदाः' इस पदका अभिप्राय है कि अठारवें अध्यायमें बतलाए हुए उन्नीस भेदोंमें कहा- तामस-तामसी गोपीजनोंके न होनेसे उन्नीस भेद कहे थे. यहाँ इन व्रजबालाओंमें तामस-तामसीके भी होनेसे बीस भेद हैं.

गोप्य ऊचुः

अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा।।१९।।

श्लोकार्थ: गोपियां बोलीं-अहो विधाता! तू बड़ा ही निष्ठुर है. तेरेमें जरा भी दया नहीं है. तू देहधारियोंको पहले प्रेमकी डोरमें बांधकर फिर उन्हें कृतार्थ नहीं होने देता, उनकी अभिलाषा पूरी नहीं होने पाती और पहले ही अकारण ही उन्हें अलग-अलग कर देता हैं. लड़कोंके खेलकी तरह तेरे भी काम निरर्थक ही हैं।।१९।।

व्याख्यार्थ: यहां इन गोपियोंके वाक्योंसे भगवान्का चरित स्पष्ट ज्ञात हो जाता है, इसलिये वह यहां दुबारा नहीं कहा गया. तामसोंके निरोधकी समाप्तिमें, दशम पूर्वार्धके बत्तीसवें अध्यायमें दो-दोके रूपमें बारह प्रकारके गोपीजन श्लोक बोलनेवाली बतला आये हैं. ये भी वैसी ही हैं. इसलिये इनके वाक्य भी बारह श्लोकोंमें(१९ से ३० तक) कहे गये हैं. यहां उपालम्भके पात्र छः गिनाये गये हैं. उनमें पहला ब्रह्मा है, जिसके कहनेसे भगवान् भूतल पर पधारे. दूसरे भगवान्, तीसरे अक्रूर, चौथे साधारणरीतिसे सारे ही. फिर, पांचवें सगे-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव और छठे स्वयं गोपीजनोंकी आत्मा. उनमें 'अहो' इस श्लोकसे आरम्भकर, तीन श्लोकोंसे ब्रह्माजीको उपालम्भ देती हैं।।१९।।

अविवेको दुरात्मत्वं दत्तापहरणं तथा।
त्रिदोषं ब्रह्मणः प्राहुर्व्यवहाराद् यतः कृतम्।।का.१।।

कारिकार्थ: १.अविवेक(१९) और २.दुष्टता(२०) और ३.दी हुई वस्तु को वापस ले लेना(२१) इसमें ब्रह्माके तीन दोष गोपियोंने कहे हैं. इन दोषोंको ब्रह्माजीने अपने कर्तव्यसे प्राप्त किए हैं।।१।।

व्याख्यार्थ: उन दोषोंमें पहले 'अहो' इस श्लोकसे ब्रह्माके अविवेकका वर्णन करती हैं. अहो आश्चर्य है कि जगत्के रचनेवाले वेदगर्भ ब्रह्मा भी अविवेकी है. जिसके द्वारा मिलाकर जो विछोह करा दिया जाता है. जैसे संयोग

कराना तुम्हारा काम है, ऐसे ही वियोग कराना भी तुम्हारा ही काम है, क्योंकि तुम विधाता हो, सब कुछ कर देनेवाले हो, इसलिये संयोगकी तरह वियोग भी तुम ही कर देते हो.

तुम्हारा यह काम उचित नहीं है. तुम्हें किसी पर भी दया नहीं आती है. स्वयं उत्पन्न किये हुए अपने सन्तानरूप बालकोंको शिक्षाकेलिये दण्ड भी दिया जाता हैं, फिर भी उन पर कुछ दया नहीं की जाती है. उन दण्डनीय बालकोंमेंसे भी किसीके हाथ-पांव ही काट दिये जाते हैं, किसीका धन छीन लिया जाता है, किसीके 'इह' और 'पर' दोनों लोक हरलिये जाते हैं और किसीके आनन्ददायक पदार्थोंको नष्ट कर दिया जाता है, किन्तु सर्वस्वका तो अपहरण नहीं किया जाता है. थोड़ीसी तो दया आती है. हमारा तो सब कुछ ही भगवान् है. यदि तुम्हें किसी अंशमें थोड़ीसी भी दया आती, तो उस अंशको बचानेकेलिये भगवान्को हमारे पास ही रहने देते, परन्तु तुम तो भगवान्को हमारे पास ही रहने नहीं देते हो, इसलिये तुममें किसी अंशमें भी दया नहीं है.

यदि यह कहा जाये कि तुम्हारे(गोपियोंके) अदृष्टसे भगवान् तुम्हें प्राप्त हुए और अब उस अदृष्टके न रहनेसे भगवान् जा रहे हैं, तो इसके उत्तरकेलिये 'संयोज्य मैत्र्या' ये पद दिये हैं. भगवान्के साथ जीवोंका संयोग होनेका कारण अदृष्ट नहीं है. संयोग तो वियोगकी स्फूर्तिसे ही होता है. भगवान् अन्तर्यामी और आत्मा हैं. उनसे प्रार्थना करके, उनका यहां आविर्भाव कराकर, किसी प्रकारका सहज सम्बन्ध न होते हुए भी उन भगवान्को मित्रता द्वारा जीवके साथ मिलाकर और संयोगका फल न मिलनेसे कृतार्थ सफल नहीं हुए ही, उन जीवोंका भगवान्से विछोह करा देते हो. ''स यदि पितृलोककामो भवति'' (छान्दो. ८।२।१) (यदि वह पितृलोककी कामना करता है), इत्यादि श्रुतिके अनुसार सारी कामनाओंकी प्राप्ति कही गई है और ''आनन्दमयम् आत्मानम् उपसंक्रम्ये'' (३।१०।४)(आनन्दमय आत्माको प्राप्त करके) इत्यादि श्रुतिके अनुसार फिर संसारमें आवागमन नहीं होना फल बतलाया है, परन्तु यहां तो भगवान्से बिछुड़ने पर कोई फल भी नहीं होगा और संसारमें आना भी पड़ेगा. इसलिये हमारे परम चाहे हुए भगवान्का वियोग कराकर अकृतार्थ फलको बिना प्राप्त किये हुए ही हमको भगवान्से अलग कर देते हो.

यदि भगवान्से हमारा विछोह करनेसे तुम्हारा कोई प्रयोजन(फल) सिद्ध

होता है, तो वियोग करा देना भी उचित है, किन्तु तुम्हारी(ब्रह्माकी) यह चेष्टा तो बालक जैसी बेसमझीकी ही है. जैसे कोई बालक मिट्टी आदिका कोई अलौकिक बड़ा सुन्दर खिलौना बनाकर, मूर्ति बनाकर भी उसे क्षण भरमें तोड़ देता है, वैसे ही तुम्हारा भी यह कार्य है. इस प्रकारसे ब्रह्माजीका भी अविवेक प्रदर्शित किया है.

लेख: 'अहो' इस श्लोककी व्याख्यामें 'वियोगजनितत्त्वात्' इस पदका अभिप्राय यह है कि संयोग, वियोगकी स्फूर्ति होनेसे होता है. यहाँ यह क्रम है कि शरणमंत्रके उपदेशसे भगवान्में प्रेम होता है. उस प्रेमसे यह ज्ञान जीवको हो जाता है कि मैं भगवान्से इतने लम्बे समयसे बिछुडा हुआ हूं. तब कृष्णवियोगसे उत्पन्न हुए ताप, क्लेश और आनन्दका तिरोभाववाला वह जीव, उस आनन्दकी प्राप्तिकेलिए प्रयत्नपूर्वक उस तिरोहित हुए आनन्दको फिरसे प्राप्त करा देनेमें समर्थ, आनन्दरूप भगवान् श्रीकृष्णकेलिए, अपना सर्व समर्पण करता है. भगवान्का सहजदास जीव, तब अपने भूले हुए दासभावको, फिरसे स्मरण कर लेता है. इसीलिए जब जीव पहलेसे ही दास, भगवदीय था ही और तब देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण और इसके सारे धर्म भी इसके नहीं थे(भगवदीय ही थे). उन देह, इन्द्रियादिका समर्पण मुख्य है. इसीसे आत्माके साथ इन देहादि सबका समर्पण करके सब प्रकारसे भगवान्का होकर रहता है. तभी स्वरूप प्राप्त करने योग्य होता है और फिर भगवान्की कृपासे जीवका भगवान्के साथ संयोग होता है. प्रलयमें जीवका भगवान्में ही लय होता है. इस बातको सूचित करनेकेलिए कालमें, वर्ष-मासादिका विभाग बतलाया गया है. भगवान् पधारेंगे और हम भी फिर आ जाएँगीं, यह तात्पर्य है.

'अभिलषितभगवद्वियोगात्' इस कथनका अभिप्राय यह है कि जो भगवान् हमारे अभिलषित(जिनको हम चाहती)हैं, उनके वियोग हो जानेसे हम कृतार्थ नहीं हो पाईं. पितृलोक आदि हमारे अभीष्ट नहीं हैं. हमारे तो भगवान्की ही एकमात्र चाहना है और उनसे ही तुम हमारा विछोह कराते हो. इस कारणसे हमारी कोई भी कामना सफल नहीं होगी.

यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम्।
शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम्।।२०।।

श्लोकार्थ: काली-काली अलकोंसे अलंकृत और सुन्दर नासिका तथा

कपोलोंसे सुशोभित एवं शोकको मिटानेवाली मन्द मुसकानसे मनोहर मुकुन्द भगवान्का मनोहर मुखारविन्द पहले दिखाकर, अब उसे अदृश्य किए देता है, सो अच्छा नहीं कर रहा है. तेरा यह कार्य निंदनीय है ।।२०।।

व्याख्यार्थ: ब्रह्माका केवल अविवेक ही नहीं है, वह तो अयोग्य भी कर रहा है, यह इस 'यस्त्वं' श्लोकसे कहते हैं. ब्रह्माजी, तुमने ही हमारे ऊपर उपकार करनेकेलिये हमारे शोकको दूर करने, तथा हमारा मोक्ष होनेकेलिये भगवान्के मुखारविन्दके दर्शन हम सबको कराये हैं, क्योंकि तुम्हारी प्रार्थनासे ही भगवान् यहां भूतल पर पधारे हैं, किन्तु पहले जब तक उनके दर्शन नहीं हुए थे, तो हमें थोड़ा सा ही शोक आदि था और अभी तो अत्यधिक शोक हो रहा है, इसलिये तुमने यह जो कुछ भी काम किया है, वह भी दुष्ट कार्य ही किया है. यह तुम्हारा कार्य तो मोह करानेवाले उस नटके समान है, जो पहले तो मोह उत्पन्न कर देनेवाली अच्छी-अच्छी वस्तुएं दिखाता है, फिर अयोग्य कर देता है. तुमने भी हमारे साथ ऐसा ही अनुचित कार्य किया है.

देखिये, तुमने भी पहले तो मोक्षदाता मुख्य मुकुन्द कृष्णका मुखारविन्द, जिसके दर्शनसे मोक्ष प्राप्ति होती ही है और फिर वह भी अनेक सर्व ज्ञानियोंसे घिरे हुए काले-काले केशोंसे घिरे हुएका दर्शन कराया. काले केश कामरसको उत्पन्न करते हैं. इसलिये श्रीमुख, काली अलकोंसे घिरा होने पर इनके श्रीमुखको प्राप्त करनेका अधिकार नहीं होते हुए भी प्राप्त हो जाता है, यह सूचित किया है, क्योंकि चारों तरफसे मुखारविन्दको घेर करके रहनेवाली ये अलकें केश कामरस ही हैं.

फिर जो मुखारविन्द सुन्दर कपोलवाला अर्थात् रसका अनुभव करने योग्य है और ऊंची नासिकासे सुशोभित होनेके कारण, रससे पूर्णतया भरा हुआ होकर फूल रहा है. जिसके मन्द स्मितका लेश भी शोकको दूर कर देता है और उस मन्दहास्यकी परिसमाप्ति भगवान्के जिस मुखारविन्दकी शोभाको ही बढ़ाना है. उस सदा दर्शन करनेके योग्य भगवन्मुखारविन्दको तुम ही पारोक्ष्य(अदृश्य) कर देते हो. भक्तोंको सदा दर्शन देना ही एकमात्र स्वभाववाला भगवन्मुखारविन्द अपने आप अदृश्य नहीं हो सकता है. अर्थात् जिस श्रीमुखका भक्तोंको सदा दर्शन देते रहना यही एक स्वरूप(स्वभाव) है, वही अपने आप अदृश्य होकर दर्शन न देनेवाला कैसे बन जायेगा? इसलिये यह काम तो तुम्हारा ही है.

तुम ही अव्यक्त(अप्रकट)को प्रकट करते हो और व्यक्त(प्रकट)को नहीं दिखाई देनेवाला करते हो. तुम्हारा पहला काम, अप्रकटको प्रकट करना तो, सब पर उपकार करनेवाला होनेसे अच्छा है, किन्तु यह भगवान्के मुखारविन्दको अदृश्य कर देना रूप दूसरा काम तो दुष्टता पूर्ण ही है. ब्रह्माजी हम अधिक क्या कहें? देखो, यह कार्य तो तुम्हारेलिये भी दुष्ट ही है अर्थात् इससे आपका मनोरथ भी सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि भगवान् भूतलसे निजधाममें पधारें, तब प्रभासीय लीलामें पधारे हैं. ब्रह्मलोकके मार्गसे नहीं पधारे, जो भाग.११/३१वें अध्यायके ६ से १० श्लोकोंमें स्पष्ट है, इसलिये ब्रह्माजीका भी मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ, यह भाव है।।२०।।

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत्।
येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः।।२१।।

श्लोकार्थः अरे क्रूर विधाता! तू ही अक्रूरके रूपसे आया है और जिनसे हम कृष्णचन्द्रके शरीरके एक ही भागमें तेरी सारी सृष्टिकी सुन्दरताको देख पाती थीं, उन आंखोंको मूर्खोंकी तरह हर रहा है।।२१।।

व्याख्यार्थः भगवान्को अक्रूर ही ले जा रहे है. मुझे ब्रह्माको उपालम्भ देने(बुरा-भला कहने)से क्या लाभ है? इसके उत्तरमें 'क्रूरस्त्वम्' यह श्लोक कहती हैं. ब्रह्माजी!, भगवान्को तुम ही यहाँ भूतल पर लाए हो, उन्हें अक्रूर नहीं ले जा सकता. तुम ही भगवान्को ले जा रहे हो. तुम बड़े क्रूर हो. तुमने सोचा कि इस क्रूर नामसे मुझे कोई व्रजमें(गोकुलमें) नहीं आने देगा. इसीलिए क्रूर तुमने अपना विपरीत(अक्रूर) नाम बदलकर ही तुम यहाँ प्रवेश पा सके हो. अन्तःकरण तो तुम्हारा क्रूर है, फिर भी अक्रूर नाम धरकर ही बेरोक-टोक यहाँ आ सकनेकेलिए ही आए हो और दूसरी बात यह भी है कि यह अक्रूर नाम धरकर इस रूपसे भगवान्को ले जानेमें लोकनिन्दासे भी बच जाओगे, किन्तु तुम्हारा यह नाम तो भद्रा और मंगलवारकी तरह सुननेमें अच्छा-शुभ सा लगता है. वास्तवमें तो जैसे भरणी और मंगलवार अपशुकन अनिष्ट कारक ही है, वैसे ही तेरा अक्रूर यह नाम भी सुननेमें अच्छा लगता है, किन्तु हो तुम बड़े दुष्ट ही.

''चक्षुषश्चक्षुः'' भगवान् इस श्रुतिप्रमाणसे आँखकी आंख है. यह चक्षु सबकी आँख नहीं है, किन्तु तुमने ही विशेषरूपसे हमारे लिए दी है. अरे स्वयं दी हुई चक्षुको तो छोटे देवता ही नहीं हरते हैं. वे तो किसी और के द्वारा छीनी हुई

आँखको वापस दे देते हैं, परन्तु खेद है कि तुम अपनी दी हुई ही हमारी चक्षुको स्वयं छीन रहे हो. देखो, इस आंखके न रहने पर तो हम लोग सर्वथा ही अन्धे हो जाएंगे, क्योंकि इस दिव्य आंखके मिल जानेसे हमारी प्राकृतचक्षु तो नष्ट हो ही गई है. इसलिए इस आँखको ले जाने पर तो हमारा बड़ा अपकार होगा. अतः इस हमारी चक्षु(भगवान्)को मत ले जा, यह अभिप्राय है. यदि यह कहा जाए कि जो कोई, जिस-किसी कामको करने लगते हैं, वह तो उसको करते ही हैं, तब उपालम्भ(ठपका) देना व्यर्थ ही है, तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि अज्ञवत्-अज्ञानीकी तरह बिना विचारे काम करनेवालेको ज्ञान(भला-बुरा) समझा देना उचित ही होता है, इसलिए उपालम्भ देना अनुचित नहीं है. देखो ब्रह्मा! इस आँखसे तो तुम्हारा भी बड़ा उपकार सिद्ध होता है, क्योंकि जगत्में सारी सुन्दरताको रचनेवाले तुम ही हो और उसको तुम ही कहीं-कहीं थोड़ी-थोड़ी ही प्रकट दिखाते हो.''विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नम्''(मैं इस सारे जगत्को अपने एक भाग(अवयव)में धारण किए हूं) और इस गीतावाक्यके प्रमाणसे उस सारी सुन्दरताका मूल भगवान् ही है और यह सारा जगत् भगवान्के एक ही अवयवमें स्थित है. इस सारे जगत्में भी कहीं-कहीं रहनेवाली उस सुन्दरताको अलग-अलग देखनेकेलिए जनता जगह-जगह भटकती न फिरे. उस सारे सौन्दर्यको सभी लोग एक साथ ही भगवान्के एक अवयवमें ही देख सकें, इसीलिए तूने आंखें बनाई है, क्योंकि सौन्दर्यरूपको देखना आँखोंका ही काम है और तभी तेरा आँखें बनाना भी सफल है, क्योंकि शरीरके अन्य व्यवहारोंको तो अन्धे भी कर ही लेते हैं. रूपको तो केवल आँखे ही देख सकती है. इसलिए जिस ''चक्षुषश्चक्षु'' आंखकी आँखसे हम तेरी सारी सृष्टिकी सुन्दरताको देख रही थीं, उसीको तू ले जा रहा है.

देखो, हम श्रुतिरूपा गोपिकाऐं हैं. यदि हम श्रुतिरूप होकर भी, तुम्हारे बनाए कार्य(सौन्दर्य)को नहीं देख सकेंगी, तो तुम्हारा यह सृष्टिकी रचना करना आदि सारा काम अप्रामाणिक ही होगा. मधु राक्षसके मारनेवाले वे भगवान् तुझ ब्रह्माका भी उपकार करनेवाले हैं और वे यहां व्रजमें रमण करते हैं. उनके रमणमें विघ्न करना भी(तेरा) अनुचित ही है, ऐसा अर्थ है।।२१।।

न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत।
विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पतीन् स्वदास्यमद्धोपगता नवप्रियः।।२२।।

श्लोकार्थ: कई दिनोंकी मित्रताको क्षणभरमें तोड़ देनेवाले और नवीनसे प्रेम करनेवाले वे नन्दनन्दन, अपने लिए ही व्याकुल बनी हुई तथा अपने लिए ही घरबार, पति, पिता, पुत्र और सारे परिवारको छोड़कर अपनी ही दासी बनी हुईं हमारी ओर देखते भी नहीं है ।।२२ ।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार ब्रह्माको उपालम्भ(उलाहना) देकर वे गोपीजन यों सोचकर कि भगवान् तो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं. वे ब्रह्माकी बातको नहीं मानते होंगे, साक्षात् भगवान्को ही 'नन्दसूनुः' इत्यादि चार श्लोकोंमें उपालम्भ देती हैं, भगवान्को उपालम्भ देना वे स्वयं अयोग्य मानकर और शास्त्ररीतिसे उपालम्भका दिया जा सकनेको उचित समझकर ही वे कहने लगीं.

यद्यपि भगवान्ने अपनी प्राप्तिकेलिये अनेक मार्ग बनाये हैं और स्वयं तटस्थ ही रहते हैं. दूर रहकर भी उनकेलिये पूरा-पूरा नहीं, किन्तु कुछ न कुछ करते तो रहते हैं. तो भी शरणमार्गमें तो उन्होंने कुछ नहीं किया, न कोई शास्त्र ही किया और न कोई साधन ही बनाये. प्रमाणवाक्यमें भी सत्यज्ञान करानेवाले प्रमाणमार्ग, मर्यादा, भक्तिमार्गमें भी, ''**अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि**'' (मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त कर दूंगा) केवल प्रमेय(भगवान्का बल) ही बतलया है, इसलिये वह उपालम्भके पात्र हैं ही.

वे नन्दके पुत्र हैं, भक्त नन्दके ऊपर कृपा करके भक्तिमार्गसे भी नन्दरायके पुत्र हुए हैं. जब प्रेममें प्रवृत्ति नहीं करानेवाले अप्रयोजक नन्द पर इतना कर देते हैं. पुत्र तक बन जाते हैं, तो फिर वे हम पर हमारे मनोरथको सिद्ध करनेकेलिये ही मथुरा जानेमें विलम्ब क्यों नहीं कर रहे हैं? इनके यहांसे शीघ्र चले जानेकेलिये तैयार होनेसे ज्ञात होता है कि इनकी आसक्ति किसी दूसरेमें हो गई है. ये तो क्षणमें भी भङ्ग हो जानेवाला प्रेम करते हैं. इनकी मित्रता तो क्षणिक है. यदि टिकाऊ होती तो ये अपना कुछ विचार तो करते. ये हम लोगोंको अब भली-भांति देखते भी नहीं हैं. यह ठीक ही हैं, क्योंकि जिसमें रही हुई मित्रताका नाश हो जाता है, उसे फिर कोई नहीं देखते हैं.

हमारी ओर तो उन्हें निहारना ही चाहिये, क्योंकि हम सभी उन भगवान् केलिये ही आतुर(दीन) बनी हुई हैं. मूलमें 'बत' शब्द खेद प्रकट करनेकेलिये कहा गया है.

कर्ममार्गमें भी और लौकिकमें भी, अपनेलिये व्याकुल रहनेवालेकी

ओर अच्छी तरहसे ही देखा जाता है. ज्ञानमार्गमें तो भगवान् सबकी आत्मा होनेसे, सदा 'प्रकाश' ही रहते हैं और इस समय भगवान्का स्वयं बाहर प्राकट्य(आविर्भाव) हो रहा है, इसलिये इस पक्षमार्गका त्याग तो भगवान्ने कर दिया है.

''सब धर्मोंको त्यागकर'' (गीता १८।६६)इसमें भगवान्की आज्ञानुसार घरबार, सगे-सम्बन्धी, पुत्र और पतियोंका त्याग करके आनेवाली ये गोपियां, स्वयं शरणमार्गकी अधिकारिणी हैं. घरका त्याग कहनेसे घरके सारे धर्मोंका त्याग भी कह ही दिया गया. बाह्यधर्म और आभ्यन्तरधर्म भेदसे, धर्म दो प्रकारके हैं. उनमें बाह्यधर्म चार प्रकार(गेह, स्वजन, पति और पुत्र)का है और आभ्यन्तरधर्म भी देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणधर्म भेदसे, चार प्रकारका है. इनमें बाह्य धर्मोंका तो त्याग कर देना ही आवश्यक है और आन्तरधर्मोंकी दास्य भावकेलिये रक्षा करना आवश्यक है.

उन बाह्यधर्मोंके त्यागको गिनाती हैं. घर-बार और उनके धर्मोंका छोड़ना ऊपर कह ही दिया गया है. स्वजन सगे-सम्बन्धी, पुत्र जो हमसे ही उत्पन्न हुए हैं. पति, जो हम अपने अधीन रखते हैं. इन चारोंका दास्यभावमें आन्तर धर्मोंके उपयोगकी तरह उपयोग नहीं है, क्योंकि ये चारों, क्रमसे १.विशिष्ट, २.बाधक, ३.स्वतन्त्र और ४.अपने आपमें भोक्तापनेका अभिमान रखनेवाले हैं. इसीलिये इनका त्याग आवश्यक है.

यहां मूलमें 'स्वदास्यम्'(आपका ही दास भाव) पदसे 'माम् एकम्' (अकेला मुझको ही) एक(अकेला) शब्दका अर्थ सूचित किया है. हमें तो केवल आपका ही दासभाव वाञ्छित है. देशकाल आदि रसवर्धक सामग्री साथमें रखनेवाले आपसे काम नहीं हैं. केवल आपसे ही काम है और वह भी अद्धा-साक्षाद् आपसे ही काम है, क्योंकि हम साक्षात् भगवान्के स्वरूपके ही शरण आई हुई हैं. नाम-मन्त्रादि द्वारा हम, शरणमें नहीं आई है, इस कथनसे गोपियोंने अपना अधिक अधिकार सूचित किया है. इस प्रकार दासभावको प्राप्त करनेवाली हम हैं. जिनका भी भगवान् कुछ भी विचार नहीं कर रहे हैं. इसलिये केवल खेद ही करना उचित है. वे उनकी ओर(भगवान्के) नहीं देखनेके कारणकी कल्पना करती हैं कि भगवान्को नई वस्तु अच्छी लगती हैं. अयोग्य नहीं हो, परन्तु नई हो, तो उसीको वे प्यारी समझते(मानते) हैं, यह भी एक प्रकारका

स्वभाव ही है।।२२।।

लेख: 'नन्दसूनुः' इस श्लोककी व्याख्यामें दिष्ट सभी वाक्योंका स्पष्ट अर्थ लेखानुसार भी अनुवादमें हो गया है. फिर भी यहां लिखा जाता है कि भगवान्को उपालम्भ देनेको अनुचित मानकर वे स्वयं ही 'यद्यपि' इत्यादि पदोंसे समर्थन करती हैं कि भगवान्ने लौकिक कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग आदि अपने बनाए हुए सभी मार्गोंमें शास्त्र, साधन आदि सब कुछ बतलाए हैं और भक्तिमें तो कुछ भी नहीं बतलाकर केवल एकमात्र प्रमेयबल ही बतलाया है, इसलिए वे उपालम्भके पात्र है.

देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण ये चार आन्तरधर्म हैं, क्योंकि ये देहमें रहनेवाले धर्म हैं. 'स्वदास्यं' पदसे 'मामेकम्' इस एक शब्दका अर्थ सूचित किया है. 'न तु देशादिसहितस्य'का अभिप्राय यह है कि केवल भगवान् ही से तात्पर्य है. रसको उद्दीपन करनेवाली देशादि सामग्रीमें तात्पर्य नहीं है.

आभास: नवीन, तीन प्रकारसे होता हैं. भगवान्के 'नवप्रिया' इस विशेषणसे सूचित हुए भावको 'सुखं प्रभाता' इस श्लोकसे आरम्भ करके तीन श्लोकोंमें कहती हैं:

सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम्।
याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम्।।२३।।

श्लोकार्थ: आज निश्चय ही मथुरा नगरीकी कामिनियोंकेलिए सुप्रभात होगा, उनकी सभी कामनाएं पूरी होंगी, क्योंकि जब नन्दनन्दन उस नगरीमें प्रवेश करेंगे, तब वे कटाक्षोंसे युक्त उनकी अमृतमयी मुस्कानको नेत्रोंके द्वारा जी भर पिएंगीं।।२३।।

व्याख्यार्थ: वे कहती हैं कि हमारी विरोधिनी मथुरावासनियोंकेलिये आज ही यह रात शुभ सवेरावाली रात है, किन्तु हमारेलिये यह रात उन जैसी नहीं है और ब्राह्मणोंके द्वारा बतलाये हुए आशीर्वाद और मनोरथ उनके ही सत्य हुए हैं, क्योंकि वे शहरकी चतुर स्त्रियां हैं. यदि वे चतुर नहीं होती, तो भगवान्के दर्शन करने यहां ही आतीं. वे चतुर हैं, इसीलिये हमारा वहां जाना भी निष्फल है, क्योंकि यह अपनी सोतों(शहरकी स्त्रियों)का अवसर हैं. हमारे भोगकालकी अपेक्षा उनका भोगकाल और देश भी उत्तम होगा, क्योंकि वे आगेके(भगवान्के वहां पधारना आदि) बनावको पहलेसे ही जानकर वहां ही घर करके स्थिर रहने

लग गईं, वे बड़ी ही चतुर हैं. इसलिये अवश्यमेव उनको महान् उत्सव होगा.

उत्सवका वर्णन करती हैं कि वे नगरकी स्त्रियां उनके स्थानमें भली-भांति पधारे हुए व्रजके स्वामी गोकुलनाथ, गोविन्दके मुखका पान करेंगी, क्योंकि प्रभुके मुखका और पतिसे अतिरिक्त किसी दूसरेके मुखका पान करनेमें महान् आनन्द होता है. भगवान्के मुखारविन्दमें उनको केवल लावण्यरूप अमृतका पान ही मिलेगा, किन्तु उसके साथ-साथ मधुपान भी(अमृतका पान भी) प्राप्त होगा. उस अमृतके मुख्य चिह्नको बतलाती हुई कहती हैं कि कटाक्षपूर्वक मन्द मुस्कानसे युक्त वह अधरामृत है और वह भी देहादिकी विस्मृति कराने(भुला देने) वाला है. तात्पर्य यह है कि उन मथुरावासिनियोंको पहलेके दुःखका स्मरण न रहनेके कारण और अभी भगवन्मुखारविन्दके दर्शनसे उत्पन्न आनन्दके अनुभवके कारण वे ही बड़ी भाग्यशालिनी हैं. बड़ भागिनी हैं. हमारा वैसा बड़ा भाग्य नहीं है।।२३।।

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जु भाषितैर्गृहीतचित्तः परवान् मनस्व्यपि।
कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन्।।२४।।

श्लोकार्थः हे अबलाओं, हे बहिनों! उन पुरनारियोंके मधुर वचन श्रीकृष्णके हृदयको हर लेंगे और उन ललनाओंके लज्जा और मुसकानसे सुललित हाव-भावोंमें उनका चित्त फंस जाएगा. तब धीर ओर पिता आदिके अधीन(परतन्त्र) होने पर भी वे श्रीकृष्ण, हम गंवारियोंके पास फिर कैसे लौटकर आवेंगे? ।।२४।।

व्याख्यार्थः आज उन मथुरावासियोंको भले ही सुख हो, कल या परसों, जब भगवान् यहां वापस पधारेंगे, तब हमें भी सुख हो जायेगा, ऐसी शङ्कामें 'तासां' यह श्लोक कहती हैं. भगवान् मुकुन्द मोक्ष देनेवाले हैं, इसलिये वे हमें शास्त्रानुसार मुक्ति ही देवेंगे और उन नगरकी स्त्रियोंकी तो मीठी-मीठी, मनोहर तथा अन्तमें अच्छी उत्तम अनेक वाणियां होंगीं, जिनकी एक वाणी भी कामको पूरा कर सकती हैं, वहां तो बहुत सी वाणियां होंगीं. वे भगवान्के चित्तको हर लेंगी और चितके आधीन ही पुरुष हो जाया करते हैं, इसलिये भगवान् वहां नगरमें ही रहने लग जायेंगे.

यद्यपि नन्दरायजी भगवान्के साथ है, इसलिये वे पराधीन हैं. अर्थात् दूसरेकी(स्त्रीकी) इच्छासे ही भोगमें प्रवृत्ति करते हैं अथवा बालक होनेके कारण

नन्दरायजीके आधीन रहकर ही प्रवृत्ति करते हैं. किसी काममें लगते हैं और वे स्वयं भी चतुर तथा जितेन्द्रिय हैं, तो भी वे हमारे पास कैसे लोट आवेंगे, क्योंकि हम, लोग तो पहले एक बार इस रसका भोग कर चुकी हैं और मोक्ष प्राप्त कर चुकीं जैसी हैं, अतः अब वे लौटकर हमारे पास नहीं आवेंगे. भगवान् भी जैसे अभी नन्दजीके आधीन हैं, वैसे ही किसी ओरके भी आधीन हो जायेंगे और इसी तरह हमारी जैसी भी बहुत सी स्त्रियां और भी हैं ही.

मूलमें 'अबला' यह सम्बोधन सुननेवाली हमारी सबकी इस विषयमें सम्मतिको, अथवा इस विषयका हमारे पास कोई उपाय नहीं है, इन दोनें अर्थोंको सूचित करता है, क्योंकि हम तो अबला हैं, कुछ कर ही नहीं सकती और हम तो ग्राम्या हैं(गंवारिया) हैं. इस कारणसे भी भगवान् फिर हमारे पास नहीं आयेंगे.

यद्यपि ग्रामका रस मुख्य होता है. इस ग्राम्यरसके कारण भगवान्के पीछे पधारनेकी सम्भावना तो की जा सकती है, तो भी सबको ही नगरकी स्त्रियोंका उपभोग करते हुए बहुत समय(कईं दिन) बीत जायेंगा. तब रसको छोड़कर भगवान् पीछे पधारेंगे या नहीं, ऐसी शङ्काके रहनेसे पीछे कैसे पधारेंगे, इस प्रकार पीछे आनेके प्रकार सम्बन्धी प्रश्न किया है.

प्रेममें प्रथम प्रवृत्ति होने पर लज्जा होती हैं, फिर मन्द-मन्द मुसकुराहट होती है और तदनन्तर विलास होते हैं. इनको पानेकेलिये इनमें ही भ्रमण करता रहता है. अर्थात् नगरकी स्त्रियोंके मण्डलमें भ्रमण करते रहनेवाले भगवान् फिर हमारे पास काहेको आवेंगे, क्योंकि भ्रम उत्पन्न हो जाने पर बाहर निकलनेका मार्ग ही नहीं सूझता. भ्रम शब्दसे दो अर्थ हैं १.गोल मण्डलमें फिरते रहना और २.मनका स्थिर नहीं रहना, भटकते फिरना. यहां इस भ्रम शब्दका इन दोनों अर्थोंमें ही प्रयोग है, जो भ्रम भगवान्के योग्य तो नहीं हैं, फिर भी वे भ्रमण करते हुए भगवान् हमारे पास क्यों आवेंगे? नहीं आयेंगे, यह भाव प्रतीत होता है।।२४।।

अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम्।
महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम्।।२५।।

श्लोकार्थः आज दाशार्ह, भोज, अंधक, वृष्णि और सात्वत् वंशके यादवोंके नेत्रोंको परम आनन्द प्राप्त होगा, क्योंकि वे मार्गमें लक्ष्मीके पति ओर गुणोंकी खान देवकीनन्दनके दर्शन करेंगे ।।२५।।

व्याख्यार्थः भगवान् भक्तों पर दया करनेवाले हैं, वे स्वयं ही पधारेंगे, ऐसी शङ्का होने पर कहती हैं कि उनके भक्त भी वहां मथुरामें बहुत हैं. इसलिये दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि और सात्वत, इन पांचों प्रकारके भक्तोंकी दृष्टिको वहां अब आनन्द प्राप्त होगा. उनके नेत्रोंको महान् उत्सव होगा. शोभा ही देखनेकी वस्तु है और वह शोभा लक्ष्मीके अधीन है. भगवान् तो उस लक्ष्मीके भी पति हैं.

भगवान्, देवकीके पुत्र हैं. इसलिये उन देवकीका हित करनेकेलिये पधारनेवाले भगवान्का मार्गमें जो दर्शन करेंगे, उनकी दृष्टिको भी आज महान् उत्सव होगा. वे गुणोंके धाम(स्थान) हैं. उनमें असङ्ख्य गुण हैं, इसलिये उनके दर्शन करने मात्रसे ही दर्शन करनेवालोंमें वे गुण आ जावेंगे और उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे. अतः आज उनको फलप्राप्तिके साथ-साथ बड़ा आनन्द प्राप्त होगा. इस प्रकारसे इन तीन(२३,२४,२५वें) श्लोकोंसे क्रमसे नवीन प्रिय-शब्दसे बताये राजस, तामस और सात्त्विक भावोंको गिनाया गया हैं।।२५।।

मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः।
योसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारमध्वनः।।२६।।

श्लोकार्थः अहो ! ऐसे करुणा रहित क्रूर पुरुषका नाम अक्रूर नहीं होना चाहिए था. यह बड़ा ही दारुण है, क्योंकि यह हम दुःखित जनोंको आश्वासन दिए बिना ही प्राणप्यारे श्रीकृष्णको इतनी दूर ले जानेको उद्यत है।।२६।।

व्याख्यार्थः इस तरह चार प्रकारसे भगवान्को उपालम्भ देकर इस 'मैतद्विधस्य' श्लोकसे अक्रूरकी निन्दा करती हैं. नाम तो सबके अपने-अपने गुणोंके अनुसार ही रखे जाने चाहिये. कठोर, निर्दयता आदि धर्म तो अन्तःकरणके हैं. इसलिये बिना विचारे ही इनका यह नाम रखा हैं. इसका 'अक्रूर' नाम नहीं होना चाहिये था. अरी, जो सबको मारे डालता है, उसका नाम 'अक्रूर' क्यों होना चाहिये? सबका संहार करनेवालेका नाम तो 'आक्रूर' (पूर्णतया क्रूर) होना ही उचित है, क्योंकि यह तो अत्यन्त ही दारुण है.

वह तो कामकेलिये आया है, इसलिये वह क्या करे? उसे तो अपने स्वामी, कंसका काम करना ही चाहिये, ऐसी शङ्काके उत्तरमें कहती हैं कि देखो, यह तो अत्यन्त दुःखी, हम गोपीजनोंको बिना किसी तरहका आश्वासन दिये ही, हमारे सर्वस्वभूत भगवान्को दूर ले जा रहा है. इसको तो, भगवान्को वापस

लाकर किसी भी प्रकारसे, मैं (भगवान्को) तुम्हारे पास रखूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा, स्वयं करके अथवा मैं तुम्हारे पास वापस लौट आऊंगा, ऐसी प्रतिज्ञा भगवान्से वाणी द्वारा कराकर, फिर ले जाना उचित था. इसने तो ऐसा कुछ नहीं किया और बिना आश्वासन दिये ही, ले जा रहा है. गोपीजनोंको धन आदि देनेसे आश्वासन नहीं मिल सकता, क्योंकि उन्हें तो भगवान् प्राणसे ही नहीं, आत्मासे भी अधिक प्यारे हैं. भगवान् जैसे गोचारण-गाएं चरानेको जाते हैं, वैसा अक्रूरका ले जाना नहीं है, यह तो भगवान्को इतनी दूर ले जा रहा है, जहां जाकर उसी दिन वापस नहीं आया जा सकता है।।२६।।

अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः।
गोपा अनोभिः स्थविरैरूपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते।।२७।।

श्लोकार्थः देखो, पत्थरका सा कठोर हृदयवाला यह रथ पर चढ़ रहा है. साथ ही ये अज्ञानी गोप भी छकड़े जोतनेकी जल्दी कर रहे हैं और बूढ़े-बूढ़े लोग भी इनको जानेसे नहीं रोक रहे हैं. आज हमारा दैव ही हमसे प्रतिकूल है।।२७।।

व्याख्यार्थः 'अनार्द्रधीः' इस श्लोकसे सबको ही दोष देती हैं. गोपिकाओंके अतिरिक्त सब ही को मथुरा जानेका बड़ा उत्साह है. इसलिये सब ही सवेरे ही भोजन करके अक्रूरके बिना रथों और छकड़ों पर सवार हो गये हैं. भगवान् भी यशोदाजी आदिकी मथुरा जानेकेलिये अनुमति पर रथ पर भली-भांति बिराज गये हैं. भगवान्ने इस समय भी हमारा कुछ विचार नहीं किया. इसलिये ये श्रीकृष्ण कठोर हृदयवाले मालूम पड़ते हैं, ज्ञात होता है कि हम लोगोंको तो वे देखते भी नहीं.

यहां जितने भी गोप हैं, वे सारे ही विचारहीन और दूसरोंकी हत्या होते देखकर दुःखित नहीं होनेवाले ही दिखाई देते हैं, क्योंकि वे भी जानेकी जल्दी मचा रहे हैं. वैसे ही अक्रूर भी जानेकी जल्दी कर रहा है. पैदल चलनेके क्लेशसे बचने और पीछे बचे हुए रथों, छकड़ोंसे पीछे जानेके भयसे ही सारे ही गोप सवार हो गये हैं. ये सब गाड़ोंसे जानेके साधनोंसे जानेकी जल्दी कर रहे हैं. इस समय उपनन्द आदि वृद्ध गोपोंसे भगवान्को रोकने, मथुरा न जाने देनेकी प्रार्थना करना अनुचित हैं. उन्होंने भी उपेक्षा कर ली हैं, क्योंकि उनकी दृष्टिमें तो जैसी गोपियां हैं वैसी ही मथुराकी स्त्रियां हैं और नन्द आदिक भी वैसे ही हैं, जैसे वसुदेव आदि हैं. भगवान्के पधारनेमें विघ्न हो जाये, अथवा कोई अड़चन हो जाये, इसकेलिये

अपने अदृष्टसे प्रार्थना करो, ऐसा कहा जाये तो इसके उत्तरमें वे कहती हैं कि अपना दैव तथा काल-देश आदि आज अपने विपरीत काम करनेवाले हैं।।२७।।

निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः।
मुकुन्दसङ्गात् निमिषार्धदुस्त्यजाद् दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम्।।२८।।

श्लोकार्थः चलो, हम सब मिलकर श्रीकृष्णको न जाने दें(रोक दें), ये कुलके बड़े-बूढ़े और बन्धु-बान्धव हमारा क्या कर लेंगे? हम आधे पलके लिए भी श्रीकृष्णका साथ नहीं छोड़ सकतीं. दुर्दैवके कारण आज वही हमसे बिछुड़ रहे हैं।।२८।।

व्याख्यार्थः 'निवारयामः' इस श्लोकसे अपने काममें बाधा करनेवाले बन्धुबान्धवोंको दोष देती हुईं, उनकी अवगणना(अवहेलना) करती हैं कि हम सब मिलकर भगवान्को जानेसे रोक दें, चलो. यदि ऐसा करनेसे हमारे कुलके बड़े-बूढ़े रोष करेंगे भी तो वे हमारा क्या कर लेंगे? उन्होंने हमारा पहले क्या कर लिया और अब भी क्या कर लेंगे? क्योंकि वे तो अपने कुलके ही वृद्ध बान्धव हैं. वे तो कुलकी अपेक्षा होने पर हमें अपने कुलमें ही रख सकते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं कर सकते.

भगवान् तथा कुलकी तुलनाका विचार करने पर कुल तो बन्धन करनेवाला है और भगवान् मुकुन्द मोक्ष देनेवाले हैं. यदि उनका साक्षात् सङ्ग होता है, तो वह तो हमसे आंखसे आधे पलक पर भी नहीं छोड़ा जा सकता हैं, क्योंकि मुकुन्दके सङ्गकेलिये ही हमारे दुर्दैवने हमें कुलसे नीचे गिरा दिया है. इसलिये मुकुन्द भगवान्के सङ्गमें विघ्न करनेवाला अपना दैव(अदृष्ट) ही है और इसीसे हम लोगोंका चित्त दुःखित है. इसका कोई भी उपाय अपने कुलमें रहनेवाले बन्धु बान्धव कोई करनेवाले नहीं है, क्योंकि यदि वे हमारेलिये भगवान्को दें तो कुछ किया भी माना जाये.

परन्तु वे ऐसा नहीं करते हैं, वे तो उल्टे हमारी प्रवृत्तिको रोकनेवाले हैं. हमसे उनका कोई प्रयोजन नहीं हैं. हम मरें या जीवें, वे तो हमारा अपकार करना चाहते हैं, जो उनके द्वारा ही किया जा रहा है. अब फिर अपकार करना तो पीसे धान्यका दुबारा पीसना जैसा ही है. वह निरर्थक है, इसलिये कुलके बड़े बूढ़ोंसे कुछ भी अच्छी आशा नहीं करनी चाहिये.

यदि भगवान् हमारे पास नहीं आवेंगे, तो यहां हमारा उनको रोकनेसे भी

क्या लाभ है? ऐसी शङ्काके उत्तरमें कहती हैं कि वे माधव हैं. उन लक्ष्मीपति भगवान्‌को लक्ष्मीजीने बलपूर्वक पकड़ लिया है और भगवान् लक्ष्मीजीके बन गये, आधीन हो गये हैं. इसी तरहसे वे(रोकने पर) हमारे भी हो जायेंगे, उनको रोकनेका प्रयत्न कर लेने पर हमारी बुद्धिका दोष मिट जायेगा और प्रयत्न ही न करेंगी तो फिर पश्चात्ताप ही करना होगा, यह अभिप्राय है. पीछे पछताना न पड़े, इसीलिये यह साहस करना चाहती हैं. काम सिद्ध हो, इसलिये नहीं, यह तात्पर्य है. तो भी भगवान्‌के रोकनेमें सबकी सम्मति न होनेसे लौकिक, अलौकिक तथा परमतत्त्वमें दृष्टिवाली गोपिकाओंने भगवान्‌को नहीं रोका।।२८।।

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र–लीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम्।
नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तरम्।।२९।।

श्लोकार्थः रास मण्डलीमें जिनकी अनुराग भरी मनोहर बातचीत, लीलासे तिरछे कटाक्ष और आलिङ्गनके सुखसे इतनी बड़ी रातें एक क्षणके समान बीत गईं, उन श्रीकृष्णके बिना हम कैसे जी सकेंगीं? हे गोपियों! उस अपार विरहके दुःखको हम कैसे सहेंगीं? ।।२९।।

व्याख्यार्थः दुःखका अभाव और सुख, वे भगवान् ही देते हैं. इसलिये उनके बिना अपना दुःख दूर कैसे होगा? दुःख दूर नहीं हो, तो जीवन कैसे होगा? कैसे जीवेंगीं, अथवा भगवान्‌के न मिलने पर अपनी कैसी दशा होगी? इस प्रकारसे निराश होकर वे अपने आपको 'यस्य' इन दो श्लोकोंसे दोष देती हैं. वे कहती हैं कि अनुराग प्रेम आदिक भगवान्‌के हैं. प्रेमपूर्वक हास्य, हास्यसहित गुह्य भाषण, गुह्यभाषणोंके साथ भांति–भांतिकी विविध लीलाएं, लीलापूर्वक सरस चितवन और फिर अत्यधिक रस उत्पन्न होनेकेलिए आलिङ्गन तथा रास क्रीडा. इन सबका समूह एवं इन सबके साथ–साथ उस देशकालमें भगवान्‌का पधारना इत्यादि अवस्थामें क्षणदा–रात्रियां क्षण मात्र जैसी बिताई. इस विषयका विशेष विवेचन करके प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मूलमें 'स्म' शब्दके द्वारा इसकी प्रसिद्धि बतादी गई है, अर्थात् 'स्म' शब्द इसका सूचक है, यह सारी बात गोपिकाओंके अनुभवसे सिद्ध हुई हैं.

जो रात्रियां औरोंको बहुत आनन्द(क्षण) देती हैं. इसीसे वे 'बहुक्षणा' बहुतक्षण(सुख)वाली होती हैं. वे ऐसी भी रात्रियां हम लेगोंने एक क्षण जैसी ही बिताई थीं. अब उन भगवान्‌के बिना उनकी ऊपर कही सारी सामग्रीके चले जाने

पर चन्द्रमा आदिके भान रहनेसे अन्धकार ही स्थिर रहेगा. उस घोर अन्धकारको हम लोग कैसे पार करेंगीं? कहनेका अभिप्राय यह है कि एक भी रात नहीं बीतेंगी(भगवान्के बिना एक भी रात नहीं बीता सकेंगीं). वास्तवमें तो उस दिन कृष्णपक्षकी तेरस थी. इसलिये अन्धकार हो ही रहा था और गोपीजनोंके हृदयोंमें भी अन्धेरा हो गया।।२९।।

योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परितो गोपैर्विशत्खुररजश्छुरितालकस्रक्।
वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम!।।३०।।

श्लोकार्थः संध्याके समय गायोंके खुरोंसे उड़कर पड़ी हुई धूलसे भरी अलकों और मालाओंसे सुशोभीत, जो अनन्तके मित्र नन्दनन्दन गोपोंके साथ वेणु बजाते और मन्द हास्यपूर्वक मनोहर कटाक्षोंसे युक्त दृष्टिके द्वारा अमृतकी वृष्टि करते हुए व्रजमें प्रवेशकर, हमारे चित्तको चुराते हैं, उनके बिना हम कैसे जीवित रह सकती हैं।।३०।।

व्याख्यार्थः अन्धेरेमें भी कईं लोग जीते रहते हैं, परन्तु हमारा तो जीवन भी नहीं रहेगा. यह इस 'योऽह्नः' श्लोकसे कहती हैं. दिनका क्षय अर्थात् सन्ध्या समयमें दिन हमारा द्वेषी है, ऐसा सूचित करनेकेलिये 'क्षय' शब्दका प्रयोग मूलमें किया है.'अनन्तसखः' बलदेवजीके मित्र बताकर यह कहा है कि काल भी भगवान्के अनुकूल है. गोपोंसें घिरे हुए भगवान्, इस विशेषणसे गोपीजन यह कहती हैं कि सबको साथ रखकर भगवान् हमारा काम ही करते हैं और उन्होंने जो कुछ भी किया है, वह भी हमारेलिये ही किया है. यह वर्णन करती हैं कि सन्ध्याको व्रजमें आनेवाली गौओंके खुरोंसे उड़ी हुई धूलसे सनी हुई ज्ञानरूप, भक्तिरूप(जो दोनों ही धर्मसे सम्बन्ध रखते हैं और दोनों प्रकारके ही भक्त, दुःखसे छुड़ाये जाते हैं) अलकों और मालासे सुशोभित भगवान्, रसोंको जागृत करनेकेलिये वेणुनाद करते हुए उन रसोंको परिपुष्ट करनेकी इच्छासे मन्दहास सहित कटाक्ष भरी चितवनसे हमारी ओर देखते हैं, इस कारणसे वे हमारे चित्तको पीड़ा देते हैं. कामको जागृत करके फिर रमण करते हैं. इस प्रकार सब जगह सुख देनेवाले(भगवान्)के बिना हम लोग कैसे रहेंगीं? अर्थात् हमारी अपनी क्या दशा होगी?।।३०।।

लेखः 'योऽह्नः क्षये' इस श्लोककी व्याख्यामें 'एके ज्ञानरूपा अन्ये भक्तिरूपाः' पदोंका अभिप्राय यह बतलाया है कि अलकें ज्ञानका निरूपण

करनेके कारण ज्ञानरूप है और कीर्तिरूप होनेसे भक्तिरूप है.

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति।।३१।।

श्लोकार्थ: श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! कृष्णमें जिनका मन लगा हुआ है, वे गोपियां विरहकी चिन्तासे अत्यन्त व्याकुल और कातर होकर लोकलाजको छोड़कर, ऊंचे स्वरसे ''हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'' कहकर विलाप करने लगीं।।३१।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार दोष देकर पहले भी(२९ अ.१-२) भगवान् रुदन करने पर प्रकट हुए थे, इसलिये वे रोने लगीं. यह इस 'एवं ब्रुवाणा' श्लोकसे कहते हैं. इस तरह यह उपालम्भ देनेका एक प्रकार कहा है. ऐसे ही वे गोपियां अनेक भांतिसे बोलने लगीं और विरहकी भावनासे दुःखित हुईं, क्योंकि वे व्रज बालाएं थीं. उनका चित्त सदानन्द भगवान्में आसक्त(लगा हुआ) था. उन्हें विषयोंसे सन्तोष नहीं हो सकता था. सांसारिक कोई भी विषय उनको सन्तुष्ट नहीं कर सकता था, इसलिये वे लाज छोड़कर ऊंचे स्वरसे रुदन करने लगीं. शास्त्रके प्रमाणसे जो देवताओंने किया, भक्तिके कारण जो हम गोपियोंने किया और लोक प्रमाण जो भगवान्ने स्वयं किया, इस सारेको ही भगवान् दूर कर देते हैं. इसीसे मूलमें यहां तीन सम्बोधन कहे गये हैं. गोविन्द, कामधेनु द्वारा अभिषेक किये गये, दामोदर, वशमें किये गये और माधव, लक्ष्मीके पति हुए. इन अपने तीनों धर्मोंको अधिकांशमें भगवान् भूल गये थे, इसलिये भगवान्की कृपाको प्राप्त करनेकेलिये गोपियोंने रुदन करते समय उक्त तीन धर्मोंको सूचित करनेवाले तीन सम्बोधनोंका उच्चारण किया।।३१।।

स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ।
अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम्।।३२।।

श्लोकार्थ: गोपियां विलाप कर रही थीं, इतनेमें सवेरा हो गया. अक्रूरने भी शौचादिसे निवृत्त होकर, रथको हांक दिया।।३२।।

व्याख्यार्थ: स्त्रियोंके रुदन करनेसे भगवान् मथुरा नहीं जायेंगे, ऐसा मानकर सूर्योदय हो जाने पर गोकुलसे निकल चलनेका समय हो गया, ऐसा जानकर वसुदेव आदिका कार्य सिद्ध करनेवाले 'कृतमैत्रः' कंसका भी, मित्रका

भी, कार्य करनेकी इच्छावाले अथवा सन्ध्यावन्दन अथवा अवश्य करनेके कामको पूरा कर लेनेवाले अक्रूरजी स्वयं रथको हांकने लगे.

''तिष्ठेद् आसूर्यदर्शनात्''(याज्ञ.१।२५) सूर्योदय होने तक प्रातः सन्ध्यामें पूर्वमें मुख करके बैठा रहे, इस प्रमाणसे यह भी जाना जाता है कि वह अक्रूरजी सूर्योदय होने तक कर्म ही करते रहे अथवा अग्निहोत्र आदि करनेके समयमें(जो अग्निहोत्रादि करनेका शास्त्रोक्त समय है, उसमें) यात्रा नहीं करनी चाहिये. अतः अब दूसरे प्रकारसे, गोकुलमें रहनेकी वासनाका त्याग करके अन्य, मथुरा जानेकी वासनामें चित्त लगा देनेवाले अक्रूरजी रथको हांकने लगे।।३२।।

लेख: 'स्त्रीणाम्' इस श्लोककी व्याख्यामें 'वा' पदसे सन्ध्यावन्दनका कार्य सर्वदा करनेका नहीं होनेसे दूसरा पक्ष किया है. 'कृतमैत्रः' गुदा इन्द्रियका देवता मित्र है, इसलिए उस गुदेन्द्रियका कार्य मैत्र अवश्य करनेका है. वह मैत्र कार्य जिसने सबसे पहले कर लिया है, यह कृतमैत्र शब्दका अर्थ है. ऐसा अर्थ प्रथम स्कन्धमें इस शब्दका किया है. उसीके अनुसार मैंने(लेखकारने) बतलाया है.

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः।
आदायोपायनं भूरि कुम्भान् गोरससम्भृतान्।।३३।।

श्लोकार्थ: नन्द आदि गोप भी उनके साथ ही अनेक तरह भेटें और गोरसके मटकोंको छकड़ोंमें लादकर चल दिए।।३३।।

व्याख्यार्थ: फिर मथुरा जानेका उत्सव हुआ, यह इस 'गोपाः' श्लोकसे कहते हैं. भगवान्के रथके पीछे सब ही गोपोंने अपने-अपने रथ जोत दिये. (ततः) इसी कारणसे अथवा गोकुलसे चलने लग गये. भेंटों और गोरससे भरे हुए घड़ों-कलशोंसे छकड़े भर लिये. इस कथनसे उनका मथुरा अवश्य चले जाना तथा भगवान्में अत्यन्त आसक्ति प्रदर्शित होती है, क्योंकि उन गायोंके, जिनका भगवान्ने भली-भांति पालन किया है, गोरसका भोग तो भगवान्को ही करना चाहिये, इस विचारसे ही गोरसके कलश भगवान्के भोगकेलिये साथ लेकर चले।।३३।।

गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः।
प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे।।३४।।

श्लोकार्थ: दुःखित गोपियां उस स्थान पर गईं और प्रियतम श्रीकृष्णकी

प्रेम भरी चितवनसे अनुरागवाली होकर उनके सन्देशकी प्रत्याशामें खड़ी रहीं।।३४।।

व्याख्यार्थ: गोपियोंके रुदन करने पर भगवान् जैसे पहले अन्तर्गृहगताके प्रसङ्गमें हृदयमें प्रकट हुए थे, उसी प्रकारसे भीतर हृदयमें प्रकट हुए. भगवान्में सूक्ष्म व्रज भक्तोंका, स्थूल गोपिकाओंसे सायुज्यरूप विशेष भी यहां भी पहले जैसा ही सिद्ध है, इसलिये उस विशेषको न कहकर आगेका(रथको हांकनेका) वृत्तान्त ही 'गोप्यश्च' इत्यादि चार श्लोकोंसे कहा जाता है. सूक्ष्मरूप गोपीजन तो भगवान्के साथ ही चली गईं और स्थूलरूप तो स्वामी सदानन्द श्रीकृष्णके पीछे-पीछे थोड़ी दूर तक गईं. फिर वे भगवान्के प्रेमसे अनुरक्त होकर, क्या हम लोग साथ आवें, अथवा स्वामी ही वापस पधार आवेंगे? क्योंकि जीवनके निर्वाहका दूसरा कोई उपाय नहीं है. इस प्रकारसे भगवान्के उत्तरकी आशा रखती हुई गोकुल और मथुराके बीचके स्थानमें उसी प्रकार(चित्रलिखीसी) खड़ी रहीं।।३४।।

लेख: 'गोप्यः' इस श्लोककी व्याख्यामें 'पूर्ववत्'पदका अर्थ अन्तर्गृह-गताके प्रसङ्गकी तरहका है. 'इति' इस हेतुसे पहलेकी तरहसे ही सूक्ष्म गोपीजनोंका सायुज्य प्राप्तिरूप विशेष, स्थूल गोपियोंसे सिद्ध ही है, इसलिए उस सायुज्य प्राप्तिरूप विशेष, पूर्व वृत्तान्तको न कहकर रथको हाँकनेके बाद वृत्तान्त ही कहा गया है, यह भाव है.

'गोप्य:'(गोपियाँ) शब्दका सम्बन्ध 'अन्वसज्जन्त'(पीछे तैयार हुईं) शब्दके साथ है, यहाँ उसका विवरण करते हुए 'च'(और) शब्दसे उन सूक्ष्मरूप और स्थूल गोपीजनोंका भेद जो उपर बता दिया है, उसका विवरण सूचित किया गया है. 'भगवत्सङ्गे'(भगवान्के सङ्ग चली गईं). तात्पर्य यह है कि सूक्ष्मरूप गोपियां, जो दूसरा दल विरहका अनुभव करनेमें समर्थ नहीं थीं, अर्थात् जिन्हें भगवान्ने अलौकिक सामर्थ्यरूप मुख्य फल(प्राप्त नहीं कराया) नहीं दिया था, उन्होंने उनके भीतर हृदयमें प्रकट हुए भगवान्में सायुज्य प्राप्त कर लिया और वे तो भगवान् पधारे तब उनके साथ ही चली गईं. उनकी देह आदिमें कोई प्रकारका अनिष्ट न हो, इसलिए और शरीर सम्बन्धी उनके सारे व्यवहार चलते रहे, इसलिए भी भगवान्ने उनके पाँच भौतिक शरीरमें कोई दूसरा जीव स्थापित कर दिया था, ऐसा जान लेना चाहिए. 'स्थूलास्तु' और जिनको भगवान्ने अलौकिक सामर्थ्य

(प्रदान) दे दी थी, वे तो विरहका अनुभव करने(सहने)में समर्थ थीं. वे तो अपने प्रियतमके मार्गमें कुछ आगे तक चली गईं और उत्तरकी आशासे बीचमें खड़ी भी रह सकीं.

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः।
सान्त्वयामास सम्प्रेष्यैरायास्य इति दौत्यकैः।।३५।।

श्लोकार्थ: गोपियोंको इस तरह दुःखी देखकर श्रीकृष्णने एक सखा द्वारा कहला भेजा कि ''दुःखित मत होना, मैं जल्दी ही लौट आऊंगा'' ।।३५।।

व्याख्यार्थ: तदनन्तर भगवान्ने जो कुछ किया, उसका वर्णन, 'तास्तथा' इस श्लोकसे करते हैं. जो सन्देश चाहनेकेलिये वैसे ही खड़ी रहनेवाली(स्थूल गोपीजन) तथा स्वाभाविक स्वरूप-सायुज्यमें उपयुक्त स्वभाववाली(सूक्ष्म गोपीजन) गोपियोंकेलिये अपने उत्तम दूतोंके द्वारा कहलाया कि ''मैं ही आऊंगा'' क्योंकि वे यदुराजसिंह हैं. अतः यादवोंका काम भी करना ही चाहिये. इस कारण दूतोंके वाक्योंसे आनेका आश्वासन देकर उन्हें अपने गोकुलसे चले जानेके कारण ही अत्यन्त सन्तप्त देखा था. इसलिये मैं दूत वाक्योंसे आऊंगा, इस प्रकार उन्हें विश्वस्त किया, किन्तु उनको भगवान्के इस वाक्यमें भ्रम हो गया. भगवान्ने तो दूतों द्वारा यह कहलाया कि 'दौत्यकैः' दूतके वाक्योंसे अर्थात् शब्दोंके अर्थरूप अथवा ज्ञानरूपमें आऊंगा और वे समझीं कि 'अभी' यह वचन कहा यही दूतका कार्य है तथा भगवान् स्वयं ही पधारेंगे. गोपियां विपरीत समझीं, यह भगवान्का ही चरित्र हैं. यदि भगवच्चरित्र नहीं होता तो शुकदेवजीके कहने योग्य नहीं होता।।३५।।

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद् रेणु रथस्य च।
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः।।३६।।

श्लोकार्थ: श्रीकृष्णके साथ ही गोपियोंके चित्त भी चले गए. वे जब तक उनके रथकी ध्वजा और पहियोंकी धूलके दर्शन होते रहे, तब तक चित्रलिखी सी वहीं खड़ी रहीं और उधर ही देखती रहीं ।।३६।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकारका भगवान्का सन्देशा मिल जाने पर भी भगवान्के साथके सम्बन्धको दिखानेकेलिये वैसे ही खड़ीं रहीं, यह इस 'यावद्' श्लोकसे कहते हैं. सन्देशा, शब्दोंसे भेजा है, जो शब्दमात्र है और शब्दकी अपेक्षा अर्थ बहुमूल्य होता है. इसलिये सन्देशासे भगवान्के सम्बन्धकी विशेषताके

कारण जब तक उनके रथकी ध्वजाके दर्शन तथा दिखाई देनेकी सम्भावना भी होती रही और जब तक रथकी उड़ती हुई धूल भी दीखती रही, तब तक अपने अन्तःकरणोंको अथवा आधिदैविक जीव स्वरूपोंके भगवान्के साथ ही भेज देनेवाली वे केवल शरीरसे ही चित्रलिखी स्त्री दिखाई दीं. हलन-चलन तो चेतन प्रतिमा(मूर्ति) में होती हैं. वे तो अचेतन सी हो गईं थीं. इसीलिये मूलमें 'लेख्यानीव'-'चित्रलिखी सी' ऐसा कहा है. अथवा इस कथनसे यह भी सूचित किया है कि वे केवल आकृतिमात्रसे वहां रहीं. उनका स्वरूप तो भगवान्के साथ ही चला गया था।।३६।।

लेख : इसी स्कन्धके तीसवें श्लोकके आरम्भमें दी हुई ''अत्रैव लोके प्रकटम् आधिदैविकम् उत्तमम्, कामाख्यं सुखम् उत्कृष्टं कृष्णो भुङ्क्ते न चापरः''. इसी श्लोकमें ही प्रकट हुए उत्तम आधिदैविक कामनामके उत्तम सुखका भोग श्रीकृष्ण करते हैं, अन्य कोई नहीं करता) पांचवीं छठी कारिकाके अनुसार इस श्लोककी व्याख्यामें कहे गए आधिदैविक जीव स्वरूप है. जिन्होंने अपनी आत्माको भगवान्के पीछे (साथ-साथ) भेज दिया है, और ऐसी ये सूक्ष्मरूप गोपीजन ही बतलाई है. इसीको निश्चित किया हुआ विकल्प मानना चाहिए .

यद्यपि ऊपर सूक्ष्मरूप और स्थूलरूप गोपिकाओंका परस्पर भेद कहा गया है, किन्तु उस भेद प्रदर्शनका कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता है. सूक्ष्मरूप गोपियोंको तो सायुज्य प्राप्त हो जानेसे वे तो भगवान्में लीन हो गईं. इसलिए उन्हें तो दूतके द्वारा सन्देशा भेजना ही नहीं था. स्थूल गोपियोंको ही सन्देश कहलाना था. इसलिए उनकी ही स्थितिको इस श्लोकमें बतलाया है. उनमेंसे कितनीक गोपिकाने अपने अन्तःकरणको और किन्हींने अपने आधिदैविक प्रकारके जीवोंको भगवान्के साथ भेज दिया, तब वे चित्रलिखी सी खड़ी रहीं, यह अर्थ प्रतीत होता है.

ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने।
विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम्।।३७।।

श्लोकार्थः जब श्रीकृष्णके पुनः पधार आनेकी आशा नहीं रही, तब वे अपने-अपने घर लौट आईं और अपने प्रियतमके चरित्रोंको गा-गाकर शोक रहित होकर विरहके दिन-रात बिताने लगीं ।।३७।।

व्याख्यार्थः जब भगवान्के रथकी ध्वजा तथा उड़ती हुई धूल भी नहीं

दीखने लगी और वहांसे भी बहुत दूर पधार गये, तब वे पीछी लौटीं, यह 'ता निराशाः' इस श्लोकसे कहते हैं. किसी भी कारणसे भगवान् आज ही वापस पधार आवेंगे ऐसी आशा उनको नहीं रही. फिर वे कैसे जी सकीं? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि प्रियके चरित्रोंको गाती हुईं वे जीवित रहीं, क्योंकि भगवान्के गुण भी भगवान् ही हैं. इसीसे वे भगवान्के गुणोंका ज्ञान करके शोक रहित होकर दिन-रात बिताने लगीं. उनके रातके चरित्रोंको रातमें और दिनके चरित्रोंको दिनमें गाकर दिन-रात काटने लगीं. इसी विशेषताको कहनेकेलिये मूलमें 'अहनी' द्विवचन(वाले शब्द)का निर्देश किया है.

इस विशोका(शोक रहित हुई) कथनसे भगवान् भक्तोंकी उपेक्षा करते हैं, अर्थात् भक्तोंकी परवाह नहीं करते, यह दोष भी नहीं रहता और भगवान्के वापस न आनेका भी उन्हें(भगवान्को) कोई दोष नहीं होता. भगवद्गुणगानसे एक रात्रिकी तरह सारी ही रात्रियां बीत गईं, ऐसा भी बतलानेकेलिये'अहनी' रात्रि दिवस शब्दका जातिके अभिप्रायसे(जातिको लक्ष्यमें रखकर) प्रयोग किया गया है।।३७।।

लेख: 'ता विशोकाः' इस श्लोककी व्याख्यामें ''अनेन भगवत उपेक्षा दोषो निवारितः'' पदोंका अर्थ यह है कि इस 'विशोका:' शोकरहित करनेके कथनसे भगवान् पर(गोपियोंकी उपेक्षा कर दी) ऐसा उपेक्षादोष नहीं रहता है, क्योंकि भगवान्ने तो उन्हें अलौकिक सामर्थ्य देकर शोकरहित किया, तथा शृङ्गाररसका द्वितीय दल, विरहके अनुभवकी शक्ति दी. इस प्रकार उनकेलिए महान् फलका दान करनेके बाद ही भगवान् वहांसे पधारे.

भगवानपि सम्प्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप।
रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम्।।३८।।

श्लोकार्थ: इधर भगवान् श्रीकृष्ण भी बलदेवजी और अक्रूरजीके साथ हवाकी तरह उड़कर चलनेवाले रथसे पापनाशिनी यमुनाके किनारे पहुंच गए।।३८।।

व्याख्यार्थ: जब वे शोकरहित हो गईं, तब भगवान्ने गोकुलका विचार वृत्तान्त छोड़ दिया और वे आगे पधारे, यह इस 'भगवानपि' श्लोकसे कहते हैं. यद्यपि यहां गोकुलमें बिराजे-बिराजे ही कंसका वध कर सकते हैं, गोपिकाओंको मथुरा भी ले जा सकते हैं अथवा एक रूपसे गोकुलमें रहकर दूसरे रूपसे मथुरा भी

जा सकते थे, तो भी आप मथुरा ही पधारे, यह श्लोकमें दिये गये 'अपि' शब्दके प्रयोगसे ज्ञात होता है.

बलदेवजी और अक्रूरजीके साथ भगवान् एक ही रथमें बिराजे. वे दोनों मुख्य नहीं थे. मथुरा जानेमें प्रधानता भगवान्की थी. वे दोनों तो गौण थे, क्योंकि ''सहार्थे अप्रधाने'' व्याकरणके नियमानुसार ''रामाक्रूराभ्यां''(राम और अक्रूरके साथ) यह तृतीया विभक्ति अप्रधान(गौण)में ही होती है. इसलिये पधारनेके कामको करनेवाले भगवान् मुख्य थे, वे दोनों गौण थे, ऐसा बतलानेकेलिये ही मूलमें 'राम और अक्रूरके साथ' यह कहा गया है. यह राजलीला है, ऐसा प्रदर्शित करनेकेलिये मूलमें 'नृप'(हे राजन्) यह सम्बोधन किया है.

भगवान् एक घड़ीमें ही लीन अथवा चार योजन(१२ अथवा १६ कोस) पहुंच गये, यह, (इस वायुका वेगवाले रथसे) रथके विशेषणसे ज्ञात होता है. नन्दजी आदि सारे गोप पीछे ही रह गये, परन्तु अक्रूरको कुछ चमत्कार दिखानेकेलिये केवल भगवान् ही कालिन्दी पधारें. गोकुल, वृन्दावन और गोवर्धन, ये गङ्गा, यमुनाके बीचमें थे, ऐसा निर्णय होता है. अब कलियुगके आरम्भमें उनके भाग दूसरे स्थानोंमें भर गये हैं. इसलिये इस समय प्रत्यक्ष देखकर पहलेके पुराने कथनसे विरोध नहीं है, क्योंकि यह कथा सारस्वत कल्पके अनुसार कही गई है. दूसरा इससे भिन्न निर्णय(कल्पना) करना उचित नहीं है. गङ्गा और यमुनाके बीचमें ही इतनी दूर पधारकर मथुराके समीप, मथुरासे दो कोस कालिन्दीके किनारे पहुंचे. यमुनाजी सब जगह गम्भीर,(गहरी) नहीं हैं, किन्तु जहां दह है, उसी जगह गहरी हैं. अक्रूरके पापोंका नाश होकर वह मेरे स्वरूपके दर्शन कर सकनेकी योग्यता प्राप्त कर लें, इसीलिये भगवान् 'अघनाशिनी'के तीर्थ पर पधारे. अथवा 'अघनाशिनी(पापहारिणी)' यह कालिन्दीका विशेषण जहां-जहां भी कालिन्दी वहती हैं, वहां-वहां कालिन्दीका सामान्य विशेषण है।।३८।।

तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम्।
वृक्षखण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत्।।३९।।

श्लोकार्थ: वहां दोनों भाईयोंने स्नान करके मोती जैसा निर्मल और मीठा पानी पी लिया. फिर वृक्षोंकी छायामें खड़े(ठहरे) हुए रथ पर जाकर विराज गए।।३९।।

व्याख्यार्थ: भगवान्ने सवेरे ही भोजन (गोकुलमें) कर लिया था.

यमुनाके तट पर पहुंचकर उनके कार्यका वर्णन, इस 'तत्रोपस्पृश्य' श्लोकसे करते हैं. वहां कालिन्दीके जलमें भगवान्ने स्वयं उतरकर, लीलापूर्वक स्नान किया और उसका निर्मल जल पी लिया. उस जलमें रज मिली हुई नहीं थीं, स्वच्छ था. इसलिये उसे पीकर अपने भीतर रहनेवाले ही अक्रूरको तथा औरोंको भी, जिनको पवित्र करनेकी इच्छा थी, भगवान्ने पवित्र किया. इन्द्रनीलमणिकी तरह श्याम और सबका प्रकाश करदेनेवाला वह जल, भगवान्के उदरमें प्रवेश करके वहां रहनेवाले सारे ही जीवोंको जैसे शुद्ध करता है, वैसे ही ज्ञान भी उत्पन्न करता है. इसी अभिप्रायसे मूलमें 'मणिप्रभं' मणि जैसी कान्तिवाला यह जलका विशेषण दिया है. फिर वृक्षोंके समूहमें छायाका 'वैष्णवा वै वृक्षाः' वैष्णवोंका आश्रय लेकर फिर भी भगवान् बलदेवजीके साथ, रथ पर बिराज गये. यहां भविष्यमें कुछ करना है, इसलिये छायामें ठहरे हुए रथ पर बैठ गये, यह अर्थ है।।३९।।

अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि।
कालिन्द्यास्तीरमागत्य स्नानं विधिवदाचरत्।।४०।।

श्लोकार्थः अक्रूरजी दोनों भाईयोंको रथ पर बिठाकर फिर उनसे आज्ञा लेकर यमुनाके तट पर आए और वहां उन्होंने विधिपूर्वक स्नान किया।।४०।।

व्याख्यार्थः प्रतिदिन नदीमें स्नान करनेमें असमर्थ अक्रूरजीने यमुनाको दुर्लभ मानकर उसमें स्नान करके आगे जाऊंगा, इस विचारसे वहां स्नान करनेकी प्रवृत्ति की. यह 'अक्रूरस्तौ' इस श्लोकसे कहते हैं. उन दोनों, बलदेवजी और श्रीकृष्णको यह सोचकर कि दोनों बालक हैं, कहीं इधर-उधर खेलते फिरेंगे, इसलिये, रथ पर बिठलाकर और उनसे यह कहकर कि रथमें ही बिराजे रहना, 'मैं(अक्रूर) स्नान करने जाता हूं', ऐसी उनसे प्रार्थना करके फिर कालिन्दीके तट पर आये. प्रातःकालमें मृत्तिका स्नानका शास्त्रमें निषेध होनेसे फिर दुबारा वहां आकर उन्होंने मृत्तिका स्नान विधिपूर्वक किया।।४०।।

निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनम्।
तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ।।४१।।

श्लोकार्थः स्नान करके मध्याह्न संध्या की. अक्रूरजी जब जलके भीतर डूबकर सनातन ब्रह्मका-गायत्री मंत्रका-जप करने लगे, तब उनको जलके भीतर वे दोनों भाई साथ-साथ रथ पर बैठे हुए दिखाई पड़े।।४१।।

व्याख्यार्थः ''हिरण्यशृङ्गम्''(नारायणोपनिषद्) ''सुवर्णके सींगवाले

वरुणके मैं शरण जाता हूं'' इत्यादि अघमर्षण(पाप दूर करनेवाले) मन्त्रोंका जप वहां जलमें डूबकर करना चाहिये. इसलिये उस जलमें डुबकी लगाकर वहां सनातन वेदात्मक ब्रह्मका अक्रूरजी जप करने लगे. जप करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया. तब उन्होंने जलके भीतर उन दोनों भाई, राम कृष्णको एक साथ देखा. जलमें रहनेवाले पदार्थ जैसे दीख पड़ते हैं, वैसे उनको भी देखा. उस स्थानसे भगवान्ने अपनी माया दूर कर दी थी, इसलिये वह स्थान दिव्य प्रभावशाली हो गया था. भगवान् तो सदा ही सब ही स्थानमें बिराजते ही हैं, किन्तु देश, काल आदिके दोषसे सब जगह उनके दर्शन नहीं होते हैं. अतः अक्रूरके सन्देहको दूर करनेकेलिये भगवान्ने उसे वहां भी अपने दर्शन कराये।।४१।।

तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः।
तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः।।४२।।

श्लोकार्थः उन्होंने अपने मनमें विचारा कि वसुदेवजीके दोनों पुत्र तो रथ पर बैठे हैं, फिर यहां कैसे आए? और यदि यहां आए हैं, तो रथ पर नहीं होंगे. तब उनने (जलसे ऊपर आकर) रथकी ओर देखा ।।४२।।

व्याख्यार्थः वहां जलमें दोनों भाईयोंको देखकर अक्रूरजीको सन्देह हो गया और विचार करने लगे, यह इस 'तौ रथस्थौ' श्लोकसे कहते हैं. भगवान् सबकी आत्मा हैं, तथा षडैश्वर्य सम्पन्न सर्वशक्तिमान् हैं. अक्रूरजी भगवान्के इन धर्मोंको भूलकर मन ही मन कहने लगे कि आनकदुन्दुभि(वसुदेवजी)के दोनों पुत्रोंको तो मैं रथ पर बिठाकर आया हूं. वे यहां जलमें कैसे दीख पड़ते हैं? अथवा वहां वे किस प्रकारसे आ गये? यदि किसी भांति मैं अन्यमनस्क हो गया हूं, मेरा चित्त किसी दूसरी जगह चला गया हो और मेरा ध्यान न रहा हो, तब यहां आ गये होंगे, तो अब रथ पर नहीं होंगे, ऐसा सोचकर वे जलसे ऊंचे उठकर उन्हें रथ पर देखने लगे. अक्रूरजी स्वयं ही देखनेवाले थे, इसलिये देखभाल करनेकेलिये'स एव'(वे ही), मूलमें 'सः' शब्दका प्रयोग है।।४२।।

तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः।
न्यमज्ज्य दर्शनं यन् मे मृषा किं सलिले तयोः।।४३।।

श्लोकार्थः अक्रूरने रथकी और देखा तो वहां तो दोनों भाई पहले जैसे बैठे हुए देख पड़े. उन्होंने यह विचार किया कि क्या उनको जलके भीतर देखना

मेरा भ्रम था? यह सोचकर फिर उन्होंने जलके भीतर डूबकी मारी ।।४३ ।।

व्याख्यार्थ: फिर अक्रूरजीने वहां रथमें भी दोनोंको बैठे देखा, यह इस 'तत्रापि' श्लोकसे कहते हैं. यथापूर्व अक्रूरजी उनको जिस तरहसे रथमें बैठा गये थे, वैसे ही उन्हें रथमें बैठे देखा. उनके मनमें फिर जाननेकी ईच्छा हुई और उन्होंने फिर जलमें डूबकर सोचा कि मैंने जब, मैं जलमें पहले डूब रहा था, तब भगवान्के दर्शन जलमें किये थे, क्या वह असत्य दर्शन था? वास्तवमें उन्हें इस प्रकारका सन्देह हुआ।।४३।।

भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानमहीश्वरम्।
सिद्धैर्भुजङ्गपतिभिरसुरैर्नतकन्धरैः।।४४।।
सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम्।
नीलाम्बरं बिसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम्।।४५।।

श्लोकार्थ: फिर जलमें देखा. अबकी बार उनको जलके भीतर विचित्र ही दृश्य दिखाइ पड़ा. वहां शेषनाग विराजमान् है. सिद्ध, सर्प और असुरगण सिर झुकाए उनकी स्तुति कर रहे हैं।।४४।।

श्लोकार्थ: शेषनागके हजार सिर थे. हजार फणोंमें हजार मुकुट और कमल नालके समान श्वेत शरीरमें नीलाम्बर शोभायमान् है. हजार शिखरवाले कैलाशके समान अनन्त देवका श्रीअङ्ग(कलेवर) दिखाइ पड़ता था ।।४५।।

व्याख्यार्थ: फिर उन्होंने गोता लगा जलमें डुबकी मारकर देखा. यह इस 'भूयस्तत्रापि' श्लोकसे कहते हैं. पहली बार(जब जलमें भगवान्के दर्शन हुए तब) अक्रूरजीको भगवान्का माहात्म्य ज्ञान न होनेके कारणसे उन्होंने शास्त्र प्रमाण सच्चा नहीं है, ऐसी मनमें कल्पना करके फिर जलमेंसे ऊपर आकर रथमें भगवान्को बैठे देखा. तब इस प्रत्यक्ष अनुभवसे शास्त्रको प्रमाण मानकर भी उन्होंने फिर भी डूबकर जलके भीतर भगवान्को देखना चाहा. इस कारणसे अक्रूरकी लौकिक अथवा अलौकिक प्रमाणमें दृढ़ श्रद्धा नहीं सोचकर भगवान्ने उसे बोध करानेकेलिये अपना माहात्म्य प्रकट किया, यह इस श्लोकसे कहते हैं.

उसी अक्रूरने फिरसे दर्शन किये. तत्रापि(वहां भी) इस 'अपि'(भी) शब्दसे यह कहा गया है कि जलके बाहर भी और भीतर भी भगवान्को देखा, अथवा(वहां भी) दर्शनमें भगवान्के विशेष मुख्य चिह्नके दर्शन किये. जो सङ्कर्षण थे, उनको शेषरूपसे और भगवान्को शेषशायी(शेष पर शयन

करनेवाले) रूपसे देखा, क्योंकि उसे नारायणरूपसे ही दर्शन होना योग्य था, पुरुषोत्तमरूपसे दर्शन होना उचित नहीं था. अक्रूरके सन्देहको दूर करनेकेलिये ही इस प्रकारसे दर्शन कराया था, इसलिये सिद्ध आदिके स्तुति किये जा रहे सङ्कर्षणके दर्शन किये. सारे ही सिद्ध शेषके आवेशवाले सङ्कर्षणके छठे स्कन्धमें कहे अनुसार सेवक हैं. वासुकि आदि जो सांपोंके अधिपति हैं।।४४।।

व्याख्यार्थ: कालनेमि आदि असुरोंके स्वामी हैं. ये सब ही अपने-अपने सेवकों सहित सङ्कर्षणके भक्त हैं, इसलिये उनका भगवान्‌को भय क्यों हो? इस प्रकार पहली कक्षामें ही भगवान्‌को भय नहीं है, वह निरूपण किया.

इस 'सहस्रशिरसं' श्लोकसे सङ्कर्षणका वर्णन करते हैं. दूसरे स्वरूप (रूपान्तर)के दर्शन होनेसे ज्ञान दृढ़ नहीं होता है, इसलिये अपना रूप ही प्रकट किया. वह रूप एकहजार सिरवाला था. दैत्य भी उनकी इच्छानुसार रूप धारण कर लेते हैं, उनमेंसे वह एकहजार माथेवाला वह किसी दैत्यका रूप नहीं था, वह तो देवका रूप था. उनके प्रत्येक मस्तक पर फण और मुकुट थे. ऐसा रूप शेषजीका ही होता है. ध्यान करनेकेलिये 'नीलाम्बरं'(काले वस्त्रवाले) विशेषण देते हैं कि उनका वस्त्र आवरण श्याम रङ्गका है. आवरणसे पदार्थ छिपा दिया जाता है. वह सङ्कर्षणका आवरण ढ़क देनेवाला कालरूप है, जो उनका दर्शन नहीं होने देता, ऐसा अर्थ प्रतीत होता है.

(बिसश्वेत) फिर वह रूप तमोरूप होनेसे कमलकी नालकी तरह श्वेत, शीतल और चिकना था, क्योंकि कमलकी डण्डी ठण्डी, चिकनी और सफेद होती है और वह आधिदैविकतम सफेद होता है, इसलिये सङ्कर्षणका स्वरूप भी सफेद था. इसलिये शीतलता आदि गुणोंको बतलानेकेलिये ही श्वेतरूप कहा है. और यहां फणोंसे शिखरों सहित श्वेत पर्वत कैलाशकी तरह वह रूप बतलाया है, यह तो वर्णनकेलिये कहा गया है. 'स्थितम्'(रहा हुआ) शब्दसे यह कहा गया है कि फणोंके भागके ऊंचे होनेके कारण वह भाग अक्रूरने ऊंचा उठा हुआ सा देखा।।४५।।

लेख: 'बिसश्वेत'की व्याख्यामें 'पुनस्तं' पदोंका वह स्वरूप तमोरूप था, यह अर्थ है. तमका आधिदैविक रूप सफेद होता है, इसलिए संकर्षणका सफेद स्वरूप है, जिसका वर्णन शीतलता आदि दूसरे धर्मोंको कहनेकेलिए किया है.

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम्।
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मगर्भारुणेक्षणम्।।४६।।

श्लोकार्थः उन शेषजीकी गोदमें एक पीताम्बरधारी पानी भरे मेघके समान श्याम शरीरवाले चतुर्भुज पुरुषकी शान्त मूर्ति विराजमान् थी. उनके नेत्र कमलदलके समान अरुण और विशाल थे।।४६।।

व्याख्यार्थः अब 'तस्योत्सङ्गम्' इस श्लोकसे ५५वें श्लोक तक अक्रूरको दर्शन हुए, उन भगवान्का वर्णन करते हैं. उनकी काया पर शयन करते हुए भगवान्के दर्शन किये. शेषजीका सारा शरीर अत्यन्त कोमल, एक समान, धीरे-धीरे कुण्डलाकार गोल होता हुआ सूक्ष्म हो गया था. इसलिये वह पलङ्ग सा था. सुखसे पोढ़नेकेलिये शेषजीके शरीरको पलङ्गके समान कहा हैं. ऐसा पलङ्गके तुल्य नहीं कहते तो सांप पर शयन करना तो भय दायक होता है. इसीलिये उत्सङ्ग (गोद) पद मूलमें कहा है.

मेघके समान श्याम अर्थात् सन्तप्तों(दुःखितों)के ताप(दुःख)को दूर करनेवाले तथा आकाशमें जैसे मेघ अपने ही आधारवाला होता है, वैसे ही भगवान् भी अपने आप पर ही आधारित रहनेवाले तथा पीला रेशमी वस्त्र धारण किये हुए भगवान्के दर्शन किये. इन घनश्याम तथा पीताम्बरका स्वरूप तथा प्रयोजन पहले (१०।३।९)की श्रीसुबोधिनी व्याख्यामें कह दिया गया है. भगवान् पुरुष-पुरुषका सा आकारवाले चतुर्भुज तथा परम शान्त हैं, क्योंकि जगत्की उत्पति, स्थिति तथा संहार तो उनके अंशोंसे ही होता है(वे तो गुणातीत हैं).

कमलके मध्य भागकी तरह लाल नेत्रवाले भगवान्के दर्शन किये. यहां १.घनश्याम पदसे प्रयोजन फलका वर्णन किया है. २.वस्त्र वेदरूप होनेसे प्रमाण हैं. ३.पुरुष पहले ही मैं यहां था, ऐसी व्युत्पत्तिवाले शब्दसे मूलरूपता (प्रमेयरूपता) कही है. ४.धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थका दान करना बतलानेकेलिये चतुर्भुजरूपसे प्रकट हैं. ५.भगवान्के दर्शनसे अन्तःकरण आदिके दोष दूर हो जाते हैं, इसलिये 'शान्त' विशेषण दिया है. ६.वे अपनी दृष्टिसे ही दुःखोंका नाश करनेवाले तथा आगे कंसका वध करेंगे, यह बतलानेकेलिये लाल रङ्गके नेत्रवाले कहे गये हैं. यहां गर्भ शब्द कहनेका तात्पर्य यह है कि भगवान् किसी उपायसे बालकरूपसे ही कंसका वध करेंगे, परन्तु प्रसिद्ध मूलरूपसे प्रकट होकर नहीं मारेंगे. इस प्रकारसे इस श्लोकमें दिये गये छः विशेषणोंसे भगवान्के

छः गुणोंका निरूपण किया है।।४६।।

लेखः 'तस्योत्सङ्गे' श्लोककी व्याख्यामें 'मेघतुल्यता'(मेघकी समानतासे) इत्यादि पदोंका अभिप्राय कहते हैं कि भगवान्‌को मेघतुल्य कहनेसे फल, वस्त्र वेदरूप होनेसे प्रमाण, मूलरूप, प्रमेयरूप और चतुर्भुज पदसे चारों पुरुषार्थके देनेवाले कहकर साधनरूप है. इस प्रकारसे फल, प्रमाण प्रमेय तथा साधनरूप भगवान् ही हैं. 'गर्भ' पदका तात्पर्य यह है कि अपने मूलरूपसे प्रकट होकर कंसको नहीं मारेंगे, बालकके रूपसे ही मारेंगे.

चारुप्रसन्नवदनं चारुहासनिरीक्षणम्।
सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम्।।४७।।

श्लोकार्थः उनका मुख प्रसन्नभावसे युक्त तथा परम सुन्दर था. मन्द हंसीसे युक्त चितवन अत्यन्त मनोहर थी. नाक और भौहें ऊंची और सुडौल थी. सुवर्णके कुण्डल कानोंकी अपूर्ण शोभा बढ़ा रहे थे. सुन्दर गोल कपोल और लाल-लाल होंठ दर्शनीय थे।।४७।।

व्याख्यार्थः सुन्दर और प्रसन्न अर्थात् स्वरूपसे और फलसे भी, सबको सुखदाई मुखारविंदवाले तथा मनोहर हास्यसे युक्त चितवनवाले, भगवान्‌के दर्शन किये. इस विशेषणसे भक्ति(हास्य) और ज्ञान(दृष्टि)की उत्तमताको फल सहित सूचित किया है. वे भगवान् सुन्दर भौहें और ऊंची नासिकावाले हैं. कालरूपी भौहोंसे बाहरका और आसन्य प्राणरूपी नासिकासे भीतरके कार्यका निरूपण किया है. ये सब भगवान्‌में स्थित हैं, यह बतलानेकेलिये इस प्रकार निरूपण करते हैं. उनके सुन्दर कान हैं, इस कथनसे भगवान्‌की सारे श्रीअङ्गमें उत्तमता प्रदर्शित की. वे सुन्दर गोल कपोल और लाल-लाल होंठवाले हैं, इस विशेषणसे उत्तम काम(कपोल) और लोभ(अधर)का निरूपण किया गया है।।४७।।

प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम्।
कम्बुकण्ठं निम्नाभिं वलिमत्पल्लवोदरम्।।४८।।

श्लोकार्थः उनकी भुजाएं लम्बी और मोटी थी. दोनों कन्धे ऊंचे थे. वक्षस्थलमें लक्ष्मी देवीका निवास था. शङ्खके समान सुन्दर कण्ठ, नाभि गम्भीर और उदर त्रिवलिसे युक्त तथा पीपलके पत्तेके समान आकारवाला था।।४८।।

व्याख्यार्थः बड़ी लम्बी और मोटी भुजाएंवाले भगवान्‌के दर्शन हुए. लम्बी और मोटी भुजाओंके कहनेका तात्पर्य यह है कि वे दूर रहनेवालों तथा मन्द

बुद्धिवालोंको भी भगवान् अपने पाससे चारों पुरुषार्थ प्राप्त करा देंगे. ऊंचे दोनों कन्धे और उन्नत वक्षःस्थल, जिसमें लक्ष्मीजी विराजमान् हैं. उन्नत स्कन्धके कहनेसे सबका सब भार सहन करने तथा लक्ष्मी युक्त वक्षःस्थलके कथनसे सब पदार्थोंका दान करते हैं, यह सूचित किया है.

सारी विद्याओंका मूल तथा त्रिवलिसे युक्त(भगवान्का) शङ्खकी तरह श्रीकण्ठ है. नाभिको नीची तथा 'गम्भीर' विशेषणसे यह सूचित किया है कि भगवान्का जगत्का कर्तापन अत्यन्त गूढ है, तथा वे सुन्दर शुभ लक्षणोंसे परिपूर्ण हैं. भगवान्के उदरका निरूपण त्रिवलिसे सुशोभित तथा पीपलके पत्तेका सा है, जिससे ऊपरकी कोमलता तथा ऊंचाई सूचित की है. इस कथनसे बतलाया कि भगवान्के उदरमें रहनेवाले, सभी सुखी हैं।।४८।।

लेख: 'प्रलम्ब' इत्यादि इस श्लोककी व्याख्यामें सर्वभारमुद्रा इत्यादि पदोंका अभिप्राय यह है कि कन्धोंको ऊंचा वर्णन करके सबके सारे भारकी सहन शीलता तथा लक्ष्मी सहित कहकर दानशीलताका वर्णन किया है.

बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरूद्वयान्वितम्।
चारुजानुयुगं चारुजङ्घायुगलसंयुतम्।।४९।।

श्लोकार्थ: कमर और नितम्ब विशाल थे. ऊरूयुगल हाथीकी सूंड जैसे थे. दोनों घुटने और जांघें सुन्दर थीं(ऐसै भगवान्के दर्शन किए)।।४९।।

व्याख्यार्थ: कटि(कमर) प्रदेश और श्रोणि(नितम्ब) भाग, जो स्त्रियोंकी कमरके नीचे नितम्ब भाग होता है, दोनों बड़े विशाल थे. श्रोणिभागके नीचे हाथीकी सूंड जैसे उरूयुगलवाले भगवान् थे. इस कथनसे अनेक(दो से अधिक) चरणारविन्द न होना सूचित किया है. भूमि भगवान्का कटि प्रदेशरूप हैं, इसलिये आधारकी बहुलता(विशालता)(भगवान् सबके आधार हैं) बतलाई है.

अक्रूरजीकी दृष्टि भगवान्के सभी अङ्गों पर गिर गई थी. उन्होंने भगवान्के सारे ही गात्रके दर्शन कर लिये थे. इसलिये नितम्ब श्रोणिके नीचे सारे अङ्गोंकी सुन्दरताका निरूपण करते हुए वैसा वर्णन करते हैं. दोनों घुटने बड़े सुन्दर थे.(दोनों घुटनोंके नीचेका भाग) दोनों जङ्घाएं बड़ी मनोहर थीं. भगवान् एक जङ्घा पर दूसरी जङ्घाको रखकर खड़े रहते हैं, क्योंकि यदि भगवान् दोनों जङ्घाओंको अलग-अलग रखते हों तो भक्तोंकी गति जुदी-जुदी हो जाये. इसलिये सभी भक्तोंको एक सी गति प्रदान करनेकेलिये भगवान् दोनों जङ्घाओंको(ऊपर-नीचे)

मिलाकर ही खड़े रहते हैं।।४९।।

तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम्।
नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम्।।५०।।

श्लोकार्थ: दोनों चरणतल कुछ ऊंचे थे. गुल्फ(पैरोंके गट्टे), नई कलियोंकी सी अंगुलियां, अंगूठे और गुलाबी रङ्गके नखोंकी चमकसे दोनों चरणारविन्द परम मनोहर थे ।।५०।।

व्याख्यार्थ: पांवोंकी दोनों ऊंची गांठें(गुल्फ), लाल-लाल सारे नखोंकी कान्ति, जो भगवान्के सारे श्रीअङ्गमें फैल रही थीं, तथा कमलके पत्तोंके समान नई अङ्गुलियां और अङ्गूठोंसे सुशोभित हुए चरणकमलवाले भगवान्के दर्शन अक्रूरको हुए. भगवान्के चरण सुसेव्य(सहज सेवा किये जाने योग्य) हैं, यह प्रदर्शित करनेकेलिये चरणोंको कमलदल सा कहा है।।५०।।

सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकाङ्गदैः।
कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः।।५१।।
भ्राजमानं पद्मकरं शङ्ख चक्रगदाधरम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम्।।५२।।

श्लोकार्थ: उनके अङ्गोंमें किरीट, कटक(कड़े), भुजबंध, करधनी, जनेऊ, हार, नूपुर, कुण्डल, अंगूठी आदि अनेक आभूषण शोभायमान थे और उनमें बहुमूल्य मणि, माणक जड़े हुए थे. चारों कमलसे कोमल श्रीहस्तोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि और श्रीकण्ठमें वनमाला विराजमान् थीं ।।५१-५२।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार भगवान्के सारे अङ्गोंका वर्णन करके, कटिसूत्र इत्यादि श्लोकसे उनके आभरणोंका निरूपण करते हैं. कटिसूत्र, सुवर्णकी करधनी, जो रूपकी पराकाष्ठाका चिह्न हैं, ब्रह्मसूत्र(यज्ञोपवीत), जो नामकी मर्यादाका द्योतक चिह्न है, भगवान्के श्रीअङ्गमें सुशोभित हैं. हृदय पर मोतियोंका हार विराजमान् हो रहा है, जो यह सूचित कर रहा है कि मुक्ता(मोती) और मुक्त जीवोंको भगवान् अपने हृदय पर रखते हैं. नूपुर चरणोंमें और दो कुण्डल दोनों कानोंमें यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि भक्तिशास्त्रको(चरण) और योग तथा ज्ञान(दोनों कान)को सुशोभित कर रहे हैं. इन आभूषणोंसे शोभायमान् हो रहे भगवान्के दर्शन किये।।५१-५२।।

व्याख्यार्थः अब भगवान्‌के आयुधोंका वर्णन करते हैं. भगवान्‌के एक श्रीहस्तमें कमल हैं, जो सभी अन्य आयुधोंके समान है और इसीलिये वह (कमल) सबकी बुद्धिको भ्रम करानेवाला है. पृथिवीका तत्त्व कमल, जलका तत्त्व शङ्ख , तेजका तत्त्व चक्र और गदा प्राणरूप है. इस प्रकार भगवान् पृथिवी, जल, तेज और वायुके तत्त्वोंको धारण करते हैं, इसलिये इस प्रकारसे वर्णन है.

आगे भगवान्‌के अन्य चिह्नोंको बतलाते हैं. भगवान्‌के वक्षःस्थलमें दाहिनी तरफ बढ़ती हुई उभरी हुई बालोंकी पङ्क्ति(श्रीवत्स) विराजमान् है. जो भगवान्‌का असाधारण(दूसरोंमें नहीं मिलनेवाला) चिह्न है. भगवान्‌का श्रीकण्ठ, शुद्ध जीवोंके निवासका स्थान है, इसलिये तेजस्वी कौस्तुभमणिसे तथा कीर्तिको फैलानेवाली वनमालासे भगवान् अलङ्कृत हैं।।५२।।

सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः।
सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः।।५३।।
प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः।
स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः।।५४।।

श्लोकार्थः निर्मल अन्तःकरणवाले सुनन्द, नन्द, सनक आदि पार्षद, ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता मरीचि आदि नौ श्रेष्ठ ब्राह्मण और प्रह्लाद, नारद, वसु आदि उत्तम भगवद्भक्त, भिन्न-भिन्न भाव भरे वाक्योंसे उनकी स्तुति कर रहे थे।।५३-५४।।

व्याख्यार्थः इस प्रकारसे भगवान्‌के दिव्य चिह्नोंका निरूपण करके 'सुनन्दनन्दप्रमुखैः' इन दो श्लोकोंसे सेवकोंका वर्णन करते हैं. सुनन्द, नन्द आठ द्वारपाल, सनक, सनन्दन आदि आधिदैविक भक्त, इन्द्र आदि आठ लोकपाल तथा ब्रह्मा, शिव आदि प्रधान देवगण, उनका गुणगान कर रहे थे.

मनुष्यों और देवोंका वर्णन करके ऋषियोंका निरूपण करते हैं. निरन्तर ही भगवान्‌के कार्यमें तत्पर रहनेवाले मरीचि आदि नौ उत्तम ब्राह्मण(ऋषि) भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे.

भगवान्‌की स्तुति करते हुए आधिदैविक भगवद्भक्तोंको भी अक्रूरजीने देखा. उनमें दैत्योंमें मुख्य प्रह्लाद, देवोंमें श्रेष्ठ नारद और मनुष्योंमें उत्तम भक्त भीष्म थे. तीन ही प्रकारके जीव हैं और उनमें भी भगवद्भक्त ही होते हैं. इसलिये प्रह्लादादि श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंके द्वारा स्तुति किये जा रहे भगवान्‌के दर्शन

अक्रूरको हुए. वे भगवद्भक्त अपने भिन्न-भिन्न सात्त्विक, राजस, तामस भावोंसे स्तुति करते हुए देखे गये. वे स्तोत्र भी, जिनसे वे भगवद्भक्त भगवान्की स्तुति कर रहे थे, उनके उसी समय जोड़कर कल्पना करके कहे हुए नहीं थे, किन्तु पहलेसे ही निश्चित किये हुए गद्य-पद्यरूप वाणीसे कहे गये थे.

शङ्का: वैकुण्ठमें अथवा भगवान्के सान्निध्यमें तो परमानन्दका अनुभव है, फिर वे उस परमानन्दके भोगको छोड़कर स्तुति करनेमें ही क्यों लगे रहे? इसके उत्तरमें कहते हैं कि 'अमलात्मभिः' निर्मल अन्तःकरणवाले उन भक्तोंकी भगवान्में ही आसक्ति थी, भोगमें नहीं थी. इसलिए वे परमानन्दके अनुभवको भी त्यागकर, उनकी ही स्तुति करते रहें।।५३-५४।।

श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया।
विद्ययाविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्।।५५।।

श्लोकार्थ: श्री, पुष्टि, वाणी, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति और माया, ये बारह शक्तियां उनकी सेवा कर रही थीं।।५५।।

व्याख्यार्थ: तदनन्तर अक्रूरने सारे ही कार्योंको सिद्ध करदेनेवाली भगवान्की बारह शक्तियोंको भी देखा, यह इस 'श्रिया पुष्ट्या' श्लोकसे कहते हैं. भगवान्की 'श्री' आदि बारह शक्तियां हैं. अक्रूरने देखा कि वे बारह शक्तियां भी भगवान्की सेवा कर रही हैं. १.श्री अर्थात् लक्ष्मी. २.पुष्टि, वह जो सबको पुष्ट करती है, जिनमें पुष्टि प्रवेश नहीं करतीं, वे अधिक आहार करते हुए भी पुष्ट नहीं होती हैं. इसी तरह(यही बात) सारी शक्तियोंके सम्बन्धमें जान लेनी चाहिये. ३.गौ सरस्वती, जो प्रसिद्ध है. ४.कान्ति, कोई दिव्य प्रभा जो राज्याभिषेक आदिके समय प्रकट होती है. आभूषण उस कान्तिके ही अङ्ग(आधीन) है. ५.कीर्ति प्रसिद्ध ही है. जिसमें कीर्ति प्रवेश नहीं करती, उसकी कीर्तिमान् पुरुषोंके समान वही काम करने पर भी कीर्ति नहीं होती है. ६.तुष्टि सन्तोषरूप है, जिसके न होने पर बड़ेसे बड़ा भी तिनकेके जैसा होता है. ७.इला, भूमि और ८.ऊर्जा. सब सामर्थ्यरूप है. ९.विद्या, मोक्ष देनेवाली ज्ञानरूप तथा १०.अविद्याबन्धन करानेवाली है. निद्रा आदि भी इस अविद्याके भेद हैं. कोई निद्रादिको अविद्याके भेद न कहकर मायाके भेद कहते हैं. ११.शक्ति, इच्छा शक्ति, जो सारी शक्तियांको वशमें रखनेवाली है. १२.माया सर्वभवनसामर्थ्य (सब होनेकी

शक्ति) और व्यामोहिका (अत्यधिक मोह करा देनेवाली). मूलमें दिये 'च' अक्षरसे मायामें दोनों प्रकारकी मायाका समावेश है. इस कथनसे यह बतलाया है कि सारी शक्तियोंके अन्यान्य भेदोंका भी उन-उन शक्तियोंसे समावेश(प्रवेश) कर देना चाहिये. इससे ऐसा कह सकते हैं कि बारह शक्तियां तो मुख्य हैं और इनके अवान्तर(गौण) भेद असङ्ख्य ही हो जाते हैं।।५५।।

आधार एव रूपं च आकारोऽङ्गानि चैव हि।
अलङ्करणचिह्नानि सेवका द्विविधा अपि।
शक्तयश्चेति भगवान् सप्तधा विनिरूपितः।।का.१।।

कारिकार्थ: आधार अहीन्द्र शेषजीके(४४-४५), रूपके(४६), आकारके(४७-४८), श्रीअङ्गोंके(४९-५०),अलंकारों तथा चिह्नोंके(५१-५२), ज्ञानी और भक्त दो प्रकारके सेवकोंके(५३-५४) और शक्तियोंके(५५) वर्णनसे सात प्रकारसे भगवान्का निरूपण किया है।।१।।

विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः।
हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः।।५६।।

श्लोकार्थ: अक्रूरजी इस प्रकारसे भगवान्के दिव्य और अद्भुत दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुए. परम प्रेमसे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, आंखोंमें आनन्दके आंसू भर आए और भक्तिभावसे हृदय गद्-गद् हो गया ।।५६।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकारके दर्शन करनेवाले अक्रूरकी उस समयकी दशाका वर्णन इस 'विलोक्य' श्लोकसे करते हैं. इस प्रकार भगवान्के दुर्लभ दर्शन करके अक्रूर अत्यन्त प्रसन्न होकर परम भक्तिभावसे पूर्ण हो गये और हर्षके मारे उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया।।५६।।

अन्तस्तोषस्तथा भक्तिर्भक्तिचिह्नानि चैव हि।
दृष्टे भगवति ह्यासन् भक्तस्येति निरूपितम्।।का.१।।

कारिकार्थ: भगवान्के दर्शन करके भक्त(अक्रूर)के हृदयमें प्रसन्नता, भक्तिके चिह्न भी प्रकट हो गए, यह निरूपण किया है।।१।।

व्याख्यार्थ: भक्तिभावसे उनका हृदय प्रेमार्द्र हो गया और नेत्र प्रेमाश्रुओंसे भर आए. ये सब प्रेमके उत्पन्न होनेके चिह्न हैं. ऐसी दशा हो जानेके बाद विकल होना तो सहज ही कहा जा सकता है.

गिरा गद्गदयास्तौषीत् सत्वमालम्ब्य सात्वतः।

प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः।।५७।।

श्लोकार्थ: तब अक्रूरजीने सात्त्विकभावको धारण करके भगवान्को सिर झुकाकर प्रणाम किया, फिर वे सावधान होकर हाथ जोड़कर गद्-गद् वाणीसे भगवान्की(यों) धीरे-धीरे स्तुति करने लगे ।।५७ ।।

व्याख्यार्थ: तदनन्तर अक्रूरजीके कर्तव्यका वर्णन इस 'गिरा' श्लोकसे करते हैं. तब अक्रूरने अपनी निर्गुण स्थितिको दूर करके(सात्त्विक) स्थितिका ग्रहण किया और गद्गद् वाणीसे भगवान्की स्तुति करना आरम्भ किया, क्योंकि वे वैष्णव(सात्वतः) थे. फिर उन्होंने भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम किया. वहां भगवान्ने वैकुण्ठके ही दर्शन कराये थे, इसलिये वहां जल आदिके न होनेसे वे और भी सावधान हो गये और अपने मनको ठीक स्थिर करके दोनों हाथ जोड़कर बड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहे. जब काम करनेकी थोड़ीसी शक्ति हुई, तब धीरे-धीरे भगवान्की स्तुति करने लगे और सभी(स्तुति करने पर ही) उनके हृदयमें भगवान्का वह स्वरूप(जो भगवान्ने उनको दिखलया था) आरूढ़ हो गया, ऐसा ज्ञात होता है, क्योंकि स्तुति किये बिना भगवान्का स्वरूप स्थिर हृदयारूढ़ नहीं होता, इसीलिये सभी जगह स्तुति करनेकी व्यवस्था(नियम) है।।५७।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणके दशम स्कन्धके अध्याय ३६,
राजस-प्रमाण-अवान्तर प्रकरणके 'श्री निरूपक' चतुर्थ अध्यायकी
श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणकृत श्रीसुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ.

अध्याय ३७

अक्रूरजी द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

सप्तत्रिंशे तु सन्तुष्टः स्तोत्रं चक्रे मनोहरम्।
चतुर्धा ज्ञातमाहात्म्य इति सिद्धान्त ईर्यते।।का.१।।

कारिकार्थ: इस सेंतीसवें अध्यायमें अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा भगवान्के माहात्म्यसे परिचित हुए अक्रूरजी, नीचे बताए जानेवाले चार प्रकारसे भगवान्की सुन्दर स्तुति करने लगे, यह सिद्धान्त कहा जाता है ।।१।।

स्वरूपेण प्रमाणेन युक्त्या वस्तुस्वरूपतः।
अवतारफलैश्चैव सर्वस्यैव विनिर्णयः।।का.२।।

कारिकार्थ: स्वरूपसे, प्रमाणसे, वस्तुके स्वरूपानुकूल युक्तिसे तथा अवतारों और फलके द्वारा सबका ही निर्णय किया जाता है ।।२।।

लेख: 'स्वरूपेण', पहले श्लोकसे स्वरूपका, तीसरेसे ग्यारहवें तक नौ श्लोकोंसे प्रमाणका, बारहवेंसे पन्द्रह तक चार श्लोकोंसे मुक्तिका और सोलहवें श्लोकसे अध्यायकी समाप्ति तक अवतार तथा फलके निर्णयका विभाग है.

राजसे स्तोत्रकर्ताऽयं मध्यमो विनिरूप्यते।
उत्तमे नारदो वक्ता वसुदेवादयस्तथा।।का.३।।

कारिकार्थ: राजस स्तुतिमें यह अक्रूरजी मध्यम स्तुति करनेवालेका निरूपण है और उत्तम स्तुतिमें वक्ता(स्तुति करनेवाले) नारदजी तथा वसुदेवजी आदि भी उत्तम स्तुति करनेवाले हैं ।।३।।

यस्य यस्य यथा भावस्तेन तादृक् निरूप्यते।
सर्वं युक्तं भगवति न सर्वः सर्व एव च।।का.४।।

कारिकार्थ: जिन-जिनका जैसा-जैसा भाव है, उन-उनने भगवान्का वैसा ही निरूपण किया है. भगवान्में सब ही उचित है, क्योंकि भगवान् सर्वरूप हैं, नहीं भी हैं और हैं भी(सर्वरूप)।।४।।

लेख: 'यस्येति' भिन्न-भिन्न भक्तोंकी, की हुई स्तुतिमें इस प्रकार विभेद होनेके कारण यह कहा है. भगवान्की स्तुति कोई अनुचित प्रकारसे करे तो उसे दोष लगे क्या? इस शंकाके उत्तरमें कहा है कि ऐसी शंका करना उचित नहीं है, क्योंकि भगवान् सबसे उत्तम हैं, इसलिए सर्वरूप नहीं भी हैं और सर्वरूप हैं

भी. इस कारणसे उनकी सब तरहकी स्तुति निर्दोष ही है.

अक्रूर उवाच

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुभूतं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माविरासीद् यत एष लोकः।।१।।

श्लोकार्थः अक्रूरने कहा–हे श्रीकृष्ण! मैं आपको प्रणाम करता हूं. आप आदि पुरुष, सब कारणोंके कारण, अविनाशी और नारायण हैं. आपकी नाभिसे उत्पन्न कमलसे जगत्की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं।।१।।

व्याख्यार्थः उनमेंसे पहले भगवान्को(स्वरूपका वर्णन पूर्वक) 'नतोस्म्यहम्' इस श्लोकसे नमस्कार करते हैं. मेरे सामने साक्षात् प्रकट हुवे, आपको, मैं नमस्कार करता हूं. मेरे सामने प्रकट होनेसे आप मेरेसे छोटे हैं, ऐसा प्रश्न हो ही नहीं सकता, क्योंकि आप तो सारे ही जगत्के भी कारण हैं. इसमें युक्ति और प्रमाण यह है कि आप नारायण हैं और यह सभी लोकोंमें प्रसिद्ध है कि पहले नारायणसे ही ब्रह्माण्डमें सब पदार्थ उत्पन्न हुवे हैं. पुरुष(नारायण)ने कामना की(नारायणोपनिषद्) श्रुति और नारायणमें ही सबकी उत्पत्ति हुई है(ऋग्वेद १०–९०). पुरुषसूक्तमें भी ऐसा ही कहा है कि सारा विश्व आपसे ही उत्पन्न हुआ है. इसीलिए 'पुरुषम्' आप पुरुष हैं, ऐसा मूलमें कहा है. आप केवल पुरुष ही नहीं है, किन्तु मूलपुरुष हैं, प्रकृतिके भर्ता हैं. आप अविकारी अर्थात् विकाररहित, मूलपुरुषके भी मूल अक्षरब्रह्मरूप हैं. इसी अभिप्रायको मूलमें 'अव्यय' शब्द सूचित करता है.

अथवा अक्रूरजी यहां ब्रह्माण्डके भीतर रहनेवाले जगत्का कारणरूपसे ही भगवान्का वर्णन करते हैं, क्योंकि भगवान्ने वैसा ही रूप प्रकट किया है. वह रूप ही सब पदार्थों(व्यष्टि)का मूल होनेसे मूलरूप, आदिम और अविनाशी है. लोकमें तो कर्त्ता–किसी कामको करनेवाला क्रमसे धीरे–धीरे क्षीण होता जाता है, किन्तु आप तो अव्यय अक्षय बीजरूप हैं. जिस प्रकारसे आप जगत्के कर्त्ता हैं, उसे वर्णन करते हैं कि भगवान्की नाभिसे उत्पन्न हुवे और फिर विकासको प्राप्त हुवे. कमलके अङ्कुरसे उसमें बैठे हुए भौंरेके समान ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ और उन ब्रह्माजीसे इस सारे ही लोककी उत्पत्ति हुई है।।१।।

भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः।।२।।

श्लोकार्थ: पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, महत्तत्त्व, प्रकृति और पुरुष, मन, दसों इन्द्रियां, इन्द्रियोंके रूप-रस आदि सारे विषय तथा इनके अधिष्ठाता सूर्यादि देवता, जिनको जगत्का कारण कहा जाता है, ये सब आपके अङ्गमेंसे उत्पन्न हुए हैं ।।२।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकारसे भगवान् जगत्के कारण हैं, यह सिद्ध किया. अब कार्य-कारणके भेदको सिद्ध करने और भगवान् नित्यमुक्त हैं और जीव उनकी कृपासे मुक्त होते हैं, यह बतलानेकेलिये 'भूस्तोयमग्निः' इस श्लोकसे कार्यरूप जगत्के स्वरूपका वर्णन करते हैं. अथवा ये श्रीकृष्ण ही सबके वास्तविक मूल हैं, यह बतलानेकेलिये भगवान् श्रीकृष्णसे ही सारे तत्त्व उत्पन्न हुवे हैं, ऐसा इस श्लोकसे कहते हैं. जब जगत्के कारणभूत सारे ही तत्त्व भगवान्से उत्पन्न हुवे हैं, तब तो इस रूपको सबसे उत्तम मानना ही चाहिये. इस प्रकार दूसरे पक्ष(अर्थ)में तो पहले(पीछे)का क्रम वाञ्छित नहीं है. प्रथम पक्ष(अर्थ)में क्रम बतलानेकी इच्छा है, इसलिये अथवा तत्त्वोंकी गणना हो सकेगी, इसलिये और स्थूल तत्त्वोंमें बुद्धि स्थिर हो सकेगी, इसलिये भी आकाश पर्यन्त पांच महाभूतोंको पहले कहा गया है.

(आदि)अहङ्कार, (महान्)महत्तत्त्व, (अजा)प्रकृति, (आदि)पुरुष और मन, यह क्रम मूल श्लोकसे बतलाया है. पुरुष, मनके द्वारा ही सब कुछ करता है. यहां आधिदैविक मनसे तात्पर्य है और इसी अभिप्रायसे मूल श्लोकमें पहले मनको न लिखकर पुरुषको पहले कहा है अर्थात् मनको पहले लिखकर पीछे पुरुषको नहीं बतलाया, व्युत्क्रमसे कहा है.

ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, बुद्धि, प्राण और उन इन्द्रियोंके भोगने योग्यरूप रसादि, वाणी आदि, तथा स्त्री, माला, घट आदि सारे उपयोगी पदार्थ और उनसे उत्पन्न होनेवाले ये सारे ही, जो जगत्के कारण हैं. आपके अङ्ग अक्षरब्रह्मसे उत्पन्न हुए हैं. ''ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा''(ब्रह्मका पिछला भाग प्रतिष्ठा है) (तै.उप.२-४) श्रुतिमें अक्षरब्रह्मको अङ्ग कहा है. इस कारणसे आप ही जगत्के कारण हैं. इस प्रकार भगवान्के स्वरूपका वर्णन करके उनका माहात्म्य कहा है।।२।।

लेख: 'भूस्तोयम्' इसकी व्याख्यामें 'मूलभूतानि चेत्' इत्यादि पदोंका अर्थ यह है कि यदि ये सारे जगत्के मूल कारणभूत भगवान्से ही उत्पन्न हुए हैं तो

यह रूप सबसे उत्तम ही है।।२।।

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः।
अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम्।।३।।

श्लोकार्थ :ये प्रकृति आदि सब जड़ तत्त्व आत्मारूप आपके स्वरूपको नहीं जान सकते. जीव भी चेतन होने पर भी मायाके गुणोंसे आवृत्त होनेके कारण आपके निर्गुण स्वरूपको नहीं जान पाता ।।३।।

व्याख्यार्थ: भगवान्के स्वरूपका वर्णन, प्रमाणपूर्वक करना चाहिये और वेद ही प्रमाण है, वेदसे भिन्न और कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि ब्रह्मादिको भी जिन्हें प्रमाणरूपसे माना जाये तो आपके स्वरूपका 'इदम् इत्थं तया'(यह ऐसा है) यथार्थ ज्ञान नहीं है, यह 'नैते स्वरूपं' इस श्लोकसे कहते हैं.

अथवा ये आप(भगवान्)के पुत्र पौत्र आदि भी मुक्त क्यों नहीं हुवे और जब इनकी भी मुक्ति नहीं हुई तो दूसरोंकी मुक्ति कैसे होगी? इस शङ्काके उत्तरमें इस 'नैते स्वरूपं' श्लोकसे उनकी मुक्ति न होनेका कारण उनका अभिमान जनित अज्ञान है. इस अभिप्रायसे यह श्लोक कहा है.

आप(भगवान्)का स्वरूप अवश्य जान लेना चाहिये, इसीलिये मूलमें 'आत्मनः'(आत्माका) 'आत्म'पदका प्रयोग किया है. यद्यपि आप आत्मा हैं, तो भी पुरुष आदि 'अनात्मतया गृहीता'(आपको आत्मारूपसे नहीं मान रहे हैं).(यहां 'गृहीता' ''ग्रह''धातुके कृदन्त ''क्त'' प्रत्ययका कर्ता अर्थमें प्रयोग है) अथवा आपने कृपा करके इनको आत्मारूपसे स्वीकार नहीं किया है, यह शब्दार्थ है. अक्षरब्रह्म आदि अथवा पुरुष आदि, कोई आपके स्वरूपको नहीं जानते हैं.

ब्रह्मा आदि जो प्रमाण परायण(प्रमाणमें ओतप्रोत) हैं, आपके स्वरूप को जानते होंगे? इसलिये कहते हैं कि उन्हें भी आपके स्वरूपका ज्ञान नहीं है, क्योंकि ब्रह्मा भी अपनी आसक्तिके कारण आपकी इच्छासे प्रकृतिके कर्तापन अथवा सत्त्व, रज आदि गुणोंसे बन्धे रहे हैं. इसलिये वे गुणोंसे पर(अलग) रहने तथा गुणोंको अपने वशमें रखनेवाले आपके स्वरूपको नहीं जानते हैं, क्योंकि घरमें बन्धा हुआ व्यक्ति घरके बाहरके पदार्थोंको नहीं देख सकता. इससे वे आपके स्वरूपको जो अपरिच्छिन्न(असीम) हैं, परिच्छिन्न(सीमावाला) मान रहा है. इनकी मुक्ति न होनेका यही कारण है. जब ब्रह्मा आदि भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते तो और तो कैसे जान सकते हैं, यह अभिप्राय हैं.

इसलिये प्रकृतिके गुणोंसे बन्धा हुआ तो कोई भी आपके स्वरूपको जान ही नहीं सकता, किन्तु आपकी कृपासे ही जो कोई भी आपके स्वरूपको जान लेगा, वही कृतार्थ होगा. आपकी कृपाके बलसे ही जीव कृतार्थ होता है, यह एक सामान्य सिद्धान्त है।।३।।

त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम्।
साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः।।४।।

श्लोकार्थः योगी लोग तथा साधुजन साक्षात् ईश्वर और महापुरुष आपको अध्यात्म, अधिभूत और अधिदेवका साक्षी, अन्तर्यामी तथा नियन्ता जानकर भजते हैं।।४।।

व्याख्यार्थः तब भगवान्के स्वरूपको जाननेका उपाय क्या है? ऐसी शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान्के स्वरूपको न जानकर भी अपनी रुचिके अनुसार शास्त्रमें बतलाई हुई रीतिसे सेवा तो करनी चाहिये. फिर भगवान् अपने स्वरूपका ज्ञान कृपा करके करा ही देंगे. इसी अभिप्रायसे सारे ही अपने-अपने अधिकारके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंकी सेवा करते हैं. यह इस 'त्वां योगिनः' श्लोकसे आरम्भ करके आगेके छः श्लोकोंसे विशेष प्रकार और आगे एक श्लोकसे सामान्य प्रकारसे, इस प्रकार विशेष तथा सामान्यरीतिसे सेवा करनेका सात श्लोकोंसे वर्णन करते हैं. उन सब सेवकोंमें सारे ही जगत्से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखनेवाले, केवल मोक्षकी कामनावाले योगी लोग हैं, इसलिये पहले उन्हें ही गिनते हैं. यद्यपि चित्तकी वृत्तियोंका निरोध(रोकना)रूप योगमें आत्माकी स्फूर्ति होना फल है और उसका भगवान्के रूपका ध्यानमें ही उपयोग किया जाता है, फिर भी(योगी) भगवान्के उपासक नहीं हैं. अथवा योगशास्त्रमें ईश्वरके ध्यानकी आवश्यकता नहीं है, तथा आत्माकी स्फूर्तिसे विपरीत अंशको (योगमें), छोड़ देना भी कहा है, तो भी योगमें आत्माकी स्फूर्तिके अङ्ग(सहायक)रूपसे ईश्वरका ध्यान धरना कहा है. इसलिए योगी भी प्रकारान्तरसे आपकी ही पूजा करते हैं. वे आपको श्रद्धा साक्षात् पूजते हैं, क्योंकि वे देहके भीतर उपासना करते हैं. इसलिये उनकी देह आदि भी आपसे व्यवहित(दूर) नहीं है.

उनके सिद्धान्तमें, ईश्वर साकार और सारे जीवोंसे विलक्षण पुरुषविशेष है और ऐसा नहीं है. इसलिये यहां साङ्ख्य और योगमें ईश्वर साकार तथा निराकार है, ऐसा निर्णय किया है. यह महापुरुष और ईश्वर शब्दका अर्थ है,

जिनका अभिप्राय भीतरसे तथा बाहरसे वशमें रखनेवाले हैं.

साधु सदाचारी पुरुष स्मार्तधर्मोंका आचरण करनेमें तत्पर रहते हैं. वे भगवान्‌को ही अपना आश्रय मानते हैं और आध्यात्मिक आदि तीनों भेद भगवान्‌के ही आधीन हैं, इसलिये भगवान् इन तीनों (‘साध्यात्मम्’(आत्मामें), ‘साधिभूतं’(भूतोंमें) और ‘साधिदैवं’(देवोंमें)) रूपोमें रहनेवाले हैं. यदि भगवान् इन तीनों रूपोंके साथ रहनेवाले न हों तो कर्मसे बन्धन ही होता रहे. इस प्रकार तीनों रूपोंके साथ कारण, कर्त्ता और प्रेरकरूपसे भगवान्‌के रहनेके कारणमें तीनों ही भगवान्‌के आधीन हैं. भगवान्‌की आज्ञानुसार ही बर्ताव करते हैं, इसलिये जीवका कोई अपराध नहीं होता।।४।।

आभास: इस प्रकार अत्यन्त आवश्यक अन्तर्बाह्य धर्मोंमें ही निरन्तर लगे रहनेवाले स्मार्तोंका निरूपण किया. अब इस ‘त्रय्या च विद्यया’ नीचेके श्लोकसे श्रौतों(वैदिकों)का निरूपण कहते हैं :

त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः।
यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया।।५।।

श्लोकार्थ: कोई-कोई कर्मकाण्डी ब्राह्मण तीनों वेदोंकी विद्याके द्वारा इन्द्र आदि अनेक रूपों और नामोंसे अनेक लम्बे-लम्बे यज्ञ करके आपका ही भजन-पूजन करते हैं।।५।।

व्याख्यार्थ: वेदमें काण्ड होनेके कारण तीन पक्ष हैं. उनमें कर्ममार्गमें तीनों ही वेद प्रधान हैं. ज्ञानमार्गमें उपनिषदोंकी और उपासनामार्गमें तो ‘प्रणव’ आदि मन्त्रोंकी प्रधानता है. इस क्रमसे तीन प्रकारके पूजा करनेवालों(पूजकों)का वर्णन करते हैं, क्योंकि सभीका भगवान्‌का ज्ञान प्राप्त करनेमें उपयोग है, ऐसा ऊपरके श्लोककी व्याख्यामें कहा जा चुका है.

मन्त्रोंके भेदसे वेदोंके ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद ये मन्त्र, ब्राह्मण, उपनिषद्, तीन प्रकारके हैं. उन मन्त्रोंके उपयोगी वेदके मन्त्रोंका भिन्न-भिन्न यज्ञोंमें उपयोग करनेकी विधिको बतानेवाले वेदभागको ‘ब्राह्मण’ कहते हैं. अथवा बाहरी कार्य यजुर्वेदके और देवताको साक्षात् द्रव्य(पदार्थ) समर्पण करना आदि अन्दरका कार्य ऋग्वेदके मन्त्रोंसे किया जाता है. फिर देवतासे फल देने तथा आहुतिको ग्रहण करनेकी प्रार्थना करनेकेलिये सामवेदके मन्त्रोंसे देवताकी स्तुति की जाती है. इस प्रकारसे लम्बे समय तक चलते रहनेवाले यज्ञोंमें आसक्त हुवे

याज्ञिकलोग विभिन्न एकहजार वर्षोंमें पूरे होनेवाले लम्बे यज्ञोंसे यह रूप आप(भगवान्)की पूजा करते हैं. यह भगवान्की पूजा करनेका सम्बन्ध सब जगह ही समझ लेना चाहिये. अर्थात् अङ्गों, उपाङ्गों तथा ज्ञानके भी सहित तीनों वेदोंकी विद्या और यज्ञोंसे आपकी ही पूजा करते हैं. मूल श्लोकमें 'केचिद् द्विजाः' कितने ही ब्राह्मण, कहनेका अभिप्राय यह है कि जन्म और कर्मसे शुद्ध श्रोत्रिय ब्राह्मण ही ऐसा करते हैं, सभी ब्राह्मणोंको ऐसा करनेका अधिकार नहीं हैं. उन यज्ञोंमें तो इन्द्र, अग्नि आदि देवता ही पूजे जाते हैं. उनमें भगवान्की पूजा तो नहीं की जाती. इसके समाधानार्थ कहते हैं कि 'विभिन्नरूपवाले देवोंके नामसे' इत्यादि शब्दोंका प्रयोग है. अनेक प्रकारके रूपोंवाले जो इन्द्रादि देव हैं, उन देवोंके नामसे अथवा भगवान् ही आधिदैविकरूपसे उन देवोंमें विराजते हैं. इस कारणसे भी वे नाम भगवान्के ही नाम हैं, इसलिये इन्द्रादिके नामसे वे भगवान्का पूजन व यजन करते हैं.

वास्तवमें तो ये सभी देवता भगवान्के अङ्गरूप हैं. जैसे राजाके मुकुट, पगड़ी, कुण्डल बनानेवाले सेवक यद्यपि राजाके उत्तमाङ्गकी, कान आदिकी भिन्न-भिन्न सेवाएं करते हैं, तो भी वे सिर, कान, आदिकी सेवा करनेवाले न कहलाकर राजाके सेवक ही कहे जाते हैं, इसी प्रकारसे यज्ञ-यागादिके प्रसङ्गमें भी 'इन्द्रादयो बाहवः'(इन्द्रादि भगवान्की भुजाएं हैं), इत्यादि वाक्योंसे देव भगवान्के अङ्ग हैं, ऐसा ज्ञान होता है. इसलिये उनकी पूजासे भगवान्की ही पूजा होती है।।५।।

एके त्वाखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः।
ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम्।।६।।

श्लोकार्थः इसी प्रकार कोई एक ज्ञानी लोग कर्मोंके त्यागसे शान्तिको प्राप्त करके ज्ञानरूप विग्रहवाले आपकी ही आराधना करते हैं।।६।।

व्याख्यार्थः कितने लोग कर्मोंका त्याग करके चित्तकी शान्तिको प्राप्त करते हैं. वे चित्तकी अत्यन्त शान्तिको पाकर ज्ञानी आत्मा ब्रह्म ही है, ऐसी स्फूर्ति रखकर आत्माका पूजन करनेवाले 'आत्मयाजी' बनकर ज्ञानरूप ही यज्ञ करते हैं. चिद्(ज्ञान)रूप आत्माको ही यज्ञरूपसे कल्पना करके भगवान्के समर्पण करना, अथवा ज्ञान भगवान्की प्रसन्नताको प्राप्त करानेका साधन है, इसीलिये ज्ञानको ही 'यज्ञ' शब्दसे कहा गया है, अथवा जिनके करनेसे बुढ़ापा और मरण आदि न

हो, ऐसे यज्ञोंको 'ज्ञानयज्ञ' कहते हैं. इन तीनों प्रकारके भी ज्ञानयज्ञोंमें, जिनका पूजन किया जाता है, वह भी ज्ञानरूप ही है, यह ज्ञान 'विग्रहम्' (ज्ञानरूप विग्रह वाले) इस विशेषणसे कहा है।।६।।

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते।
यजन्ति तन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्।।७।।

श्लोकार्थः पवित्र देहान्तःकरणवाले कई लोग वेदोक्तमार्गके अनुसार तन्मय होकर मत्स्य, कच्छप आदि अनेक रूपोंसे एक ही स्वरूपवाले आपका ही पूजन करते हैं।।७।।

व्याख्यार्थः 'अन्ये च' इस श्लोकसे औडुलोमि ऋषिके मतानुसार उपासना करनेवालोंका वर्णन करते हैं. ''नारुद्रो रुद्रमर्चयेद्''(जो रुद्र न हो, उसे रुद्रकी पूजा नहीं करनी चाहिये), इत्यादि वाक्यानुसार वे औडुलोमिके मतावलम्बी उपासक स्वयंको और भगवान्को भिन्न भी तथा अभिन्न भी मानते हैं. दीक्षा संस्कार आदिके द्वारा शुद्ध की हुई देहवाले वे भी उनके गुरुओंके बतलाये हुवे मार्गानुसार भिन्न-भिन्न रीतिसे अलग-अलग देवोंके मन्त्रोंके उपासक नामसे प्रसिद्ध होकर, तन्मय बनकर तथा अपने उन उपास्य देवोंका अपनी देहमें आवेश कराकर आपका ही पूजन करते हैं, यह निश्चित तथा स्पष्ट ही हैं.

वे मत्स्य, कच्छप आदि अनेक रूपोंसे एक स्वरूपवाले आपका पूजन करते हैं, क्योंकि सारे ही विष्णुकी उपासना करते हैं. इन उपासकोंमें शैव आदिकोंको भी भगवान्में ही श्रद्धावाले समझना चाहिये, क्योंकि उपासनामें मन्त्र ही प्रधान हैं और यज्ञमें जैसे विभिन्न आकारवाले इन्द्रादि अभिमानी देवोंके भिन्न-भिन्न होते हुवे भी मन्त्ररूप भगवान् एक ही हैं, वैसे ही अनेक रूपोंसे भी एकरूपवाले आपका ही पूजन किया जाता है, इसलिये पांच प्रकारके अथवा अनेक प्रकारके मन्त्रोंके द्वारा उपासना, मार्गानुसार प्रसिद्ध एक ही भगवान्की उपासना की जाती है. हीन तथा भिन्न प्रकारसे प्रतिष्ठापति देवोंके उपासकोंका निरूपण आगे किया जायेगा।।७।।

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम्।
बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते।।८।।

श्लोकार्थः हे भगवान्! इसी तरह शैव लोग भी शिवोक्त विधिके

अनुसार शैव, पाशुपत आदि सम्प्रदाय भेदसे शिवरूप आप ही की भली-भांति उपासना करते हैं ।।८।।

व्याख्यार्थ: शिवरूप भी आप ही हैं. इसलिये शैव भी आपकी ही उपासना करते हैं, यह इस 'त्वामेवान्ये' श्लोकसे कहते हैं. ऊपर बताये हुवे उपासकोंसे अन्य उपासक शिवशास्त्रके अनुसार आपकी उपासना करते हैं, क्योंकि तामसकल्पमें विष्णु, शिवरूपसे रहते हैं. इसलिये शैव उसी ऊपरके श्लोकमें प्रदर्शित सर्वरूपके पक्षका आश्रय करके, अपनी स्वाभाविक रुचिके अनुसार उस तरहसे शिवरूपकी उपासना करते हैं.

शिवजीके द्वारा कहा हुआ शैवमार्ग, शैवपञ्चरात्र और पाशुपत आदिमें प्रसिद्ध है. उस मार्गमें शिवरूपी विष्णु ही हैं. कई एक विष्णुका शिवमें आवेश हुआ कहते हैं. उस शैवमार्गमें महापाशुपत, पाशुपत आदि भेदोंसे भिन्न-भिन्न बहुत आचार्य हैं. हे भगवन्! इस सम्बोधनसे यह बतलाया है कि जब आप अपने(श्रीकृष्ण) वैराग्य गुणको मुख्य रखकर कार्य करते हैं, तब आप शिवरूप होते हो. इसलिये वे शैव भी भली-भांति आपकी ही उपासना करते हैं।।८।।

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम्।
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो।।९।।

श्लोकार्थ: हे नाथ ! जो लोग अन्य अनेक देवताओंके भक्त हैं और सब देवताओंको अलग-अलग समझते हैं, वे भी वास्तवमें आप ही की पूजा करते हैं क्योंकि सर्वदेवमय ईश्वर आप ही हैं. तात्पर्य यह है कि उनकी उपासनामें केवल बुद्धिका ही भेद है, वस्तुका भेद नहीं है ।।९।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार छः प्रकारके विशेष उपासकोंका वर्णन करके 'सर्व एव' इस श्लोकसे सामान्यरीतिसे साधारण देवोंकी उपासना करनेवालोंको बतलाते हैं. इस विषयमें अधिक क्या कहें? क्षेत्रपाल आदिके उपासक भी आप ही की उपासना करते हैं, क्योंकि ''अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता'', ''सर्वदेव-मयश्चासौ ईश्वरश्च''(सारे यज्ञोंका भोक्ता मैं ही हूं) इस वाक्यसे आप सर्वदेवमय और देवोंके भी ईश्वर हो. जो सर्वदेवमय और ईश्वर होता है, उसे ही सर्वदेवमयेश्वर कहा जाता है.

उन विभिन्न देवोंके उपासकोंकी ऐसी बुद्धि, तो भी हम भगवान्की उपासना कर रहे हैं, नहीं होती तब वे सारे ही भगवान्के ही उपासक कैसे कहे जा

सकते हैं? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि ''येऽप्यन्य देवता भक्ता''. यद्यपि वे यह समझते हैं कि हम आत्मा तथा विष्णुसे भिन्न किसी अन्य देवताकी ही उपासना करते हैं, तो भी वे अपने उपास्य देवको सबसे बडा मानकर ही उसकी उपासना करते है, वे ऐसा मानकर कि हमारा उपास्यदेव निर्बल है, कुछ नहीं करता है, तो उसकी उपासना नहीं करते. यदि वे उसे ऐसा समझतें, तो उसकी उपासना करना ही छोड़ दें, क्योंकि दीन, निर्बल जानकर उसकी आराधनाको भी नहीं करता. इसलिये निर्बलको बड़ा मान लेना रूप भ्रमसे ही वे उन-उनकी उपासना करते रहते हैं और भ्रममें भगवान्‌के धर्मोंका ही उन क्षुद्रदेवोंमें आरोप किया जाता है. इसलिये भगवान्‌की ही सेवा होती है, क्योंकि भगवान्‌की उपासनामें और साधारण देवको भगवान् मानकर की जानेवाली(उसकी) उपासनामें भगवान्‌के गुणोंका आरोप तो समान ही होता है, किन्तु भेद इतना सा है कि क्षुद्रदेवको भगवान् मानकर उसकी उपासनामें किया जानेवाला आरोप अज्ञानसे किया हुआ है.

जैसे जो कोई सीपको भ्रमसे चांदी समझ लेता है, उसी चांदीका ज्ञान तो है ही. यदि वह कोई चांदीको ही नहीं जानता हो तो(यह वह चांदी है) उसका यह निर्णय भी भ्रमात्मक ही हो. चांदीका ज्ञानहीन, चांदीका निर्णय नहीं कर सकता. ''वे मुझे तत्त्वसे नहीं जानते''(गीता ९।२४) भगवान्‌ने जो यह कहा है, वह भी ''वे अविधिपूर्वक मेरा यजन करते हैं''(गीता ९।२३) इस वाक्यसे विधिको लक्ष्यमें रखकर ही कहा है, और जैसे प्रतिमा आदिमें भगवान्‌का तथा उनके गुणोंका आरोप किया जाता है, वैसे ही वे भिन्न-भिन्न देवोंके उपासक भी अपने-अपने उपास्य देवोंमें भगवान्‌का और उनके गुणोंका आरोप तो करते हैं, परन्तु(वेदोक्त) विधिपूर्वक नहीं करते. इसीलिये उन्हें उससे ज्ञान नहीं होता, केवल उनके अभीष्ट फलकी प्राप्ति ही हो जाती है और भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान होनेके कारण वे संसारमें ही रहते हैं. ऐसी आज्ञा(गीता ९।२४) करके भगवान्‌ने मुख्यरीतिसे विधिमार्गका ही स्थापन किया है. विधिहीन उपासना मार्गकी निन्दा नहीं की है. यदि विधिरहित उपासनाकी(भगवान्) निन्दा करते होते तो, मेरा ही पूजन करते हैं, सब यज्ञोंका मैं भोक्ता हूं(९।२३,२४) और उन देवोंसे वे मेरे द्वारा ही निर्माण किये हुवे फलों(कामनाओंको ७।२२) को प्राप्त करते हैं, भगवान् इस प्रकार नहीं कहते. इसलिये यह(९।२३) अविधिपूर्वक उपासना

बतलाना, केवल विधिकी प्रशंसाकेलिये ही है. इसलिये अन्यदेवोंके भक्त और अन्यमें बुद्धि रखनेवाले भी उपासक आपका पूजन करते हैं, यह जो कहा गया है, वह उचित ही कहा है.

भगवान् इस प्रकार भ्रम उत्पन्न करके इस तरहसे फल कैसे देते हैं? सभी जीवोंको एक ही प्रकारके क्यों नहीं करते? ऐसी शङ्काके समाधानकेलिये ही श्लोकमें 'प्रभो' यह सम्बोधन पद दिया है. तात्पर्य यह है कि भगवान् सब प्रकारसे सब ही करनेमें समर्थ हैं. वे यद्यपि सब जीवोंको एक ही प्रकारके बनाने, सबसे एक सी ही उपासना कराने और एक सा ही फल प्राप्त करने देनेमें शक्तिवाले हैं, किन्तु फिर भी विभिन्न प्रकारके जीवोंको उत्पन्न करते ही हैं।।९।।

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत् त्वां गतयोऽन्ततः।।१०।।

श्लोकार्थः हे भगवान्! जिस तरह पर्वतोंसे निकली हुई नदियां, वर्षा ऋतुमें जलप्रवाहसे परिपूर्ण होकर चारों ओरसे आकर समुद्रमें ही प्रवेश करती हैं, वैसे ही अन्तमें सब सिद्धान्तोका स्थान(केन्द्र) आप ही हैं।।१०।।

व्याख्यार्थः अब उन-उन विभिन्न देवोंके उपासकोंको उन-उन अपने उपास्य देवोंका सायुज्य प्राप्त होना कहा गया है, तब तो उन्हें फिर प्रमेयबलके विचारसे फल(भगवान्)की प्राप्ति नहीं(कैसे) होती होगी? इस शङ्काके समाधानार्थ यह 'यथाद्रिप्रभवा' श्लोक कहते हैं. ''जैसे आकाशसे घिरा हुआ जल, सागरमें जाता है, वैसे ही सब देवोंकेलिये किया हुआ नमस्कार केशवको पहुंचाता है'' इस वाक्यके अनुसार उन-उन देवोंके उपासकोंको उन-उनके सायुज्यको प्राप्त होनेकी बात(गीता ९/५) साधनको ध्यानमें रखकर कही गई है. यदि वे उपासक निष्काम होते हैं, तो उन्हें तो प्रमेयबलके विचारसे भगवान्का सायुज्य ही प्राप्त होता है, किन्तु उसमें जैसे भूतोंके उपासक भूतोंके सायुज्यको पाकर फिर वे भूत महादेवका सायुज्य और महादेवको भगवान्का सायुज्य होनेकी परम्परा है, वैसे ही परम्परा तथा समयका विलम्ब होता है.

इस प्रकार विधिसे अथवा विधिके बिना भी उपासना करनेवाले उपासकोंको साक्षात् तथा परम्परासे भगवान्का सायुज्य ही फल मिलता है. जैसे पर्वतोंमेंसे निकली हुई और मेघोंके जलसे परिपूर्ण(उमड़ी) हुई सारी ही नदियोंके प्रवेश करने योग्य स्थान, चारों दिशाओंमें केवल एक समुद्र ही हैं, किन्तु उनके

प्रवेश(समाने)के योग्य दूसरा कोई नहीं है, वैसे ही जीवोंके समूह भी नदियोंके समान ही हैं. नदियां जैसे पर्वतके, स्वाभाविक जलसे अथवा आकर मिले हुवे वर्षाके जलसे उमड़ जाती हैं, वैसे ही विधिसे, विधि बिना भी उपासना करनेवाले जीव करोड़ों जन्म लेकर भगवान्के सायुज्यको ही प्राप्त(होते हैं) करते हैं. ऐसे उपासक जीवोंको भी आप फल प्रदान करते हो, इस बातको बतलानेकेलिये मूलमें 'प्रभो' यह सम्बोधन दिया है. अन्तमें वे आपमें ही प्रवेशरूप फलोंको प्राप्त करते हैं।।१०।।

सत्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः।
तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः।।११।।

श्लोकार्थः क्योंकि सत्त्व, रजस्, तमस् आपकी मायाके गुण हैं और ब्रह्मासे लेकर तृण तक सब जीव उन्हीं गुणोंसे ओत-प्रोत(युक्त) हैं. इस प्रकार उपाधिधारी सारे देवगण गुणोंमें, गुण प्रकृतिमें और वह प्रकृति आपमें प्रविष्ट है।।११।।

व्याख्यार्थः और सब पदार्थोंकी उत्पत्तिके विचारसे भी वे सब आपसे ही उत्पन्न हुवे हैं, आपमें ही प्रवेश पाते हैं और आप ही हैं. तब वे फिर आपके सायुज्यको प्राप्त कैसे नहीं होते? क्योंकि आपके बिना कोई दूसरा है ही नहीं, यह इस 'सत्त्वं' श्लोकसे कहते हैं.

आप ही प्रकृति हो. इसलिये आप प्रकृतिके अथवा आपकी प्रकृतिके सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण हैं. इन तीनों गुणोंमें प्राकृत(प्रकृतिके प्रकारसे उत्पन्न हुवे) स्थावरसे लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सारे पदार्थ ओत-प्रोत हैं. इस कारणसे सबोंका गुणोंमें लय होता है. गुणोंका प्रकृतिमें, और प्रकृतिका आपमें लय होता है. अथवा आप ही प्रकृति हो।।११।।

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे।
गुणप्रवाहोऽयमविद्ययाऽऽसकृत् प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु।।१२।।

श्लोकार्थः इस प्रकार प्रकृतिसे सम्बन्ध होने पर भी आपकी दृष्टि किसीमें आसक्त नहीं होती. आप सबकी आत्मा हैं और सबकी बुद्धियोंके साक्षी हैं. आपको आपकी प्राप्तिकेलिए नमस्कार हो।।१२।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार युक्तिपूर्वक भगवत्सम्बन्धी प्रमाणका फलसहित निरूपण करके तथा प्रमाण और प्रमेय(स्वरूप)से भगवान् सबसे उत्तम हैं, यह

सिद्ध करके इस श्लोक 'तुभ्यं नमस्ते'से उनकेलिये नमस्कार करते हैं. यदि भगवान्‌को नमस्कार नहीं किया जाये तो ऐसी शङ्का हो सकती है कि भगवान्‌की उत्तमताका ज्ञान अक्रूरके हृदयमें दृढ़ नहीं हैं. इसलिये(भगवान्‌की) उत्तमता बतलाकर ही नमस्कार करना चाहिये. ऐसे सर्वरूप आपको नमस्कार हो.(मुझे) आपकी प्राप्ति हो, इसलिये आपको नमस्कार हो, क्योंकि आप ही फल हैं. इस प्रकार आपको नमस्कार करनेसे आप ही फलरूप हो जाते हो. इसलिये प्रार्थना करते हैं कि आपको नमस्कार हो.

भगवान् कदाचित् ऐसी आज्ञा करें कि मैंने तो प्रकृतिके गुणोंसे प्राप्त होकर अवतार(धारण) लिया है, इसलिये प्राकृत मुझे नमस्कार करनेसे क्या लाभ है? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि आप(भगवान्)की दृष्टि किसी भी पदार्थमें आसक्त नहीं हैं. भगवान्‌की दृष्टि सत्त्व आदि गुणोंमें किसी भी स्थान पर आसक्त नहीं होती है, क्योंकि वे तो सभीकी आत्मा हैं. वे सर्वरूप सर्वात्मा हैं. इसलिये उनसे दूसरा कोई पदार्थ ही नहीं है, जिसमें उनकी दृष्टि-बुद्धि आसक्त हो. अपने(आत्मा) आपमें आसक्ति तो उत्तम ही है. इस कथनसे अक्रूरने अपना अपराध भी दूर कर दिया.

इसमें प्रमाणरूपसे कहते हैं कि आप सब बुद्धियोंके दृष्टा-देखने(जानने)वाले हो. भगवान् सबकी बुद्धियोंके जानकार हैं. इस प्रकारसे सर्वात्मा और सबकी बुद्धियोंके दृष्टा कहकर भगवान्‌के भीतरी और बाहरी रूपका वर्णन किया है. भगवान् सबकी बुद्धियों और आत्मा तथा प्राणादिकोंके भी दृष्टा(जानकार) हैं, क्योंकि जो सबकी आत्मा होता है, उसका किसी अन्य पदार्थमें अध्यास(मिथ्या-ज्ञान) नहीं होता, जो सबका साक्षी होता है, वह कर्त्ता नहीं होता और जो सबका साक्षी-दृष्टा होता है, उसकी दृष्टि किसीमें आसक्त नहीं होती. भगवान्‌में चूंकि अन्यके धर्म नहीं है, इस कारणसे उनका अन्यके धर्मोंका सम्बन्ध भी नहीं है.

तब तो किसीको भी अन्यके अविद्या आदिके धर्मोंका सम्बन्ध नहीं होता होगा? ऐसी बात तो नहीं है, किन्तु जिसमें अविद्या(अज्ञान) होता है, उसीका अन्यके धर्मोंका सम्बन्ध होता है. इसलिये यह गुणोंका सम्बन्ध देव, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि सात्त्विक, राजस तथा तामस जीवोंमें ही बार-बार बना ही रहता है. जब तक अन्य गुणोंका सम्बन्ध भी दूर नहीं होता, किन्तु गुणोंसे

पर, परमात्मामें तो अन्यका जरा भी सम्बन्ध नहीं है।।१२।।

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः।
द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत् प्राणःबलं प्रकल्पितम्।।१३।।

श्लोकार्थः अग्नि आपका मुख है. पृथ्वी आपके चरण हैं, सूर्य नेत्र और आकाश नाभि है. सब दिशाएं आपके कान हैं. स्वर्गलोक आपका मस्तक है. उत्तम देवगण आपकी भुजा और समुद्र कोंखें हैं. वायु आपका प्राण और कर्म (आपका) बल हैं।।१३।।

व्याख्यार्थः इस प्रकारसे भगवान्की निर्दोषताका, महिमाका निरूपण पूर्वक उन्हें नमस्कार करके अब 'अग्निर्मुखम्' इस श्लोकसे उनके अवयवोंका स्वरूप कहते हैं. भगवान् सभी देवतारूप हैं. इसलिये उनके सारे अवयवोंका देवतारूप निरूपण किया जाता है. जो अग्नि हैं, वह आपका मुख है. जो पृथ्वी है, वह आपका चरण है. जो सूर्य है, वह आपकी चक्षुः है और आकाश आपकी नाभि है.

ये अग्नि आदि महाभूत भी हैं. इसलिये आगे केवल देवताओंका ही निरूपण करनेके अभिप्रायसे मूलमें 'अथो' यह व्यवच्छेदक पदका प्रयोग किया है. दिशाएं आपके कान हैं. 'द्यौः' स्वर्ग आपका मस्तक है, उत्तम देवगण आपकी भुजाएं और समुद्र उदर है. पवन आपका प्राण है. अक्रूरजी इस स्थूलरूपवाले भगवान्को ही सूक्ष्म रूपवाला जानकर इस प्रकारसे निरूपण करते हैं. वह भगवान्को पुरुषोत्तम नहीं जानते हैं. जो कुछ यहां प्रकल्पित कर्म हैं, वह आपका बल है।।१३।।

रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः।
निमेषणं रात्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रन्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते।।१४।।

श्लोकार्थः वृक्ष और औषधियां आपकी रोमवालि रोंगटे हैं. मेघ आपके केश हैं, पर्वत आपकी हड्डियां और नाखून हैं, रात-दिन आपकी पलकें खुलना, मूंदना हैं. सब प्रजापति परब्रह्म आपकी गुप्तेन्द्रिय हैं और वृष्टि आपका वीर्य है।।१४।।

व्याख्यार्थः वृक्ष और औषधियां आपके रोम हैं. मेघ आपके केश हैं. यह कथन तो प्रमाणसे विरुद्ध है, इसलिये यों नहीं कहना चाहिये, ऐसी शङ्काके तथा यहां किये गये सारे वर्णनके समाधानकेलिये कहते हैं कि भगवान् पर हैं. आप

अपने आप स्वतःप्रकाश तथा परब्रह्म हो.

पर्वत आपके अस्थि(हड्डियां) और नख हैं. रात-दिन सम्वत्सरात्मक कालरूप आपके नेत्रोंके पलकोंका बन्द करना और खोलना है. पलकका मूंदना रात और पलकका खोलना दिन है. प्रजापति आपकी गुप्त इन्द्रिय हैं और वृष्टि तो आपका वीर्य है. मूलमें 'तु' शब्दसे यह बतलाते हैं कि वृष्टि आपके केशरूप मेघोंका जल नहीं है.

यद्यपि मेघोंसे ही वृष्टि होती है, वृष्टिरूप कार्यका मेघ ही कारण है और मेघ भगवान्के केश हैं, तब वृष्टिको केशोंका कार्य कहना कैसे सम्भव है? क्योंकि वृष्टि केशका जल है, यह कैसे हो सकती है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि प्रमाणिक लोगोंकी 'इष्यते' ऐसी ही मान्यता है, क्योंकि मेघ आकाशमें चलते हैं, इस कारणसे मेघ भगवान्के केश हैं और वृष्टिको सबकी उत्पत्तिका साधन होनेके कारण आपका वीर्य कहा है, सर्वथा उचित ही है।।१४।।

लेख: 'रोमाणि' इस श्लोककी व्याख्यामें 'केशाम्बुत्वम्' इस पदका तात्पर्य है कि केशोंको मेघ कहनेसे वृष्टि, केशोंका जल होना मानी जा सकती है, किन्तु ऐसा नहीं. वृष्टि तो भगवान्का वीर्य है:

त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसङ्कुलाः।
यथा जले सञ्जिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोदये।।१५।।

श्लोकार्थ: जैसे जलमें उत्पन्न हुए असंख्य जलजन्तु, गूलर, फलमें अनन्त सूक्ष्म जीव और मनोरथमें असंख्य जीव एक साथ रहते हैं, इसी तरह असंख्य जीवोंसे भरे हुए-पूर्ण ये सारे लोक और लोकपाल विकारशून्य आत्म स्वरूप पुरुष आपके श्रीअङ्गमें विरचित हैं।।१५।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार भगवान्के अवयवों(अङ्गों)का वर्णन करके भगवान् सारे लोकोंके आधार हैं, यह इस 'त्वय्यव्ययात्मन्' श्लोकसे निरूपण करते हैं. भगवान् यदि इन सब लोकोंके आधार हैं, तो उनमें वृद्धि-ह्रास(कमी वेशी) होती होगी?

ऐसी शङ्का करके कहते हैं कि ''पाताल आपके चरणका तलवा है'' (२।१।२६) इस न्यायसे विकाररहित आत्मा पुरुषरूप आप(भगवान्)में सारे ही लोक अच्छी तरह रचित(कल्पित) है.

जब इन सब लोकोंके आधार भगवान् ही हैं, तो उन्हें इन लोकोंका भार

लगता होगा? इस शङ्काका समाधान दृष्टान्तोंके द्वारा करते हैं. जैसे जलमें असङ्ख्य मछली आदि जल जन्तुओंके रहने पर भी जलको उनका कुछ भार नहीं होता, वैसे ही भगवान्में भी सारे लोक बिना भार हुवे इकट्ठे रह रहे हैं.

दुःख अथवा भार तो चेतनको ही होता है और जल तो अचेतन है. जड़को बोझा अथवा दुःख लगता ही नहीं हैं. इसलिये जड़ जलका दृष्टान्त विषम योग्य नहीं हैं. इस विचारसे दूसरा चेतनका दृष्टान्त देते हैं. जैसे गूलरके फलमें अनेक प्राणी उत्पन्न होते और उसीमें रहते हैं, किन्तु उन प्राणियोंका भार अथवा दुःख गूलरको जरा भी नहीं होता, वैसे ही भगवान्को भी सारे लोकोंका भार नहीं लगता है. और जैसे सारे जलचरोंका जल ही तथा सारे मच्छरोंका गूलरका फल ही एकमात्र निवासस्थान है, वैसे ही सब लोकोंका एकमात्र भगवान् ही आधार है.

गूलरके भीतर उत्पन्न होकर उसीमें रहनेवाले उन असङ्ख्य जीवोंका भार लगता है अथवा नहीं होता, यह बात तो प्रत्यक्षप्रमाणसे सिद्ध नहीं है. शरीरके अवयवोंमे उन्हींके भीतर उत्पन्न हुवे जीवोंके रहनेसे भी दुःख तो होता ही है? ऐसी शङ्का करके दृष्टान्तके द्वारा समाधान करते हैं कि जैसे मनोरथमें जीव और विषय, मनको सुख देनेवाले ही हैं, कभी भारभूत नहीं होते, वैसे ही भगवान्में भी सुखकेलिये रचना किये हुवे, वे लोक रह रहे हैं, किन्तु भाररूप नहीं होते।।१५।।

यानि यानीह रूपाणि क्रीडार्थं त्वं बिभर्षि हि।
तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः।।१६।।

श्लोकार्थः पृथ्वी पर क्रीड़ा करनेकेलिए आप जिन-जिन रूपोंसे प्रकट होते हो, उनसे लोगोंका कल्याण ही होता है. आपके उन अवतारोंसे लोगोंके दुःख दूर हो जाते हैं और वे प्रसन्न होकर आपके पवित्र यशका गान करते हैं।।१६।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार भगवान्के श्रीअवयवोंको सबका आधार और सारे देवतारूप बतलाकर ऐसे परम महान् भगवान्का लोकमें निन्दनीय रूपोंसे अवतार लेना उचित नहीं है? ऐसी शङ्का करके इस 'यानि यानीह' श्लोकसे उनके अवतार लेनेके प्रयोजनका वर्णन करते हैं. उद्धवजी कहते हैं कि हे भगवान् आप अनेक प्रकारसे क्रीड़ा करनेकेलिये जल-थल और वनमें सभी जगह मछली आदिके रूपोंको धारण करते हो. आपके उस कार्यसे लोकमें उन रूपोंकी निन्दा

नहीं होती है, किन्तु जिन-जिन रूपोंको आप धारण करते हो, उन्हें आप क्रीड़ाके लिये ही लेते हो. इसलिये यद्यपि उन रूपोंसे आप विशेष आदर नहीं रखते हो, तो भी उन रूपोंके चिन्तनसे लोकोंके सभी शोक दूर हो जाते हैं और वे सारे ही लोक प्रसन्न होकर आपके यशको गाते हैं. इसलिये लोगोंके गान करनेकेलिये ही आपके सारे चरित्र हैं और उन्हें आपके चरित्रोंके गानसे सारे पुरुषार्थ प्राप्त हो जाते हैं. आपके अवतार सब लोकोंसे सभी दुःखोंका नाश करनेकेलिये हैं. 'आनन्दसे गाते हैं' इस कथनसे बतलाया है कि आपके चरित्र स्वतः पुरुषार्थरूप हैं।।१६।।

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च।
हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे।।१७।।

श्लोकार्थः आप कारणवश मत्स्यरूप धारण करके प्रलयके समुद्रमें विचरते रहे. आपने हयग्रीवरूप धारण किया और मधु तथा कैटभ नामके राक्षसोंको मारा. आपको बारम्बार प्रणाम है ।।१७।।

व्याख्यार्थः यद्यपि भगवान्के अनन्त रूप हैं, तो भी उनमेंसे कुछ प्रसिद्ध रूपोंकी गणनापूर्वक उत्तमता बतलानेकेलिए 'नमः' इस श्लोकसे उन्हें प्रणाम करते हैं. आप मत्स्यको नमस्कार हो. मत्स्य तो निन्दित है. भगवान् निन्दित ऐसे मत्स्य क्यों हुए? ऐसी शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान् कारणमत्स्य है. जब मच्छ उत्पन्न हुए, तब उनका बीजरूपसे कोई मत्स्य पहले कारणरूपसे मानना ही होगा. यदि पहले बीजरूप किसी मत्स्यको आदिकारण नहीं मानेंगे तो मच्छलियोंकी उत्पत्ति ही नहीं होगी. गूलरके फलोंमें अथवा मांस आदिमें जहां जीवोंकी उत्पत्ति होती है, वहाँ भी उनकी उत्पत्तिके कारणसे पहले रहने वाला कोई रूप अवश्य स्वीकार करना ही होगा. यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो प्रत्येक कार्यका कारण अवश्य ही होना चाहिए, इस नियमका भङ्ग हो जायगा.

इसलिए यह मान लेना चाहिए कि जगत्में जितने भी रूप हैं, उन सबका कारणरूप भगवान् है, क्योंकि श्रुति कहती हैं कि ''स एव सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति''(वही सब रूपोंको धारण करता है). इन नाना रूपोंके धारण कर लेनेमें भगवान्का कुछ भी नहीं बिगड़ता है. अथवा भगवान्ने कारणवश मच्छका रूप धारण किया है अर्थात् प्रलयमें सत्यव्रत राजाकी रक्षा और वेदोंका उद्धार करनारूप कार्यकेलिए मत्स्य बने भगवान्को नमस्कार करते हैं, क्योंकि वह रूप भी उपासना करने योग्य ही है. प्रलयकालके समुद्रमें वह मत्स्य फिरता है, ऐसा

उनका राजा सत्यव्रतकी रक्षारूप चरित्र है.

वेदों का उद्धार दो रूपोसे किया है. इसलिए हयग्रीवरूप, जिसमें केवल सिर ही घोड़ेका सा था और शेष सारा अङ्ग मनुष्यका ही था, वह भी आपने ही धारण किया है और इस हयग्रीव अवतारसे आपने मधुकैटभ नामके दैत्योंका नाशरूप चरित्र किया है. भगवान् मृत्यु(काल)रूप हैं, इसलिए भगवान्के ही कालसे उत्पन्न होनेवाले भी इन दोनोंको मार देनेमें कोई दोष नहीं है. यह अवतार जगत्का अत्यन्त उपकारक है. इसलिए हयग्रीवरूप आपको सदा नमस्कार हो, प्रार्थना करते हैं।।१७।।

अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे।
क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये।।१८।।

श्लोकार्थ: अत्यन्त विशाल कच्छपरूपको धारण करके अपनी पीठ पर मन्दराचलको धारण कर लेनेवाले आपको प्रणाम हो. पृथ्वीका रसातलसे उद्धार करनेकेलिए ही वराहरूपसे क्रीड़ा करनेवाले आपको प्रणाम हो ।।१८।।

व्याख्यार्थ: 'अकूपाराय' इस श्लोकसे कच्छप और वराहको नमस्कार करते हैं(अकूपाः ऊंची आराः) गतियोंवाला अकूपार शब्दका व्युत्पत्तिसे कच्छप अर्थ भी होता है और समुद्र अर्थ तो अकूपार शब्दका होता ही है. यह कछुआ तो समुद्रसे भी विशाल था, अत्यन्त मोटा था. इसलिये जलचर होनेका दोष उसमें नहीं था. उसके चरित्रका वर्णन करते हैं कि अमृतकेलिये समुद्रका मंथन किया तब डूबते हुवे मन्दराचलको इस कूर्मरूपने पीठ पर धारण किया था.

केवल पृथ्वीका उद्धार करनेकेलिये ही क्रीड़ा करनेवाले भगवान्को वराहरूप धारण करलेनेमें भी कोई हानि नहीं है. इसी अभिप्रायसे मूल श्लोकमें रूपका वर्णन पहले न करके चरित्रका वर्णन पहले किया है. वराह(शूकर)के आकारवाली मूर्तिवाले आपको नमस्कार हो।।१८।।

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह।
वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च।।१९।।

श्लोकार्थ: हे सत्पुरुषोंको निर्भय बनानेवाले भगवान्! आपने अद्भुत नरसिंहरूप धारण करके प्रह्लादकी रक्षा की है. आपको प्रणाम है. वामन अवतार लेकर तीन पैरसे त्रिभुवनको नाप लेनेवाले आपको नमस्कार है।।१९।।

व्याख्यार्थ: अद्भूत सिंह(शरीरका ऊपरका सिंहका सा और नीचेका

भाग मनुष्य जैसा) रूप धारण करनेवाले अथवा भक्त प्रह्लादके वचनको सत्य करनेकेलिये स्तम्भसे प्रकट हुवे अद्‌भूत सिंहरूप लेनेवाले आपको प्रणाम है. 'साधु लोग भयावह' इस सम्बोधन पदसे चरित्रका वर्णन करते हैं कि आप सज्जनोंके भयको दूर करनेवाले हो.

अवतार लेनेके समयमें यद्यपि वामनरूप नहीं था, उपेन्द्र(इन्द्रके छोटे भाई) रूप ही था, तो भी अवतारका कार्य वामनरूपसे ही किया था. इसलिये वामनरूपको नमस्कार करते हैं कि वामनजीको प्रणाम हो. उनके चरित्रका वर्णन करते हैं कि आपने तीन पैरमें तीनों भुवनोंको नाप लिया था और बलिराजाका बन्धन आदि भी किया था।।१९।।

नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे।
नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च।।२०।।

श्लोकार्थ: भृगुपति परशुरामके रूपसे अहंकारी क्षत्रियोंके वनको काटनेवाले आपको नमस्कार हो और राक्षस रावणका संहार करनेवाले रामचन्द्र आपको प्रणाम हो ।।२०।।

व्याख्यार्थ: भृगुओंके पति अर्थात् भृगुवंशमें उत्पन्न होनेवालोंमें श्रेष्ठ परशुरामरूप आपको प्रणाम हो. आप दैत्यों, जैसे मदोन्मत्त क्षत्रियोंके बढ़ते हुवे कुलका नाश करनेवाले ही और रघुवंशमें उत्पन्न होनेवालोंमें उत्तम, रामचन्द्र रूपसे अवतार लेकर रावणका संहार तथा अन्य अनन्त चरित्र करनेवाले आपको प्रणाम हो।।२०।।

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः।।२१।।

श्लोकार्थ: भगवान् वासुदेवको नमस्कार हो, संकर्षणको नमस्कार हो. प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा वैष्णवोंके स्वामीकेलिए नमस्कार हो ।।२१।।

व्याख्यार्थ: भगवान्(श्रीकृष्ण)ने चार मूर्तिसे अवतार लिया है. भगवान् श्रीकृष्णके अवतारके सम्बन्धमें 'नमस्ते' इस श्लोकसे विशेष चिह्नका वर्णन करते हैं. इस श्रीकृष्णावतारके सम्बन्धमें पहले, बीचमें और अन्तमें भी नमस्कार करते हैं. भगवान् अपने आवेशको भी सङ्कर्षणरूपमें करते हैं, इसलिये आपने आवेशवाला सङ्कर्षणरूप भी धारण किया है. इस रूपसे आप अपने सभी भक्तोंकी रक्षा करते हो, तथा उनकी प्रार्थनाके बिना ही उन्हें सारे पुरुषार्थोंकी

प्राप्ति कराने प्रदान करनेकेलिये यह अवतार है।।२१।।

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने।
म्लेच्छघ्नाय क्षत्रहन्ते नमस्ते कल्किरूपिणे।।२२।।

श्लोकार्थ: दैत्यों और दानवोंको अपने उपदेशसे मोहित करनेवाले शुद्ध-बुद्धरूप आपको प्रणाम हो. म्लेच्छप्राय कलियुगी क्षत्रियोंका संहार करनेवाले कल्किरूप आपको प्रणाम हो ।।२२।।

व्याख्यार्थ: 'नमो बुद्धाय' इस श्लोकसे आगे होनेवाले अवतारका वर्णन करते हैं. अक्रूरजी ऋषि हैं. इसलिये आर्ष(दिव्य) ज्ञानसे वह जैसा-जैसा(वहां जलके भीतर) देखते हैं, वैसा वर्णन करते हैं अथवा भगवान् अपने उस-उस रूपके उन्हें दर्शन कराते हैं. वेद आदिकी निन्दा करनेवाले बुद्धरूपकी अवतारोंमें गणना करना तो अयोग्य ही होगा. ऐसी आशङ्काको दूर करनेके अभिप्रायसे मूल श्लोकमें 'शुद्ध' सब दोषरहित, ऐसा विशेषण दिया है. इस बुद्धावतारका चरित्र वेदकी निन्दाके वाक्योंसे दैत्यों और दानवोंको मोह उत्पन्न करना है. उनका वह मोह भगवान्(बुद्ध)का मोह है. यदि वे अपने मोहको प्रकट नहीं करते तो उन दैत्योंको मोह नहीं होता. 'दैत्यदानवमोहिन्' यह अर्थ इस मत्वर्थक 'इन्' प्रत्ययसे ज्ञात होता है. अब कल्किरूपको नमस्कार करते हैं. 'क्षत्र' रक्षकरूपसे रहनेवाले क्षत्रियोंका नाश करनेवाले कल्कि अवतारको नमस्कार हो. उस समय क्षत्रिय म्लेच्छोंके आकारवाले होंगे. इसलिये म्लेच्छोंका नाश करनेवाले, ऐसा विशेषण दिया है. क्षत्रिय, गुणवाले होने चाहिये, वे दोषवाले होंगे और म्लेच्छ, दोषवाले होने चाहिये, वे गुणवाले होंगे. इस प्रकार विपरीत भाव बतलानेकेलिये दोनोंको अलग-अलग(क्षत्रिय और म्लेच्छ) कहा है. म्लेच्छ जो स्वभावसे ही दैत्य हैं, वे गुणवाले हो, तब भी मारने योग्य हैं और क्षत्रिय जो दोषयुक्त हो, वे ही नाश करने योग्य होते हैं. दोषरहित क्षत्रिय मारने योग्य नहीं होते.

इस प्रकारसे कल्कि अवतारका प्रयोजन कहकर 'कल्कि रूपवाले' शब्दसे स्वरूपका वर्णन करते हैं. इस कल्किमें 'कल्क'(पीसे हुवे रस जैसा) चारों युगरूप कालका स्वरूप रह रहा है. इसलिये यह कल्कि कहलाता है. केवल उस(कल्क) कालका रूप ही अपने कल्किके भीतर प्रतिबिम्बित हुआ नहीं दिखलाई देता है, किन्तु अपना कल्किरूप उस अपनेमें प्रतिबिम्बित हुवे कल्करूप कालसे अलग भी है।।२२।।

भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया।
अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु।।२३।।

श्लोकार्थ: हे भगवन्! यह सारा जीवलोक आपकी मायासे मोहित हो रहा है. इसी कारण 'मैं हूं' 'मेरा है' ऐसा इन दुष्ट पदार्थोंमें आग्रह करके कर्मके मार्गोमें भटक रहा है।।२३।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार भगवान्के कितने एक रूपोंको नमस्कार करके कुछ प्रार्थना करनेकेलिये 'भगवन्' इस श्लोकसे सबके ही साधारण दुःखको निवेदन करते हैं. ऐसे महान् भी आप सदा सावधान रहते हो, तो भी लोक आपकी मायासे मोहित होकर दुःख भोगते हैं. यदि यह मायासे मोहित न हो, तो दुःख क्यों पावें? आप, कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथाकर्तुम्, सब प्रकारकी शक्तिवाले हैं. इस बातको बतलानेकेलिये श्लोकमें 'भगवन्' यह सम्बोधन कहा है. यह चारों तरफ दिखाई देनेवाला सारा जीवलोक, नहीं लांघी जा सकनेवाली आपकी ही मायासे मोहित हो रहा है. यदि यह मोहित नहीं हो रहा हो, तो देह आदि दुष्ट पदार्थोंमें, 'मैं, मेरा' ऐसा आग्रह क्यों हो? इसीलिये यह कर्मोके मार्गोमें ऊंची, नीची, कुत्ते आदिकी योनियोंमें बार-बार भटकता फिरता है, क्योंकि मायासे मोहित नहीं हो तो एकबार दुःख भोगकर फिर 'मैं, मेरा' ऐसा अभिमान नहीं करता।।२३।।

अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु।
भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया प्रभो।।२४।।

श्लोकार्थ: हे प्रभो! मूढ़ मैं स्वप्न जैसे इन देह, पुत्र, स्त्री, घरबार, धन, सम्पत्ति और अन्यान्य सगे सम्बन्धियोंमें इन्हें सत्य मानकर भटक रहा हूं।।२४।।

व्याख्यार्थ: तब अक्रूरजी तुम्हारी क्या दशा है, इस प्रकारकी आकाङ्क्षामें 'अहं' यह श्लोक कहते हैं. हे प्रभो! जैसे और लोग सभी अपनी मायामें मोहित हो रहे हैं, वैसे ही मैं भी मोहित हो रहा हूं. सारे लोगोंकी अपेक्षा मेरेमें विशेषता यह भी है कि मैं तो देह, पुत्र, घर, स्त्री, धन आदि इन सबको एकबार दुःखरूप जानकर भी बार-बार इसमें भटकता रहता हूं. ये सब न तो स्वरूपसे सत्य हैं और न पूर्ण रीतिसे स्पष्ट जाने ही जाते हैं. यदि इन्हें स्पष्ट जान लिया जाये तो इनका कार्य भी उत्तरोत्तर प्रकट होता रहे.

इसलिये मैं ही अहन्ता ममतामें फंस रहा हूं. केवल इतना ही नहीं, किन्तु स्वप्नके समान भी झूठे इनमें भ्रमता ही रहता हूं. इसी कारण मैं सबसे अधिक मूढ़

हूं. केवल मुझे भ्रम ही नहीं हैं, मैं तो उन्हें सत्य भी मान रहा हूं और विचार करने पर भी तथा किसी दूसरे प्रकार(अनित्यता)का ज्ञान होने पर भी मेरा भ्रम नहीं मिटता है. 'हे प्रभो!' आप सर्वसमर्थ हो. मुझ जैसे अधिकारहीनको भी, कभी भी न मिलने योग्य वस्तुको भी प्राप्त करा देते हो. इसी अभिप्रायको प्रकट करनेकेलिये श्लोकमें 'प्रभो' यह सम्बोधन पद दिया है।।२४।।

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम्।
द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम्।।२५।।

श्लोकार्थः अज्ञानसे अंधा बना हुआ मैं, इन अनित्य, अनात्म पदार्थोंको नित्य तथा आत्मा जानकर दुःखको सुख मान रहा हूं. नाथ ! मैं सुख, दुःख आदि द्वन्द्व धर्मोंमें रम रहा हूं. इसीलिए अज्ञानी मैं, आत्माके परम प्रिय, परमात्मा, जो आप हैं, उनको नहीं जानता(पहचानता) ।।२५।।

व्याख्यार्थः शास्त्रसे ज्ञानके उत्पन्न होने पर जब संसारकी असारता जान लेगा, तब तू(अक्रूर) स्वयं ही सबका त्याग कर देगा. इसमें मुझे(भगवान्को) क्या करना है? ऐसा सन्देह होने पर 'अनित्या' यह श्लोक कहते हैं. नाथ मेरी बुद्धि शास्त्रका भी उल्लङ्घन करके विपरीत हो गई है. यह तो अनित्य(नाश होनेवाले) पदार्थको भी नित्य मान रही है और देह तथा देह सम्बन्धी, जो आत्मासे भिन्न हैं,(आत्मा नहीं है) और आत्माकी प्राप्तिमें बाधक हैं, विघ्नरूप हैं, उन्हें आत्मा समझ रही है. विष्ठा, मूत्र, पूय आदिसे भरी हुई दुःखदायी देहादिकमें ही मैं सुख मान रहा हूं. इसलिये उत्पन्न हुआ शास्त्रका ज्ञान भी अनुभवको नहीं दबा रहा है. इसी कारणसे मैं सुख, दुःख, राग, द्वेष आदि परस्पर विरोधी गुणोंमें ही सुख समझ रहा हूं. मैं(तमोविष्ट) महामोह अथवा अज्ञानसे भरा हुआ हूं, इसीलिये मुझे ऐसा भ्रम हो रहा है. यह अज्ञान आपको जान लेने पर ही मिट सकता है, क्योंकि आपका ज्ञान होने पर प्रकाश हो जाता है, तब तम, मोह, अज्ञान(अन्धेरा नहीं रह पाता, दूर हो जाता है), किन्तु आंखोंमें अन्धेरी छाई होनेसे आपका ज्ञान नहीं होता. जैसे अन्धा पुरुष स्वतः प्रकाशमान् सूर्यको भी नहीं देख सकता, वैसे ही मैं आत्मारूप, परमप्रिय, परम आनन्दके देनेवाले, सहज प्राप्त हो जानेवाले और प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले आपको भी इस प्रकार(यथार्थरूपसे प्राण प्रिय) नहीं जानता हूं, अथवा आप आत्मासे भी परे हो वशमें रखनेवाले हो, ऐसे नहीं पहचानता हूं।।२५।।

यथाबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः।
अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत् त्वाहं पराङ्मुखः।।२६।।

श्लोकार्थ: जैसे कोई मूर्ख मनुष्य, जलमें ही उत्पन्न हुए घास-फूस अथवा काई आदिसे ढके हुए पानीको छोड़कर मृग-मरीचिकाके पीछे जलकी आशासे भटकता फिरे, वैसे ही अपनी मायाके गुणोंसे छिपे हुए आत्मारूप आपको छोड़कर, मैं मूढ़, सुखकी आशासे देह आदिके लालन-पालनमें लग रहा हूं, आपसे विमुख हो रहा हूं।।२६।।

व्याख्यार्थ: वेद और अनुभवका आश्रय न लेकर भी तर्क शक्तिवाले और ज्ञानी अक्रूरजी तुम मुझे(भगवान्को) कैसे नहीं जानते? ऐसी शङ्कामें 'यथाऽबुधो' इस श्लोकसे भगवान्को न जाननेका कारण दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं. जैसे जलाशयके किनारे खड़ा हुआ, जल पीनेकी इच्छावाला कोई मूर्ख कमलके पत्तों, काई आदिसे ढ़के हुवे जलको घास-फूसका ढेर ही समझकर और उस काईको दूर करके वहांके जलको न लेकर(न पीकर) दूरी पर मृग-मरीचिकाके जलको देखकर उसे लेनेकेलिये उधर ही दौड़ता है, उसी प्रकारसे शरीरके भीतर रहनेवाले और शरीरमें ही उत्पन्न होनेवाले अहङ्कार आदिसे आच्छादित(ढ़के हुवे) आप भगवान्को(वहीं शरीरमें ही विराजमान्को) न जानकर उन अहङ्कार आदिको दूर न हटाकर, परमानन्दका अनुभव न करके दुःखरूप बाहरी पदार्थोंकी और सुखकी आशा, अभिलाषासे दौड़ता हो, ठीक वैसे ही मेरी दशा है. आपसे बहिर्मूख मैं भी, आपको छोड़कर विषय सुखकेलिये दौड़ रहा हूं.

यहां 'पराङ्मुख' पदमें मुख शब्दका अर्थ प्रवृत्ति स्वभाववाला आत्मा (जीव) है. उसका प्रतिनिधरूप यह जिस तरफ मुख रखता है(जिधर देखता है), वही करता है. इसलिये शास्त्र आदिके द्वारा जब यह(जीव) अन्तर्मुख होता है, तब ही भगवान्के निकट आता हैं. बाहर जल तो तब मिल सकता है, जब भगवान्की इच्छासे प्रलयकालकी तरह सब जगह जल ही जल हो जाये. इसी तरहसे भगवान्की बाहर प्राप्ति तो तब ही हो सके, जब वे अपनी इच्छासे सभी स्थान पर प्रकट हो जावें.

अथवा भगवान् जिस रूपसे(जैसे-जैसे) दर्शन देते हैं, अक्रूरजी उन्हें वैसा ही मानते हैं. इसलिये भगवान् स्वयं भी उसी रीतिसे उस(अक्रूर)के सामने

प्रकट होते हैं. इसलिये इस प्रकारके वर्णनमें किसी प्रकारकी अनुचितता नहीं हैं, सब उचित ही वर्णन है।।२६।।

नोऽत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः।
रोद्धुंप्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः।।२७।।

श्लोकार्थः भगवन्! विषय-वासनाओंसे मेरी बुद्धि हीन(दीन) हो रही है, इसलिए काम्यकर्मों और कामनाओंसे चञ्चल हुई तथा बलवान् इन्द्रियोंके द्वारा इधर-उधर चलायमान्(भटकनेवाले) मनका दमन करनेमें, मैं असमर्थ हो रहा हूं।।२७।।

व्याख्यार्थः जब नित्य और अनित्य पदार्थोंका ज्ञान हो जाये तब मोह कैसे हो? ऐसी आशङ्कामें 'नोत्सहे' यह श्लोक कहते हैं. मन दो स्वभाववाला है. १.क्रियाशक्तिवाला और २.ज्ञानशक्तिवाला. जैसे नित्य अनित्यके ज्ञानकी शक्तिसे और शास्त्रके द्वारा ज्ञानशक्ति उत्पन्न होती है, वैसे ही योगसे यदि क्रियाशक्ति भी मनमें उत्पन्न करदी जाये, तब तो मन एकमुख(एक ही प्रयोजनवाला) हो जाता है और यदि ऐसा नहीं होता है तो, बलवती क्रिया ज्ञानको दबाकर अपना ही कार्य करती है. इसी कारणसे कई लोग ज्ञानकी अपेक्षा योगकी अधिक ही प्रशंसा करते हैं. भगवान्ने भी आज्ञा की है कि ''ज्ञानिभ्योप्यधिको मतः''(गीता ६।४६) योगी ज्ञानकी अपेक्षा भी अधिक माना गया है.

जिस प्रकार ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न, क्रमसे एकसे द्वितीय और दूसरेसे तृतीय, अधिक बलवान् है, उसी प्रकार मन, वाणी और काया भी एकके बाद एक अधिक बलवान् है. उनमें काम, क्रोध आदि विघ्न करनेवाले हैं. वे मनको संसारमें ही फंसाते हैं. अत्यन्त कठिनतासे होनेवाले योगादिक, किये नहीं जा सकते, क्योंकि अन्धकारमें जोरकी आन्धी तथा वर्षा होने पर दीपक नहीं रखा जा सकता है. इसीलिये मूलमें अक्रूरजी अपने आपको कृपणधी(दीन बुद्धिवाला) कहते हैं. मनके वशमें रखनेवाली तो बुद्धि ही है और वही मेरी बुद्धि, दीन(विषयोमें अत्यन्त आसक्त) हो रही है. इसलिये वह मनको वशमें नहीं रख सकती, क्योंकि चोर दूसरे किसीको अच्छे मार्ग पर नहीं चला सकता है, फिर मेरा मन भी काम और कर्मके आधीन हो रहा है. उत्कट इच्छा(काम) है और इच्छा(काम)के अनुकूल ही क्रिया करना कर्म है. ज्ञान तो बेचारा बलहीन और

असहाय और काम तथा कर्मसे दबा हुआ है, स्वच्छ नहीं है. इसीलिये यह मलिन ज्ञान भयसे उन काम और कर्मके अनुकूल ही हो जाता है. वह(ज्ञान) स्वयं अपने अनुकूल नहीं रहता है. इसीलिये यही समझ और निश्चयकर कि मनको रोकना अशक्य है, मैं उसको रोकनेका उत्साह(साहस) भी नहीं करता हूं. वह मेरा मन बलवान् इन्द्रियोंके द्वारा इधर-उधर भटकाया जा रहा है. इसलिये मैं मन, इन्द्रियोंको रोकना आदि सभी विषयोंमें असमर्थ हूं, केवल भगवान्की शरण जाता हूं और उनसे निवेदन करता हूं कि ये इन्द्रियों, काम, कर्म आदि सब बड़े बलवान् है और मैं मनको वशमें करनेमें असमर्थ हूं।।२७।।

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये।
पुंसो भवेद् यर्हि संसरणापवर्ग स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात्।।२८।।

श्लोकार्थः हे प्रभो ! आपके चरणकमल, दुष्टलोगोंकेलिए परम दुर्लभ है, तथापि मुझ जैसे अधमको आपके चरणोंकी प्राप्ति हो जाना, मैं तो आपकी ही कृपाका फल मानता हूं. हे पद्मनाभ ! जब मनुष्यका अन्तिम जन्म होता है अर्थात् जीवके आवागमनका अन्त निकट आ जाता है, तभी सत्पुरुषोंकी सेवा-सत्सङ्गके द्वारा उसकी बुद्धि आपकी ओर झुकती है ।।२८।।

व्याख्यार्थः ऐसी स्थितिमें जो भी जीवका कर्तव्य है, उसे भगवान् ही कृपा करके, अपने दास रक्षाव्रतको विचारकर, जीवोंके भाग्यसे अथवा भगवान् उसे स्वयं अपना ही कार्य समझ(मान)कर करें, तब तो जीवकी सद्गति हो सकती है, यदि भगवान् ऐसी कृपा न करें, तो जीवका निस्तार नहीं हो सकता, इस अभिप्रायसे 'सोऽहं' यह श्लोक कहते हैं.

सब प्रकारसे साधनहीन मैं, अब दीन होकर आपके चरणारविन्दकी शरणमें आया हूं. यह आपकी शरणागति भी दुष्ट पुरुषोंकेलिये तो अत्यन्त दुर्लभ ही है. जो दुष्ट है, जिन्हें पहले श्लोकोंमें कही गई रीतिसे नित्य-अनित्य वस्तुका ज्ञान नहीं हैं, वे भी आपके चरणारविन्दको प्राप्त नहीं कर सकते हैं, किन्तु इस प्रकारके सत्य, असत्यकी ज्ञानशक्ति ही आपके चरणारविन्दकी शरणागति प्राप्त कराती है. भगवान्के शरणमें चले जाना भी भगवान्का ही अनुग्रह मानता हूं. यदि भगवान्की कृपा न हो तो जीव उनकी शरणमें जावें ही नहीं और मैं भगवान्के शरणागत हो गया हूं ऐसा ज्ञान भी(जीवको) नहीं हो सकता. इसलिये जब भगवान्(जीवके) देह, इन्द्रिय आदिके समूह अपने अनुकूल करें अथवा इनका

त्याग कर दें, तब ही जीवका भगवान्‌के शरण आना सिद्ध हुआ जानना चाहिये, तब ही शरणागति सिद्ध हुई मानी जाती है. जीवकी इन्द्रियादिको भगवान्‌ने अपने अनुकूल बना दिया, यह बात तो सहज ही जान ली जा सकती है, किन्तु भगवान्‌के द्वारा इस सङ्घातका त्याग करा देनेका पक्ष तो कठिनतासे जाना जा सकने योग्य होने पर भी उनके प्रभावसे अथवा उनकी कृपाके प्रकाशसे जान लिया जा सकता है. इसलिये स्वरूपसे सङ्घातको अनुकूल बनाकर अथवा उनका त्याग कराकर(जीवको अपनी) शरणमें ले आनारूप कार्य भी भगवान्‌की कृपाका ही परिणाम है, और जब(भगवान्‌की कृपाका परिणाम) वह शरणागति हो, तभी सत्पुरुषोंकी सेवा, जिसके द्वारा भगवान्‌में बुद्धि लगती हैं, होती है. इसलिये आगन्तुक शम, दम आदिके न होने पर भी स्वरूपसे सत्पुरुष होना ही योग्य है, किन्तु कईं जीव, स्वभावसे ही सज्जन अथवा दुर्जन हैं. उनको भगवान्‌ने वैसा ही उत्पन्न किया है. इसलिये इस विषयमें भगवान्‌की इच्छा ही मूल नियामक है.

अपने हितके विचारसे सत्पुरुष भी जिस सङ्घातको अनुकूल नहीं कर सकता और छोड़ ही सकता है, उसे भगवान् कैसे अनुकूल करा देंगे अथवा छुड़ा देंगे? ऐसी शङ्काके उत्तरमें अक्रूरजी कहते हैं कि आप 'ईश'(ईश्वर), सर्वसमर्थ हैं, सब कुछ कर सकते हैं, ऐसा मैं मानता हूं, मेरा अनुभव ही इसमें प्रमाण है. इस कथनसे यह बतलाया कि भगवान् ही कृपा करे, तब ही जीवका निस्तार(मोक्ष) प्राप्ति हो. तब तो जीवका निस्तार(मोक्ष) होनेमें ज्ञानका भी कुछ उपयोग न होनेसे शास्त्र व्यर्थ हैं? ऐसी शङ्काका समाधान करते हुवे कहते हैं कि पुरुषका जब भगवान्‌की इच्छासे अन्तिम जन्म होता है, भगवान् जब सृष्टि करते हैं तब विचार करते हैं कि अमुक जीवको ऐसा करूंगा. उस समय जिसका मोक्ष(करना) विचार लेते हैं, उसके जन्मोंकी अवधिसङ्ख्या कर देते हैं. ऐसा होने पर जब ही अन्तिम जन्म होता है, वही संसरणापवर्ग कहा जाता है, क्योंकि इस जन्मके आगे फिर इसका जन्म नहीं होगा. इस कथनमें 'पुंसः'(पुरुषका) श्लोकमें कहा गया पुरुष शब्द ही प्रमाण है. ''तासां मे पौरुषी प्रिया''(उन सब योनियोंमें मुझे पुरुष जन्म प्यारा है), इस वाक्यसे यदि पुरुषका जन्म अन्तिम जन्म नहीं होता, तो भगवान् इसे पुरुष ही नहीं करते. इस कारणसे पुरुषकी मुक्ति होना तो सम्भव है, किन्तु कितने जन्म अथवा कितने समयके बाद मुक्ति होगी, इस प्रकारकी अवधिका नियम नहीं है. इसलिये अन्तिम जन्म होने पर ही भगवान् जीवकी सत्पुरुषोंकी

सेवाके द्वारा अपनेमें बुद्धि करेंगे, लगावेंगे, इस नियमको हे कमलनाभ! यह सम्बोधन सूचित करता है. भगवान् यदि जीवकी बुद्धिको अपनी ओर लगाना नहीं चाहते, तो स्वयं पधारकर सृष्टि नहीं करते. भगवान्‌की नाभिमें कमल है. उन कमलनाभ भगवान्‌ने स्वयं प्रकट होकर ही सृष्टि की है, अपने किसी सेवक द्वारा नहीं की है. इससे यह जाना जाता है कि इस अपनी रची हुई सृष्टिमें भगवान् किन्हीं पुरुषोंको मुक्त करेंगे. तब उस मुक्तिको प्राप्त करने योग्य अन्तिम जन्ममें ''उसको जानकर ही(मनुष्य) मृत्युसे पार होता है''. मृत्युको तरता है इस नियमसे जीवकी बुद्धि भगवान्‌में लगती है. इसलिये ''मुझे तत्त्वसे जाननेके बाद मेरेमें प्रवेश करता है''(गीता १८।५५) भगवान्‌के इस वाक्यानुसार अन्तिम जन्ममें भगवान्‌का ज्ञान जरुरी है. उस होनेवाले आवश्यक भगवज्ज्ञानमें बोध करानेवालेके रूपसे और उपदेश दिये जाने योग्य सत्पुरुषोंके रूपसे शास्त्रोका उपयोग है. भगवान् साधनोंके द्वारा ही(जीवसे) सब कराते हैं, यह नियम सङ्घातको अनुकूल करना तथा सर्वथा त्याग करा देना, इन दोनों पक्षोंमें समान है. इसलिये जीवसे अशक्य(नहीं किये जा सकने योग्य) सङ्घातका त्यागके पक्षमें भी किसी भी प्रकारकी अड़चन-अयोग्यता नहीं है. इसलिये १.सत्पुरुषोंकी सेवा करनेमें रुचि होना, २.भगवान्‌के स्वरूपके ज्ञानकी इच्छा होना और ३.शास्त्रमें श्रद्धा रखना, इनसे पुरुषका अन्तिमजन्म जाना जाता है।।२८।।

लेख: 'सोऽहम्' इस श्लोककी व्याख्यामें 'पूर्वेक्ताः' पदका अर्थ पहले 'भगवन् जीव लोकोऽयम्' इत्यादि श्लोकोंमें कहा हुआ है. 'विवेकेन तु' इत्यादिका और विवेक-यह ज्ञान-मुझको है कि मैं भगवान्‌के शरण जाऊं, ऐसा अर्थ है.

किञ्च: वास्तविक रूपसे भगवान्‌की कृपासे ही ऐसा ऊपर कहा हुआ विवेक होता है. 'त्याजनेत्यादि'का भाव यह है कि संघातका त्याग करना तो देहके न रहने पर ही जाना जा सकता है, किन्तु देहके रहते हुए भी भगवान्‌की कोई महिमा और कृपासे वे स्वयं ही ''मेरा(जीवका) संघातसे छुटकारा हो गया'' जीवको ऐसा प्रकाश करा देते हैं, तब देहपातके पहले(देहके रहते हुए) भी जान सकता है. 'अनुग्रह' अनुग्रहका कार्य है 'स्वरूपतः', जो स्वरूपसे वास्तविक ही सज्जन है, शम-दम आदिके द्वारा आगंतुक सज्जन नहीं है. स्वरूपसे ही कुछ सज्जन होते हैं और कुछ दुष्ट. 'शास्त्रं', सायुज्यकी प्राप्तिकेलिये मन, बुद्धि

भगवान्में लग जाय, इसलिए शास्त्रोंका उपयोग है, शास्त्राध्ययन व्यर्थ नहीं है.

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे।
पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।।२९।।

श्लोकार्थ: हे भगवन्! विज्ञान आपका वैभव है. सारे ज्ञानोंका मूल कारण आप ही हैं. आप परिपूर्ण ब्रह्म हैं. आपकी शक्तिका अन्त नहीं है. काल, कर्म, स्वभाव आदिके नियामक आपको प्रणाम है।।२९।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार विज्ञप्ति करके प्रार्थनाकी सफलताकेलिये 'नमो विज्ञानमात्राय' इस श्लोकसे भगवान्को प्रणाम करते हैं. भगवान् जब केवल उत्तम ज्ञानरूप ही हो, तभी शास्त्र और सत्पुरुषोंका उपयोग हो सकता है. यदि ऐसा न हो(भगवान्) केवल ज्ञानरूप ही न हो, तो ज्ञानसे साधारण लाभ ही हो सकेगा. मनन, निदिध्यासनसे उत्तम सिद्धि मिल नहीं सकती और ज्ञान इनका अङ्ग भी नहीं, क्योंकि शास्त्र केवल ज्ञानको ही उत्पन्न करता है, और कुछ नहीं करता. शास्त्र द्वारा उत्पन्न हुआ ज्ञान, यदि भगवान्(विज्ञानरूप)से भिन्न ही हो, तो भगवद्भजन करने, तथा उनके शरण जानेसे कुछ लाभ नहीं हो(मुक्ति ही न हो) इससे आप केवल ज्ञानरूप ही हो.

यदि हृदयमें भगवान् न विराजते हों अथवा आत्मारूप होवे तो अपनेसे अलग रहनेवालेको कोई प्राप्त नहीं करता है और न कोई दूसरा होता है. इससे मुक्ति भी नहीं हो सकेगी. इसलिये सारे(प्रत्ययों)को ज्ञानोंका कारक(हेतु) जो अन्तर्यामी अथवा आत्मा है, वह आप ही हैं.

केवल ज्ञानरूप आत्मा जगत्का कारण कैसे हो सकता है? इस शङ्काके समाधानार्थ पुरुष, काल और प्रकृतिरूप, इन तीन शब्दोंका श्लोकमें प्रयोग हैं. १.पुरुष(प्रकृतिके भर्ता) २.काल(गुणोंमें क्षोभ(हलचल) करनेवाला) और ३.प्रधान(गुणरूप प्रकृति) जगत्के कारण, ये तीनों आप ही हो.

भगवान् तो एक हैं. जलके अनेकरूप कैसे हो सकते हैं? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि आप ब्रह्म हैं, ब्रह्म सबसे महान् और सबका पोषण करनेवाले होनेके कारणसे सर्वरूप होनेकी शक्तिवाले हो और इसी कारणसे आप(ब्रह्म) अनन्त शक्तिवाले हो. जिनकी शक्तियां अनन्त हैं, वे आप अपनी भिन्न-भिन्न शक्तिसे भिन्न-भिन्न रूपवाले होते हो. इसलिये आप भगवान्के एक होने पर भी अनेकरूप होनेमें कोई विरोध अनुचितता नहीं है. अथवा भगवान्का स्वरूप ही

अनेक रूपवाला है. इसलिये विभिन्न शक्तियोंसे तथा स्वरूपसे ही अनेकरूप होने (दोनों) पक्षमें कोई विरोध नहीं है।।२९।।

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो।।३०।।

श्लोकार्थः आप वासुदेव चित्तके अधिष्ठाता हैं. सब प्राणियोंका आश्रयभूत अहंकारके अधिष्ठाता संकर्षण भी आप ही हैं. हे हृषीकेश ! सब प्राणियोंके स्थानरूप आपको प्रणाम है. हे प्रभो ! मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिए।।३०।।

व्याख्यार्थः 'नमस्ते' इस श्लोकसे फिर प्रार्थना करनेकेलिये प्रणाम करते हैं. अक्रूर, तुम मोक्ष देनेवाले भी मुझ(भगवान्)से इतने समय तक अलग रहे तथा अपराधी हो. तुम्हें मोक्ष कैसे दे दिया जाये? इसके उत्तरमें कहते हैं कि सब प्राणिमात्र आपमें ही रह रहे हैं, आप ही सबके एकमात्र स्थान हो. इसलिये महा भूतोंमें रहे हुवे भी आपमें ही सब रह रहे हैं. अतः सर्वभूतरूप आपको नमस्कार है. मैंने जो कुछ भी किया है, उसके कारण आप ही हैं, क्योंकि आप हृषीकेश हैं, इन्द्रियोंको प्रेरणा करनेवाले हैं. इसलिये सारे अपराधकी शान्तिकेलिये आपको नमस्कार है.

हे प्रभो! शरणमें आये हुवे, मेरी रक्षा करिये, यह प्रार्थना है. फिर मैं प्रवाहमें न पडूं, इसलिये मेरी रक्षा करो. यह वाणीसे प्रार्थना की है. भगवान्के शरण जाना पहले मनसे होता है और पीछे शरीरसे होता है, यह सब पहले शरणागतिके प्रकरणमें इसी अध्यायके अट्ठाईसवें श्लोकमें निरूपण किया जा चुका है।।३०।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणके दशम स्कन्धके अध्याय ३७,
राजस–प्रमाण–अवान्तर प्रकरणके ज्ञान निरूपक चतुर्थ अध्यायकी
श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणकृत श्रीसुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ.

अध्याय ३८

श्रीकृष्णका मथुरामें प्रवेश

अष्टत्रिंशे ज्ञाततत्त्वं श्वफल्कतनयं हरिः।
विसृज्य मथुरामैक्षदुक्तो माहात्म्यबोधकः।।का.१।।

कारिकार्थः इस अड़तीसवें अध्यायमें तत्त्वज्ञानी–भगवान्के वास्तविक रूपको जाने हुए श्वफल्कके पुत्र अक्रूरजीके लिए मथुरामें चले जानेकी आज्ञा देकर भगवान्ने मथुराका अवलोकन किया. अक्रूरने कंससे जाकर भगवान्का मथुरा आना कहा और भगवान्ने धोबी आदिके वधसे अपना माहात्म्य कंसको बतलाया, इत्यादि वर्णन है।।१ ।।

गोपनार्थं परीक्षोक्ता हृदयारूढबोधनम्।
वाक्यैर्निरूपितं वर्ण्या प्रवेशे नगरी हरेः।।का.२।।

कारिकार्थः गुप्त रखनेके लिए परीक्षाके लिए वाक्य कहे गए हैं. हृदयमें दृढ़ हुए ज्ञानके वाक्यों द्वारा बतलाया है, कि नगरीमें भगवान्का प्रवेश होने पर ही नगरी वर्णन करनेके योग्य होती है।।२ ।।

व्याख्यार्थः 'गोपनार्थं' इत्यादि कारिकाके पदोंका तात्पर्य है, कि अक्रूरने जलमें देखा हुआ रूप गुप्त वाक्योंसे भगवान्को बतलाया. ऐसा बतलानेके लिए तूने जलमें क्या विचित्र बात देखी ? भगवान्ने यह पूछकर अक्रूरकी परीक्षा की है, फिर अक्रूरने अपने हृदयमें आरूढ़ हुए ज्ञान–बोधको गूढ़ वाक्योंके द्वारा निरूपण किया है.

उत्सवे तु यथा रोधः तथात्रापि चकार ह।
माहात्म्यज्ञापनार्थाय रजकं हतवान् स्वयम्।।का.३।।

कारिकार्थः उत्सवमें जिस प्रकार निरोध किया जाता है, यहां भी भगवान्ने वैसा ही निरोध किया है. अपना माहात्म्य बतानेकेलिए स्वयं भगवान्ने रजकको मारा है।।३ ।।

व्याख्यार्थः 'उत्सवे' इस कारिकामें माहात्म्य इत्यादि पदोंका भी अभिप्राय कंसको अपना माहात्म्यका ज्ञान करानेकेलिए ही भगवान्ने छूनेके अयोग्य भी धोबीका वध किया. जिससे कंसको श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं, ऐसा ज्ञान हो जाए.

अनिष्टेष्टप्रदो लोके महानिति निरूप्यते।

वायकस्य सुदाम्नश्च वरदानं यथेप्सितम्।।का.४।।

कारिकार्थ: यहां लोकमें कंसकी नगरीमें रहनेवाले अयोग्य पुरुषोंको भी उनका वाञ्छित फल देनेवाला महान् कहा जाता है. इसलिए लोगोंको भी अपना माहात्म्य ज्ञान करानेके लिए, महत्व बतलानेके लिए ही वस्त्र पहनानेवाले तथा सुदामा मालाकारको उनका चाहा हुआ वरदान देना कहा गया है।।४ ।।

प्रपञ्चविस्मृतिः सर्वा कृतानेन हि राजसे।

स्वासक्तिरग्रे वक्तव्या सामान्यं तेन सेत्स्यति।।का.५।।

उनको वरदान देकर भगवान्ने अपना माहात्म्य ज्ञान करा कर इस राजस प्रकरणमें प्रपंचका विस्मरण कराया. अपनेमें भगवान्में आसक्तिका निरूपण आगे करना है. इसलिए सामान्य-मध्यम प्रकारका निरोध सिद्ध होगा ।।५ ।।

श्रीशुक उवाच

स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः।

भूयः समहरत् कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः।।१।।

श्लोकार्थ: श्रीशुकदेवजी कहते हैं-राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान्ने इस प्रकार स्तुति कर रहे अक्रूरको जलके भीतर अपने अपूर्व शरीरका रूप दिखलाकर फिर छिपा लिया, जैसे नट अपनी कला-नाट्य दिखाकर फिर उसे छिपा लेता है।।१।।

व्याख्यार्थ: पहले सेंतीसवें अध्यायमें अक्रूरके द्वारा भगवान्की स्तुति करना कहकर उसका उपसंहारपूर्वक इस 'स्तुवतस्तस्य' श्लोकसे भगवान्के कर्त्तव्यका वर्णन करते हैं. जब अक्रूरजी स्तुति कर ही रहे थे, और उनकी स्तुति समाप्त नहीं हुई थी, तब ही भगवान्ने अपने उसरूपको अन्तर्हित कर छिपा लिया. यदि स्तुति पूरी होनेके बाद अपने श्रीअङ्गको छिपाते तो भगवान्को अक्रूरकेलिये वरदान देना होता.

स्तुति पूरी न होनेके पहले ही अपने दर्शनका अन्तर्ध्यान छिपाकर भगवान्ने यह अधूरा काम क्यों किया? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं, कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं. अपनी इच्छाके अनुसार ही बर्ताव करनेवाले हैं. इसलिये उतनीसी अधूरी स्तुतिसे ही कार्यकी सिद्धि पूर्ति मानकर अपने स्वरूपको छिपा लिया; क्योंकि अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्मका साक्षात्कार दर्शन बहुत देर समय तक नहीं होता रहा है. भगवान् इन्हें (अक्रूरको) वैकुण्ठमें तो ले ही

नहीं गये थे, किन्तु जलके भीतर ही भगवान्ने इनको ब्रह्माण्डोंसे भरपूर अपने नारायणरूपसे ही दर्शन दिये हैं.

जिस प्रकार आविर्भाव प्रकट होना कहा; उसी प्रकार तिरोभाव अन्तर्ध्यान होना कहना भी उचित है. इसलिये भगवान्ने उस रूपका तिरोभाव कर लिया. इस कथनसे यह बतलाया कि भगवान्में रहनेवाले अनेक ब्रह्माण्डोंसे भरपुर इस जगत्को, जैसे किसी वस्तुको हाथ फैला लम्बा करके खींच लेते हैं, वैसे ही खींच समेट लिया; किन्तु मायाके पर्देको हटाकर वही जलमें बिराजमान अपने स्वरूपके दर्शन भगवान्ने नहीं कराये. कारण यह है कि आप श्रीकृष्ण हैं, और इसीलिये ही सदानन्दरूपसे आपने अवतार लिया है.

भगवान् अपने हृदयमें ही रहे हुए प्रपञ्चके दर्शन उसी तरहसे कराये जैसे नट अपनेमें ही रही हुई नट विद्याको अभिनय द्वारा प्रकट करता है. भगवान् भी नट जैसे ही हैं, यह बतलानेकेलिये अक्रूरको अपने नारायण रूपके दर्शन कराये. यद्यपि नाट्यमें तो नट जिसका स्वाङ्ग लेता है, वह और नट दोनों अलग-अलग होते हैं, किन्तु यह भगवान्का नाट्य है, अद्भूत नाट्य है. इसमें भगवान् दूसरेका रूप ग्रहण करते नहीं ज्ञात होते हैं, किन्तु जो दूसरोंका रूप दिखाते हैं, वे रूप भी भगवान्के ही रूप हैं।।१।।

सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः।
कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत्।।२।।

श्लोकार्थः भगवान्को जलमें न देखकर अक्रूरजी भी जलमें से बाहर आगए और शीघ्र सन्ध्या वंदन आदि आवश्यक नित्यकर्म करके आश्चर्य चकित होकर रथ पर आगए।।२।।

व्याख्यार्थः तत्त्वज्ञानी तथा अन्तरङ्ग सेवक अक्रूरजी भी भगवान्के स्वरूपका जलमें दर्शन नहीं होना तिरोधान होना जानकर भगवान्के निकट आ गये, यह इस 'सोऽपि' श्लोकसे कहते हैं. भगवान् स्वयं अपनी इच्छासे ही तिरोहित हुए हैं, ऐसा जानकर अथवा हृदयमें भगवान्के दर्शन करके जिनके बाहर दर्शन किये हैं, उनको हृदयमें बिराजमान करके अक्रूरजी जलसे बाहर निकले. मूल श्लोकमें 'च' शब्द समुच्चय बोधक है, अर्थात् ये दोनों धर्म ही करना चाहिये. इन दोनों अर्थोंमें भी पिछला अर्थ ही अधिक उचित है, क्योंकि यदि उस बाहर दर्शन किये हुए भगवान्के स्वरूपको हृदयमें स्थापित नहीं करे तो भगवान्के

दर्शन करना व्यर्थ हो जाये, अक्रूरका अन्य भगवान्‌से भिन्न धर्ममें प्रवेश हो जाये उसका भय दूर न हो और उसकी बुद्धि विपरीत हो जाये.

इसीलिये अक्रूरजी जलसे बाहर निकलकर स्नानकी विधिका त्यागकर सज्जपूर्ण होकर, अपने किये भगवान्‌के अपराधका विचार करके, अत्यन्त आवश्य कर्मको शीघ्रतासे करके, न भी करके रथके समीप आ गये. वह मनमें आश्चर्य कर रहे थे, कि भगवान्‌ने मुझे ऐसे दुर्लभ दर्शन कैसे कराये, किन्तु फिर भी कंसकी आज्ञासे भगवान्‌को मथुरा ले जानेको तत्पर रहे. भगवान्‌के ऐसे दुर्लभ दर्शन करके भी ''दर्शनका'' मनन न करके कंसकी आज्ञाका ही ध्यान रखा।।२।।

तमपृच्छद् हृषीकेशः किं ते दृष्टमिहाद्‌भुतम्।
भूमो वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे।।३।।

श्लोकार्थः भगवान्‌ने अक्रूरसे पूछा–अक्रूर ! तुमने पृथ्वी पर, आकाशमें तथा जलके भीतर कोई अद्‌भुत बात देखी है क्या? मुझे तुम्हारे मुख मण्डल पर कुछ विस्मयके चिन्ह दीख पड़ते हैं. इसीसे ऐसा अनुमान होता है ।।३ ।।

व्याख्यार्थः उस समय भगवान्‌ने अक्रूरजीको कुछ आश्चर्यमें मग्न देखा, यह विस्मयका अंश रहना अनुचित जानकर उसे दूर करनेकेलिये भगवान्‌ने उनसे कुछ पूछा, यह इस 'तमपृच्छद्' श्लोकसे कहते हैं.

यदि भगवान्‌के पूछने पर उनसे कह देता तो दूसरेके पूछने पर दूसरा भी कह देगा, तब तो यही जाना जायेगा कि भगवान्‌का माहात्म्य उसके हृदयमें दृढ़ आरूढ़ नहीं हुआ और यदि भगवान्‌के पूछने पर नहीं कहे तो औरोंसे कहनेकी सम्भावना ही नहीं रहती है. स्वयं भगवान्‌ने ही ऐसी प्रेरणा की और दूसरोंसे कहनेकी उनकी इच्छाको रोक रखनेकेलिये प्रश्न किया, क्योंकि आप हृषीकेश ''हृषीक इन्द्रियोंके ईश प्रेरणा करनेवाले'' हैं.

भगवान्‌ने उनसे पूछा कि इस जलाशयमें तुमने क्या अद्‌भुत दृश्य देखा? अक्रूरजी इस प्रश्नका उत्तर साधारण जलका बड़ा प्रवाह देखना आदि ही देकर चुप न हो जाये. इसलिये प्रश्नमें अद्‌भुत शब्द दिया है. पहले कभी न देखा हो ऐसे अलौकिकको ही अद्‌भुत कहते हैं. पृथ्वी पर, आकाशमें अथवा जलके भीतर शब्दोंको अक्रूरके मनका निर्णय निश्चय जाननेकेलिये कहा है कि क्या यह इस देखे हुए अद्‌भुत दृश्यका आधार किसी अन्यको माना है या नहीं? अक्रूरने जिस समय देखा तब पृथ्वी पर और आकाशमें भी गन्धर्वनगर ''मृगतृष्णा के जलकी

भूमिमें नगरका बस जाना, उलटा हो जाना'' सा देखा क्या ? अथवा जलमें डूबकर देखनेसे जलमें ही देखा हो. अथवा शब्द अनादर सूचक है, अर्थात् जल, थल, आकाश कहीं भी देखा हो.

अक्रूर तुमने अवश्य देखा है. इस प्रकारके अपने अलौकिक ज्ञानको गुप्त रखने छिपानेकेलिये तुमने कहीं कुछ अद्‌भुत देखा होगा, ऐसा प्रश्न किया है, क्योंकि तुम आश्चर्यमें डूबेसे दिखाई देते हो और जगत्का तथा आगे अपने कर्त्तव्यका तुम्हें स्मरण नहीं रहा हो।।३।।

प्रसन्नो ह्यन्यथा दृष्टिरद्‌भुतार्थनिरीक्षकः।
तादृशं भगवान् दृष्ट्वा दर्शनं कल्पयेत् पुनः।।का.१।।

कारिकार्थ: शरणागत जीव यदि भगवान्के अतिरिक्त अन्यमें दृष्टि रखनेवाला(अन्यथा दृष्टि) होता है, तभी वह अद्‌भुत पदार्थोंको देखनेवाला होता है. भगवान्ने अक्रूरको अन्यथा दृष्टिवाला मानकर फिर उसके अद्‌भुत देखनेकी कल्पना की।।१ ।।

अक्रूर उवाच

अद्‌भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले।
त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः।।४।।

श्लोकार्थ: अक्रूरने कहा –भगवान् ! पृथ्वी, आकाश अथवा जल में जो कुछ अद्‌भुत है, वे सब आपमें बिराजमान हैं, क्योंकि आप विश्वरूप हैं. मैंने जब आपके विशेष रूपसे प्रत्यक्ष दर्शन कर लिए, तब कौनसी अद्‌भुत वस्तु नहीं देखी ?।।४ ।।

व्याख्यार्थ: भगवान्के माहात्म्य भी जाननेवाले अक्रूरने स्वयं देखा, उसे नहीं कहना चाहिये और भगवान्के पूछने पर तो कहना चाहिये. ऐसा समझकर इस 'अद्‌भुतानीह' श्लोकसे साधारणरूपसे अक्रूरजी उत्तर देते हैं. हे भगवान्! सबका रूपवाले तथा सबके आधार आप ही हैं. इसलिये किसी अन्य स्थानमें अद्‌भुत वस्तुके देखनेका प्रश्न अनुचित है अथवा अन्य किसी स्थान पर देखा हो तो वह स्थान भी तो आप ही में है. आपके अतिरिक्त अद्‌भुत पदार्थोंके रहनेका कोई ठिकाना नहीं हैं. आपका दर्शन भी तो अद्‌भुत ही हैं. इसलिये इन सारे अद्‌भुत पदार्थोंका आपमें होना अपवाद रहित है. सभी अद्‌भुत पदार्थोंका आपमें रहना चिह्न होना किसी भांति भी दूषित नहीं है.

इस समयमें अथवा भूमि, आकाश और जलमें जितने भी कहीं भी अद्‌भुत दृश्य हैं, वे सारेके सारे आपमें ही हैं, क्योंकि आप विश्वरूप ही ठहरे और विश्वमें ही सब विचित्र अद्‌भुत होते हैं, ''हो सकते हैं''. तब आपके दर्शन करलेनेवाले मैंने कोनेसे अद्‌भुत दृश्य न देखलिये अर्थात् सारे ही देख लिये. आपके दर्शन तो कोई कर ही नहीं सकता और आपके अतिरिक्त किसी अन्य दूसरेमें अद्‌भुतता है ही नहीं; जो किसीने देखी है आप भगवान् तो सबसे ही अदृश्य हैं ''किसीसे भी नहीं देखे जा सकते हैं''. तात्पर्य यह है कि उन किसीसे भी नहीं देखे हुए भगवान्‌के दर्शन करनेवाले मैंने तो वे पहले कहे हुए सारे ही अद्‌भुतोंको देख लिया हैं, क्योंकि सारे अद्‌भुतोंका आधार ''भगवान्'' के देख लेने पर कोई अद्‌भुत शेष नहीं रहता है. इसलिये मैंने अद्‌भुत जैसा देखा है, वैसा अनुमान करना उचित नहीं है।।४।।

यत्राद्‌भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले।
तं त्वानुपश्यतो ब्रह्मन् किं मेऽदृष्टमिहाद्‌भुतम्।।५।।

श्लोकार्थ: हे परमेश्वर ! पृथ्वी, आकाश अथवा जलमें होनेवाली सारी अद्‌भुत बातोंके एकमात्र आप ही आधार हैं. सर्वाधार उन आपके दर्शन करनेवाले, मैंने अब कौनसा अद्‌भुत दृश्य नहीं देखा? अर्थात् सारे ही अद्‌भुत दृश्य देख चुका हूं।।५।।

व्याख्यार्थ: अक्रूर ये सब बातें उपचार सभ्यतासे कह रहा है, ऐसा मानकर भगवान् कदाचित् फिर पूछेंगे, ऐसी शङ्का करके यह 'यत्राद्‌भुतानि' श्लोक कहते हैं. लोग जहां भी अद्‌भुत दृश्य देखते हैं, उन सभी स्थानोंमें वस्तुतः अद्‌भुतता आपमें ही हैं. इसलिये जो कोई भी अद्‌भुत देखनेवाले लोग आपमें ही अद्‌भुत 'दृश्यों'को देखते हैं, तब फिर आपके दर्शन करलेनेवाले मेरा कौन सा अद्‌भुत, बिना देखा है? इसलिये वहां जलमें भी मैंने अद्‌भुत आपका ही दर्शन किया तथा आपमें ही सारा अद्‌भुतको देखा. आप ही अद्‌भुत हैं, क्योंकि आप ही सबके आधार हैं. इसलिये आधार सम्बन्धी प्रश्न करना ही अनुचित है. उन आप भगवान्‌का श्लोकमें 'तं त्वाम्' (उन आपको) पदोंसे आधाररूपसे निर्देश करते हैं और इस सर्वाधारताका समर्थन 'ब्रह्मन्' इस सम्बोधनसे प्रदर्शित किया है।।५।।

इत्युक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः।
मथुरामनयद् रामं कृष्णं चैव दिनात्यये।।६।।

श्लोकार्थः श्रीशुकदेवजी कहते हैं–यों कहकर गान्दिनीके पुत्र अक्रूरने रथको हांक दिया और सांयकाल होते–होते श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको मथुरामें लिवा लाए।।६।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार परोक्ष गूढरीतिसे उत्तर देकर अक्रूरने भगवान्की इच्छा जानकर रथ आगे हांका, यह इस 'इत्युक्त्वा' श्लोकसे कहते हैं. भगवान्के प्रश्नकी अवहेलना नहीं की जा सकती, इसलिये 'भगवान्के' प्रश्नका उत्तर देनेके बाद रथ आगे हांका. अक्रूरमें ऐसी क्या उत्तमता थी, कि वह इस तरह भगवान्की इच्छा जानकर उन्हें अच्छे, प्रकारसे प्रसन्न कर सके? और भगवान्को ही आगे पधारनेका ऐसा कौन काम था? क्योंकि वह काम तो तुच्छ था, ऐसी शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि वह 'अक्रूर' गान्दिनीका पुत्र है. गायोंके दान करनेसे उत्पन्न हुई गान्दिनी गाय, जैसी ही होती है और उसका पुत्र, भगवान्को मथुरा पहुंचानेवाला बैल, क्योंकि राम 'रति'(रमण) करनेवाले और 'श्रीकृष्ण' उस रतिका 'फल' सदानन्द हैं, यदि वे नगरीमें निवास कर लेते हैं तो नगरीके सारे निवासियोंको सदा ही सुखकी प्राप्ति होगी.

दिनके अन्तमें अर्थात् सायंकालमें मथुरा(भगवान्को) लाया, क्योंकि सायंकाल गोधूलि(जिस समय गायें बनमेंसे ग्राममें आती है) वेला नगरीमें प्रवेश करनेका उत्तम मुहूर्त होता है. मार्गमें रहनेवाले 'लोगों'को भी भगवान्के दर्शनकेलिये मथुरा लेते आयें. भगवान्की इच्छासे ही सन्ध्या काल भी पिछला प्रहर हो जायेगा, और मथुरा पहुंचनेके बाद उस दिनका कर्त्तव्य कार्य पूरा हो सके, इतना समय भी लेना उचित है. इतने समय पहले न पहुंचते तो दिनके अन्तमें कहना व्यर्थ बाधित हो जायेगा, इसलिये गोधूलिवेलामें ही मथुरा पहुंच गये.

अथवा दिनके अन्तका आरम्भ होते–होते अर्थात् मध्याह्न पीछे मथुरा पहुंच गये, क्योंकि मध्याह्नके बीत जाने पर दिनका अन्त होना ही गिना जाता है. अथवा मथुरा निवासियोंको दुःख देनेवाले दिनका अन्त अथवा स्वयं 'अक्रूरको' दुःख देनेवाले दिनका अन्त होते समय अक्रूरजी भगवान्को मथुरा ले आये।।६।।

मार्गे ग्रामजना राजन् तत्र तत्रोपसङ्गताः।
वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः।।७।।

श्लोकार्थः मार्गमें जाते समय श्रीकृष्ण और बलदेव जिस गांवके निकट पहुंचते थे, उस गांवके निवासी लोग उनके पास आकर उनके अनूप रूपको

देखकर प्रीतिपूर्वक एकटक उन्हें निहारते ही रह जाते थे. दोनों भाईयोंके मनोहर वेषको देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।।७।।

व्याख्यार्थ: मार्गमें मन्दगतिसे पधारनेवाले भगवान्ने सबको आनन्द दिया, यह 'मार्गे' इस श्लोकसे कहते हैं. बीचमें जो गांव थे और उनके रहनेवाले सभी लोग जो मार्गमें थे, वे सभी एक टकटकीसे भगवान्(वसुदेवके पुत्र) कृष्ण, बलरामको देखते ही रहे. भक्त परीक्षित्को ऐसा अनुभव है, इस बातको सूचित करनेकेलिये श्लोकमें 'राजन्' यह सम्बोधन दिया है. स्थान-स्थान पर अर्थात् वसुदेव पुत्र उन दोनोंके दर्शन करनेमें किसी स्थानका गौरव महत्त्व नहीं था. वाञ्छित और अवाञ्छित देशस्थानमें वे सब भगवान्के समीप आ गये. ये दोनों वसुदेवके पुत्र हैं, यह देखकर उनके सम्बन्ध और स्वरूपसे वे प्रीतिपूर्वक उन दोनों भाईयोंको निहारते रहे और उन्होंने अपना सर्वस्व भगवान्को समर्पित करके वापस नहीं लिया. इस कथनसे मार्गमें रहनेवाले लोगोंका सामान्यरीतिसे निरोध सिद्धिका निरूपण किया है. 'प्रीताः' प्रीतिवाले शब्दसे दृष्टिको भगवान्के श्री अङ्गके अवलोकनमें लगाकर वापस न खींचनेमें कारण कहा है. दृष्टिके लगाने का फल प्रेम ही हुआ. इसलिये वे उस प्रीतिरूप फलवाली दृष्टिको वापस कैसे खींच हटा लेते? लोग सुखकेलिये इन्द्रियोंको रखते हैं और सुख मिल जानेके बाद इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति ही नहीं होती है. श्रीकृष्ण और बलरामजीको देखकर उन लोगोंकी अधिकतर ये 'परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं', ऐसी बुद्धि नहीं हुई, इसीलिये 'वसुदेवपुत्र' ऐसा कहा है।।७।।

तावद् व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः।
पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे।।८।।

श्लोकार्थ: इस बीचमें नन्दादि व्रजवासी गोपजन पहले ही पहुंच चुके थे. वे नगरीके बगीचा(उपवन)में ठहरकर, कृष्ण-बलदेवकी आनेकी राह देख रहे थे।।८।।

व्याख्यार्थ: भगवान्के मथुरा पहुंचनेके पहले ही नन्द आदि वहां पहुंच गये और भगवान् पधारें तब आगे चलेंगे, इस विचारसे उनकी राह ही देखते रहे. यह इस 'तावद्' श्लोकसे कहते हैं. वे व्रजवासी थे, इसलिये खुले स्थानमें ही रहने योग्य थे और इसीलिये वे भगवान्के पहले ही मथुरा पहुंच गये. अनेक गोपबालक जो भगवान्के(मित्र) सखा थे, भगवान्के साथ ही थे. केवल वयोवृद्ध नन्द आदि

ही आगे गये थे और वे भी मथुराके निकट अनेक प्रकारके फलोंके कारण प्रसिद्ध बगीचेके पास जाकर खड़े ही रहे. उन्होंने भी वहां अपने रहने योग्य साधन एकत्रित नहीं किये थे. इस कथनसे यह सूचित किया है, कि व्यवहारमें भी भगवान् ही मुख्य थे।।८।।

तान् समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव।।९।।

श्लोकार्थः भगवान् जगदीश्वर श्रीकृष्ण भी उन लोगोंसे आकर मिल गये. इसके अनन्तर श्रीकृष्णने नम्रभावसे खड़े हुए अक्रूरका हाथ अपने हाथमें लेकर पकड़कर हंसते हुए कहा।।९।।

व्याख्यार्थः तब भगवान्ने अक्रूरको मथुरामें जानेकी आज्ञा दी, जो 'तान्' इस श्लोकसे कहते हैं.

लोक व्यवहारमें अक्रूरजी भगवान्के काका होते हैं. इसलिये उनके साथ रहने पर स्वच्छन्दरीतिसे लीला करना उचित नहीं, इसलिये तथा बहुत आग्रह करने पर भी भगवान् अक्रूरके साथ-साथ नहीं पधारे, ऐसी बातको प्रसिद्ध करनेकेलिये भी भगवान् उन नन्द आदि गोपोंके पास आकर अक्रूरजीसे बोले भगवान् निःशङ्क हैं, उन्हें यह शङ्का जरा भी नहीं थी कि बाहर रहने पर कंस कुछ अनिष्ट कर देगा, क्योंकि सारे ही जगत्के स्वामी नियन्ता तो आप स्वयं ही हैं. फिर भी अपने ऐश्वर्यको गुप्त रखकर मित्रताके तथा जातीय सम्बन्धको प्रकट करनेकेलिये भगवान् अपने श्रीहस्तसे विनीत अक्रूरका हाथ पकड़कर हंसते-हंसते अक्रूरको मोहित करते हुए और उसको पहलेकी यमुनाजीके जलमें अद्भुत दर्शनकी स्थितिमें लाकर यों अगले दशवें श्लोकमें कहे प्रकारसे कहने लगे. भगवान्के वचनामृतमें चित्त दृढ़तापूर्वक लगनेकेलिये भगवान्के वाक्योंको अलग दशवें श्लोकमें कहा गया है।।९।।

भवान् प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम्।
वयं त्विहावमुच्याथ तावत् द्रक्ष्यामहे पुरीम्।।१०।।

श्लोकार्थः आप रथ लेकर पहले नगरमें चलिये और अपने घरमें विश्राम करिये. हम लोग थोड़ी देर तक यहीं ठहरेंगे और फिर पुरीकी शोभा देखेंगे।।१०।।

व्याख्यार्थः 'भवान्' इस श्लोकसे भगवान्के वचनका वर्णन करते हैं. अक्रूर और श्रीकृष्णके सम्बन्धको जान, कंस अक्रूरको बाध्य करे, इसलिये

परस्पर दोनोंमें कोई सम्बन्ध नहीं हैं, ऐसा बतलानेकेलिये 'आप पहले जाइये', यों कहा है. हमारे मथुरामें प्रवेश करनेके पहले आप जाइये. यदि आप पहले नहीं जाओगे, तो कंस तुम्हारे किये हुए कामको भी धोबी आदि भावी उपद्रवके कारण नहीं किया हुआ मान लेगा. फिर आप अपने घर भी जाओ. यदि घर नहीं जाओगे तो कंस हमें रोकनेकेलिये आपको ही भेज देगा और यह अनुचित होगा. जैसा आप(अक्रूर)का अपराध न माना जावे, वैसे हम यहां ही विश्राम करके और फिर 'अथ' अर्थात् भिन्न रीतिसे आरम्भ करके कंस बुलावेगा, तब कंसने पुरीकी सजावट व्यवस्था ठीक-ठीक की है या नहीं, पुरीको देखेंगे।।१०।।

अक्रूर उवाच

नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो।
त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल।।११।।

श्लोकार्थः अक्रूरने कहा-हे प्रभो! आप दोनोंको यहां छोड़कर मैं अकेला पुरीमें नहीं जाऊंगा. हे भक्तों पर प्रेम रखनेवाले नाथ! मैं आपका भक्त हूं, मुझे मत छोड़िये ।।११।।

व्याख्यार्थः भगवान्के बीचमें असम्बन्धीका व्यवहार दिखलानेके कारण उदासीनभावको सहन नहीं करसकनेवाले अक्रूरजी 'नाहम्' इस श्लोकसे आरम्भ करके छः श्लोकोंसे भगवान्की प्रार्थना किसी प्रकार करते हैं. भगवान्के ऐश्वर्य, वीर्य आदि छः गुणोंका वर्णन करना चाहिये, इसलिये छः श्लोक हैं. अक्रूर और भगवान्के सगे-सम्बन्धीको जानकर, कंस अक्रूरके साथ दुर्व्यवहार करे, इस अभिप्रायसे सम्बन्धका अभाव कहा गया है. अक्रूरने यह विचारा कि भगवान् मुझे(अक्रूरको) भी कंसकी तरह पराया मानकर दूर करते हैं. यदि ऐसा हो तो भगवान् भले ही स्वेच्छानुसार स्वच्छन्द लीला करें, परन्तु मुझे भी यहीं कहीं रहना चाहिये. भगवान्के बिना नगरीमें अथवा घरमें प्रवेश नहीं करना चाहिये. इसीलिये वैराग्यका नियम है कि जहां भगवान्की प्राप्ति न हो, ऐसे घर आदि त्याग देने चाहिये. इसको ''ऋषि जानकर नगरमें प्रवेश न करें. जो प्रवेश करें, तो दो मिलकर प्रवेश करें,'' इस श्रुतिके अनुसार मैं मधु शब्दब्रह्म आप दोनोंके बिना मधुदैत्यवाली(मधुदैत्यकी सम्बन्धिनी) मथुरामें प्रवेश नहीं करूंगा.

आपको कोई भय तो है ही नहीं, क्योंकि आप तो प्रभु हैं. सर्वशक्तिमान् हैं. इसलिये यहां बगीचेसे आगे नहीं पधारनेका कारण केवल मेरा त्याग करना ही

है. हे प्रभो! भक्तवत्सल! मेरा त्याग करना(आपको) उचित नहीं है, क्योंकि मैं तो भक्त हूं और भक्त भी आपका ही हूं. स्वामीके त्याग करने पर सेवकोंका कोई रक्षक नहीं है. कार्यविशेषकेलिये त्याग भी कर देना पड़ता है, ऐसी शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि आप तो भक्तवत्सल हैं. भक्तों पर आपका प्रेम रहता है. इसलिये भक्तका किसी समयमें भी त्याग करना उचित नहीं है।।११।।

आगच्छ याम गेहान् नः सनाथान् कुर्वधोक्षज।
सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम।।१२।।

श्लोकार्थः हे अधोक्षज! हे परम मित्र! आप अपने बड़े भाई बलदेवजी, गोप-ग्वाल और मित्रोंके साथ हमारे घर पधारो, और हम लोगोंको सनाथ करो।।१२।।

व्याख्यार्थः नगरमें आपके विराजनेका स्थान न हो? ऐसी शङ्काके समाधानमें 'आगच्छ' यह श्लोक कहते हैं. आप सबको साथ लेकर पधारो. घर सबकेलिये समान ही है. इसलिये 'याम', हम सब चलें. सबका समानरीतिसे घर चलना कहा है. हमारे घरोंको चलिये. इस कथनका अभिप्राय यह है कि हम बहुत भाई हैं और अनेक हैं. इसलिये स्थानकी कमी(संकोच) नहीं है.

घर जानेका कोई कारण नहीं होनेसे यहां बगीचेमें ठहरना ही उचित है? इसलिये कहते हैं कि नाथवाले कीजिये, क्योंकि धनी(स्वामी) अपने ही घर रहता है, दूसरोंके घर नहीं रहता. यदि आप हमारे घर नहीं रहोगे तो हमारे नाथ हो, यह कैसे जाना जायेगा? तब तो हम अनाथ ही हैं. इसलिये हमारे घर पर पधारकर हमें सनाथ करें.

ऐसा करने(घर चलने) पर तेरे(अक्रूरके) साथ भगवान्का सम्बन्ध जानकर, कंस तेरा(अक्रूर)का कुछ अपराध समझेगा. इस बगीचेमें ही ठहरना ठीक है, ऐसी शङ्काके समाधानार्थ कहते हैं कि आप(भगवान्) तो अधोक्षज हैं. आप तो इन्द्रियजन्य ज्ञानसे बहुत ऊंचे(दूर) हैं. इन्दियां तो आप तक पहुंच नहीं सकती हैं, इसलिये आप किसी जीवके ज्ञान(विषय) नहीं. इसी तरहसे क्रियाके विषय भी आप नहीं हैं, क्योंकि स्वरूपको जानकर ही प्रेम अथवा विरोध किया जाता है. क्रिया तो ज्ञान होनेके बादकी वस्तु है. ''भगवान्को तो जाननेवाला नहीं जानता और नहीं जाननेवाला जानता है'' इस श्रुतिसे भगवान्की ज्ञानशक्तिका निरूपण किया है.

आप अकेले ही न पधारें, किन्तु बड़े भाई, बलदेवजीके साथ पधारें. बलदेवजी बलातिशयसे निडर हैं और माननीय हैं. गोपालोंका तो गायों, पशुओंकी रक्षा करनेका धर्म होनेसे वे चतुर नहीं है. इसलिये उन्हें(गोपजनोंको) तो भयकी शङ्का ही नहीं है. आप भगवान्के रहने पर किसीको भी कोई भय नहीं है. इसलिये मित्रों, गोपालों, नन्द आदि बान्धवों, सारे सेवकों और गाड़े, बैलोंके सहित ही पधारें, क्योंकि आप सुहृत्तम(अत्यन्त प्रिय) हैं, आपके सम्बन्धी सुहृत्तर और अन्य सब सेवक आदि सुहृद हैं, इसलिये सबको ही साथ लेकर घर पधारिये।।१२।।

पुनीहि पादरजसा गृहान् नो गृहमेधिनाम्।
यच्छौचेनानुतृप्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः।।१३।।

श्लोकार्थः हे प्रभो ! अपने चरणोंकी रजसे हम गृहस्थोंके घरोंको पवित्र कीजिए. आपके चरणोदकसे(गङ्गाजलसे) अग्निगण सहित पितृगण और देवगण तृप्त हो जाते हैं।।१३।।

व्याख्यार्थः 'पुनीहि' इस श्लोकसे यशोरूप भगवान्का निरूपण करते हैं. यदि नाथवाला ही होता है तो वचनसे भी सनाथ हो सकता है, घर पर जानेकी क्या आवश्यकता है? इस शङ्काकी निवृत्ति इस श्लोकसे होती हैं, क्योंकि घर ले जाकर सबोंके घरोंको पवित्र कराना है. चरणकी रजके द्वारा भगवदीयपन–दासभाव प्राप्त होता है और परम शुद्धतासे ही भगवदीय होता है, इसलिये चरणकी रजसे घरोंको पवित्र करना चाहिये. चरणोंकी रजको यहांसे घर ले जावे तो थोड़ी सी ही रज वहां ले जाई जा सकती और यदि आप ही पधार चले तो सारी ही पृथ्वी आपके चरणकी धूलि हो जायेगी और जिससे हम सबके घर पवित्र हो जायेंगे.

तुम और तुम्हारे घर तो भगवदीय ही हैं, फिर उनको पवित्र करनेकी क्या आवश्यकता है? इस शङ्काके समाधानार्थ कहते हैं कि हम लोग गृहस्थी (गृहमेधी) हैं. हमारे घरोंमें मेधा(हिंसा) नित्य होती है. इसलिये ज्ञानमें अथवा भक्त कोई भी गृहस्थ, काल–गुणोंसे लिप्त रहता है. ऐसी दशामें घरोंके पापरहित होनेसे ही निस्तार(मोक्ष) है.

हमारे घर पर आप(भगवान्)के पधारने पर केवल हम घरमें रहनेवाले लोगोंको ही लाभ नहीं होगा, किन्तु हमारे पितरोंको भी परम आनन्द प्राप्त होगा,

हमारे पितर भी तृप्त हो जायेंगे. भगवान्के चरणोंके प्रक्षालनके जल गङ्गासे, पितर, तीनों अग्नि और सारे देवगण पवित्र(तृप्त) हो जाते हैं, यहां तक कि ब्रह्मदण्डित हुए भी मुक्त हो जाते हैं. इसलिये आपका चरणोदक पितरोंकेलिये अत्यन्त आनन्द देनेवाला होता है. अग्नि(कव्य-पितरों)केलिये दी हुई बलिको ले जाकर पितरोंको कहते हैं, जिसके द्वारा पितर तृप्त(प्रसन्न) होते हैं और इसलिये पितरोंका अग्निके भीतर समावेश माना जाता है. अग्निमें कव्यका होम आहुति किया जाये तब पितर प्रसन्न होते हैं. अग्निमें ही आहुति दी जाती है, इसलिये अग्निको ही यज्ञ कहते हैं. अग्निमें रहनेवाले देवोंकी प्रसन्नता हो, तभी अग्नि प्रसन्न होती है. इसी कारणसे अग्नि, देवगण और पितरोंको, तीनोंकी तृप्ति (प्रसन्नता) कही गई है।।१३।।

अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीत् श्लोक्यो बलिर्महान्।
ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या।।१४।।

श्लोकार्थः हे भगवन्! आपके परम दुर्लभ दोनों चरणोंका प्रक्षालन करके राजा बलिको पवित्र यश, अतुल ऐश्वर्य और अनन्य भक्तोंकी सी गति मिली है।।१४।।

व्याख्यार्थः इस श्लोकसे भगवान्के 'श्री'धर्मका वर्णनपूर्वक चरण रजका माहात्म्य निरूपण करते हैं. चरणोंको धोनेके कर्मसे चरणोदकका निर्माण करके बलिने, कीर्ति, ऐश्वर्य और भक्ति अथवा मोक्ष, इन तीनोंको प्राप्त कर लिया. वह प्रशंसाका पात्र भी हो गया और सारे लोकोंमें प्रसिद्ध महापुरुष भी हो गया. उसको महापुरुषोंमें सदा रहनेवाले सत्य, शौच आदि सभी गुण प्राप्त हो गये, इन्द्रका ऐश्वर्य मिल गया और उससे भी अधिक मिल गया कि भगवान् भी उसके वशीभूत हो गये. अनन्य भक्तोंको प्राप्त होनेवाली गति स्वतन्त्र प्रेमलक्षणा भक्ति अथवा सायुज्य अर्थात् सब लोकोंमें प्रसिद्ध अण्वी गति भी उसको मिल गई।।१४।।

आपस्तेऽङ्घ्र्यवनेनिज्य त्रीन् लोकान् शुचयोऽपुनन्।
शिरसाधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः।।१५।।

श्लोकार्थः आपके चरणोदककी महिमा अपार है. तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले उस जल(गङ्गा)को शिवजी अपने मस्तक पर धारण किए हुए हैं. ब्रह्मशापसे भस्म हुए महाराज सगरके सांठहजार पुत्र, उसी गङ्गाजलके प्रतापसे

स्वर्गलोकमें चले गए।।१५।।

व्याख्यार्थ: भगवान्के गुण अथवा वीर्यका निरूपण करते हुए,(उनके) चरणोदककी प्रशंसा इस 'आपस्ते' श्लोकसे करते हैं. त्रिविक्रम(वामनावतारमें तीन पैर धारण करनेवाले) आपके चरणोंके प्रक्षालनका जल स्वर्गको मन्दाकिनी, भूमिको गङ्गा और पातालको भोगवती नामसे पवित्र करनेवाला हो रहा है. नखोंके धोवनका जल तो अशुद्ध होता है, किन्तु यह तो परम पवित्र जल है. भगवान्का चरणोदक केवल पवित्र करनेवाला ही नहीं है, किन्तु आधिदैविक भावको भी सिद्ध कर देनेवाला है. इसीलिये शर्व(महादेवजी) अपने मस्तक पर धारण करके ''शिवः शिवोऽभूत्''(३।२८।२२) शिवजी साक्षात् शिवरूप हो गये, इस प्रकार शिवजीने गङ्गाको मस्तक पर धारण करके आधिदैविकता प्राप्त की है. 'शिवोऽभूत्' इस श्लोककी सुबोधिनीमें फलका विस्तारपूर्वक निरूपण किया है.

आपके चरणोदक गङ्गाने यहां पृथ्वी पर आकर भी कपिलदेवजीके शापसे भस्म हुए सगर राजाके सांठहजार पुत्रोंको स्वर्गमें भेज दिया. सगरके वे पुत्र प्रसिद्ध दुष्ट थे और इन्द्र उन्हें नष्ट करनेकेलिये प्रयत्न भी कर रहा था, तो भी भगवान्के चरणोदकने उन दुष्टों तथा भस्मीभूतोंको भी इन्द्रके समान कर दिया।।१५।।

देवदेव! जगन्नाथ! पुण्यश्रवणकीर्तन!।
यदूत्तमोत्तमश्लोक! नारायण! नमोस्तु ते।।१६।।

श्लोकार्थ: हे देवोंके देव! हे जगत्के स्वामी ! आपकी चर्चा करने और सुननेसे पुण्य होता है. हे यदुश्रेष्ठ! हे उत्तमश्लोक नारायण ! आपको प्रणाम है।।१६।।

व्याख्यार्थ: 'देवदेव' इस श्लोकमें भगवान्के ऐश्वर्यका कीर्तन करते हुए अक्रूरजी भगवान्को नमस्कार करते हैं. भगवान्का ऐश्वर्य:

१.उपासना करने योग्य,
२.प्रभुरूप,
३.दोषोंका निवारण करनेवाला,
४.गुणोंको प्राप्त कराने(देने) वाला,
५.श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा गाया गया और
६.जगत्का कारण,

इन रूपोंसे छः प्रकारका है. उसका क्रमसे छः विशेषणों द्वारा वर्णन करते हैं. १.हे देवोंके देव! उपासना करनेके योग्य देवगण भी आपकी उपासना करते हैं. भगवान् उपास्योंके भी उपास्य हैं. २.हे जगन्नाथ! आप जगत्के किसी एक भागके नाथ नहीं हो, किन्तु सारे ही जगत्के ईश्वर हो. ३.भगवान्का श्रवण कीर्तन लोगोंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, पुण्यवाला है. ४.यदूत्तम! पिता ययातिकी आज्ञा न माननेवाला, पिताका विरोधी तथा पिताका(अकर्तोच्चरितं पितुः ९।१८।४४) मलमूत्र समान भी यदु, जिसके दोष किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकते थे, को(यदुकुलमें अवतार लेकर) गुणोंवाला बना दिया. इसलिये आप यदुओंमें उत्तम है. ५.हे उत्तमश्लोक! व्यास आदि उत्तम पुरुष भी आपके गुणोंका गान (स्तुति) करते हैं. ६.हे नारायण! आप सारे जगत्की रचना करनेवाले हैं. इस षड्विधि प्रकारके ऐश्वर्य, गुणोंसे पूर्ण भगवान् आपको नमस्कार है. 'नमोऽस्तु' नमस्कार हो, इस प्रकार नमस्कारकी प्रार्थनासे सदा(नित्य)का नमस्कार करना कहा गया है।।१६।।

श्रीभगवानुवाच

आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः।

यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम्।।१७।।

श्लोकार्थः श्रीकृष्णने कहा चाचाजी ! मैं यदुवंशके वैरी कंसको मारकर आपके घर बलदेवजीके साथ अवश्य आऊंगा और अपने मित्रोंको प्रिय करूंगा।।१७।।

व्याख्यार्थः भगवान् सर्वदा कार्य करनेवाले हैं और उनके किये काममें किसी प्रकारका विघ्न नहीं होता है. इसलिये भगवान्ने दशवें श्लोकमें अभी कहा था कि हम इतने समयमें मथुरापुरीको देख लेंगे और अक्रूरजीने उसी समय अपने घर पधारनेकी भगवान्से प्रार्थना करने पर अन्य समय पर(उनके घर) आनेकेलिये अक्रूरजीसे कहा, यह 'आयास्ये' श्लोकसे कहा है.

उदासीनताका उत्तर भगवान्ने नहीं दिया, ऐसा प्रदर्शित करनेकेलिये भगवान् बोले, कि मैं तुम्हारे घर पर इन सब साथियोंको छोड़कर केवल बलरामजीके साथ आऊंगा. सभीको साथ लेकर आनेकी तुम्हारी प्रार्थनाको पूरी करनेकेलिये उद्धवजीको भी साथ ले आऊंगा, यह अभिप्राय है. बलभद्रजीको साथ लेकर अभी पधारो, ऐसा अक्रूरजीने कहा, तो भगवान् कहते हैं कि सारे ही

यादवोंके साथ वैर करनेवाले कंसको मार करके आऊंगा. कंसका वध कर दिया हो मानो, इस प्रकारके कहनेका भाव यह है कि उसके मार देनेमें तो कोई भी सन्देह है ही नहीं. तदनन्तर जो(अक्रूरजी) तुम प्रार्थना नहीं भी करते, तब भी मैं तुम्हारे घर पर आऊंगा और अपने वहांके मित्रोंका तथा पाण्डवोंका हित करूंगा. इस कथनसे भगवान्ने यह भी सूचित किया कि पाण्डवोंको सुखी करनेकेलिये तुम्हें उनके पास भेजूंगा, इसलिये आऊंगा।।१७।।

श्रीशुक उवाच

एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव।
पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ।।१८।।

श्लोकार्थः श्रीशुकदेवजी कहते हैं, राजन् ! भगवान्के इस प्रकारके वचन सुनकर अक्रूरजीने उदाससे होकर नगरीमें प्रवेश किया और पहले कंसके पास जाकर कृष्ण–बलदेव सहित नन्द आदि गोपोंके मथुरा आनेके समाचार कहे. तदनन्तर वे अपने घरको गए।।१८।।

व्याख्यार्थः इस प्रकारसे भगवान्के पधारनेका निश्चय करके अक्रूरजी भगवान्की आज्ञासे अपने घर पर गये, यह 'एवमुक्तो' श्लोकसे कहते हैं. जो नहीं रोकी जा सके, ऐसी सामर्थ्यवाले भगवान्की यों आज्ञा पाकर भगवान्को अभी अपने घर पर पधारनेके मनोरथमें असफल हुए. अक्रूरजी निरास होकर नगरीमें चले गये. आगे भविष्यमें भगवान्का कार्य आज्ञा पालन वे करेंगे, ऐसा जानकर वे उदास जैसे हो, मथुरामें चले गये. वहां जाकर उन्होंने पहले कंससे श्रीकृष्णको मथुरा ले आनारूप अपने सिद्धकामकी सूचना दी और फिर वे शीघ्र ही अपने घरको चले गये।।१८।।

अथापराह्णे भगवान् कृष्णः सङ्कर्षणान्वितः।
मथुरां प्राविशत् गौपैर्दिदृक्षुः परिवारितः।।१९।।

श्लोकार्थः इधर दिनके पिछले भागमें श्रीकृष्णजी बलदेवजी और गोपजनोंको साथ लेकर मथुरापुरीकी सैर करनेकेलिए, पुरीको देखनेकी इच्छासे पधारे।।१९।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार पहले सम्बन्धी, वसुदेव आदिका निरोध करना प्रदर्शित करके प्रथम तो बातचीतके द्वारा ही मथुरावासियोंका निरोध कराकर स्वरूपसे भी उनको निरोध सिद्ध करानेकेलिये भगवान्ने स्वयं मथुरा नगरीको

देखा, यह इस 'अथापराह्णे' श्लोकमें कहते हैं. 'अथ' यह भिन्न प्रक्रम दूसरे आरम्भको सूचित करता है. अर्थात् अब यहां इसके आगे दूसरे प्रकरणका आरम्भ(किया जाता है) होता है.

अपने सखारूप गोपालोंके साथ दिनके तीसरे भाग(अपराह्ण)में अपने ऐश्वर्य, वीर्य आदि सारे धर्मोंको प्रकट करके भगवान् श्रीकृष्ण, जिनका कंसवधकेलिये ही अवतार है और कंसवधकेलिये प्रयत्न करना चाहिये, इसलिये बलदेवजीको साथ लेकर मथुरा पधारे. क्योंकि यदि सङ्कर्षणजीको साथमें न लेना होता तो दोनोंका अवतार नहीं होता. गोपोंके साथ इतने समय तक क्रीड़ा की है, अपनी निर्भयता, गोपोंको अपना माहात्म्य आदि प्रदर्शित करने तथा अपनी शोभाकेलिये भी गोपजनोंके बीचमें विराजमान् भगवान्ने अपनी नगरी मथुरामें प्रवेश किया. समीप अर्थमें सप्तमी विभक्तिका प्रयोग होता है. श्लोकमें 'मथुरां' द्वितीया विभक्ति 'दिदृक्षु' 'सन्नन्त' ''दृश्'' धातुके योगसे की है. तात्पर्य यह है कि भगवान् मथुरानगरीके द्वारके निकट पधारे।।१९।।

लेख: 'अथापराह्णे' इस श्लोककी व्याख्यामें 'पूर्वसम्बन्धिनाम्' इत्यादि पदोंका अभिप्राय यह है कि प्रथम सम्बन्धी वसुदेव आदिके सम्बन्धी अक्रूर और पाण्डव आदिका निरोध, जो अक्रूरको भेजकर पाण्डवोंका मानसिक निरोध कहा है.

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम्।
ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम्।।२०।।

श्लोकार्थ: भगवान् श्रीकृष्णने मथुरा नगरीको देखा, जिसमें स्फटिक मणी(बिल्लोर)के बने हुए ऊंचे दरवाजे, सोनेके बड़े-बड़े किंवाड़ और तोरण, ताम्बे-पीतलके भण्डार आदि थे. जिसके चारों ओर एक विशाल गहरी खाई है, जिससे शत्रु उस पर एका-एक आक्रमण नहीं कर सकता था. स्थान-स्थान पर सुन्दर बाग बगीचोंसे अत्यन्त सुशोभित हो रही थी।।२०।।

व्याख्यार्थ: तदनन्तर भगवान्ने नगरीको देखा, यह इस 'ददर्श' श्लोकसे करते हैं. भगवान्के द्वारा देखी हुई चारों पुरुषार्थोंसे भरपूर मथुरानगरीका चार श्लोकोंसे वर्णन करते हैं.

स्वरूपतो द्रव्यतश्च वैचित्येणाप्यनुत्तमां।
अलङ्कृतां साम्प्रतं तु भगवद्दर्शनार्थिभि:।।का.७।।

कारिकार्थः १. स्वरूपसे २. द्रव्यसे ३. विचित्रताके कारणसे भी सबसे उत्तम और ४. इस समय तो भगवान्के दर्शन करना चाहनेवालोंके द्वारा सजाई गई नगरीको भगवान्ने देखा।।७।।

व्याख्यार्थः भगवान्ने उस नगरीको दृष्टिसे ही सन्तुष्ट कर दिया. स्फटिक मणियोंके बने हुए ऊंचे मन्दिरोंके और शहरके फाटकों दरवाजोंमें सुवर्णके मोटे-मोटे किंवाड़ों तथा तोरणों, ताम्बे-पीतलके कोठे, भण्डारोंवाली नगरीका भगवान्ने अवलोकन किया. उसके चारों तरफ किसीसे भी नहीं लान्घी जा सके, ऐसी बड़ी गहरी तथा विशाल खाई थी. यमुनाजी तो दूर थीं, इस कारणसे खाई होनेमें कोई अड़चन नहीं थीं. वह नगरी भांति-भांतिके पुष्पोंवाले बगीचोंसे और अनेक प्रकारके फलोंसे लदे हुए उपवनों वाटिकाओंसे सुशोभित हो रही थी।।२०।।

द्वारप्राकारपरिखाफलपुष्पैः सुशोभिता।
पञ्चधा नगरी रम्या सालङ्कारा च रूपिता।।का.८।।

कारिकार्थः १. दरवाजों, २. कोठों, ३. खाइयों, ४. फलों और ५. पुष्पों से अत्यन्त शोभायुक्त, सुन्दर और अलंकारोंसे अलंकृत नगरीका पांच प्रकारसे निरूपण किया है।।८।।

सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम्।
वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु।।२१।।

श्लोकार्थः सुवर्णमण्डित चौराहे, महलों, महलोंकी वाटिकामें सुनार, लुहार आदिकी दुकानों तथा भवनोंकी पङ्क्तियां उस नगरीकी शोभा बढ़ा रही थी. छज्जों, छज्जोंके नीचेकी वेदियों, झरोखों और फर्शोंमें हीरा, बिल्लोर, नीलम, मूंगा, पन्ना, मोती आदि रत्न जड़े हुए जगमगा रहे थे।।२१।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार बाहरी शोभाका वर्णन करके इस 'सौवर्ण' श्लोकसे भीतरकी शोभाका वर्णन करते हैं. नगरीके चौराहोंमें विश्रामके स्थान, धनी पुरुषोंके महल और फर्शोंकी भूमि आदि सब सोनेकी बनी हुई थीं. एक सी कारीगरीसे जीविका करनेवालोंकी दुकानें, मनुष्योंके बैठनेके स्थान, सब निवासियोंके भवन(घर) सब ही सुवर्णमय थे. सभी एकसे एक बढकर शोभावाले थे. वैदूर्य, हीरा, निर्मल स्फटिक, नीलमणि(नीलम) प्रवाल, पन्ना, मोती आदि रत्नोंसे जड़े हुए टेढी लकड़ीके बने हुए(दरवाजोंके आगे) बैठनेके स्थानों(बैंचें,

कुर्सियों)से वह नगरी सुशोभित हो रही थी।।२१।।

जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारापतबर्हिनादिताम्।
संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतण्डुलाम्।।२२।।

श्लोकार्थः उन रत्नजटित झरोखों और चबूतरों पर बैठे हुए कबूतर और मोर अपने-अपने शब्दोंसे नगरीके यशको गुञ्जित कर रहे थे. मुख्य और चौड़ी सड़क(राजमार्ग) हाट, बाट, गली, कूंचे, चबूतरों और द्वारोंके सामने छिड़काव किया हुआ था तथा सब जगह मालायें, कलियों, खीलें और अक्षत बिखर रहे थे, ऐसी पुरीको भगवान्ने देखा।।२२।।

व्याख्यार्थः आगे भी मणियोंसे जड़ी हुई जालियोंके छिद्रोंके बीचकी भूमिमें बैठे हुए कबूतरों और मोरोंकी आवाजसे गूंजती हुई उस नगरीको भगवान्ने देखा. इस प्रकार नगरीके ऊपरी भागकी सुन्दरताका वर्णन करके आगे उसके मार्गोंके सौन्दर्यका निरूपण करते हैं. उस पुरीके राजमार्गों(मुख्य सड़कें) बाजारों, व्यापारके(मार्गों) तथा अन्यान्य चौराहे, आंगणोंमें जलका छिड़काव अच्छी तरह किया गया था और(भगवान् पधारेंगे इस कारणसे) सभी जगह मंगलसूचक पुष्प, जौके अङ्कुर, भाड़में सिके हुये धान्य, चावल 'खीलें' आदि बिखेरे जा रहे थे, पुष्पादि वर्षाये जा रहे थे।।२२।।

आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः।
सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलङ्कृतद्वारगृहां सपट्टिकैः।।२३।।

श्लोकार्थः दही, चन्दनसे चर्चित, जलपूर्ण कलशों, पुष्पों और पल्लवों, दीपकोंकी मालाओं, पके हुए फलोंवाले केलेके वृक्षों और सुपारीके गुच्छों, ध्वजाओं और सुन्दर छोटी-छोटी झण्डियोंसे भली-भांति सजाए हुए द्वारवाले भवनोंसे अत्यन्त सुशोभित हुई मथुरानगरीका भगवान्ने अवलोकन किया।।२३।।

व्याख्यार्थः दधि और चन्दनसे चर्चित(सने हुए) जल भरे कलशों, पल्लवों सहित पुष्पों, दीपकोंकी पांतियों, आरतियों, पके हुए फलोंवाले केलेके वृक्षों, सुपारीके गुच्छां और भांति-भांतिकी ध्वजा पताकाओंसे सुशोभित द्वारोंवाले भवनोंसे सुसज्जत की गई(सजाई हुई) मथुरापुरीको भगवान्ने देखा. सजावट करनेकी रीति यह है कि दरवाजोंके दोनों तरफ दो कलश, उन पर दहीसे भरा हुआ पूर्णपात्र, उसके निकट दीपक, केले, सुपारी, ध्वजा, पताकाएं, चन्द्रमाकी तरह निर्मल तथा चन्द्रमाके आकारवाले कांच-आरसी आदिको

महोत्सवमें सभी जगह रखा जाता है।।२३।।

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः।।२४।।

श्लोकार्थः हे राजन्! पुरी मथुराकी ऐसी सुन्दर शोभाका अवलोकन करते हुए और गोपलोगोंके मध्यमें पधारते हुए वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण बलदेवने राजमार्गमेंसे होकर नगरीमें प्रवेश किया. यह समाचार पाते ही पुरनारियां उनके दर्शन करनेकेलिए उत्कण्ठित होकर अपने-अपने भवनों पर जल्दीसे चढ़ गईं।।२४।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार मथुरापुरीका वर्णन करके, उसमें भगवान्का प्रवेश 'तां सम्प्रविष्टौ' इस श्लोकसे वर्णन करते हैं. भगवान्के दर्शन सब ही कर लें, इसी उद्देश्यसे पुरीकी सजावट की गई थी. इसलिये बाहर आकर भी दर्शन कर सकनेवाले पुरुषोंका वर्णन न करके, बाहर आकर दर्शनमें असमर्थ नारियोंका दर्शनार्थ अधिक उद्योगका वर्णन उत्तरार्धसे करते हैं. गोपालोंके साथ राजमार्ग नगरीमें प्रवेश करनेवाले दोनों वसुदेवकुमारोंके दर्शन करनेकेलिये पुरीकी स्त्रियां अच्छी तरहसे सामने आईं.

जो शहरकी स्त्रियां साधारण स्थितिकी थीं, जो दूर रहनेवाली थीं और जो घरके बाहर निकलनेमें असमर्थ थीं, ऊंची-ऊंची हवेलियां तथा ऊंचे मकानों पर, जहांसे भगवान्के दर्शन कर सकती थीं, चढ़ गईं. राजाकी सवारी निकलने पर भी स्त्रियां इसी प्रकारसे करती हैं, इस बातको सूचित करनेकेलिये हे नृप! यह सम्बोधन पदका प्रयोग हैं, किन्तु राजाकी अपेक्षा भगवान्के दर्शनोंकी विशेषता है कि वे बड़ी उत्कण्ठासे महलोंकी छतों पर चढ़ीं।।२४।।

काश्चिद् विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः।
कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नाङ्क्त्वा द्वितीयं त्वपराः स्वलोचनम्।।२५।।

श्लोकार्थः जल्दीके कारण कोई उल्टे कपड़े और गहने पहनकर चल दीं. कोई-कोई कुण्डल आदि आभूषण, जो दो-दो पहने जाते हैं, एक-एक ही पहनकर चली गईं. कईं तो अपने एक ही नेत्रमें काजल लगाकर दौड़ गईं।।२५।।

व्याख्यार्थः इस 'काश्चित्'में उनकी उत्कण्ठाका वर्णन करते हुए उनके वस्त्र-आभूषणोंके उलटे-सीधे धारण करनेका निरूपण करते हैं. स्त्रियोंका भगवान्में अत्यधिक भाव है. यदि ऐसा न हो तो यह लौकिकभाषा ही गिनीजाती.

कितनी ही स्त्रियां अपने वस्त्रोंको और आभूषणोंको उलटे पहन करके चली गईं. तात्पर्य यह है कि पावोंके आभूषणोंको हाथोंमें और हाथोंके पावोंमें पहनकर तथा इसी प्रकार नीचे पहननेका घाघरा आदि वस्त्रोंको ऊपरके अङ्गोंमें और ऊपर(पहनने)के अङ्गोंके वस्त्रोंको नीचेके अङ्गोंमें पहनकर ही दौड़ गईं.

इतना ही नहीं, किन्तु दो-दो पहिने जानेवाले कड़े, कुण्डल, आभूषणों को भी दो मेंसे एकको ही और उन्हें भी उल्टे(हाथोंके पावोंमें तथा पावोंके हाथोंमें) ही पहिनकर चली आईं. ये स्त्रियां उन पहले वर्णन की हुई स्त्रियोंसे श्रेष्ठ हैं. कडे, कंकण आदि तो दो-दो मेंसे एक भी पहन लिये जाते हैं, किन्तु जिन अलङ्कारोंका दो-दोका ही धारण करना आवश्यक होता है, उन्हें एक-एक ही धारण करना निन्दित तथा अमङ्गल गिना जाता है. उन स्त्रियोंके जल्दीसे ऐसा भी किया. जैसे कोई तो कानमें एक ही बाली और पांवमें भी एक ही नूपुर अथवा एक ही नूपुरको कानमें, पांवमें पहनकर ही दौड़ गई. कितनी तो अपने एक ही नेत्रमें और कितनी दूसरी स्त्रियोंके एक ही लोचनमें कज्जल आंजकर बीचमें उसी स्थितिमें उठकर जल्दी दौड़ आईं।।२५।।

अश्नन्त्य एकास्तदपास्य सोत्सवा अभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः।
स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः।।२६।।

श्लोकार्थ: कोई भोजन कर रही थीं, वह हाथका ग्रास थालीमें पटक कर भगवान्के दर्शनकी उत्कण्ठासे दौड़ गईं. उबटन लगाती हुईं, कईं बिना नहाये ही चली गईं. कितनी सोई हुईं कोलाहलसे जगकर वैसे ही चल दीं और कितनी ही बच्चोंको दूध पिलाती हुई मातायें बच्चोंको छोड़कर उतावलीसे भगवान्के दर्शन करनेकेलिए दौड़ पड़ीं।।२६।।

व्याख्यार्थ: 'अश्नन्त्य एकाः' इस श्लोकसे उनकी किसी काममें भी आशक्ति न रहनेका वर्णन करते हैं. कई एक, जो भोजन कर रही थीं, वे भोजन करना अथवा अन्नको छोड़कर चली आईं. भोजन करनेका त्याग, यद्यपि किसी दूसरे प्रयोजनसे भी हो सकता है, किन्तु 'सोत्सवा' श्लोकमें यह पद सूचित करता है कि उन्होंने तो भगवान्के दर्शनके उल्लाससे ही भोजन करना छोड़ा था. कितनी ही जो अपने सारे शरीरमें अथवा शिर पर तेल मल रही थीं, वे बिना स्नान किये ही दौड़ आईं. बहुत सी, जो सोई हुई थीं, वे उठकर, भगवान् पधारे हैं, ऐसा कोलाहलको सुनकर वैसी ही अपने शरीरका विचार न करके चली आईं. कितनी

ही, खास माताएं, जो धायें नहीं थीं, वे भी अपने छोटे-छोटे बच्चोंको भी छोड़कर जल्दीसे दौड़ गईं।।२६।।

मनांसि तासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः।
जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो दृशां ददत् श्रीरमणात्मनोत्सवम्।।२७।।

श्लोकार्थः मस्त गजराजके समान पराक्रमी, कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने स्वछन्द लीला-विलाससे पूर्ण हंसी और कटाक्षोंसे तथा लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले अपने सुन्दर श्यामस्वरूपसे पुर-नारियोंको आनन्द देकर उनके हृदयोंको हर लिया।।२७।।

व्याख्यार्थः इस प्रकारसे भगवान्के दर्शनकेलिये उन सबका प्रपञ्चका विस्मरण निरूपण करनेके बाद प्रपञ्चरहित हुई उनकी भगवान्में आसक्ति होनेकेलिये 'मनांसि' इस श्लोकसे भगवान्के चरित्रका वर्णन करते हैं. उन ऊपर बतलाई पुरवासिनियों स्त्रियोंके मन भगवदीय हो जाने पर तो उनकी भगवान्में आसक्ति हो जाना सिद्ध(सहज) ही है, क्योंकि संसारका मूल मन ही है, मनको वशमें करनेके दो प्रकार हैं (१)जैसे किसी उत्तम विषयमें मन लग जाता है, वैसे ही किसी वस्तुकी सामर्थ्यसे ही(अपने आप) स्वयं वशमें हो जाता है और दूसरा यह है जैसे मन्त्र आदिके द्वारा मन वशमें होता है, वैसे ही मोह लेने अपने गुणोंसे ही वशमें हो जाता है. इन दोनों ही प्रकारोंसे उनके मन भगवान्के वशमें हो जानेसे भगवदीय हो गये थे और उन पुरस्त्रियोंकी भगवान्में आसक्ति सिद्ध हो गई थी.

अरविन्दलोचन 'कमलनयन' पदसे भगवान्के स्वरूपकी सुन्दरताका और सारे सन्तापोंको दूर करनेवाले होनेसे उपकार करनेवाले रूपसे निरूपण किया है. मोहित करनेवाले भगवान्के धर्मोंका वर्णन करते हैं कि उनकी स्वच्छन्द लीलाको सूचित करनेवाले अट्टहाससे, पूर्णचितवनसे, भगवान् उनकी ओर वैसे हो, देख रहे थे, जैसे कोई अत्यन्त प्रेमी जार अपनी चेष्टासूचक हास्यपूर्वक देखता है. वे नागरिक स्त्रियां थीं, यह सब कुछ समझतीं थीं. इसलिये वे अत्यधिक मोहित हो गईं. भगवान्को मन्दमुस्कान मन्दहास्य मन्त्र जैसा और दृष्टि चितवन बन्धकर लेनेवाली सांकल जैसी है. इसलिये उन स्त्रियोंमें प्रत्येकका मन जिस-जिस प्रकारसे मोहित होता था, उसे उसीका हास्य और अवलोकन भगवान् करते थे. इसी अभिप्रायसे श्लोकमें 'प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः' यह बहुवचन है.

मनके, भगवान् पर मोहित होनेमें बाधक होनेवाली बुद्धिको दूर करने केलिये भगवान्का मस्त गजराजके समान पराक्रमी यह विशेषण है. वैदिकमें स्त्रियोंका अधिकार नहीं होनेसे और विचार करने पर भगवान् पर मनके मोहित होनेमें कोई दोष न होनेसे ऐसा करनेमें केवल लौकिक भय ही बाधक बन रहा था, इस भयकी निवृत्तिकेलिये ही भगवान्को उन्मत्त गजराजकी उपमा दी गई है. जैसे मस्त हाथी अपने कार्यमें किसीका विचार न करके लौकिक-अलौकिक उपायोंसे(जैसे बने वैसे ही) अपने कार्यको सिद्ध करता है और अपने जातिके दूसरे विघ्नकर्ता हाथियोंको पराजित करके अपनी सारी हथिनियोंके साथ विलास करना रूपप्रथाको पूरी करता है, वैसे ही भगवान् मस्तगजराजके समान पराक्रमवाले हैं. इसलिये इस कथनसे उन स्त्रियोंको भगवान्के शरणमें चले जाने पर किसी प्रकारका भी भय नहीं है, यह सूचित किया है.

भगवान् उन स्त्रियोंके मनको अपनी दृष्टि द्वारा ग्रहण कर लेते, क्योंकि दर्शनके समय उसकी दूसरी इन्द्रियां तो काम कर ही नहीं रही थीं और दृष्टि चञ्चल है. इसलिये दृष्टिके दूसरी जगह पर चले जाने पर दृष्टिके द्वारा मनका ग्रहण कर लेना निश्चयरूपसे कैसे हो सकता है? ऐसी शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि उनकी दृष्टियोंको भगवान् श्रीलक्ष्मीके रमणरूपसे उत्सव दे रहे थे. उत्सवमें आसक्त हुए व्यक्तिको उत्सवके अतिरिक्त अपने सर्वस्वके हरणकरलेने तकका किसी भी पदार्थका भान नहीं रहता है. लक्ष्मी तो सभी चञ्चलोंमें सबसे अधिक चञ्चल हैं. ऐसी लक्ष्मीको भी भगवान् एकमात्र अपनेमें ही आसक्त कर लेते हैं, तो फिर अन्य स्त्रीकी अपनेमें आसक्ति क्यों न करें? अर्थात् अवश्य ही कर देते हैं. इसलिये उनके मनका हर लेना तो सहज ही सिद्ध हो जाता है. 'श्रीरमणात्मन' इस आत्मन्(रूप) शब्दसे यह सूचित किया है कि उन स्त्रियोंकी दृष्टियोंकी भगवान्में आसक्ति होना आवश्यक ही था. वे अपनी दृष्टियोंको किसी दूसरे पर डाल ही नहीं सकती थीं।।२७।।

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः।
आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम्।।२८।।

श्लोकार्थः हे अरिन्दम्!(शत्रुओंका दमन करनेवाले) राजन्! बार-बार श्रीकृष्णकी लीलाओं और चरित्रोंको सुननेसे पुर-नारियोंके सौभाग्यका उदय हुआ. उन्होंने श्रीकृष्णके दर्शन करके अपने नेत्रोंको कृतार्थ किया. भगवान्ने भी

दयादृष्टिसे उन्हें देखकर और मंदमुस्कानरूप अमृत पिलाकर उनका यथोचित आदर किया. नेत्र द्वारा हृदयमें पहुंची हुई श्रीकृष्णकी आनन्दमयी मूर्तिको हृदयसे लगाकर पुर-नारियां भी विरहकी व्यथासे मुक्त हो गईं और परम आनन्द प्राप्त होनेसे उनके शरीरोंमें रोमाञ्च हो आया ।।२८ ।।

व्याख्यार्थ: भगवान् 'अक्लिष्टकर्मा' क्लेशके बिना कर्म करनेवाले हैं. उन्होंने उन पुर-नारियोंके हृदयोंको कैसे हर लिया? इसका उत्तर इस 'दृष्ट्वा मुहुः' श्लोकसे देते हैं. भगवान्ने अपने कर्मों सहित स्वयंको उनको देकर उनके मनको ले लिया. पुर-वासिनियोंने भगवान्के स्वरूपको जिस प्रकारसे ग्रहण किया, उस प्रकारको इस श्लोकसे बताते हैं. पहले जिनको बार-बार सुना था, उन भगवान्के दर्शन किये. इस प्रकार पहले नेत्रोंकी प्रीति कही. सुननेके बिना प्रीति नहीं होती है, क्योंकि पहले नहीं सुना हुआ नवीन पदार्थ यदि देखनेमें आता है, तो उसमें अद्भुत रस ही उत्पन्न होता है,(उसमें) प्रीति उत्पन्न नहीं होती है. सबसे अधिक प्रीति होनेमें तो बार-बार श्रवण करनेकी आवश्यकता होती है.

भगवान्के दर्शन करते ही उनके चित्त संसारके बन्धनोंसे मुक्त होकर भगवान्के पीछे दौड़ने लग गये. स्वभाव आदिके रोकने पर भी नहीं रुके. चित्त उन मनके हरनेके साथ पीछे दौड़ गया. इसलिये मन भी चित्तको नहीं रोक सका. रोकना तो दूर रहा, मन तो चित्तके चले जानेमें अनुकूल सहायक ही हो गया.

मनको भगवान्के द्वारा हर लिये जाने और चित्तका भगवान्के पीछे दौड़ जाने पर भी बिना स्वीकृतिके महापुरुष भगवान्को ग्रहण किया नहीं जा सकता. इसलिये भगवान्की स्वीकृति(पुरवासियोंका आदर)का वर्णन करते हैं कि सारे प्रपञ्चसे अधिक रसवाला और प्रपञ्चको भुला देनेवाला भगवान्का चितवन पूर्वक उत्कृष्ट मन्द हास्य ही अमृत था. मीठा लगनेकेलिये हास्य और अलौकिक भावको उत्पन्न करनेकेलिये दृष्टि, दोनों(हास्य तथा दृष्टि)के मिलने पर अमृतकी समानता होती है. यहां इस प्रकृतविषयमें उपयोगी होनेके कारण अमृतकी समानता कही गई है. वास्तवमें तो भगवान्की दृष्टि और हास्य, अमृतकी अपेक्षा अत्यधिक उत्तम है. केवल अमृत भगवान्के चितवन और हास्य जैसा है, किन्तु समझनेमें सहज होनेके कारण अमृतके साथ समता बतला दी गई है.

भगवान्ने अपनी उस अमृतमयी दृष्टिसे उनको सींचकर अवलोकन करके उनका मान किया है, उनको अङ्गीकार किया. वे लतारूप थीं, उन पर

अमृतकी वर्षा करनेसे वे आनन्दरूपी फलको देवें, ऐसी भगवान्‌की भी इच्छा थी. तब वे भगवान्‌से आदर(स्वीकृति) प्राप्त करके आनन्दका अनुभव करने योग्य बन गईं. अथवा भगवान्‌से प्रेमरूपी सम्मान पाकर(उनसे उस प्रेमको प्राप्त करनेकेलिये मानो पधारे हुए आनन्दस्वरूप, स्वतः पुरुषार्थरूप) भगवान्‌का अपने भीतर आत्मा और चित्तसे भगवान्‌का आलिङ्गनकर भीतर ही आनन्द मग्न हो गईं. तात्पर्य यह है कि दृष्टिके द्वारा और ज्ञानमार्गके द्वारा भगवान्‌का अपने हृदयके भीतर प्रवेश करके हृदयमें भगवान्‌का आलिङ्गन करके वे आनन्दसे भरपूर हो गईं.

फिर हृदयमें नहीं समाये हुए उस भगवदानन्दको बाहर भी प्रकट कर दिया. उनका सारा शरीर सब अङ्ग रोमाञ्चित हो गया और उनके सभी मनोरथ पूरे हो गये. उनके मनमें पहले भगवान्‌के प्राप्त न होनेसे पीड़ा बनी हुई थीं, भगवान्‌के मिल जाने पर भी जब तक भगवान् हमें सदाकेलिये मिल गये और हमारे हृदयमें प्रवेश करके वहां स्थिर बिराज गये हैं, यह न जान लिया जाये, तब तक पहले भूतकालमें जैसे भगवान्‌का सम्बन्ध नहीं था, वैसे आगे 'भविष्यत्'में कहीं(भगवान्‌का) सम्बन्ध न रहे, ऐसी चिन्ता बनी ही रहती है. अब हृदयमें प्रवेश करके भगवान्‌के नित्य विराजमान् हो जानेसे परिपूर्ण हुईं, उन पुरवासिनियोंके हृदयमें पीडाकेलिए कोई स्थान नहीं रहा और उन्होंने उस आधि(मानसिक पीड़ा)का त्याग कर दिया. यदि भगवान् उनकी दृष्टि द्वारा उनके हृदयमें सदा नहीं रहते तो उनके एक क्षणमात्रके दर्शन करनेसे उन पुर-वासिनियोंके सदा मनोरथ पूर्ण नहीं होते. स्त्री और पुरुषका लौकिक तथा अलौकिक प्रसङ्ग(प्रेम) समान ही होता है. इसलिये यहां(इस विषयमें) लौकिक विचारसे भी कामादि विकार उत्पन्न न हो सके, इस कारणसे'अरिन्दम'(कामादि शत्रुओंका दमन करनेवाले), ऐसा सम्बोधन(राजाकेलिये) दिया है।।२८।।

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्योत्फुल्लदृशोऽबलाः।
अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ।।२९।।

श्लोकार्थः महलों पर चढ़ी हुईं, मदोन्मत्त उन अबलाओंके कमलसे नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे और वे श्रीकृष्ण और बलदेव पर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं।।२९।।

व्याख्यार्थः अपने मनोरथ पूर्ण हो जाने पर उन पुरवासिनियोंने जो कुछ कार्य आगे किया, उसका वर्णन इस 'प्रासादशिखरारूढाः' श्लोकसे कहते हैं.

पुष्पोंकी वर्षा करना देवताओंका कार्य है. यहां भगवान् पर पुष्प बरसानेवाली ये स्त्रियां भी हृदय अमृतसे भरपूर होनेके कारण देवरूप हो गईं. वे बड़े ऊंचे महलों पर चढ़ी हुईं होनेसे विमानों पर बैठी हुई सी दिखाई दीं. इसलिये वे बाहर भी देवतारूप हो गईं. देवता जैसे पलक नहीं मारते, वैसे ही ये स्त्रियां भी स्नेहसे निमेष रहित खुले नेत्रवाली ही रह गईं.(अबलाः) स्वाभाविक सुन्दरतासे युक्त वे सब प्रकारसे देवता जैसी होकर उत्तम-उत्तम पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं.

पास रहनेवाली उनके मनमें बहुत सारे पुष्पोंके बरसाने पर अपराधकी शङ्का क्यों नहीं हुई? इसके उत्तरमें कहते हैं कि वे प्रमदा थीं, उनका कामात्मक मद प्रकट हो रहा था, इस कारणसे वे विचार शून्य हो गईं थीं, इसलिए अपने अपराधको नही सोच सकीं और इस पुष्पवर्षासे भगवान्की कोई हानि भी नहीं हुई थी. इसलिये(यह प्रदर्शित करनेकेलिये) उनके विशेष नामोंको कहते हैं. बलभद्रजी, जिनको बलकी अधिकताके कारण बल ही कहते हैं, तथा केशव तो 'क'(ब्रह्मा)'ईश'(शिव) दोनोंको'व'(अमृत) तथा सुख देनेवाले हैं, जो सदा ही पुष्पोंकी वर्षाका अनुभव करते हैं अथवा केश शब्दसे मत्वर्थ ''व'' प्रत्यय होनेके कारण केशवाले तथा केशों पर सदा पुष्पोंको धारण करनेवाले होनेसे दोनों पर इस पुष्पवृष्टिसे कोई असुविधा होनेका भय नहीं था।।२९।।

दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः।
तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः।।३०।।

श्लोकार्थः ब्राह्मण आदि द्विजातियोंने भी स्थान-स्थान पर दही, अक्षत, जलपात्र, माला, चन्दन आदि सामग्रियोंसे प्रसन्नतापूर्वक दोनों भाईयोंका पूजन किया।।३०।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार पुरवासिनी स्त्रियोंके द्वारा किये गये सम्मानका वर्णन करके 'दध्यक्षतैः' श्लोकसे ब्राह्मणोंके द्वारा किये सत्कारको कहते हैं. लौकिकमें स्त्रियां और अलौकिकमें ब्राह्मण जगत्में दोनों ही रत्न हैं. इन दोनोंके द्वारा आदर-सत्कार तथा पूजा(विभूषित) किये गये भगवान्का निरूपण किया जाता है. १.देशकी प्रथाके अनुसार दही और अक्षतों, जो तिलककेलिये लाये गये थे, उनसे भगवान्के पहले तिलक, फिर पूजन किया और २.पांव धुलाने केलिये जलके पात्र लाये गये. जलका बहुत कामोंमें अनेक प्रकारसे उपयोग होता है. इसलिये जलके पात्रोंमें बहुवचन दिया गया है. ३.बड़ी सुन्दर मालाएं, चन्दन,

धूप आदि सुगन्धी पदार्थ. ४.भांति-भांतिकी भेटें, मिष्टान्न और फल आदि. इस प्रकार चार भांतिके साधनों(पदार्थों)से उन ब्राह्मणोंने श्रीकृष्ण-बलदेव दोनोंका पूजन किया और वे अत्यन्त प्रसन्न भी हुए. ब्राह्मणोंको अन्तमें प्रसन्नता कहीं-कहीं होती है. इसलिये उनका सुखी होना पीछे पूजाके बाद कहा गया है. जगह-जगह पर पूजा की गई. अर्थात् भीड़ न करके सभीने बारी-बारीसे पूजा कर ली. सारे ब्राह्मणोंका सामान्यरूपसे पूजा करनेमें लग जानेके वर्णनसे उनका भी निरोध कहा गया है।।३०।।

ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन् महत्।
या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ।।३१।।

श्लोकार्थः पुरनारियां परस्परमें कहने लगीं-अहो ! गोपियोंने पूर्व जन्ममें कौनसी ऐसी भारी तपस्या की थी, जो इस मनुष्यलोकमें महोत्सवरूप इन दोनोंको वे हर घड़ी देखती ही रहती हैं ।।३१।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार काया और मनके द्वारा सम्मानका वर्णन करके इस 'ऊचुः पौराः' श्लोकसे वाणीके द्वारा किये(भगवान्के) सम्मानका निरूपण करते हैं. मथुरावासी सारे ही नर-नारी भगवान्का एक बार दर्शन करके अपार आनन्दका अनुभवकर, विचार करने लगे कि जो सदा ही भगवान्के दर्शन करते हैं, उनका तो बड़ा भाग्य हैं. प्रतिदिन सदैव दर्शन करनेवाले बड़भागियोंके भाग्यका स्मरण करके वे सब आश्चर्यमग्न होकर कहने लगे कि अहो! गोपीजनोंने कौन सी तपस्या की है? भगवान्का दर्शन करना तो स्त्रियां ही जानती हैं. इस प्रकारसे उनकी प्रशंसा की है. तपस्यासे ही सब प्राप्त होता है, ऐसा जानकर हमें भी तपस्या करनी चाहिये. इस प्रकार जब उन पुरवासियोंकी साधना (तपस्या) करनेमें भी इच्छा हुई, तो फलकी प्राप्तिमें भी इच्छा होना निश्चित ही है, यह तात्पर्य है. भगवान्का दर्शन सर्वोत्तम है, क्योंकि यह तो मृत्युलोकमें महोत्सवरूप है. उत्सव तो कभी-कभी होता है और महोत्सव तो उत्सवसे भी दुर्लभ होता है, किन्तु यह तो सब ही का उत्सव होनेके कारण अत्यन्त ही दुर्लभ है. 'एतौ', इन दोनों राम-कृष्णको, यों सबको दिखलाकर पुरवासियोंने उनकी अद्भुततामें प्रमाण प्रदर्शित कर दिया है।।३१।।

रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः।
दृष्ट्वायाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च।।३२।।

श्लोकार्थ: जिधरसे श्रीकृष्ण जा रहे थे, उसी रास्तेसे कोई धोबी आ रहा था. वह कंसका धोबी था, जो उसके(कंसके) कपड़ोंको धोता था और रङ्गता भी था. उसे देखकर गदाग्रज भगवान्ने उससे अति उत्तम और धुले हुए वस्त्र मांगे।।३२।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार काया, वाणी और मनसे किये गये भगवान्के सन्मानका वर्णन करनेवालों तथा सन्मान न करनेवालोंको प्राप्त होनेवाले फलको दिखानेकेलिये 'रजकम्'इस श्लोकसे आरम्भ करके सात श्लोकोंसे यह निरूपण करते हैं कि हीन जातिवाला यदि भगवान्का अपमान करता है, तो उसका नाश हो जाता है. हीन मनुष्य भगवान्को नहीं मानते हैं, यह बतलानेकेलिये इस कथाका वर्णन किया है. हीन पुरुष यदि भगवान्का सम्मान करें तो भगवान् उनको हीनजातिमें जन्म नहीं दें. धोबी और मोची 'रजकश्चर्मकारश्च' इस वाक्यके अनुसार अन्त्यजोंमें धोबी मुख्य है. इसीसे रामावतारमें धोबीने ही अपमानकारक वचन कहे थे. इसलिये यह जाति ही दुष्ट है अथवा रामावतारमें अपमानजनक वाक्य बोलनेवाला धोबी ही यह(धोबी) था. भगवान्ने वस्त्र तथा आभूषणोंसे सुसज्जत किसी धोबीको उसी मार्गमें सामने आता हुआ देखा. धोबी दो काम करते हैं १.मैले कपड़े धोना और २.कपड़े रङ्गना. उनमें यह रङ्गरेज रङ्गकार था.

भगवान्ने उससे राजाके वस्त्र क्यों मांगे? इसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान् सदाग्रज हैं. 'गद' नामका रोहणीजीका दूसरा पुत्र है, जिसका जन्म आगे होगा. इसलिये भगवान् गदसे पहले प्रकट हुए हैं और अब गदको उत्पन्न करता है, जो कंसका वध हुए बिना नहीं हो सकता है, इसलिये कंसको मार दिये जानेके बाद ही वे सारे वस्त्र भगवान्के ही हैं. उससे याचना तो इस बातकी जांचकेलिये की कि साधारण पुरवासियोंकी तरह कंसके सेवक भी मारने योग्य नहीं हैं अथवा मार देने योग्य हैं. कितने ही टीकाकार तो ऐसा कहते हैं कि यह रङ्गरेज ही आगे गदरूपसे जन्म लेगा. इसलिये उसको मारनेके अभिप्रायसे ही उससे वस्त्र मांगे थे. उसके ऊपर भगवान्की कृपादृष्टि हुई और उसका उद्धार करनेकेलिये भगवान्ने उससे वस्त्र(उसको देखकर) मांगे.

भगवान्के पास वस्त्र तो थे ही, किन्तु फिर भी वस्त्र मांगनेका कारण यह था कि उसके पास वे वस्त्र तत्काल धोये हुए उत्तम और उस रङ्ग-बिरङ्गे(भांति-भांतिके) थे।।३२।।

देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः।
भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः।।३३।।

श्लोकार्थः श्रीकृष्णने कहा–हे सज्जन धोबी ! हमारे अङ्गोंमें ठीक हो, वे वस्त्र हमारे लिए दे दो. तेरे पासके ये कपड़े हमारे ही पहनने योग्य हैं. हमको वस्त्र देनेसे अवश्य तेरा कल्याण होगा, इसमें सन्देह नहीं है।।३३।।

व्याख्यार्थः 'देह्यावयोः' इस श्लोकसे वस्त्र मांगनेका प्रकारका वर्णन करते हैं. सभी गोपालोंको भी बादमें वस्त्र देना है, किन्तु प्रारम्भमें संकोचवश दोनोंकेलिये ही वस्त्र मांगे हैं. हम दोनोंको हमारे योग्य अर्थात् मेरे(श्रीकृष्णके) लिये खासकर पीले और बलदेवजीकेलिये मुख्यरूपसे नीले वस्त्र देओ. हे अङ्ग!(हे सत्पुरुष!) यह सम्बोधन उस धोबी पर स्नेह सूचित करनेकेलिये तथा किसी प्रकारका दबाव नहीं है, यह बतलानेकेलिये है. हमारे योग्य कपड़े, आभूषण हो तो आभूषण दो. अथवा इन गोप–बालकोंकेलिये भी कपड़े देओ.

यदि धोबी इनको नहीं पहचानता हो तो भगवान् कहते हैं कि हम दोनों उत्तमसे उत्तम वस्त्रोंको पहननेके योग्य हैं. वस्त्रोंके प्रदान करनेसे तेरा कल्याण होगा और मेरे(श्रीकृष्ण)को देगा तो बहुत बड़ा कल्याण होगा, परन्तु वस्त्र देगा तब ही कल्याण होगा, नहीं देगा तो नहीं होगा. यदि ऐसा अर्थ न हो तो भगवान्का वाक्य व्यर्थ होता है. इसका कपड़े देने पर ही कल्याण होना सम्भव है और यदि वस्त्र दे देता है तो भी राजाके वस्त्र दूसरोंको दे देनेके दोष(अपराध)की शङ्का रहने पर भी कल्याण नहीं हो, इस विषयमें सन्देह नहीं हैं, इन पदोंसे दूर किया है।।३३।।

स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः।
साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः।।३४।।

श्लोकार्थः वह राजा कंसके कपड़े धोनेवाला धोबी था. पूर्णकाम परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके यों वस्त्र मांगने पर अत्यन्त घमण्डी वह राजसेवक क्रूद्ध होकर तिरस्कार करता हुआ बोला।।३४।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार व्यवहारकी रीतिसे उस धोबी पर उपकार करनेकेलिये वस्त्र मांगने पर भी उस दुष्टने वस्त्र देना स्वीकार नहीं किया, यह इस 'स याचितो' श्लोकसे कहते हैं. यह बात नहीं थी कि भगवान्के पास वस्त्र नहीं होंगे, इसलिये उससे वस्त्र मांगे हों, क्योंकि भगवान् सर्वशक्तिमान्के पास कभी

कोई वस्तु न हो, ऐसी शङ्का नहीं हो सकती है. इसी अभिप्रायसे श्लोकमें परिपूर्ण(सब प्रकारसे पूर्ण) विशेषण है. सभी स्थानोंमें कालोंमें और सब ओरसे भगवान्‌के पास सब फलों सहित सारे पदार्थ सदा भरपूर होते हैं. ऐसे सर्वसमर्थ पुरुषका वचनमात्रसे ही हित करना चाहिये था, किन्तु उसने भगवान्‌को उचित उत्तर नहीं देकर क्रोधसे तिरस्कार पूर्वक कहा. उसने अपने क्रोधके कारण भीतरके और तिरस्कार पूर्वक बोलकर बाहरके दोषोंको प्रकट कर दिया. वह राजा कंसका तो सेवक था और स्वयं भी अत्यन्त दुष्ट, मदोन्मत्त था, इसलिये उसमें भीतर और बाहर दोषोंसे भरपूर होना स्वाभाविक ही था।।३४।।

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः।
परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ।।३५।।

श्लोकार्थ: वह दुष्ट बोला–हे पहाड़ों पर और वनोंमें भटकते फिरनेवाले जङ्गलियों ! हे उच्छृङ्खलों ! क्या तुम सदा ऐसे ही, वस्त्रोंको पहनते रहते हो, जो आज राजाके वस्त्रोंको पहनना चाहते हो?।।३५।।

व्याख्यार्थ: इस 'ईदृशान्येव' श्लोकसे उसके आक्षेपपूर्ण वाक्योंका वर्णन करते हैं, जो सदा उत्तम–उत्तम वस्त्र पहनते हों, वे कभी वैसे वस्त्रोंके न रहने पर औरोंसे मांगकर अथवा मूल्यसे खरीदकर भी पहनते हैं. इसी तरह क्या आप भी नित्य अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र ही धारण किया करते हो? इस प्रश्नके उत्तरमें भगवान् ऐसे उत्तम वस्त्र सदा धारण करलें, ऐसी मनमें शङ्का करके वह स्वयं बोला कि पर्वत और वनमें फिरनेवाले भी तो वस्त्र तो पहनते हैं, किन्तु वे मलिन वस्त्र पहनते हैं, क्योंकि उन जङ्गलियोंका उज्ज्वल वस्त्र धारण करना निरर्थक ही है.

कभी नहीं पहने वस्त्रोंको भी पहननेकी तीव्र इच्छा किसीकी होती है, तो भी वह राजाके वस्त्रोंको अपने पहननेकेलिये नहीं मांगा करता है. साधारण वस्त्र तो मांगे भी जा सकते हैं, किन्तु असाधारण वस्त्र(राजाके वस्त्र) नहीं मांगे जाते हैं. यह कहां लिखा है कि राजाके कपड़े नहीं मांगे जाते? उसके उत्तरमें वह रजक फिर पूछता है कि क्या आप लोग जङ्गली ही हो? मर्यादा हीन हो? जो राजाके उपभोगके पदार्थोंकी इच्छा करते हो. देखो, मेरे धोये हुए वस्त्रोंको तो केवल मूर्धाभिषिक्त राजा ही, जिसके मस्तक पर राज्याभिषेक होता है, वह धारण करता है. उन मेरे धोये हुए और केवल राजाके ही पहनने लायक उत्तम वस्त्रोंकी तुम

इच्छा क्यों करते हो?।।३५।।

याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा।
बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै।।३६।।

श्लोकार्थ: अरे मूर्खों ! अगर जीवित रहना चाहते हो तो यहांसे जल्दी भाग जाओ. देखो, तुम जैसे उन्मत लोगोंको राजकर्मचारी बांधते हैं, मार डालते हैं और उनका सर्वस्व हर लेते हैं।।३६।।

व्याख्यार्थ: यदि यह कहा जाये कि हमने बिना जाने राजाके कपड़े मांगे हैं, तो वह फिर कहता है कि 'याताशु' यहांसे शीघ्र कहीं दूसरे गांव चले जाओ, यहांका वृत्तान्त तुम लोग नहीं जानते हो. इसलिये तुम्हारे हितकी बात कहता हूं कि यदि जीना चाहते हो तो इस प्रकार आगे राजाके उपभोगमें आनेवाली उत्तम वस्तुओंको मत मांगना, क्योंकि ऐसे मांगनेवालेको जनताको मर्यादाका पालन करानेके काममें नियुक्त किये हुए राजसेवक(सैनिक) थोड़ेसे अपराधके कारण बान्ध लेते हैं. गृहस्थियोंके द्वारा निन्दा किया गया, ऐसा बड़ा अपराध करने पर अपराधीको ही मार डालते हैं और साधारण सा अपराध हो जाने पर भी उसके सर्वस्व लूट लेते हैं. तुम भी बड़े उद्धत दिखाई देते हो. इसलिये इस तुम्हारी उद्धतताको सब लोग न जान सके, इसके पहले ही यहांसे शीघ्र ही कहीं चले जाओ, यह उसने क्रोधमें आकर कहा. उसने भगवान्को भी सब गोपोंकी तरह साधारण जानकर बहुवचनसे सबसे वहांसे शीघ्र कहीं अन्यत्र चले जानेको कहा।।३६।।

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः।
रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत्।।३७।।

श्लोकार्थ: इस प्रकार छोटे मुंह बड़ी बातें करनेवाले उस धोबीको भगवान्ने कुछ कोपसे एक तमाचा ऐसा मारा कि जिससे उसका सिर धड़से अलग हो गया।।३७।।

व्याख्यार्थ: तब बलदेवजीके अपमानको सहन नहीं करनेवाले और भविष्यमें आगे भी कोई काम करनेकी इच्छा रखनेवाले भगवान्ने उसको मार डाला, यह इस 'एवं विकत्थमानस्य' श्लोकसे कहते हैं. वह धोबी भगवान्के माहात्म्यको न जानकर केवल अपनी ही बड़ाईकी डींग हांक रहा था और वे सिर पैरकी असम्बद्ध बातें बक रहा था. तब भगवान् देवकीनन्दनने कुछ क्रोध करके उसको मार डाला, क्योंकि कंसके बन्धनमें पड़ी हुई देवकीजी पर कृपा करके

कंसका वध करना है. कंस भगवान्का मामा था और मामाको मारना उचित नहीं होता. इसलिये भी भगवान्ने कंसको अपना पराक्रम दिखाने अपना पुरुषार्थ प्रकट करनेकेलिये रजकको थप्पड़ तथा हाथके नाखूनसे मार डाला. कई टीकाकार अदृष्ट सुदर्शन चक्रसे उसको मार देनेकी कल्पना करते हैं. मुखसे अनुचित प्रलाप करनेके कारण उसका मुख ही दोषी था. इसलिये भगवान्ने उसके सिरको कायासे अलग कर दिया, क्योंकि उसके ऐसे दोषी सिरका और कायाका सम्बन्ध उचित नहीं था।।३७।।

तस्यानुजीविनः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै।
दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः।।३८।।

श्लोकार्थः तब उस धोबीके साथी , अन्य धोबी , कपड़ोंकी गठरियोंको वहीं पर छोड़कर चारों तरफसे रास्तोंमें अपने-अपने प्राण बचानेकेलिए भाग-दौड़ गए और अच्युत भगवान्ने उन वस्त्रोंको ले लिया।।३८।।

व्याख्यार्थः उस धोबीके धोये हुए वस्त्रोंको भगवान्को धारण करना है. इसलिये उसको मार डाला. शेष धोबी, प्राण बचाकर भाग निकले, यह इस 'तस्यानुजीविना' श्लोकसे कहते हैं. उस मुख्य धोबीके सेवक बाकीके सारे धोबी कपड़ोंकी भण्डाररूप गठरियोंको फिर मिलनेकी आशाको छोड़कर जहांकी तहां डालकर ज्यों त्यों चारों ओर दिशाओंमें प्राण बचानेकेलिये दौड़ पड़े, क्योंकि डरकर भागनेवालोंकेलिये सभी तरफ रास्ता हो जाता है, किसी भी बाजूसे प्राण बचानेकेलिए भाग निकलता है, तब अच्युत भगवान्ने बिना किसी रोक टोकके वे सभी वस्त्र ले लिये, क्योंकि क्षत्रियोंका यह धर्म है कि मारे गये शत्रुकी सारी वस्तुएं विजेताकी होती हैं. अच्युत(किसीसे भी नहीं रुकनेवाले) भगवान्को उस कोलाहलसे जरा भी भय नहीं हुआ।।३८।।

वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः सङ्कर्षणस्तथा।
शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित्।।३९।।

श्लोकार्थः श्रीकृष्ण और बलदेवजीने उनमेंसे मनमाने वस्त्र स्वयं धारण कर लिए. इसके बाद गोपोंको भी उत्तम-उत्तम वस्त्र बांट दिए और बाकी बचे वस्त्रोंको वहीं पृथ्वी पर फेंक कर आगे बढ़े।।३९।।

व्याख्यार्थः इसीलिये इस 'वसित्वा' श्लोकसे भगवान्के निःशङ्क व्यवहारका वर्णन करते हैं. तब भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेवजीने अपने-अपने

मन चाहे पीले और नीले वस्त्र स्वयं पहन लिये. फिर बाकीके वस्त्रोंमेंसे श्रीकृष्ण बलदेवजीने यथा योग्य साथके सखा गोपजनोंको बांट दिये, क्योंकि उनका अपने हाथोंसे वस्त्र लेना अनुचित था. उनमेंसे भारी वस्त्रोंको, जिनको पहननेसे शरीरमें बोझा लगे, पृथ्वी पर फेंक दिये, केवल अच्छे उत्तमोत्तम वस्त्र ही गोप लोगोंमें बांट दिये. उनमेंसे बहुतसे वस्त्रोंको ले लिया तथा बहुत सारे छोड़ दिये. वस्त्र जातिके पदार्थ दोनों, श्रीकृष्ण और बलदेवजीको अलग-अलग रङ्गके पीले तथा नीले वस्त्र प्यारे थे, इसलिये जातिके अभिप्रायसे श्लोकमें वस्त्र द्विवचनका प्रयोग किया गया है, किन्तु केवल दो वस्त्र ही दोनोंने पहने हों ऐसा नहीं है. श्रीकृष्ण (सदानन्द)का उत्तमोत्तम वस्त्र धारण करना उचित ही है, क्योंकि आपका अवतार सबको आनन्द देनेकेलिये ही हुआ है और सङ्कर्षणसे अच्छी तरह कर्षण (आकर्षण) करनेवाले अर्थात् देखनेवालोंका दर्शनीय पदार्थोंसे मेल करानेवाले हैं, अपने पहने हुए वस्त्र-भूषणोंसे दर्शन करनेवालोंको आनन्द देते हैं. इसलिये बलदेवजीने भी सबसे उत्तम वस्त्र धारण किये, यह भी उचित ही है।।३९।।

ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत्।
विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः।।४०।।

श्लोकार्थः आगे एक दर्जी मिला. वह श्रीकृष्ण-बलदेवजीके अनूप रूपको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ. तब उसने कृष्ण-बलदेवके पहने हुए उन छोटे बड़े वस्त्रोंको काट छांट कर ठीक कर दिया।।४०।।

व्याख्यार्थः तदनन्तर तत्त्व लोक व्यवहारको जाननेवाले भी दोनों भाई दरजीको सन्तुष्ट करनेकेलिये भोले भालेपनसे वस्त्रोंको उलटे सीधे पहनने लगे. उस समय दरजी, जो राजाओंको भी वस्त्र सुन्दर काट-छांट करके पहनानेवाला था, अपना वस्त्र पहनानेके कामका अवसर जानकर बड़ा प्रसन्न हुआ, क्योंकि अपने कामका अवसर आने पर सभी प्रसन्न होते हैं. फिर अधिकता यह है कि भगवान् रामकृष्णका सुन्दर वेष, जिसका वह पहले ही ध्यान कर रहा था और जो उनके योग्य था, उन गठरियोंमेंसे भांति-भांतिके रंग-बिरंगे वस्त्र लाकर अथवा भगवान्के द्वारा पहले लाए हुए वस्त्रोंको उचित रीतिसे जहां जैसा रङ्ग फलता हो वहां उसी प्रकारके रङ्गका वस्त्र काट-छांटके साथ आभूषणोंकी तरह सीं कर बना दिया. तात्पर्य यह है कि भगवान्के श्याम वर्णमें और बलदेवजीके श्वेत वर्णमें जिस-जिस रङ्गके अनुकूल वस्त्र(वेष-भूषा) बनानेमें बड़े सुन्दर दिखाई देते थे,

उसीके अनुसार दरजीने दोनोंके मनोहर वेषकी रचना कर दी।।४०।।

लेख: 'ततस्तु वायकः' इस श्लोककी व्याख्यामें एक विषयके पदोंका भाव यह है कि कपड़ेका ही समान कार्य करनेवाले दोनों दर्जी और धोबीको एक ही स्थान पर अपने अपने कर्त्तव्यके अनुसार अच्छा बुरा फल प्राप्त होता है, ऐसा बतलानेकेलिये यह दर्जीका निरूपण किया गया है.

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः।
स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ।।४१।।

श्लोकार्थ: दर्जीने कपड़ेके बनाए हुए रङ्ग-बिरङ्गे हीरो और आभूषणों की सजावटसे दोनों भाईयोंके वेषको संवार दिया. उस रङ्ग-बिरङ्गे वेषमें विराजमान् वे दोनों ऐसे सुशोभित हुए, जैसे उत्सवके दिन विचित्र गेरू आदि धातुओंसे सिंगारे हुए सफेद और दो बाल गजराज शोभित होते हों।।४१।।

व्याख्यार्थ: उस दर्जीके वस्त्र पहनाने पर भगवान् अत्यधिक सुशोभित हुए, इस 'नाना लक्षण' श्लोकसे शोभाका वर्णन करते हैं. यदि वह दरजी वेध रचना करके उनको सुशोभित नहीं करता तो उसकेलिये सायुज्य मुक्तिरूप वरदान देना अयोग्य हो जाता. इसलिये उसके काट छांटकर कपड़े पहनानेसे भगवान्की और भी अधिक शोभा हुई. उसने उनके वस्त्रोंमें भांति-भांतिके चिह्न बनाये. उस दरजीके मनमें विह्वलता न होने देनेकेलिये 'कृष्णरामो', सदानन्द रूपता तथा रति उत्पन्न करनेवाले रूपका वर्णन किया है. सिङ्गार करनेसे उनकी पहलेसे भी और विशेष शोभा हुई, क्योंकि उस दरजीने उन दोनोंका बड़ा मनोहर शृङ्गार किया था. स्वरूपसे उत्तम महापुरुषकी सुन्दर रचना द्वारा और अधिक शोभा बढ़ जाती है. इसे समझानेका दृष्टान्त देते हैं कि जैसे दो छोटे हाथी नवमी आदि उत्सवों पर अलङ्कारोंसे विशेष सुन्दर दिखाई देते हैं, वैसे ही अत्यन्त चपल तथा अति मनोहर भगवान् श्रीकृष्ण-बलदेवजीके सब जनताने दर्शन किये।।४१।।

तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात् सारूप्यमात्मनः।
श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम्।।४२।।

श्लोकार्थ: भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर उस दर्जीको परलोकमें सारूप्य मुक्ति(अपने जैसा रूप) और इस लोकमें श्रेष्ठ लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, स्मरण शक्ति और इन्द्रियोंका कभी शिथिल न होना आदि अनेक दुर्लभ वर देकर वहांसे आगे पधारे।।४२।।

व्याख्यार्थ: दरजीके द्वारा मनोहर वेष भूषा बना देने पर सब सन्तुष्ट हुए. तब परम प्रसन्न भगवान्ने बड़ी उत्तम सेवा करनेवाले उसकेलिये फल प्रदान किये, यह 'तस्य' इस श्लोकसे कहते हैं. उसने अपने मनमें रूपकी भावना करके भगवान्का भेष बनाया था. इसलिये भगवान्ने उसे सारूप्य ही प्रदान किया. श्रीकृष्ण भगवान् हैं, इससे आपमें सारूप्य देनेकी सामर्थ्य है. भगवान् प्रसन्न होवें, तब ही सारूप्य(अपना सा रूप) मुक्ति प्रदान करते हैं. अतः श्लोकमें प्रसन्न भगवान् यह विशेषण दिया है.

सारूप्य(व्यापि वैकुण्ठमें विराजमान् भगवान्के समानरूप) मुक्ति तो देह न रहने पर मरने बाद होगी. वह सारूप्य मुक्ति तो अभी नहीं चाहिये. इसलिये इस लोकमें पांच फलोंका निरूपण करते हैं. भगवान्ने उस दर्जीको अटूट लक्ष्मी दे दी, जो

१.इस लोकके बाहरका फल है और
२.बल, देहका धर्म,
३.ऐश्वर्य आज्ञाशक्ति वाणीका धर्म,
४.स्मृति भगवान्(आत्मा)का अनुसन्धानरूप मनका धर्म तथा
५.इन्द्रियोंकी सामर्थ्य भी प्रदान की.

इस प्रकारसे परलोकमें मिलनेवाला सारूप्य तथा इस लोकमें मिलनेवाले लक्ष्मी(बाह्य) और बल, ऐश्वर्य, स्मृति, इन्द्रियसामर्थ्य अन्दरके भगवान्ने उसको छः वरदान दिये. उससे धर्मका ही सम्पादन किया. इसलिये उसे भगवान्ने स्वरूपका दान नहीं किया।।४२।।

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः।
तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि।।४३।।

श्लोकार्थ: पश्चात् वहांसे सुदामा नामवाले मालीके गृहको पधारे, राम और कृष्ण दोनोंको पधारते देख, सुदामाने उठकर और पृथ्वी पर सिर धरकर प्रणाम किया।।४३।।

व्याख्यार्थ: भक्ति सहित स्वरूपका दान करनेकेलिये दूसरे उपाख्यानका वर्णन 'ततः सुदाम्नः' इस श्लोकसे करते हैं. इस प्रकार दरजीकेलिये सायुज्य फल देकर फिर अत्यन्त स्वरूप रूप फलको देनेकेलिये उत्तम मालायें बनानेवाले सुदामा नामके मालाकार मालीके घर पर पधारे. सम्भवतः उसका घर राजमार्गमें

सड़क पर नहीं होगा. इसीलिये भगवान्का चलकर उस मालीके घर पधारना हुआ, क्योंकि यदि रास्तेमें ही(उसका घर) होता तो वहां जानेका प्रसङ्ग स्वतः ही हो जाता. माला बेचनेके स्थानों(दूकानों) पर अच्छी उत्तम वस्तुएं नहीं होती, इस कारणसे भगवान् उसके घर पर ही पधार गये.

उसका सुदामा अच्छी सुन्दर माला बनानेवाला यह नाम रूढिसे केवल बोल-चालका ही हो और वह माला नहीं बनाना जानता हो, ऐसी आशङ्काको दूर करनेकेलिये श्लोकमें मालाकार(माली) पद दिया है. भगवान् उस सुन्दर माला बनानेवाले सुदामा मालीके घर पधारे.

भगवान् क्लेशरहित काम करनेवाले हैं. आपने साधारण सी बातकेलिये मालीके घर पर पधारनेका कष्ट क्यों किया ? इस शङ्काको दूर करनेकेलिये उसकी श्रद्धा भक्तिका निरूपण इस श्लोकके उत्तरार्धसे लेकर आगे साढ़े छः श्लोकोंसे करते हैं. छः गुणोंसे अधिक फल भगवान् उसको देंगे और भक्ति आधा गुण है. वह सुन्दर माला बनाकर क्या करना चाहिये, ऐसा सोच ही रहा था कि उसी समय पधारे हुए भगवान्के राम-कृष्णके दर्शन करके वह प्रसिद्ध, जो पहले भी भगवान्का भक्त था, खड़ा हो गया और उसने पृथ्वी पर सिर झुकाकर भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम किया. यह लौकिक भाषा है. इसलिये जैसा मालीने किया, वैसा ही श्रीशुकदेवजीने वर्णन किया है. अथवा यह निरोधरूप फल प्राप्त करने योग्य है अथवा यह प्राकृत भी नहीं है और भक्त भी नहीं है किन्तु प्राकृत तथा भक्तके बीचके मध्यभागको बतलानेकेलिये यह इस प्रकारसे निरूपण किया है।।४३।।

तयोरासनमानीय पाद्यं चाथार्हणादिभिः।
पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः।।४४।।

श्लोकार्थः फिर दोनोंको सुन्दर आसन पर बैठाया. पाद्य, अर्घ्य, माला, पान, चन्दन आदिसे श्रीकृष्ण, बलदेव और सब गोपोंका उचित सम्मान तथा पूजन किया।।४४।।

व्याख्यार्थः इतना सा आदर तो महापुरुषके प्रति कोई उदासीन होकर भी कर देता है. इसलिये 'तयोरासनमानीय' इस श्लोकसे विशेष सामग्रीसे भगवान्के पूजनका वर्णन करते हैं. उसके घरमें उनके योग्य आसन बहुधा नहीं था. इसलिये जहां भी उत्तम अथवा नया आसन लाकर उस पर दोनोंको विराजमान् किये. भगवान्के पाद-प्रक्षालनका जल तथा और भी उपचारोंसे माला, चन्दन, पान

आदि सामग्रियोंसे उन दोनोंका तथा सभी गोपोंका सम्मान किया. चरणोंको धोनेके जल सहित सब उपचार करने पर भगवान्‌के अत्यन्त समीपमें रहनेके कारण उसका भगवान्‌में स्नेह हो गया और फिर उसने भगवान्‌का सम्मान बड़ी श्रद्धाभक्तिसे किया, यह बात लानेकेलिये श्लोकमें 'अथ' शब्दका प्रयोग है.

उसने अनुचरो सहित राम-कृष्णकी भक्तिपूर्ण पूजा की, यह पूजा अकस्मात् की गई होनेसे लोकेमें साधारण पूजाकी तरह माला, ताम्बूल और लेप शब्दोंसे कही गई है किन्तु पहले चन्दनका लेप, फिर ताम्बूल अर्पण करके पीछे माला धारण कराई. माला पहनाना इस मालीका अपना मुख्य धर्म था, जो अन्तमें कहा जाता तो भी श्रीशुकदेवजीने विपरीत क्रमसे अथवा भक्तिके आवेशमें जब भी जैसे जो कुछ प्राप्त हुआ, उसको ही उसके द्वारा पहले करनेका वर्णन किया है।।४४।।

प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो।
पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम्।।४५।।

श्लोकार्थ: सुदामा मालीने कहा नाथ ! आज यहां आपके पधारनेसे मेरा जन्म सफल हो गया. मेरा कुल भी पवित्र और धन्य हो गया. पितृदेव और ऋषिगण मुझ पर सन्तुष्ट हो गए, ऐसा जान पड़ता है।।४५।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार शरीरके द्वारा की हुई पूजाका वर्णन करके 'प्राह नः' इस श्लोकसे लेकर आगे तीन श्लोकोंसे उसका, वाणीसे उनकी पूजा करना कहते हैं.

सुदामा अपनी कृतार्थताका तथा भगवान्‌के कार्योंकी सफलतापूर्वक उनकी निर्दोष पूर्णगुणताका निरूपण 'प्राह नः' इस श्लोकसे करता है. भगवान् भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं. इसलिये प्रारम्भमें वह अपने आपका कृतकृत्य होना वर्णन करता है कि मेरा जन्म सार्थक हो गया, पुरुषार्थ सिद्ध हो गये. आपके द्वारा गृहस्थी बनाये हुए हम सबोंका अथवा भगवान्‌की अपने घर पर पधारनेकी कृपाके कारण अपनी प्रशंसामें 'नः' बहुवचनका प्रयोग हुआ.

यद्यपि बालकके जन्म समयमें ही भविष्यमें मिलनेवाले वैसे फलका निश्चय हो जाता है. इसलिये जन्म तो सदा ही सार्थक ही था, तो भी फल प्राप्तिकी उन्मुखता(तैयारी) आज हुई अथवा जन्म आज सफल हुआ, अथवा क्षणिक मतानुसार देहादिके प्रतिदिन उत्पन्न होनेका लक्ष्य लेकर'अद्य'(आज) ऐसा कहा है. मूल श्लोकमें 'अद्य' पाठके स्थानमें 'प्राह' ऐसा पाठ हो तब तो

कोई प्रकारका सन्देह नहीं है.

आपके पधारनेसे केवल मेरा ही जन्म सफल नहीं हुआ, किन्तु मेरे सारे सम्बन्धियोंका भी जन्म सफल हो गया तथा हमारा कुल और कुलके पुरुष भी सब पवित्र हो गये, क्योंकि आप प्रभु हैं, आपमें सभीको पवित्र करनेकी सामर्थ्य है. करोड़ों जन्मोंके किये गये अपने सारे कर्मका उपयोग भी इसीमें हुआ है, यह कहनेकेलिये पहले मेरे द्वारा आराधना किये देवता आदिकी प्रसन्नताका यह ही फल है अर्थात् पितर, देव और ऋषिगण मुझे फल देनेकेलिये प्रसन्न हुए. वास्तवमें यही अर्थ उचित भी है, किन्तु कई टीकाकार ऐसा अर्थ करते हैं कि आप दोनोंके मेरे घर पधारनेसे पितर, देव और देवगण मुझ पर प्रसन्न हुए हैं. आपके आनेसे तो उनकी प्रसन्नताका फल कहा गया है, क्योंकि करण(तृतीया विभक्ति) तो आगे प्राप्त होनेवाले फलको सूचित करती है.

अथवा अब हमको देवता आदिकी आराधना नहीं करनी चाहिये क्योंकि वे तो आपके पधारनेसे सन्तुष्ट हो गये हैं.'मह्यं'(मेरेलिये) फल देनेको अथवा मेरा फल देनेको, इससे यह कहा है कि आपकी पूजा करने पर वे अत्यन्त प्रसन्न(सन्तुष्ट) हो जाते हैं, फिर उनकी प्रसन्नताके विषयमें कहनेकी कोई बात ही नहीं रह जाती।।४५।।

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम्।
अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च।।४६।।

श्लोकार्थ: आप अवश्य ही सारे जगत्के परम कारण, परब्रह्म हैं. जगत्के अभ्युदय और कल्याणकेलिए ही आप दोनोंने यहां अंशसे अवतार ग्रहण किया है।।४६।।

व्याख्यार्थ: महापुरुषोंकी स्तुति, आरोपन्यायसे उसमें वे गुण न होने पर भी उन गुणोंसे भी कही जाती है, किन्तु यह स्तुति वैसी नहीं है, यह कहनेकेलिये वह 'भवन्तौ' इस श्लोकसे स्वयंको भगवान्के स्वरूपका ज्ञान होना प्रकट करता है. आप दोनों इस विश्वके सच्चे प्रसिद्ध हैं. तात्पर्य यह है कि आप दोनों विश्वमें प्रसिद्ध हैं. इस कथनसे यह सूचित किया है कि महापुरुषोंमें होनेवाले सारे धर्म आप दोनोंमे हैं. जगत्की कारणताका निरूपण करते हुए कहते हैं कि उत्पन्न होते रहनेवाले जगत्के मूल कारण आप ही हैं.

अथवा विश्वशब्द सर्वशब्दकी तरह सामान्य तथा विशेष दोनों धर्मोंका

द्योतक है. तात्पर्य यह है कि(विश्व) सामान्य सारे जगतोंका तथा विशेष इस जगत्का मूल कारण आप भगवान् ही हैं. जगत्के उत्पन्न करनेवालेके रूपसे, माहात्म्य, फल देनेवाले, उत्पत्ति और उपपत्ति(योग्यता)के रूपसे सब प्रकारसे सबका कारणरूपसे भगवान्की स्तुति करनेके योग्य है, यह माहात्म्यका निरूपण किया है. केवल उत्पत्ति, पालन और लय करनेवालेके रूपसे ही स्तुति करना तो सर्वसमर्थ भगवान्में न्यूनताका द्योतक है.

कार्यमात्र जगत्का साधारण कारण काल भी है. इसलिये 'परं' मुख्य शब्द कहा है. जिससे यह स्तुति काल(साधारण कारण)की नहीं है. भगवान् अनन्त मूर्ति हैं, इसलिये 'भवन्तौ' उनकेलिये द्विवचनके प्रयोगमें कोई दोष नहीं है और सभी(श्रीकृष्ण, बलभद्र) दो रूपसे आविर्भूत हुआ है. इसलिये अधिक माहात्म्य कहा गया है. उन सर्वशक्तिमान् भगवान्के अवतारके प्रयोजनको कहते हैं कि इस प्रपञ्च(जगत्)में आपने अंशक्रियाशक्तिसे अवतार धारण किया है, क्योंकि ज्ञान(शक्ति)के अंशसे सृष्टि करनेवाले अन्य ब्रह्मादिक हैं.

अथवा अंश शब्दका अर्थ यहां भी वही है, जो पहले (१०।१।२)में किया गया है. अभिप्राय यह है कि जितने प्रदेशमें भगवान्ने मायाको दूर किया, उतने प्रदेशमें अंशसे आपने अवतार लिया. 'कारणं', कारण पदमें एकवचनका तात्पर्य यह है कि बलभद्रजी तो भगवान्के आवेशावतार है. इसलिये वास्तवमें तो वह एक ही अवतार है और वही एक सारे जगत्का कारण है.

क्रियावतारसे प्रकट होनेके कारण बतलाते हैं कि जो उसका

१.परिपालन, २.दुःख दूर,
३.उत्तमता और ४.मोक्ष प्रदान करनेकेलिये

यह अवतार है. उत्तमता(अधिकता)का अर्थ यहां भक्ति प्रदान करना है. इसलिये १.सारे दुष्टोंका विनाश २.सज्जनोंकी रक्षा ३.मोक्ष और ४.भक्ति प्रदान करना, इन चार कार्योंकेलिये भगवान्का अवतार है।।४६।।

लेख: 'भवन्तौ किल' इस श्लोककी व्याख्यामें 'न तूत्पति-स्थितिलयैः' पदका अभिप्राय यह है कि भगवान् उत्पन्न, पालन और संहार करने वाले हैं. यह नहीं है कि वे स्वयं इन तीन धर्म वाले हैं, क्योंकि ऐसा अर्थ करने पर तो लोक जैसे धर्मवाला होनेके कारण भगवान्में न्यूनता(हीनता) आ जाती है. यह कृष्णावतार क्रिया, ज्ञान उभय शक्ति विशिष्ट है. इसलिये 'तत्रांशेनावतीर्णस्य' (१०।१।२) इस

श्लोककी व्याख्याके अनुसार ही यहां भी अंश शब्द का अर्थ है.

न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः।
समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि।।४७।।

श्लोकार्थः आप यद्यपि भजनेवालोंको ही भजते हैं, तथापि आप समदर्शी हैं. आप दोनोंकी दृष्टिमें कोई भेदभाव नहीं है, क्योंकि आप तो सारे ही जगत्के आत्मा और हितकारी हैं. आपकी दृष्टिमें सब प्राणी समान हैं।।४७।।

व्याख्यार्थः फिर तो दुष्टोंका संहार करने और सत्पुरुषोंको मोक्ष देनेसे भगवान् पक्षपात विषमताके कारण भगवान् नहीं रहेंगें, ऐसी शङ्काके उत्तरमें 'न हि वां' यह श्लोक कहते हैं. जगत्के मूल कारणमें ही पक्षपात तथा क्रूरपन भी प्रसिद्ध माना जाता है, किन्तु अवतार ग्रहण किये हुए में तो पक्षपात विषमता ही प्रसिद्ध है. इसलिये उस पक्षपातका निरास(श्रीकृष्णमें विषमता दोष नहीं है, यह सिद्ध किया जाता है) किसीको मारना और किसीको बचाना, ऐसी विषम (पक्षपात) भरी आप दोनोंकी दृष्टि नहीं है, क्योंकि आप सबके मित्र, जगत्की आत्मा और सब प्राणियोंमें समान हैं. इन तीनों कारणोंसे इस विषय पर युक्ति और प्रमाणपूर्वक निर्णय किया जाये, तो यह दोष श्रीकृष्णमें केवल कल्पनामात्र अथवा भ्रमसे दिखाई देता है, जिसका भी दूसरे प्रकारसे स्पष्टीकरण हो जाने पर किसी प्रकारकी अड़चन अथवा योग्यता नहीं है, इसलिये ऐसा ही दोष उचित है और सब जगह पर भी ऐसा ही अर्थ करना चाहिये.

कोई पिता तो अपने पुत्रको मारता है और कोई पुत्रकी स्तुति करता है, ऐसा करनेसे वे पिता पक्षपाती अथवा निर्दयी थोड़े ही हो जाते हैं, वे तो शिक्षाकेलिये ही ऐसा करते हैं. इसी प्रकारसे कोई हाथसे पांवको धोनेवाला, शिरको नहीं धोनेवाला तथा कोई मुण्डन करनेवाला पक्षपाती अथवा विषम नहीं होता, क्योंकि सबकी हितकी दृष्टिसे ही ऐसा करता हैं. उसी प्रकार भगवान् भी कालके पड़े वश हुए जीवोंका उद्धार करनेकेलिये आये हैं और कालको ठगकर जीवोंकी रक्षा करनेके कारण सबके मित्र ही होते हैं, क्योंकि वे तो सबके आत्मा, सखा तथा अत्यन्त दयालु हैं. इसलिये दिखानेकेलिये पक्षपात करते जैसे दीखने पर भी पक्षपात करनेवाले(विषम) नहीं हैं, वे तो वैसा ही करते हैं जिसके करनेसे मित्रता सिद्ध होती है.

जब भगवान्(श्रीकृष्ण, बलदेव) सारे जगत्के ही आत्मा हैं, तो फिर वे

एकके ही पक्षपाती कैसे होंगे? इसलिये जैसा करनेसे अपनी आत्माको सुख हो, वैसा ही करते हैं. अतः निर्घृणता(क्रूरता) दोषका भी निरास दूर होना जान लेना चाहिये और उनका सब प्राणियोंमें समान होना तो जगत्का कारण होनेसे ही सिद्ध है. कितने ही टीकाकार श्लोकमें दिये 'भूत' पदसे रोग आदि भूत आदिकी तरह जो(मिटाने) दूर करने योग्य सहज असुर हैं, उनमें भगवान् सब नहीं है, ऐसा अर्थ करते हैं. वास्तवमें तो'भूत' उत्पन्न हुए सभी प्राणियोंमें भगवान् समान हैं, ऐसा(भूत शब्दके प्रयोग करनेका) अभिप्राय है. यदि ऐसा अभिप्राय नहीं होता तो भगवान् आत्मा ही है, ऐसा कहते, आत्माके समान है, ऐसा नहीं कहते, क्योंकि समानतामें भेद हो सकता है.

यह तो शिक्षा देनेकेलिये दण्ड देना सम्बन्धी स्थितिका वर्णन किया, वरदान देने आदिमें तो भगवान् पक्षपात करते ही होंगे? इसका निराकरण करनेकेलिये कहते हैं कि भगवान् कल्पवृक्ष जैसे स्वभाववाले हैं और उनकी ऐसी आज्ञा है, जो मुझे जैसे भजता है, मैं उसको उसी प्रकारसे भजता हूं. इस कारणसे जो और जैसा मांगता है, उसे वही वस्तु दे देते हैं और नहीं मांगनेवालोंको नहीं भी देते हैं. इसलिये सभीकेलिये न देने पर भी(भगवान्में) कोई विषमता अथवा पक्षपात नहीं है।।४७।।

तावाज्ञापयतां भृत्यं किमहं करवाणि वाम्।
पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते।।४८।।

श्लोकार्थ: मैं तो आपका चरण सेवक हूं. हे प्रभो ! मै आपकी क्या सेवा करूं? आज्ञा दीजिये. यदि मनुष्य आपकी आज्ञा पाने और पालन करनेका अवसर प्राप्त करता है तो, यह उसके ऊपर आपकी परम कृपा है।।४८।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार स्तुति करके वह मालाकार अपने मनकी इच्छा 'तावाज्ञापयतां' इस श्लोकमें निवेदन करता है. यह सुदामा मनसे भगवान्को अपना सर्वस्व निवेदन करके दास हुआ है, किन्तु जब तक उसे दासरूपसे स्वीकार नहीं कर लेते हैं, तब तक दासभाव प्राप्त नहीं होता. भगवान् जब कुछ आज्ञा प्रदान करें, तब ही दासरूपसे अङ्गीकार कर लिया जाता है. इसलिये आप स्वामी दोनों मुझ सेवककेलिये आज्ञा करो, ऐसी प्रार्थना करता है.

वेदमें सभी सेवकोंको आज्ञा दे दी गई है और तुम भी सेवक ही हो, इसलिये तुम्हारेलिये भी वही आज्ञा है. ऐसी शङ्काके उत्तरमें कहता है कि वेदमें

कही हुई सामान्य आज्ञासे अधिक, आप लोगोंकेलिये क्या करूं? क्योंकि दास यदि विशेष आज्ञाका पालन नहीं करता है, तो फिर उसके मुख्य दासभावसे कौन सा पुरुषार्थ सिद्ध हो?

हम दोनों तो पूर्ण काम हैं, हमारेलिये कुछ करनेका नहीं है, ऐसी शङ्का का इस श्लोकके उत्तरार्धमें उत्तर देते हैं कि यह आज्ञाकी प्रार्थना आप पर उपकारकेलिये नहीं है, किन्तु वरदानकी तरह यह तो मेरे ऊपर उपकार करने केलिये हैं और आप मुझको सेवकरूपसे(समान) स्वीकार करके आज्ञा करें. यह तो वरदानसे भी बहुत बड़ा अनुग्रह है, क्योंकि वरदान तो सीमित ही होता है और दासभाव तो निःसीम(सीमारहित) है. दासके तो सारे ही काम योग-क्षेम स्वामीको ही करने होते हैं. इसलिये दासको आज्ञा दीजिये कि दास, सेवकों सहित आप दोनोंकी क्या सेवा करें? 'एष' पदसे यह अभिप्राय है कि श्रद्धा भक्तिके कारण भगवान्का अनुग्रह उस सुदामाके आगे प्रत्यक्षरूपसे प्रकट हुआ है. इसीलिये वह यहां अब आगे(भगवान्)की आज्ञाके बिना ही दोनोंको माला भेंट करेगा. इस कथनसे यह सूचित किया है कि जैसे भगवान्में अलौकिक द्रष्टापन सामर्थ्य है, वैसे ही उनकी शरणागति भी स्वयं सर्वसमर्थ है. इसीलिये भगवान्के कुछ न कहने पर भी वह भगवान्के शरणरूप अलौकिक धर्मसे ही उन दोनोंकी आज्ञाको जान गया।।४८।।

इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतिमानसः।
शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्मालां विरचितां ददौ।।४९।।

श्लोकार्थः हे राजेन्द्र ! प्रसन्न मनवाले सुदामाने इस प्रकार निवेदन करके दोनों भाईयोंकी इच्छाके अनुसार सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंकी मालायें बनाकर उनको पहनाई।।४९।।

व्याख्यार्थः सुदामाने भगवान्की भावी आज्ञाको स्वयं ही जानकर आगे जो किया, वह इस 'इत्यभिप्रेत्य' श्लोकसे कहते हैं. हे राजेन्द्र! यह सम्बोधन इस बातको सूचित करता है कि कितने ही सेवक, स्वामीकी वाञ्छित वस्तुको भी जान जाते हैं. इसलिये सुदामाने भगवान्की इच्छाको जान लिया, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, किन्तु ऐसे सेवक चक्रवर्ती राजाके ही होते हैं. इसलिये यह बात राजेन्द्र(राजाओंका इन्द्र) पदसे कही है.

भगवान्के अभिप्रायको निश्चयरूपसे जान लेने पर उसीको आज्ञा हुई

मानकर, सुदामा मनमें बड़ा प्रसन्न हुआ. तब उसने शास्त्रसे सराहना किये हुए और स्वरूपमें भी सुगन्धसे भरे हुए मोगरा आदिके पुष्पोंसे बनाई हुई एक ही माला भगवान्को अर्पण की अथवा अनेक मालाएं अर्पण की, ऐसा बहुवचनान्त पाठ भी है.'मालाम्' एक माला भगवान्को समर्पित की, ऐसा एकवचनका पाठ करने पर तो बलदेवजीमें भी भगवान्का आवेश होनेके कारण प्रतिबिम्बितकी तरह बलभद्रजीमें भी वह माला दिखाई दी और बहुत सी मालायें गोपोंको दीं, ऐसा समझ लेना चाहिये।।४९।।

ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ रामकृष्णौ सहानुगौ।
प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान्।।५०।।

श्लोकार्थः अपने साथी गोपोंके साथ श्रीकृष्ण और बलदेवजी उन मालाओंको पहनकर बहुत सुशोभित और प्रसन्न हुए. दोनों वरदानी भाईयोंने प्रणत और शरणागत उस सुदामाको उसकी अभिलाषाके अनुसार मुंह मांगे वरदान दिए।।५०।।

व्याख्यार्थः तदनन्तर भगवान्ने उस(सुदामा)को वरदान दिये, यह वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी उन मालाओंसे भगवान् अत्यन्त सुशोभित हुए, यह इस 'ताभिः' श्लोकसे कहते हैं. उन श्रेष्ठ मालाओंको धारण करके भगवान् अत्यधिक शोभायमान् हुए. फिर फल तथा साधनरूप सदानन्द श्रीकृष्ण और रमणकारक बलरामजी, सेवकों बिना किसी विवादके परम आनन्दित हुए और वरोंके देनेवाले दोनों भाइयोंने प्रणत तथा विनीत सुदामाकेलिये कर्ममार्ग और ज्ञानमार्गके अनुसार भी फल पानेके योग्य तथा(प्रपन्नाय) शरणागत होनेसे भक्तिमार्गके अनुकूल भी प्राप्त करनेके योग्य सुदामाको वरदान दिये. वरदाताओंमें श्रेष्ठ, उन दोनोंने अपना वरदान देनेवालोंमें ईश्वरपन(श्रेष्ठता) प्रकट न करके केवल वरदानी भाव ही प्रकट किया और बोले कि हम वर देगें, तू वर मांग. अथवा उसके बिना मांगे ही वर दे दिये।।५०।।

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि।
तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम्।।५१।।

श्लोकार्थः उसने(सुदामाने) भी उन्हीं अखिलात्मामें भक्ति, उनके भक्तोंमें स्नेह और भूतों पर विशेष दया हो, ऐसा वर मांगा।।५१।।

व्याख्यार्थः 'सो अपि' इस श्लोकसे सुदामाका भी अलग वर मांगनेका

वर्णन करते हैं. भगवान्के वरदानके देने और स्वयं कृतकृत्य हो जाने पर भी उसने अचल भक्ति मांगी. विषय(जिसमे भक्ति होनेकी प्रार्थना की)में भेद न हो, इसलिये(तस्मिन्=उसमें) यह एकवचनका प्रयोग किया है. उसके द्वारा मांगी हुई यह भक्ति, ज्ञानका दूसरारूप है, क्योंकि उसने अखिलकी आत्मा अक्षरब्रह्ममें होनेवाली भक्ति मांगी है. यद्यपि इस कथनसे उसकी सबमें भेदबुद्धि तो नष्ट हुई जानी गई, किन्तु फिर भी भक्तिकी श्रेष्ठता तथा सर्वोत्तमता स्थापित(कायम) रखनेकेलिये और भेद सहिष्णु अभेद, भेद सहन न हो सकनेकेलिये वह दो वर और मांगता है, १.भगवद् भक्तोंके साथ स्नेह, मित्रता और जो भगवद्भक्त न हो, उनमें उदासीनता. तथा २.सारे गरीब प्राणियों पर उन सबको कृतार्थ कर देनेवाली अलौकिक दया और जिनका भगवान्ने अपनी दयासे उद्धार किया है, उन अपनेसे उत्कृष्ट प्राणियोंमें अपना विनम्रभाव बना रहनेकी याचना की।।५१।।

लेख: 'सोऽपि' इस श्लोककी व्याख्यामें 'ज्ञानापरपर्यायरूपा' इत्यादि पदोंका तात्पर्य यह है कि उसने अखिलात्मा अक्षरब्रह्ममें होने वाली ज्ञानरूपा भक्ति मांगी, मुख्य भक्तिकी याचना नहीं की, क्योंकि मुख्यभक्ति तो सर्वात्मा आधिदैविककी तरह विराजमान् पुरुषोतममें की जाने वाली भक्ति होती है.

इति तस्मै वरं दत्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम्।
बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः।।५२।।

श्लोकार्थ: यों वर देकर और विशेषमें वंशकी वृद्धि करनेवाली श्री, बल, आयु, यश और कान्ति भी वरमें दे दी, अनन्तर बड़े भ्राताके साथ रवाने हुए।।५२।।

व्याख्यार्थ: उसको भगवान्ने मुंह मांगे वरदान दिये, यह 'इति तस्मै' इस श्लोकसे कहते हैं. इस प्रकार भगवान्ने उसको मन चाहा वरदान देकर फिर स्वयं उसके वंश, वंशकी वृद्धि तथा निरन्तर रहनेवाली अडिग लक्ष्मीका वर दिया. इस प्रकार शरीरसे बाहिर, पदार्थोंका वर देकर शरीरके भीतर रहनेवाले पदार्थोंका भी वर दिया, यह इसी श्लोकके उत्तरार्धमें कहते हैं. शारीरिक शक्ति, दीर्घ आयुष्य, कीर्ति और सौन्दर्य आदिका वर देकर भगवान् उस भक्तके घरसे बाहर पधारे. यहां वर देनेवाले भगवान् ही हैं. बलदेवजी तो उनके साथी मात्र थे. अथवा बाहर पधारते समय बलभद्रजी सहित मुख्यरूप प्रधानतासे भगवान् बाहर पधारे. कंसका वध करके भक्तोंके दुःख मिटानेकेलिये भी भगवान्का अवतार है. इसलिये

सुदामाके घरसे भगवान्का अवतार है, इसलिये सुदामाके घरसे भगवान्का बाहर पधारना आवश्यक था, यह इस कथनसे सूचित किया है।।५२।।

लेख: 'इति तस्मै' इस श्लोकमें अन्वयवर्धिनी शब्दका भाव यह है कि वंशमें उत्तरोत्तर बढते रहनेके स्वभाववाली लक्ष्मीका वर दिया।।५२।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणके दशम स्कन्धके अध्याय ३८,
राजस–प्रमाण–अवान्तर प्रकरणके वैराग्य निरूपक' षष्ठम अध्यायकी
श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणकृत श्रीसुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ.

अध्याय ३९

कुब्जा पर कृपा, धनुष भङ्ग और कंसकी घबराहट

एकोनचत्वारिंशे तु हरेरद्भुतकर्मणः।
स्वासक्त्यर्थं राजसानां वीर्यं तस्य निरूप्यते।।का.१।।

कारिकार्थ: इस उनचालीसवें अध्यायमें तो राजस भक्तोंको भगवान्में आसक्ति सिद्ध होनेके लिए अद्भुत कर्म करनेवाले हरिके वीर्यका निरूपण किया जाता है।।१।।

लेख: यद्यपि इस अध्यायमें भागवतार्थ प्रकरण निबन्धमें धर्मी भगवान् का ही निरूपण है, तो भी धर्मीके अङ्गरूपसे उनके वीर्य गुणके धनुष भंगका निरूपण किया गया है, इसी अभिप्रायसे कारिकामें 'तु' अर्थात् 'तो' शब्दका पाठ है।।१।।

अलौकिकं लौकिकं हि प्रसन्नः कुरुते फलं।
नान्यस्तत्र फलं दातुं शक्नोतीति धनुःकथा।।का.२।।

कारिकार्थ: भगवान् प्रसन्न होकर अलौकिक तथा लौकिक फल प्रदान करते हैं. वहां भगवान्की नगरी मथुरामें कोई अन्य फल देनेमें समर्थ नहीं है, यह सूचित करनेके लिए धनुर्यागकी कथाका वर्णन किया गया है।।२।।

लेख: 'अलौकिक' इस कारिकामें अलौकिक फल भगवान्ने कुब्जाको स्वरूप प्रदान किया और वहांके बनियोंको तथा पुरवासिनियोंको लौकिक फलका दान किया; 'हि' अर्थात् क्योंकि इन दोनों फलोंको भगवान् ही प्रसन्न होने पर प्रदान कर सकते हैं. भगवान्की पुरीमें कोई अन्य देवता फल दे नहीं सकता है, इसलिए धनुषके भंगकी कथा कही है।।२।।

लौकिकालौकिकत्वेन सामर्थ्यं लक्षणं पुनः।
निरूप्यते स्वदोषस्य निवृत्यै च तथापि हि।।का.३।।
न निवर्तत इत्युक्त्वा मल्लरङ्गकथापरा।
एतावताक्लिष्टकर्मा हरिरत्र निरूपितः।।का.४।।

कारिकार्थ: भगवान्ने अपने लौकिक अलौकिकरूपसे सामर्थ्य और कंसको(उसकी मृत्युके) चिह्न इसलिए बतलाए कि वह(कंस) अपना दोष दूर कर ले, किन्तु तो भी उसने अपने दोषोंको नहीं मिटाया. वह तो भगवान्के साथ विरोध करता ही रहा. यह कहकर आगे मल्लोंके अखाड़ेकी कथाका वर्णन किया

जाएगा, जिससे यहां यह प्रदर्शित करेंगे कि भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं ।।३-४ ।।

प्रमाणानां फलं ह्येतत् कार्यं चापि निरूपितं।

कुब्जाप्यत्र धनूरूपा वायुना तु तथा कृता।।का.५।।

कारिकार्थ: भगवान्का लौकिक तथा अलौकिक माहात्म्यको बतलाना ही प्रमाणोंका फल है. इसलिए प्रमाण प्रकरणके अन्तमें भगवान्के लौकिक अलौकिक माहात्म्यका निरूपण करना उचित है, यह 'हि' शब्दका अर्थ है. प्रमाणोंका कार्य कंसको अपनी मृत्युका ज्ञान हो जाता है, इस प्रकारसे प्रमाणोंका फल तथा कार्यका निरूपण किया है. कुब्जा भी धनुषके आकारवाली-कुबड़ी है, जिसको वायुने कूब वाली कर दिया था ।।५ ।।

लेख: 'लक्षणं' अर्थात् कंसको मृत्युरूप चिह्न दिखाई देने पर भी वह दोष करता नहीं रुका तब भगवान्ने उसका वध कर दिया. इसलिए उसको मारनेमें भगवान्का दोष नहीं है. इसका विवरण कारिकामें 'कंस' इत्यादि पदोंसे किया है.

'प्रमाणानामिति' भगवान्के अलौकिक लौकिक महात्म्यका निरूपण करना प्रमाणोंका फल है. इसीलिए प्रमाण प्रकरणके अन्तमें फलका निरूपण करना उचित है. इसी तरहसे प्रमाणोंका कार्य मनुष्यको उसकी मृत्युका ज्ञान करा देना है, क्योंकि पुरुष प्रमाणोंके द्वारा अपनी मृत्युको जानकर सत्साधनों में प्रवृत्त होता है. भावी जन्म-मरणके बन्धनोंसे छूटनेका साधन करने लगता है. इसी अभिप्रायसे कौषीतिकी उपनिषद्में मृत्युके लक्षणोंका वर्णन किया गया है.

वायुके कारणसे कुब्जा कूबसे धनुषके आकारके समान आकारवाली कुरूपिणी थी, किन्तु वास्तवमें तो लक्ष्मीका अंश रूप थी. इसलिए वह अत्यन्त सुन्दरी ही थी. अतः उसके शरीरके जितनासा भाग वायुने कुरूप बना दिया था, उतना ही भाग समान करना था, जिससे भगवान् उसे सम करेंगे, क्योंकि जिस प्रकार लक्ष्मीजीके अन्य अंश भगवान्के भोग्य हैं, वैसे ही यह कुब्जा भी भगवान्के भोग करने योग्य है।।३-५।।

आध्यात्मिको रुद्ररूपः शिष्टौ धनुषि संस्थितौ।

यत् पालकं तस्य खण्डौ साधनं नाशने मतम्।।का.६।।

कारिकार्थ: कालके तीन रूपों मे आध्यात्मिक काल रूद्र रूप है और आधिभौतिक और आधिदैविक काल धनुषमें निवास कर रहे थे. कंस जिस धनुषको अपना पालक(रक्षक) मान रहा था, उसके दोनों खण्डोंको भगवान्ने

उस(कंस) को मारनेमें साधन माना है ।।६ ।।

लेख: 'आध्यात्मिक इति' कंसका उपास्य देव भी उसके प्रतिकूल था, यह कहनेके लिए असुररूपसे उसके आराध्य देव कालके तीन रूपोंका वर्णन करते हैं. कालका आध्यात्मिक रूप रुद्र है, जो रुलानेवाला है अर्थात् मरण काल आध्यात्मिक है, धनुष आधिभौतिक काल रूप और बाहर धनुष पर स्थापित किया हुआ देव कालका आधिदैविक कालरूप है. यह सब, जिसको कंस अपना रक्षक मान रहा था, उसकी मृत्युका भगवान्ने साधन बना लिया।।६।।

कालोऽपि विपरीतोऽभूत् दुर्निमित्तैः पतिर्द्विषाम्।
बुद्धिर्हि न हिता तस्य प्रतिकूलेऽखिलं हरौ।।का.७।।

कारिकार्थ: असुरोंका स्वामी काल भी बुरे-बुरे निमित्त(शकुन) दिखाकर कंसके विपरीत(विरुद्ध) हो गया था, क्योंकि उस कंसकी बुद्धि उसका हित करनेवाली नहीं थी. उसके आचरण भगवान्के प्रति विपरीत होनेके कारण ही यह सब उसके विपरीत हो गया ।।७ ।।

लेख: काल उसके प्रतिकूल था, इसमें हेतुका वर्णन करते हैं कि असुरोंका स्वामी काल अपने तीनों रूपोंसे कंसके विपरीत था. इसलिए उसको वहां बुरे-बुरे निमित्तों-चिह्नोंको दिखलाता था. कंसको उसकी मृत्युका ज्ञान हो गया था, किन्तु फिर भी वह उस(भगवान्) के प्रति विपरीत आचरण करनेमें लगे रहनेका कारण यह था कि उसकी बुद्धि ही उसके हितमें आचरण नहीं करती थी, बुद्धि ही विपरीत हो गई थी. सबके विपरीत हो जानेका कारण यह है कि भगवान्के प्रति विरुद्ध आचरण करने पर सभी विपरीत हो जाते हैं।।७।।

श्रीशुक उवाच

अथ व्रजन् राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम्।
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः।।१।।

श्लोकार्थ: श्रीशुकदेवजीने कहा-तदनन्तर रसका दान करनेवाले भगवान् माधव राजमार्गसे होकर आगे बढ़े. आगे उन्हें एक सुन्दर मुखवाली स्त्री दीख पड़ी जो जवान थी और तीन जगहसे कुबड़ी थी. श्रीकृष्णने उससे हंसकर पूछा।।१।।

व्याख्यार्थ: गत अध्यायमें भगवान्का सुदामाके घरसे बाहर पधारनेका वर्णन किया जा चुका हैं. अब किसी दूसरेके घर पर भगवान्का पधारना सम्भव नहीं था. इसलिये(अथ भिन्न क्रमसे) भगवान् पहलेकी तरह ही नगरीका अवलोकन

करते हुवे आगे पधारे, यह इस 'अथ व्रजन्' श्लोकसे कहते हैं. भगवान्ने राजमार्गसे ही पधारते समय स्त्रीको देखा. स्त्रियां भगवान्की कृपा पात्र हैं. इसलिये भगवान्को सुदामाकी तरह उनके घर जाने आनेका परिश्रम नहीं करना पड़ता है. 'तत्प्रियार्थं सम्भवन् सुरस्त्रियः'(उनका प्रिय करनेकेलिये दोनोंकी स्त्रियों जन्म लो १०।१।२३) इस वाक्यके अनुसार स्त्रियोंको तो भगवान्के अवतारके समय कालने ही भगवदीय बना दिया है. इसलिये कुब्जा भगवान्के मार्गके बीचमें मिल गई. उसकी कूबको दूर करके सुन्दर सीधी युवती बना देना भगवान्का अलौकिक सामर्थ्य है. इस अपने अलौकिक सामर्थ्यको प्रकट करने केलिये भगवान्ने चौराहेमें ही उसकी कूब निकाल(दूर कर) दी. भगवान् माधव लक्ष्मीजीके पति हैं और कुब्जा लक्ष्मीजीका अंश है. इसलिये भगवान्को उसका उद्धार करना चाहिये.

उसका नाम प्रसिद्ध नहीं होनेसे जाति आदि कहकर निरूपण किया है. उस भोग करने योग्य सुन्दर स्त्रीको जो अपने घर पर सुन्दर चन्दन(अङ्गविलेपन) तैयार सिद्ध करके कंसकेलिये ले जानेवाली थी, देखा. भगवान्ने जब मथुरामें प्रवेश किया उसी समय कंस राजाके धर्म(गुण) उससे निकलकर भगवान्में आगये थे. इसीलिये राजाके भोगने योग्य वस्त्र,(चन्दन और मालाओं को भगवान् ने ही अंगीकार किया था. भगवान्ने उस नई अवस्थावाली भी) बड़ी सुन्दर भी, किन्तु पीठ पर कूब होनेके कारण भोगनेके अयोग्य कुब्जाको देखा. पीठमें कूबके कारण भगवान्के दर्शनका पूरा फल नहीं पानेवाली बीच मार्गमें चलती हुई उससे ही भगवान्ने देखकर आगे श्लोकके अनुसार पूछा. भगवान्को देखकर वह ठहरी नहीं, क्योंकि उसको यह निश्चय नहीं था कि भगवान् उसका भोग करेंगे, भक्ति ज्ञानमें उसका अधिकार ही नहीं था और रुककर कोटिकन्दर्प लावण्य भगवान्के दर्शन करने पर कामदेवको पीड़ा देना सम्भव था. इसलिये वह न रुककर चलती सी ही रही.

भगवान् अपनी अद्भुत हंसीके द्वारा कुब्जाकी सारी समझ बूझको हर लेते हुवे और उसको इस बातका ज्ञान कराते हुवे कि भगवान् कृपापात्र जीवको स्वयं ही बुलाकर अपनी ओर लगाते हैं, उससे बोले. उस विचित्र कुबड़ीको जाते देख भगवान्को(लोकरीतिके अनुसार) खूब हंसी आई. भगवान्ने(चली) जाती हुई स्त्रीको क्यों बुलाया? इस शङ्काका समाधान 'रसप्रद' इस विशेषणसे करते हुवे कहते हैं कि भगवान् अपने स्वरूपसे रसका अथवा कामरसका अत्यन्त दान

करनेवाले हैं, इसलिये उसे ठहराकर भगवान् बोले(पूछने लगे)।।१।।

श्रीभगवानुवाच

का त्वं वरोर्वेतदुहानुलेपनं कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः।
देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते न चिरात् भविष्यति।।२।।

श्लोकार्थ: हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ? यह चन्दन अङ्गराग आदि अनुलेपन तुम किसकेलिए लेजा रही हो? यदि उचित समझो तो हमको ठीक-ठीक बतलाओ. हमारी इच्छा है कि तुम यह उत्तम अनुलेपन हम दोनोंकेलिए देओ. ऐसा करनेसे तुम्हारा शीघ्र ही कल्याण होगा ।।२ ।।

व्याख्यार्थ: 'का त्वं' इस श्लोकसे भगवान्के प्रश्नका निरूपण करते हैं. हे वरोरू हे सुन्दर जङ्घनवाली इस सम्बोधनसे यह सूचित किया कि वह भोग करने योग्य थी. 'उह अपिच' यह बता कि यह लेप किसका है? अथवा तु किसकी 'स्त्री' है? हे सुन्दरी यह फिर किया हुआ सम्बोधन इस बातको सूचित करता है कि तुझ पर मेरा विशेष प्रेम होनेसे मैं तुझको भोग करने योग्य बनाऊंगा. वा यह अनादर अर्थमें प्रयोग है अर्थात् यह लेप अथवा तुम किसकी हो, यह जान लेनेसे हमें कोई प्रयोजन नहीं है. जैसा उचित हो, वैसा हमसे ठीक-ठीक कहो.

देखो तो यह अङ्गविलेपन बड़ा उत्तम दिखाई देता है. इसे हमारेलिये दे दो. इस कथनसे भगवान्का यह अभिप्राय है कि अङ्गविलेपन दे देने पर मैं अङ्गका ही दान कर दूंगा. इसी बातको श्लोकके चौथे चरणसे कहते हैं कि इससे तेरा शीघ्र ही कल्याण होगा. यद्यपि देश आदिके यहां उत्तम न होनेसे उसे लेपके दानका फल तत्काल नहीं मिलेगा, तो भी हमारेलिये अनुलेप देते समय हमारे दर्शनका फल तत्काल ही मिल जायेगा, इस अभिप्रायसे ऐसा कहा है।।२।।

सैरन्ध्युवाच

दास्यस्म्यहं सुन्दरवर्य सम्मता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि।
मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति।।३।।

श्लोकार्थ: कुब्जाने कहा-हे सुन्दर श्रेष्ठ ! मैं तीन जगहसे कुबड़ी होनेके कारण त्रिवक्रा और कुब्जा कहलाती हूं. मैं कंसराजाकी दासी हूं. राजाके अंगों में चन्दन, अंगराग लगाना मेरा काम है. मैं अपने काममें बड़ी चतुर हूं इसलिए मेरे बनाए अंगराग और चन्दन पर राजाकी बड़ी प्रीति है. पर आप पुरुषोत्तम हैं. आपके सिवा इस सुगन्धित अङ्गलेपके योग्य कौन है? ।।३ ।।

व्याख्यार्थः वह कुब्जा तो अन्तःपुर(रणवास) की दासी(खवासणी) महलके बाहर रहती थी और पतिविहीन थी. वह 'दास्यस्म्यहं' इस श्लोकमें स्वरूप बतलाती है कि मैं स्वभावसे जातिसे ही दासी हूं. हे सुन्दर पुरुषोंमें उत्तम इस सम्बोधनसे यह सूचित करती है कि आप(भगवान्) कृपा करेंगे तो मैं आपकी ही हो जाऊंगी. राजाकी दासियां भी प्रच्छन्न(छिपी) वैश्या जैसी ही हो जाती हैं. मैं हूं तो दासी, परन्तु केसर कस्तूरी, अगर और तगर इन चार सुगन्धित द्रव्योंको समान भागमें डालकर अनुलेप(चन्दन) बनानेमें मैं सब ही की मानी हुई हूं. सबकी पसन्द की हुई हूं. इस विषयमें अनुलेपका भोग करनेवाला राजा ही प्रमाण है. इसलिये वह राजाकी सम्मति कहती है कि मेरे द्वारा समान सुगन्धी पदार्थोंसे सिद्ध किया अङ्गो पर लगानेका लेप(चन्दन) कंसको अत्यन्त प्रिय है. अतः आप दोनोंके अतिरिक्त(सिवाय) दूसरा कौन इस अनुलेपके योग्य है? भोजपति (कंस) को तो यह केवल प्यारा ही है, वह इसके योग्य नहीं है।।३।।

श्रीशुक उवाच

रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः।

धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम्।।४।।

श्लोकार्थः श्रीशुकदेवजी कहते हैं, महाराज! श्रीकृष्ण, बलदेवजीके रूप, सुकुमारता, माधुर्य रसिकता, मन्द मुसकानसे बातचीत और चितवनने कुब्जाके मनको मोह लिया. इसलिए उसने उनको वह घना चन्दन और अनुलेपन दे दिया।।४।।

व्याख्यार्थः यद्यपि वह चन्दन राजाकेलिये था. राजा उस लेपके योग्य हो या न हो, किन्तु राजाके होते हुवे तो वह अनुलेप किसी अन्यके देने योग्य था ही नहीं, तथापि कामके द्वारा भगवान्के वशीभूत हुई उसने वह लेप भगवान्को दे दिया, यह 'रूपपेशल' इत्यादि श्लोकसे कहते हैं. रूप भगवान्का मेघ जैसा श्यामरूप, स्वरूपकी कोमलता, भोगकी योग्यता माधुर्य, कोमलताका अतिशय गुण अथवा मधुरतापूर्ण हास्य, हास्यपूर्वक सम्भाषण तथा चितवन, ये सब क्रमसे देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण और आत्माको वशमें करनेके साधन हैं. इनके द्वारा स्वरूपसे चलायमान किये हुवे देह, इन्द्रियादिवाली उस कुब्जाने वह गाढ़ा लेप दोनोंके अर्पण किय. श्रीकृष्ण और कुब्जा दोनोंमें मनकी प्रसन्नता होनेके कारण भगवान्ने भी वैसा ही गाढ़ा चन्दन चाहा था, जो कुब्जाने दिया।।४।।

ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना।

सम्प्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ।।५।।

श्लोकार्थः गौरे बलदेवजीके श्याम और श्याम वर्ण श्रीकृष्णके पीले अङ्गराग शरीरके ऊपरके भाग पर कुब्जाने लगाया, जिससे उन दोनोंकी बड़ी शोभा हुई ।।५ ।।

व्याख्यार्थः तब इस प्रकारसे भगवान् वस्त्रों, मालाओं और चन्दनादि तीन प्रकारके अलङ्कारोंसे अलङ्कृत हुवे, यह 'ततः' इस श्लोकसे कहते हैं. अपने श्वेत तथा श्याम रङ्गसे भिन्न श्याम तथा पीले रङ्गके सुन्दर अनुलेपसे बलदेवजी और श्रीकृष्ण अत्यधिक सुशोभित हुवे. शरीरके ऊपरके भागमें लगाया हुआ वह अनुलेप, इस अनुलेपके विशेषणसे यह सूचित किया है कि वह लेप वास्तवमें भगवान्को शोभावर्धक नहीं था. नाभिके ऊपर श्रीकण्ठ तक सभी अङ्गोंमें चन्दन लगाया हुआ था. अनुलेप इस अच्छी प्रकारसे किया था कि जिससे वस्त्रों और माला आदिकी शोभा नष्ट नहीं हुई थी.

वस्त्रों, मालाओंके साथ स्पर्श रगड़से अथवा अपने आप चन्दन पुंछ जाने पर उस लेपसे हुई शोभा स्थिर कैसे रह सकती है? ऐसी शङ्काकी निवृत्तिकेलिये 'अनुरञ्जितौ' प्रसन्न हुवे यह विशेषण दिया है. तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मंजीठ आदिसे वस्त्र रङ्गे जाते हैं, उसी प्रकार उस अनुलेपसे दोनों स्नेहवाले तथा प्रसन्न हुवे।।५।।

प्रसन्नो भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननां।

ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम्।।६।।

श्लोकार्थः तब भगवान्ने अपने दर्शनका फल दिखानेकेलिए उस गर्दन, छाती और कमरसे टेढ़ी सुन्दर मुखवाली कुब्जाको सीधा कर देना चाहा ।।६ ।।

व्याख्यार्थः कुब्जाने भगवान्की आज्ञा मानकर अङ्ग लेप दिया चन्दन लगाया. तब भगवान्ने भावी(आगेका) फल प्राप्त करनेवाला कुछ फल उसी समय प्रदान करनेका प्रारम्भ किया, यह 'प्रसन्नो' इस श्लोकसे कहते हैं. कुब्जाका(भगवान्की अतिशय शोभारूप) कार्य जानकर भगवान् उस पर प्रसन्न हुवे और भगवान्ने सारे फलोंको देनेसे समर्थ होने पर भी पहले दोष दूर करना चाहिये, ऐसा बतलाते हुवे पहले तीन वांकवाली उसको सीधा किया, उसके दोषको ही दूर करनेका मन किया. वह शरीरमें एक ही अङ्गमें कूबवाली नहीं थी,

किन्तु उसके तो गला, पांव और छाती तीनों ही टेढ़े थे. उसके मुखमें बांक नहीं थी. उसका मुख बड़ा सुन्दर था. भगवान्ने प्रसन्न होकर इसके अङ्गोंकी बांकको दूर करूंगा, उसको एक सरीखा करनेका मनमें विचार किया.

यद्यपि ब्रह्माजीकी सृष्टिसे कोई वह शरीरमें तीन स्थानमें बांकवाली ही थी, इसलिये मूल स्वरूपकी उसको एक सरीखी सीधी करनेकी इच्छा नही थी, तो भी भगवान्को उसे सीधी करनेका अपना नवीन मन बनाना(करना) चाहिये. इस कथनसे यह ज्ञात होता है कि राजस भक्त अत्यन्त कठिन होते हैं और इसीलिये भगवान् नवीन मन भी(कार्य भी) करते हैं.

कुब्जाको अङ्गराग लगानेका फल भगवान्ने उसीकी बांक निकालके दे दिया. यह तो शास्त्र विरुद्ध बात है? ऐसी शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि अपने दर्शन होने पर भगवान्ने यह फल दिखाया है और वह भी दर्शनके एक अंशका ही फल था. यह इस 'दर्शन' सप्तमी विभत्तिसे निरूपण है किया है।।६।।

पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यङ्गुल्युत्तानपाणिना।
प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः।।७।।

श्लोकार्थ: श्रीकृष्णने अपने दोनों चरणोंसे कुब्जाके दोनों पैरोंको आगेसे दबाया और दो अंगुलियां उसकी ठोढीमें लगाकर ऊपर एक झटका दिया ।।७।।

व्याख्यार्थ: 'पद्भ्याम्' इस श्लोकसे कुब्जाको सीधी करनेका प्रकार बतलाते हैं. भगवान्ने उसके दोनों पैरोंके आगेके भागोंको अपने चरणोंसे दबाकर उसकी पीठ पर एक श्रीहस्त रख दिया और दूसरे श्रीहस्तको कनिष्ठिका तथा अनामिका अङ्गुलियोंको सिकोड़कर शेष मध्यमा, तर्जनी दो अङ्गुलियोंको लम्बी करके उसकी ठोड़ीको नीचे पकड़कर उसके शरीरको ऊंचा कर दिया.

स्त्रीका इस प्रकार स्पर्श करने पर मनमें अन्य(काम) भाव अवश्य उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है. फिर भगवान्ने व्यग्र हुवे बिना ऐसा कैसे कर दिया? इस शङ्काको दूर करनेकेलिये कहते हैं कि भगवान् स्वयं अच्युत है और इसलिये कुब्जाको भी किसी(शरीरके) अवयवसे नहीं बिगाड़ा, किन्तु ऊपर बताये हुवे अपेक्षित प्रकारसे ही उसे एक सरीखी(सीधी) कर दिया.

सर्वशक्तिमान् भगवान् उसकी दूसरी रीतिसे भी सीधी कर सकते थे, तथापि वह तो चली जा रही थी और उसे काम और मोक्ष दो ही पदार्थ देने थे इसलिये भगवान्ने अपनी दो ही अङ्गुलियोंको ऊंचा उठाकर उसे सीधी कर दी.

अङ्गूठा तो सभी अङ्गुलियोंमें समान है. इस कारणसे अङ्गूठा नहीं मिलाया. इस प्रकार खेलमें जैसे कपड़ेकी पुतलीकी तरह कुब्जाके शरीरकी कूब निकालकर एक समान कर दिया।।७।।

सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा।
मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा।।८।।

श्लोकार्थ: भगवान्के स्पर्शसे तत्काल कुब्जाका शरीर सीधा हो गया, सब अङ्ग समान हो गए और उसी समय स्थूल नितम्ब तथा स्तनोंवाली परम सुन्दरी श्रेष्ठ स्त्री हो गई ।।८ ।।

व्याख्यार्थ: भगवान्का स्पर्श करने तक तो वह श्रेष्ठ स्त्री बन गई किन्तु तदनन्तर पहले जैसी स्थितिको प्राप्त करानेवाले संस्कारके द्वारा पहले जैसी कूबड़ी न हो जाये(नहीं हुई) यह बतलानेकेलिये भगवान्के छोड़ देनेके बाद भी कुब्जाके स्वरूपका इस 'सा तदर्जु' श्लोकसे वर्णन करते हैं. तीन अङ्गोंसे बांकवाली भी वह उसी समय सीधी समान शरीरवाली हो गई.

उसकी कूबके बहुतसे भाग यदि उसके पेटमें चले गये होंगे तो वह कृशोदरी पतले पेटवाली नहीं रही होगी और यदि उन अवयवोंका नाश हो गया हो तो अच्युत(भगवान्) का स्पर्श करना गुणकारी नहीं रहता है, ऐसी शङ्का करके कहते हैं कि वे कूबके अवयव उसके नितम्बों और स्तनोंमें प्रविष्ट हो गये, जिससे वह स्थूल नितम्बों और स्तनोंवाली भोग करने योग्य उत्तम स्त्री हो गई, क्योंकि उसका मुकुन्द(मोक्ष देनेवाले) भगवान्ने स्पर्श किया था. मोक्षदाता भगवान् जैसे सभी मोक्ष प्राप्त करनेवाले जीवोंको उनकी पहलेकी स्थितिका त्याग कराकर अपने आनन्दका दान करते हैं, वैसे ही भगवान्ने उसकी पूर्वकी अवस्थाको दूर करके लक्ष्मीजीकी सी अवस्थाको प्राप्त कर दिया. वह मुकुन्द भगवान्के स्पर्शसे उसी समय उत्तम स्त्री हो गई।।८।।

ततो रूपगुणौदार्यसम्पन्ना प्राह केशवम्।
उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया।।९।।

श्लोकार्थ: तब कामदेवसे उस रूप, उदारता आदि गुणवाली सुन्दरीका मन चञ्चल हो उठा. हंसती हुई वह दुपट्टेका छोर पकड़ कर भगवान्से कहने लगी ।।९ ।।

व्याख्यार्थ: भगवान्ने अपनेलिये ही यह सब काम किया था. इसलिये

उस(कुब्जा)ने भगवान्‌को ही ग्रहण कर(पकड़) लिया यह 'ततो' इस श्लोकसे कहते हैं. उसने सुन्दररूप कमल जैसे गन्धादि गुणोंको और पूर्ण रसको प्राप्त किया. उस अपने पूर्ण रसका दान करनेकी उदारता प्राप्त की. उदारतामें सारे ही गुण रहते हैं. इसलिये सत्य दया आदि भीतरी सभी गुण उसमें आ गये थे. इस प्रकार सभी गुणोंसे भरपूर हुई वह ब्रह्मादि देवोंको भी सुख देनेवाले केशव भगवान्‌से कहने लगी जन्मजात दासी उत्कट मदवाली हुई और फिर भगवान्‌के श्रीअङ्गका स्पर्श भी उसे मिल जानेसे वह निर्भय हो गई और भगवान्‌को कामरसिक अथवा जारकी तरह समझकर उनके दुपट्टीके छोरको खींचकर उसी समय प्रेम पूर्ण हुई वह अपने हृदयको प्रकट करती सी, हंसती सी, यों बोली.

चौराहेमें सबके सामने सभामें उसने ऐसी चेष्टा क्यों की? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि वह कामार्थ हो गई थी. उसका काम भाव उत्पन्न हो गया था. इसलिये उसने किसी बातका विचार नहीं किया।।९।।

एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे।
त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ।।१०।।

श्लोकार्थः हे वीर ! आओ मेरे घर चलो. मैं तुमको यहां छोड़कर अकेली घर नहीं जा सकती. तुमने मेरे मनको मथ डाला है. हे पुरुष श्रेष्ठ ! मुझ दासीपर आप प्रसन्न होवें ।।१० ।।

व्याख्यार्थः 'एहि वीर' इस श्लोकसे कुब्जाके वाक्योंका वर्णन करते हैं. स्त्रियोंको केवल कामरस ही सुहाता है, इसलिये यह कुब्जा भी गोपियोंकी तरह कामको पुरुषार्थ मानती है. भगवान् उस(काम) रसको देनेकेलिये समर्थ हैं, इसलिये हे वीर यह सम्बोधन देकर कहती है कि घर रमण करने योग्य स्थान पर चलिये. यह अपने(स्वयं)को और भगवान्‌को समान मानकर कहती है कि अपन(हम) चलें. इन सब गोपोंको अन्य कार्य हो तो भले ही ये सब न चले, अपना-अपना कार्य करें, किन्तु आप(श्रीकृष्ण) तो(मेरे साथ) अवश्य चलें, इस अभिप्रायसे कहती है, कि मैं आपको यहां छोड़ नहीं सकती हूं. मुझे अपने भोगने योग्य बनाकर नहीं भोगा, तब तो मेरा कार्य ही सिद्ध नहीं हुआ, इसलिये आपका तो त्याग करना दूर रहा, मैं तो आपको त्यागनेका विचार भी नहीं कर सकती.

इस प्रकार मेरा आग्रह करनेका कारण यह है कि आपने मेरे चित्तको उन्मथितकर(मथ) डाला है और इसीलिये मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है. मन्थन करके

मन्थनका फल नवनीत(मक्खन) की तरह भोगना चाहिये. अतः आप मेरा भोग करें, यों भोगकेलिये मेरा आग्रह है, यह तात्पर्य है.

भगवान्से उसने ऐसी धृष्टता कैसे की? इसके उत्तरमें प्रार्थना करती है कि हे स्वामिन! मुझ पर प्रसन्न होवें, क्योंकि आपके प्रसन्न होने पर ही सब इच्छा सिद्ध होती हैं. आप मुझे अपने सामर्थ्यसे निष्काम(कामना रहित) मत कर दीजिये, किन्तु काम पूर्ण(कामवाली) ही बनाईये, क्योंकि आप तो पुरुष ऋषभ श्रेष्ठ हैं. पुरुष ही सभीको निष्काम(काम रहित) नहीं करता, कामसे पूर्ण ही करता है, तो पुरुषोंमें उत्तम पुरुषको तो अत्यधिक ही काम पूर्ण करना चाहिये।।१०।।

एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः।
मुखं च वीक्ष्यानुगानां प्रहसंस्तामुवाच ह।।११।।

श्लोकार्थः उस स्त्रीकी यह प्रार्थना सुनकर बलदेवजीके आगे ही अपने साथी अन्य गोपोंकी ओर देखकर श्रीकृष्णने हंसकर यों कहा।।११।।

व्याख्यार्थः कामसे पीड़ित हुई स्त्रीके इस प्रकारसे ग्रहण करने पर उसकी अवहेलना(उल्लङ्घन) करना अयोग्य होता है. तब भगवान्ने क्या किया? ऐसी आशङ्का होने पर 'एवं स्त्रिया' यह श्लोक कहते हैं. इस प्रकार स्त्री(कुब्जा)के आग्रहपूर्वक प्रार्थना करने पर भगवान् श्रीकृष्ण, जिनका स्त्रियोंके उद्धारकेलिये ही अवतार है, उनने बलभद्रजीको देखते हुवे, उससे कहा. बलदेवजीकी उपस्थिति कहनेका अभिप्राय यह है कि इस विषयको यहीं समाप्त कर दिया जाये अथवा उन(बलदेवजी)की अनुपस्थिति(गैर हाजरी)का चाहना ही जाना है.

तदनन्तर सेवकों(गोपों)के और बलदेवजीके भी मुखकी ओर देखकर अर्थात् गोपलोग आनन्दप्रिय हैं. बलदेवजीको युद्ध प्यारा लगता है और यह कुब्जा कामके वशीभूत है, इन सबकी इच्छाएं पूरी करनी चाहिये, ऐसा विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण हंसीसे उसको सर्वथा मोहित करते हुए यों कहने लगे. श्लोकमें 'ह' यह आश्चर्य बोधक अव्यय है, जो यहां १.स्त्रियोंकी प्रार्थनाको(पूरी करनेमें विलम्ब न करनेवाले भगवान्का कुब्जाकी इच्छाको पूरी करनेमें विलम्ब करना) तथा २.पूर्णानन्द भगवान्का तेरे घर आऊंगा इस प्रकार कहना, यों आश्चर्यको सूचित करनेकेलिये है।।११।।

एष्यामि ते गृहं सुभ्रु पुंसामाधिविकर्षणम्।
साधितार्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम्।।१२।।

श्लोकार्थः हे सुन्दर भ्रोंहोंवाली ! मैं अपना काम पूरा करके पुरुषोंके मानसिक तापको शान्त करनेवाले तुम्हारे घर अवश्य आऊंगा. हे सुन्दरी ! बे-घरबारवाले हम जैसे पथिकोंकेलिए परम आश्रय हो ।।१२।।

व्याख्यार्थः 'एष्यामि' इस श्लोकसे भगवान्के वचन कहते हैं. हे सुन्दर भौंहेवाली! यह कुब्जाका विशेषण उस कुब्जाकी की हुई कामप्रार्थनाके परिहासहंसीको सूचित करनेके अभिप्रायसे दिया है. उसका यह काम रसगुप्त जिस प्रकारसे रहे, इसलिये हंसी करते हुएसे कहते हैं(कि तेरा घर पुरुषोंकी मानसिक पीड़ाको मिटाने(दूर करने) वाला है. जो कोई पुरुष है, उसके मनकी) पीड़ा किसी गुप्त कारणसे होती है, तो तेरा(कुब्जाका) घर ही उसकी उस मनकी पीड़ाको त्याग कराता है.इसीलिए तेरा घर मानसिक पीड़ाको मिटाने वाला है,किन्तु मैं तो अपने आरम्भ किये हुए कामको पूरा करके ही आ सकता हूं, इसलिये विलम्ब होना जरूरी ही है. अपना काम पूरा करके 'साधितार्थः' कंसको मारकर, मैं तेरे घर आऊंगा यह अभिप्राय है.

इसमें क्या प्रमाण है कि आप अपना कार्य समाप्त करनेके बाद पधार ही जाओगे? इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि हम बिना घरवाले बटोहियोंके तुम आश्रयका मुख्य स्थान हो. भगवान्के ये वचन परिहासकेलिये हैं. हम अपने स्वार्थकेलिये ही आयेंगे. इसलिये(हमारे आनेमें) इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये.

'पान्थानां'(बटोहियोंका) इस शब्दके कहनेका अभिप्राय यह है कि कहीं पर तो रहना आवश्यक ही है. इसलिये निवासस्थान पर भी आना आवश्यक ही है, तो फिर यदि कोई घर पर आनेकी प्रार्थना करे तो वहां रहनेमें फिर सन्देह क्या है? और फिर तुम तो मुख्य आश्रयका स्थान हो, हमारे तो तुम खासकर आश्रयके स्थान हो, क्योंकि अपनेलिये ही जिसे उत्पन्न किया हो, सुन्दरी बनाया हो, वह तो आश्रयका मुख्य स्थान होता ही है, इसलिये अवश्य आयेंगे।।१२।।

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन् मार्गे वणिग्जनैः।।
नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः।।१३।।

श्लोकार्थः इस प्रकार मधुर वचनोंसे कुब्जाको विदा करके श्रीकृष्ण राजमार्गमें और आगे पधारे. बाजारमें दुकानदारोंने अनेक भेटें, पान, माला, सुगन्ध, इत्र, फुलेल आदि देकर दोनों भाईयोंका पूजन सत्कार किया ।।१३।।

कुब्जासे इस प्रकार भगवान् और आगे पधारे, यह इस 'सृज्य' श्लोकसे कहते हैं. कुब्जाको विदा करनेमें भगवान्की वाणी तो मीठी थी, किन्तु वह विलम्ब करनेवाली होनेसे उसका अर्थ मधुर नहीं था. उपकार करनेवाली वह एक(अकेली) स्त्री थी, इसलिये श्लोकमें 'ताम्' उस एक स्त्रीको विदा करके यों कहा गया है. ये बनिये दूकानदार लोग तो कुब्जा जैसे नहीं थे. इसलिये इन लोगोंके मनोरथ सिद्ध हों, इसकेलिये उन दूकानदार महाजन लोगोंने राज-मार्गसे पधारनेवाले भगवान्को खाली हाथ बड़ोंके पास जानेके दोषको मिटानेकेलिये भांति-भांतिकी भेंटें, ताम्बूल, माला, सुगन्धि आदि पदार्थों, पूजाके साधनोंसे बलदेवजी सहित पूजा की।।१३।।

तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविन्दन् स्त्रियः।
विस्रस्तवासःकबर-बलयालेख्यमूर्तयः।।१४।।

श्लोकार्थः मार्गमें दोनों भाईयोंके दर्शन करनेवाली सभी स्त्रियोंके मन कामके वेगसे चलायमान् हो उठे. विह्वलताके कारण उनकी वेणियोंके बन्धन शिथिल हो गए. वस्त्र और कंकण खिसक-खिसक कर गिर पड़े. वे चित्रमें लिखी सी खड़ी रहकर भगवान्के दर्शन करतीं रहीं. उन्हें अपनी देहकी सुध-बुध नहीं रही।।१४।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार साधारण पुरुषोंका उपयोग कहकर इस 'तद्दर्शनः' श्लोकसे साधारण स्त्रियोंके उपयोगका वर्णन करते हैं. उन भगवान्के दर्शन करके वे स्त्रियां कामदेवसे उत्पन्न हुईं विह्वलताके कारण अपनी देहका भान भूल गईं. इस कथनसे दृढतापूर्वक प्रपञ्चकी विस्मृतिका वर्णन करते हैं, क्योंकि भगवान्के दर्शनसे नवीन काम उत्पन्न किया है. क्योंकि भगवान्के दर्शन नवीन काम उत्पन्न करता है. एक स्वाभाविक काम तो भगवान्के दर्शन करनेके पहिले था ही और दर्शन करनेके बाद यह नया काम उत्पन्न हो गया. इन दोनों कामोंने मिलकर खलबलाहट उत्पन्न कर दी. मुख्यरूपसे काम भगवान्के दर्शन करने पर ही उत्पन्न हुआ. इसलिये उसको क्षोभ उत्पन्न करनेवाला कहा गया है, जिसके कारण वे अन्य सारे पदार्थोंको भूल जानेकी तो बात ही क्या अपने देहका भी उन्हें स्मरण नहीं(भान नहीं) रह गया था. यह इस श्लोकके उत्तरार्धसे कहते हैं.

वे वस्त्रों तथा आभूषणोंसे सुसज्जित होकर ही भगवान्के दर्शन करने आई थीं, किन्तु भगवान्के दर्शनसे उत्पन्न हुई कामजनित विह्वलताके कारण

उनके सब आभूषण अपने आप खिसक-खिसककर पृथिवी पर गिर पड़े. वस्त्रों और आभूषणों दोनोंका उपयोग न रहनेके कारण वस्त्र, आभूषण, केशपास और कंकण आदि सारे आभूषण शिथिल हो गये, नीचे गिर गये. चित्रमें लिखी सी मूर्तिवाली उन सबकी सारी क्रियाएं भी रुक गईं. पहले कही गईं की अपेक्षा इनके सारे व्यापारोंका बन्द हो जाना अधिक कहा है।।१४।।

लेख: 'तद्दर्शनः' इस श्लोककी व्याख्यामें 'पूर्वापेक्षया' पदका तात्पर्य यह है कि पहले श्लोकमें कहे गए बनियोंकी अपेक्षा अथवा पहले अडतीसवें अध्यायमें वर्णन की गई स्त्रियोंकी अपेक्षा इन स्त्रियोंमें यह अधिकता थी कि इनके तो सारे ही काम रुक गए।।१४।।

ततः पौरान् पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः।
तस्मिन् प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम्।।१५।।

श्लोकार्थ: तदनन्तर पुरवासियोंने धनुषभवनको पूछते हुए श्रीकृष्ण आगे पधारे और लोगोंके द्वारा बताए हुए उस धनुषके स्थानमें जाकर भगवान्ने वहां इन्द्रधनुषके समान एक बहुत बड़ा तथा विशाल विचित्र धनुषको देखा ।।१५।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकारसे आधिभौतिक रूपवाले बनियोंको तथा स्त्रियों की प्रपञ्चविस्मृतिका वर्णन करके आधिदैविकरूपवाले धनुषके देवता तथा धनुषके रक्षकोंको बिना किसी प्रेरणाके भय अथवा प्रपञ्चविस्मृतिको उत्पन्न कराते हुवे भगवान् धनुषको तोड़नेकेलिये प्रवृत्त हुवे, यह इस 'ततः पौरान्' श्लोकसे निरूपण किया जाता है. यद्यपि वहां धनुर्यागको देखनेकेलिये गांवोंके बहुतसे लोग इकट्ठे थे, किन्तु उनसे न पूछकर, भगवान्ने पुरवासियोंसे ही धनुर्याग जहां होगा, वह स्थान पूछा, क्योंकि पुरवासी ग्रामवासियोंसे ज्यादा जानते हैं. इसलिये उनसे ही धनुषका स्थान पूछकर उसके भीतर पधारे.

धनुषकी पूजाका स्थान तो भयानक होना चाहिये, भगवान् उसमें कैसे पधारे? इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान् अच्युत हैं और निर्भय हैं. उन पुरवासियोंका भगवान्को दिया हुआ उत्तर अपने आप अर्थसे समझमें आ जाता है, इसलिये उनके उत्तरको यहां अलग नहीं कहा है.

अथवा सारे काम गुप्त रहें, अपनी ईश्वरता प्रकट न होने दें, ऐसा ही करना चाहिये. लोगोंके इस भ्रमको बना रहने देनेकेलिये भगवान्ने उनसे सब जानते हुवे भी ऐसा प्रश्न किया. इस प्रकार पूछते हुवे भगवान्ने धनुषकी पूजाके

स्थानमें प्रवेश किया और वहां धनुषको देखा. ऐसा प्रतीत होता है कि कंसके इष्ट 'उपास्य-देवता'ने ही कंससे यों कहकर, कि जबतक यह धनुष तेरे(कंसके) यहां रहेगा तब तक तेरी हार(पराजय) नहीं होगी, इस धनुषको कंसके यहां रखा होगा, क्योंकि ऐसा यदि होता तो भगवान् उस(धनुष)का भङ्ग नहीं करते और कंस भी मरनेके भयके समय उसकी पूजा नहीं करता.

यह धनुष इन्द्रके धनुषकी तरह विचित्र और स्थूल(मोटा) था. इन्द्रके धनुषकी अपेक्षा भी यह अद्भुत था, क्योंकि इन्द्रधनुष तो एक प्रकारका ही होता है और यह तो अनेक प्रकारका 'अद्भुत' था।।१५।।

लेख: 'ततः पौरान्'की व्याख्यामें 'अधिभूतरूपाणाम्' इत्यादि पदोंका अभिप्राय यह है कि केवल देहके उपयोगी पान आदिके देनेसे बनिए और देहकी विस्मृतिके कथनसे स्त्रियां आधिभौतिक हैं. देहकी प्रधानतासे ये आधिभौतिक हैं और इसीलिए श्लोकमें 'आत्मानम्-आत्मा' शब्दकी देहरूपसे व्याख्या की है.

'आधिदैविकोंका' इत्यादिका तात्पर्य यह है कि जिसमें देवताका आह्वाहन किया है, वह धनुष और हाथोंमें शस्त्र धारण करके उसकी रक्षा करनेवाले धनुःरक्षकों तथा उन आह्वाहन किए हुए देवता, जिनका आगेके 'पुरुषः' इस श्लोकमें विचार किया जायगा, दोनोंका ही भय तथा प्रपंचकी विस्मृति, दोनों उत्पन्न करनेकेलिए भगवान्ने धनुष तोड़नेकेलिए प्रवृत्ति की.

'तथेति' यहां देवता और रक्षकोंको भय तथा प्रपंचकी विस्मृति करानेका प्रयोजन यह है कि भयभीत और प्रपंचको भूले हुए, वे कंसको उसी समय भगवान्के साथ युद्ध करनेकेलिए प्रेरित न करें, क्योंकि यदि उसी समय कंसको युद्धकेलिए प्रेरित कर देते हैं, तो भगवान् उसे, उसी समय मार देंगे और तब तो कुवलयापीड़ और मल्लोंके वधकी लीला आदि न हो सकेगी।।१५।।

पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत्।
वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे।।१६।।

श्लोकार्थ: बहुतसे सिपाही उस समय समृद्धिशाली पूजनीय धनुषकी रक्षा कर रहे थे. वे रक्षक रोकते ही रहे, किन्तु भगवान् श्रीकृष्णने लीलापूर्वक उस धनुषको बलात्(जबरदस्ती) उठा लिया।।१६।।

व्याख्यार्थ: वह धनुष कंसका प्राणरूप था. इसलिये उसने बहुतसे पुरुषोंको उसकी रक्षार्थ नियुक्त कर रखे थे. वे रक्षक(सैनिक) लोग शस्त्रधारी

तथा दैत्योंका हित चाहनेवाले देवता थे. यह अर्थ बहुतसे पुरुषोंके द्वारा रक्षा किया गया ''बहुभिः पुरुषैर्गुप्तम्'' इन पदोंसे प्रकट होता है. वह धनुष वस्त्र भूषणोंसे पूजा किया गया था, इस विशेषणसे धनुषमें देवताकी उपस्थिति और अलौकिक शक्तिवाला था, इस विशेषणसे उस 'धनुः'का अत्यधिक प्रभाव भी कहा गया है. फिर उस धनुषको देखनेकेलिये अदृश्यरूपसे धनुर्गृहके भीतर पधारे हुवे भगवान्ने कंसका वध करनेकेलिये ही जिनका अवतार है, सो सारे रक्षक पुरुषोंके रोकने पर भी बलपूर्वक उन्हें हटाकर तथा अपने दोनों श्रीचरणोंसे उसकी पूजाके स्थान पर आक्रमण(चढ़)कर धनुषको उठा लिया(पकड़ लिया)।।१६।।

करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्जं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम्।
नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः।।१७।।

श्लोकार्थः महापराक्रमी गजराज जैसे ईखके दो टुकड़े कर डाले, वैसे ही श्रीकृष्णने सब लोगोंके सामने ही उस धनुषको लीलापूर्वक बाएं हाथसे उठा लिया और उस पर डोरी चढ़ा कर खींचकर, क्षणमात्रमें बीचमेंसे तोड़ डाला।।१७।।

व्याख्यार्थः 'करेण वामेन' इस श्लोकसे धनुषको पकड़नेका प्रकार बतलाते हुवे उसका तोड़ना कहते हैं. धनुष जब चढ़ाया जाता है तब बाएं हाथमें ही रखा जाता है. पिछले श्लोक १६के अनुसार दाये हाथसे भी पकड़कर धनुषका तिरस्कार प्रदर्शित करने तथा उसमें दैत्योंका अंश होने(रहने)के कारणसे भी बाएं हाथसे ही उसे पकड़ा. उसके रक्षक युद्धकेलिये प्रवृत्त न होवें इसलिये उससे विशाल होने पर भी उसे लीलापूर्वक ही ऊंचा उठा लिया. उनके सामने ही यों लीलापूर्वक उठाने पर भी यदि कोई रक्षक युद्ध करनेकेलिये तैयार हो जाता है तो उसको मार देनेमें भगवान्का कोई दोष नहीं है, यह प्रदर्शित करनेकेलिये ही उसे क्रीडापूर्वक उठाया और चढा लिया.

भगवान्ने उसे क्षणभरमें चढा लिया. प्रत्यञ्चा(डोरी) उसमें थी ही. डौरीको खींचते समय धनुषके टूट जानेके भयके न रहनेके कारण उसे ऊपरके भागसे झुकाया, जो थोड़े ही समयमें झुकाया जा सकता है.

अथवा 'अनिमिषेण' मनुष्योंके एक टकटकीसे देखते हुवे भगवान्ने उसे उठाकर चढा लिया. फिर उसे बीचमेंसे पकड़कर खेंचकर दुबारा न जुड़ सके, इस प्रकार बीचके भाग मैंसे ही तोड़ दिया. भगवान्ने दृढ़ मुठ्ठीसे धनुषको खींचकर और फिर मुठ्ठीके बीचके भागको ढीला करके, जैसा कि धनुषको तोड़नेके समय

किया जाता है, धनुषको मध्यभागसे तोड़ दिया. अच्छी तरहसे तोड़ देनेका तात्पर्य यह है कि उसके टुकड़े-टुकड़े न करके, केवल दो भाग कर दिये. यह सब कुछ करनेमें भगवान्‌को कुछ परिश्रम नहीं हुआ, यह बतलानेकेलिये दृष्टान्त कहते हैं कि जैसे मदोन्मत्त हाथी, बिना जाने ही सूखे ईखको सहजमें तोड़ देता है, वैसे ही बिना परिश्रम ही तोड़ दिया(दो टुकड़े कर दिये).

केवल दृष्टान्त देनेसे ही साध्य(सिद्ध की जाने योग्य) वस्तुकी सिद्धि नहीं है, किन्तु दृष्टान्तके विषय(दार्ष्टान्तिक)में उचित घटने पर ही साध्य वस्तुकी सिद्धि हो सकती है. इसलिये बालक श्रीकृष्णने बिना परिश्रमके ही धनुषको कैसे तोड़ दिया? ऐसी शङ्कामें 'उरुक्रमः' लम्बी डग भरने(छलांग मारने)वाले ऐसा भगवान्‌का विशेषण दिया है. जैसा भगवान्‌ने वामनावतारमें किया था, वैसा ही यहां भी करके अनायास ही धनुषके दो टुकड़े कर दिये।।१७।।

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः।
पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत्।।१८।।

श्लोकार्थ: उस धनुषके टूटनेका प्रचण्ड शब्द सारे आकाशमें (अन्तरिक्ष में) और दशों दिशाओंमें गूंज उठा. उस भयानक शब्दको सुनकर कंसका हृदय भयके मारे कांप उठा।।१८।।

व्याख्यार्थ: तब तो वह दैवगतिसे ही बीचमेंसे दो टुकड़े होकर टूट गया होगा? ऐसी शङ्कामें उस धनुषके टूटनेकी महिमाका वर्णन इस 'धनुषो' श्लोकसे करते हैं. वह धीरेसे टूटता तो गम्भीर(भारी) शब्द नहीं होता. उस समय वह शब्द किसी दूसरे कारणसे नहीं हुआ था, क्योंकि श्लोकमें धनुषके टूटनेसे हुआ शब्द ऐसा लिखा है. 'भाज्यमानस्य' यह वर्तमान कालमें होनेवाला ''शानच्'' कृदन्तके प्रयोगसे ज्ञात होता है कि वह भारी शब्द धनुषके टूटनेसे ही हुआ था. उस शब्दसे धनुषके रहनेके स्थानको भर दिया ऐसा कहनेकेलिये आकाश ब्रह्माण्डके बीचका भाग(रोदसी) पृथ्वी तथा स्वर्ग और चारों दिशाओंको भर दिया यह बतलाया है. इसलिये सभी जगह उस धनुषके टूटनेका शब्द ही सुनाई पड़ता था, अन्य कोई सा भी शब्द नहीं सुननेमें आता था.

भगवान्‌ने इस धनुषको शीघ्र ही तोड़ दिया था, इसलिये वे धनुषके रक्षक लोग पहले रोक नहीं सके थे और तोड़ देने बाद तो उस शब्दसे ही बहुत समय तक आश्चर्यमें पड़ जानेके कारणसे नहीं रोक सके. इसलिये धनुषका भङ्ग(टूटना)

बिना किसी रुकावटके हो गया. धनुषके तोड़नेका प्रयोजन कंसको भय उत्पन्न करना था और वह 'कंसको भय' हो भी गया कि उस प्रचण्ड शब्दको सुनकर कंस अत्यन्त भयभीत हो गया. अब मैं निकट भविष्यमें ही अपने कर्मोंका फल पाऊंगा ऐसा विचारकर, वह बड़ा भयभीत हुआ।।१८।।

तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः।
ग्रहीतुकामा आवव्रुर्गृह्यतां बध्यतामिति।।१९।।

श्लोकार्थः उस धनुषकी रक्षाकेलिए वहां उपस्थित सेवकों सहित कंसके सैनिकोंने कुपित हो, शस्त्रोंको उठाकर श्रीकृष्णको पकड़नेकेलिए 'पकड़ो, मारो' कहते हुए चारों ओरसे घेर लिया।।१९।।

व्याख्यार्थः 'तद्रक्षिणः' इस श्लोकसे आगेके तीन श्लोकोंमें भीतर धनुषकी पूजाके स्थानमें तथा बाहर पधारते समय दोनों स्थानों पर रोकनेवाले रक्षकोंको भगवान्ने हटा दिया, यह कहते हैं. पहले तो धनुषके घरमें ही खड़े हुवे धनुषके रक्षकोंने श्रीकृष्ण, बलदेवजी और गोपजनोंको पकड़नेकी इच्छा की. वे कुपित हो उठे और श्रीकृष्णने धनुष तोड़ दिया, यह अन्याय किया, ऐसा मानकर मूर्ख आततायी उन लोगोंने शस्त्र उठा लिये और श्रीकृष्ण आदिको चारों ओरसे घेर लिया. इस प्रकार उन दुष्टोंके मानसिक तथा शारीरिक बुरी चेष्टाओंका वर्णन करके वाणीसे की हुई नीचताको कहते हैं. वे कहने लगे कि पकड़ो और पकड़े हुवेको बांध लो।।१९।।

अथ तान् दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ।
क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः।।२०।।

श्लोकार्थः उन लोगोंके बुरे भावोंको जानकर और अपने चारों और आते देखकर क्रोध भरे श्रीकृष्ण-बलदेवने धनुषके दोनों टुकड़े उठा लिए और उनसे ही उन सैनिकोंको मारने लगे।।२०।।

व्याख्यार्थः तब भगवान्ने उनके विरोधको समझकर और इतने होने पर भी ये नहीं मानेंगे, ऐसे उनके दुष्ट अभिप्रायको जानकर अन्य प्रकारसे क्रीडाका त्याग करके अपना पुरुषार्थ प्रकट किया और गोपोंकी रक्षा करने और कंसको अपना ऐश्वर्य बतलानेमें प्रवृत्ति की, यह इस 'अथ तान्' श्लोकसे कहते हैं. बलदेवजी तथा ब्रह्मा और शिवके भी आराध्य(उनसे भी बड़े) केशव भगवान्ने उन रक्षकोंको भक्तों पर किये हुवे विरोधको जानकर, उन पर दोनों कुपित हो गये. यह

सोच करके कि साधनके द्वारा ही मरना उचित है और वे शस्त्रधारी ही थे, इसलिये दोनों भाईयोंने धनुषके दोनों टुकड़ोंको एक-एकने उठा लिया और यह बतलाते हुवे कि जिसकी तुम लोग अब तक रक्षा कर रहे थे, वह ही तुम्हारा नाश कर रहा है, उनसे ही उनको, दुष्टोंको, औरोंको तथा आधिदैविक देवताओं को भी मारने लग गये. 'धन्वन्' शब्द धनुषका पर्यायवाची भी है, क्योंकि धनुषसे हमने पृथ्वी तथा अन्य लड़ाईयां जीती हैं और ''धन्वन्निव प्रपा असीति'' रणमें तू प्याऊकी तरह है, इस प्रयोगसे 'धन्वन्' शब्द देशविशेष वाचक भी होता है।।२०।।

बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात् ततः।
निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसम्पदः।।२१।।

श्लोकार्थ: यह सब सुनकर कंसने उन दोनोंको पकड़नेकेलिए बहुत सेना भेजी. कृष्ण-बलदेवने उस सारी सेनाको मार डाला. फिर वे उस धनुषभवनसे बाहर निकलकर प्रसन्नतापूर्वक इधर-उधर घूमकर नगरीका वैभव और शोभा देखते हुए सैर करने लगे ।।२१।।

इस प्रकार उन धनुषकी रक्षा करनेवाले देवों तथा मनुष्योंको मारकर बाहर निकलनेको तैयार हो गये. उसी समय इस कोलहलको सुनकर कंसके द्वारा भेजी हुई सेनाको भी सहजमें मारकर दोनों ही बाहर निकले, यह इस 'बलं च' श्लोकसे कहते हैं. हाथी, घोड़े, रथ और पैदल, इस प्रकार कंसकी भेजी हुई चतुरङ्गिणी सेनाको मारकर धनुषके घरके द्वारसे बाहर निकले और युद्धके आवेशको त्यागकर, वे दोनों ही क्षणमात्रमें पूर्ववत् मनोहररूपवाले हो गये. इसलिये मानों इनको युद्धका कुछ समाचार भी मालूम न हो ऐसे प्रसन्न होकर नगरीका वैभव और शोभाको अवलोकन करते हुवे घुमने(विचरने) लगे. वहां नगरीमें पुरुषों और स्त्रियोंके(उनके दर्शन करके) पहले जैसे ही व्यवहार होने लग गये, इसलिये इसके विषयमें विशेष नहीं कहा है।।२१।।

तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान्।
कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुरात् शकटमीयतुः।।२२।।
तयोस्तद्दभूतं वीर्यं निशम्य पुरवासिनः।
तेजः प्रागल्भ्यं रूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ।।२३।।

श्लोकार्थ: दोनों भाईयोंके धनुषको तोड़नेके अद्भुत पराक्रम, तेज ढिढाई और रूपको देखकर पुरवासियोंने समझा कि ये दोनों कोई श्रेष्ठ देवता हैं. कृष्ण

और बलराम इस प्रकार गोपोंके साथ स्वेच्छापूर्वक नगरींमें घूमते फिरते रहे. इतनेमें सूर्यदेव अस्त हो गए और गोपों सहित दोनों भाई पुरीसे लौटकर अपने डेरेमें आ गए ।।२२-२३ ।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक घूमनेवाले दोनोंके आगे भी आनन्दकी सिद्धिकेलिये सैर करते-करते ही सूर्यदेव अस्त हो गये, यह इस 'तयोर्विचरतोः' श्लोकसे कहते हैं. 'स्वैरम्' (इच्छानुसार) पदसे मर्यादाके विपरीत लीलाको भी सूचित किया है. दैत्यके अंशवालोंको मारा, कंसके हितैषियोंको लूटा और कामसे अत्यन्त पीड़ित स्त्रियोंको सन्तोष दिया. इस प्रकार उनके कृपारूप और दण्डरूप कार्य करते हुवे सूर्य अस्त हो गया. यहां कई टीकाकार कहते हैं कि सूर्यदेव भयभीत होकर अस्त हो गये. तब भगवान् भी अपने डेरेमें आ गये. यहां कहीं इसीसे मेल खाता हुआ बीचमें एक श्लोक सुननेमें आता है।।२२।।

जब कृष्ण-बलराम सेनाको मारकर धनुःशालासे बाहर पधारे, लोगोंकी भगवान्में आसक्ति होनेकेलिये उनको भगवान्के माहात्म्यका ज्ञान भी हुआ. यह धनुष तोड़नारूप भगवान्का पराक्रम है. फिर जहां-जहां भगवान् पधारते, तहां-तहां उनके दर्शन करनेवाली जनता, इन दोनोंने धनुषको तोड़ा है, इस तरह सब जगह ही कहने लगीं. उसको सुनकर और उनके तेज शरीरकी क्रान्तिकी प्रगल्भताको और कोटी कामदेवको लज्जित करनेवाले रूपको देखकर सभी नगरवासी उनको देवोंमें उत्तम मानने लगे. जैसे 'तामस-प्रमाण' में 'गोपवृद्धाश्च गोपश्च' बूढे-बूढे तामसी गोप गोपियोंको 'जन्मप्रकरण'से तीसरे तामस-प्रमेय उपप्रकरणमें ज्ञान होना बतलाया है, वैसे ही इस दूसरे 'राजस प्रकरण'में ज्ञान प्राप्त करने योग्य राजस जीवों(अधिकारियों)को भगवान्के माहात्म्यका ज्ञान दूसरे 'राजसप्रमेय उपप्रकरण'में होना उचित था, किन्तु उन राजसोंको तो इस प्रथम 'प्रमाण उपप्रकरण'में ही(ज्ञान) होना कहा गया है. वास्तवमें राजसोंने भी भगवान्के गोकुलमें किये चरित्र सुने ही हैं. इसलिये दूसरा 'प्रमेय प्रकरण' ही है. आगे भी दूसरे प्रकरणमें श्रीकृष्ण और बलदेवको(यहां पधारे हुवेको) मैं देवोत्तम मानता हूं, ऐसा कहेंगे.

कितने ही टीकाकार इस श्लोकको विरुद्ध मानते हैं, क्योंकि राजस जीवोंको ऐसा ज्ञान इस प्रकरणमें होना उचित नहीं है, इसलिये विरोधवाला है.

अपनी(मथुरावासियोंकी) अपेक्षा देव उत्तम हैं और उन देवोंसे भी ये दोनों उत्तम हैं, ऐसा कहेंगे. इस प्रकार यह कहा है कि सारे ब्रह्माण्डमें ये दोनों भाई सबसे उत्तम हैं.

तदनन्तर सूर्यको अस्त हुआ देखकर गोपोंके सहित श्रीकृष्ण-बलदेव पुरीको देखना छोड़कर छकड़ोंके स्थान पर, जहां नन्दरायजी आदि ठहरे थे, पधार आये।।२३।।

लेख: 'तयोस्तदद्भुतम्' इस श्लोककी व्याख्यामें 'तामसास्तृतीये' पदोंका तात्पर्य यह है कि जन्मप्रकरणको लेकर तृतीयप्रकरण गिनने पर 'तामस प्रमेयप्रकरण' है।।२३।।

गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन्।
सम्पश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान् नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः।।२४।।

श्लोकार्थ: श्रीकृष्णकी यात्राके समय विरहसे व्याकुल गोपियोंने मथुरावासियोंके सौभाग्यके विषयमें जो कुछ कहा था, आशिषें चाही थीं, वह सब सत्य ही हुआ, क्योंकि स्वयं(लक्ष्मी)को भजनेवाले अन्य देवोंको भी छोड़कर लक्ष्मीजी, जिनको अनन्य भावसे भजती हैं, उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके मनोहर श्यामस्वरूपकी शोभाको उन्होंने देखा।।२४।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार भगवान्के चरित्रका वर्णन करके इस प्रकरणके 'प्रमाण' प्रकरण होनेके कारण भगवान्के चरित्रमें प्रमाण देते हुवे भगवान्के माहात्म्यका निरूपण इस 'गोप्यः' श्लोकसे करते हैं. वहां गोकुलमें गोपियोंने जो कुछ जितना भी कहा था, उतना ही सब यहां मथुरामें हुआ. युद्ध आदि तो दोषको दूर करनेवाले हैं, इसलिये उनका वर्णन सिद्ध होना रूपसे नहीं मानकर नहीं किया है. इस कथनसे इस दोषकी भी निवृत्ति हो गई कि भगवान्ने गोपियोंका त्याग करके और उनके दुःखित रहते हुवे दूसरा काम क्यों किया? क्योंकि गोपियोंकी ऐसी चाही हुई आशिषोंको सत्य करना ही चाहिये था. इसलिये उनके ही वचनोंको सत्य करनेकेलिये भगवान्ने वैसा किया, क्योंकि भगवान् मुकुन्द(मोक्षदाता) हैं और यदि गोपियोंके वचन सत्य न हो तब तो उनको भगवान् मोक्ष, असत्यवादी होनेके कारण नहीं दे सके. इसी कारणसे गोपियोंके दुःखित रहते हुवे भी अन्य कार्य किये हैं.

भगवान्ने उन गोपियोंको निरोध सिद्ध कर दिया था. इसलिये उस समय

भी(भगवान् मुकुन्दका वियोग होने पर भी) उन्होंने मथुरानगरकी स्त्रियोंके साथ ईर्ष्या, द्वेष न करके उनका हित चाह और साक्षात् हित करनेमें असमर्थके कारण वाणीके द्वारा ही उनकी आशिषें(मङ्गल कामनाएं) चाहीं. वे आशिषें ही उन पुरवासियोंकेलिये मथुरामें फलीभूत(सफल) हुईं. उनकी वे आशिषें भी भगवान्को ही सत्य करनी चाहिये थी, किन्तु भगवान्ने उन्हें सत्य नहीं किया. वे तो आनुषङ्गिक पुरुषोंके भूषण(मुकुट मणिरूप) भगवान्के श्रीअङ्गोंकी शोभा निखरनेवाले उन लोगोंकेलिये फलीभूत हो गईं. ''आज वहां अवश्य(निश्चय) ही दृष्टिको बड़ा उत्सव होगा(१०।३६।२४), मथुरा नगरकी स्त्रियोंकेलिये इस रात्रिका प्रभात अच्छा होगा'' इस प्रकारसे गोपियोंने सामान्यरीति और विशेष रूपसे जो विचार किया था, वह सत्य(सफल) ही हुआ.

औरोंके वचनकी सत्यताका वर्णन करके स्त्रियोंके ही वाक्योंका इस प्रकार सत्य होना कैसे निरूपण किया ? इसका उत्तर, श्लोकके चौथे चरणसे देते हुवे कहते हैं कि पहले तो 'वाणी' शब्द ही स्त्रीलिङ्ग है और स्त्रियोंका मूलरूप 'लक्ष्मीजी' भगवान्की पत्नी हैं. इसलिये स्त्रीपक्षकी दृढ़ताकेलिये स्त्रियां ही इस विषयमें मुख्य प्रमाण हैं. उन लक्ष्मीजीने अपनी(लक्ष्मीजीकी) सेवाकेलिये निश्चयरूपसे स्वयं आये हुवे अन्य ब्रह्मादि देवोंको छोड़कर भगवान्को ही अपने रहनेका स्थान बनाया है. यह ही मेरे रहनेका स्थान हो, ऐसा चाहा है. वे लक्ष्मीजी ही सारी गोपियां हैं. उनके सारे ही वाक्य यहां सफल हुवे हैं और कुछ नहीं हुआ है।।२४।।

लेख: 'गोप्यो मुकुन्दविगमे' इस श्लोककी व्याख्यामें 'आदौ वाक्' इत्यादिका तात्पर्य यह है कि पहले तो वाणी शब्द ही स्त्रीलिंग है. इसलिए उन गोपीजनोंकी वाणी की ही सत्यताका निरूपण किया है. उनके कार्यकी सफलता नहीं कही है, क्योंकि उन्होंने भगवान्को मथुरा जानेसे रोकनारूप कार्य किया था, यदि वह कार्य सत्य होता तो भगवान् मथुरा पधारते ही नहीं. इसलिए उनकी कृति सत्य नहीं होनेसे भगवान् रुके नहीं, मथुरा पधार ही गए. अतः उनकी वाणी ही सत्य हुई, अन्य उनका कार्य सत्य नहीं हुआ, ऐसा अर्थ है।।२४।।

अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम्।
ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम्।।२५।।

श्लोकार्थ: वहां जाकर श्रीकृष्ण-बलदेव दोनोंने हाथ पांव धोए और दूध मिला अन्न, खीर आदिका भोजन किया. फिर कंसके वाञ्छित कार्यको, जिसे

वह करना चाहता था , जानकर रात सुखपूर्वक बिताई ।।२५।।

व्याख्यार्थ: डेरेमें पधारकर भगवान्ने जो कार्य किया, उसका वर्णन इस 'अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ' श्लोकसे करते हैं. अपने दोनों चरणोंको धोकर फिर उन दोनों भाईयोंने दूध मिला भात, दूधभात(धीर) अथवा दूधपाक अथवा दूध और पूए अथवा दूधमें सिद्ध पका हुआ विशेष प्रकारका अन्न अथवा दूधसे सने हुवे अन्नका भोजन किया. जैसे अन्य गांव जाते समय दही-चावल खाकर जाया करते हैं, उसी प्रकार पहले पहल नगरमें जाकर आने पर दूधभातका भोजन मुख्य होता है. कई टीकाकारोंने हल्का भोजन दूध-भातका किया, ऐसा अर्थ किया है. फिर उस रात्रिको सुखपूर्वक व्यतीत किया. इस कथनसे कंसमें रहनेवाली बेचेनी और भगवान्में विद्यमान् आनन्द सुखका अनुवाद किया है.

माता-पिताके बन्धनमें पड़े रहते, उनको छुड़ाये बिना सुखपूर्वक कैसे रह सके? ऐसी शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि कंसके अभिप्रायको जानकर सुखपूर्वक रात बिताई.

तात्पर्य यह है, कि भगवान् यह विचारकर कंस ही वैसा कार्य करेगा, क्लेशदायक काम हम क्यों करें? सुखपूर्वक रहे और जिस प्रकार इतना समय छिपाकर अपनेको वसुदेव-देवकीका पुत्र प्रकट न करके बिताया, वैसे ही यह रात भी बिना वसुदेवपुत्रत्व प्रकट किये ही बिताई, क्योंकि ऐसा प्रकट कर देने पर नन्दरायजी आदिको क्लेश हो जाता और ऐसा व्यवहार भी होता है कि पहले शत्रुको मारकर ही फिर अपने पदार्थ लौटाने चाहिये. यदि शत्रुको बिना मारे ही अपनी चीजें ले जाते हो तो वह चोरी मानी जाती है. इसलिये कंस ही अपने वधकेलिये स्वयं उपाय कर लेगा, ऐसा निश्चय करके कृष्ण-बलदेवने सुखसे रात बिताई।।२५।।

कंसस्तु धनुषो भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च।
वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम्।।२६।।
दीर्घं प्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः।
बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च।।२७।।

श्लोकार्थ: कंसने जब सुना कि श्रीकृष्णने लीलापूर्वक धनुषको तोड डाला, साथ ही धनुषके रक्षकोंको और अपनी भेजी हुई सेनाको भी मार डाला, तब उसे अपार भय और आशंकाके कारण चिन्ताने आ घेरा और दुर्बुद्धिके शिकार बने, उसको रात भर नींद नहीं आई. उसको सोते और जागतेमें भी मृत्युकी

सूचना देनेवाले अनेक अपशकुन दिखाई पड़ने लगे ।।२६-२७।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार भगवान्के चरित्रोंका वर्णन करके उनके आगेके भावी चरित्रकी सिद्धि हो सकनेकेलिये कंसके वृतान्तको 'कंसस्तु' इस श्लोकसे आरम्भ करके कहते हैं. प्रथम तो कंसको रातमें नींद ही नहीं आई और आई तो भी उसमें बुरे-बुरे स्वप्न आये. इस प्रकार उसको बड़ी व्याकुलता हुई. मृत्युका निश्चय करा देनेवाले खोटे-खोटे सपनोंके आने पर भी वह मरनेकेलिये ही फिर प्रवृत्ति करने लगा, इस प्रकारके इस उपाख्यानको श्रीशुकदेवजीने भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं, यह सूचित करनेकेलिये कहा है.

पहले उसकी नींद न आनेका कारण कहते हैं कि आगे उसे दुःख ही दुःख होना है, यह श्लोकमें 'तु'(तो) शब्दसे सूचित होता है. धनुषके भङ्गको, धनुषके रक्षकोंका और अपनी भेजी हुई भारी सेनाके नाशको सुनकर तथा यह भी सुनकर किये सब काम श्रीकृष्ण-बलदेवने खेलमें ही किये हैं, कंस अत्यन्त भयभीत हो गया. पर यह सब उनका उत्तम खेल था. अथवा(परम) यह पद(विशेष) अर्थका सूचक भी है।।२६।।

यह सब सुनकर कंसको बाहर भारी व्याकुलता हुई और बड़ी देर तक नींद नहीं आई. केवल जागरण ही नहीं हुआ, किन्तु वह भयसे कांप ही उठा. सबसे पहले तो उसके अन्तःकरणने ही उसको उसके मरणकी सूचना दे दी थी और फिर अनेक प्रकारके बुरे-बुरे बहुतेरे सपने भी आने लगे थे, किन्तु फिर भी दुष्ट बुद्धिवाला वह भगवान्की शरणमें नहीं गया. यद्यपि द्वेषसे भी भगवान्का चिन्तन करनेवालेको दुःस्वप्न नहीं आने चाहिये किन्तु वह तो दुष्ट बुद्धिवाला था. वह भगवान्का अनिष्ट चिन्तन करता था और वह अनिष्ट उसीका होता था. दोनों प्रकारकी मृत्यु कहनेका तात्पर्य यह है कि कंसकी और उसके पक्षपाती साथियोंकी अथवा इसलोक और परलोक सम्बन्धी मृत्युने इस कथनसे यह सूचित किया कि ऐसी मृत्यु, जिसमें उसे परलोक भी मिलेगा, उसको डरानेकेलिये ही उसे वे बुरे-बुरे सपने दिखाई देने लगे. उभयथा दोनों प्रकारसे अर्थात् सोते भी और जागते भी खोटे सपने आने लगे. ये खोटे सपने मृत्युके दूतोंकी तरह थे, जो कंसको खबर देते थे कि तेरी मौत तेरे पास आयेगी और इसको डराते भी थे।।२७।।

अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि।
असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा।।२८।।

श्लोकार्थः कंसने जागतेमें देखा कि जल आदिमें उसकी परछाई तो दीख पड़ती है, किन्तु उसमें उसका सिर नहीं दीख पड़ता हैं. बीचमें किसीकी आड न होने पर भी दीपक, सूर्य, चन्द्र आदि एकाएक ज्योतिके दो-दो रूप उसे दीख पड़ने लगे ।।२८।।

जगते रहनेकी स्थितिमें जिन बुरे शकुनोंको कंस देखता था, उनका वर्णन इस 'अदर्शनं' श्लोकसे करते हैं. जागतेमें दिखाई देनेवाले अपशकुन सात प्रकारके हैं, क्योंकि मृत्यु भी भगवान् है, जो छः धर्म और सातवें धर्मीरूपसे सात प्रकारके हैं.

कांच आदिमें पड़ी हुई अपनी परछायामें अपने सिरका न दिखाई देना, केवल गर्दन तकका ही सामनेका भाग दिखाई देना, इसी तरह प्रत्यक्षमें भी नाक, कान आदि मुख भागोंका, जो दिखाई देते हैं, न दिखाई देना, सिरके होते हुवे भी स्पर्श आदिके द्वारा बाहर सिरके जाने-जाने पर भी और दूसरे अङ्गोंके दिखाई देने पर भी केवल सिर नहीं दिखाई पड़ना, नेत्र, ज्ञानरूप और स्वयं ही प्रकाशवाले हैं, दूसरे पदार्थोंमें दोष होना सम्भव होनेके कारण वे(नेत्र) अपने-अपनेको ही देखते हैं. इस प्रकारसे सब जगह भगवान्के ही दर्शन होते हैं, किन्तु जहां कहीं भगवान् अपने जिस अंशसे तिरोहित(छिपे) होते हैं, वहां क्रियारूपसे उस अंशके रहते हुवे भी वह अंश ज्ञानका विषय(प्रत्यक्ष नहीं होता) दिखाई नहीं देता है.

(१)कंसके शरीरमें मुख्यरूपसे कण्ठ तकका भाग क्रियावाला है, यह बतलानेकेलिये ज्ञानका अंश कंठसे ही भगवान् तिरोहित होते हैं, किन्तु भविष्यमें क्रिया करना है, इसलिये सत् अंशसे तिरोहित नहीं होते हैं. इस कथनसे यह प्रदर्शित किया है कि कंसका वध करना तो निश्चित कर रखा है, किन्तु अभी(वध) नहीं किया.

(२)मृत्युका दूसरा स्वरूप यह है कि दूसरा रूप न होते हुवे एक वस्तुके दो रूप दिखाई देना, यह दूसरा अपशकुन है. जब प्राणी काल(मृत्यु)की तरफ जाता है, तब उसको दूसरारूप काल ही दिखाई देता है, क्योंकि भगवान् तो सब जगह एकरूप ही हैं. इसलिये कंसको दो रूप दिखाई पड़नेसे यह सूचित किया है कि उसका काल आ गया है.

(३)इसी तरहसे ज्योतिषोंके भी दो रूप दिखाई देने लगनेके कारण तीसरा अपशकुन कहा गया है. दीपक, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि भी कंसको दो-दो

दिखाई देने लगे. यद्यपि आंखके संकोच करने पर तो एक दीपकके दो दीपक और अधिक भी दिखाई देते हैं, किन्तु आंखके संकोचके बिना किये ही एक दीपक, चन्द्र आदिके दो-दो दीपक, चन्द्रमा आदि दृष्टिमें आने लगे. ज्योतिगण आदि दैविकरक्षक(रक्षा करनेवाले) हैं, किन्तु वे भी दूसरे अपशकुनकी तरह तीसरा अपशकुन बनकर काल(मृत्यु)से घिर गया ऐसा प्रतीत होने लगा।।२८।।

छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः।
स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम्।।२९।।

श्लोकार्थः (४)कंसको अपनी परछाईमें छेद दिखाई देने लगे, (५)प्राणघोष भी, कानोंमें अंगुली डालकर जो शब्द सुनाई देता है वह भी उसको सुनाई नहीं पड़ने लगा,(६)कंसको सारे वृक्ष सोनेके दिखाई देने लगे, (७)धूल, कीचड़ आदिमें उसको अपने पैरोंके चिह्न नहीं दिखाई पड़ने लगे।।२९।।

व्याख्यार्थः (४)परछाईमें एक भागका न दिखाई देनारूप चौथे बुरे शकुनका वर्णन इस 'छिद्रप्रतीति' श्लोकसे करते हैं. कंसको उसकी परछाईमें काला छेद दिखाई देने लगा. पुरुष भगवद्रूप है, ऐसा बतानेकेलिये परछाई पुरुषके आकार जैसी होती है. सब जगह रहनेवाला तेज(प्रकाश)के बीचमें आ जानेके कारण उतनी दूर तक नहीं दिखाई देता. इसलिये परछाईको कितने ही विद्वान् तेजका अभावरूप मानते हैं. वैसे ही भगवत्स्वरूप पुरुषके सत्, चित्, आनन्द धर्मोंके भी छिप जानेसे प्रपञ्च(जगत्के पदार्थ) ही भिन्न-भिन्न आकारमें दिखाई देते हैं, ऐसा उनका मत है.

वास्तवमें तो छाया पुरुष एक भिन्न भगवान्का रूप है. यदि उस मूल पुरुषमें जो जीवको बाहर निकाल दिया जाये तो परछाईमें दिखाई देनेवाले पुरुषमेंसे जीव निकल जाता है. इसलिये जिस प्रकार पुरुषमेंसे जीवके निकल जानेसे ज्ञान नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार परछाईमें दिखाई देनेवाले पुरुषका भी जीवका ही अंशरूप आधा शरीरका भाग छिप जाता है. यह आध्यात्मिक व्यवस्था तीन प्रकारकी है. तीन प्रकारकी आधिभौतिक व्यवस्थाको ऊपरके श्लोकोंमें बुरे शकुन द्वारा कह आये हैं. तीन प्रकारकी उस आध्यात्मिक व्यवस्थामें यह चौथा अपशकुन, तामसी-व्यवस्थाका है.

(५)प्राणका शब्द सुननेमें नहीं आना, यह राजस है. प्राणमें क्रिया ही मुख्य है, इसलिये उस क्रियाका कार्य प्राणके शब्दका सुनना बन्द करदिया.

भगवान् कंसमेंसे धीरे-धीरे अपनी सारी क्रियाओंको रोकनेवाले हैं और रोकेंगे ही, यह बतलानेकेलिये उसके सम्बन्धमें होनेवाले आधे-आधे कामोंको निरूपण किया है.

बाहरके शब्द बाधक न हों, इसलिये दोनों कानोंको दोनों हाथोंकी एक-एक अङ्गुलीसे बन्द करदेने पर, भीतर सुनाई देनेवाला प्राणघोष-अनाहत(अनहद) नाद, कंसको अब सुनाई नहीं देता था.

(६)कंसको वृक्षोंमें सब जगह सुवर्ण दिखाई पड़ता था. वृक्ष काष्ठरूप हैं और सुवर्ण अग्निका वीर्य है. यदि वृक्षोंमें अग्नि दिखाई देने लगे, अग्निका वीर्य सुवर्ण दिखाई देने लगे, तो सर्व नाश ही समझना चाहिये, इस प्रकारके कथनसे कंसका आधा नाश तो हो चुका, ऐसा सूचित किया है.

(७)अपने पांवोंके चिह्न कंसको नहीं दिखाई देना कहकर, आधिदैविक व्यवस्थाका निरूपण किया है. भूमि पर धूल अथवा कीचड़में पड़े हुवे अपने पांव कंसको नहीं दिखाई देने लगे थे. भूमिदेवताने उसका त्याग कर दिया था, इसलिये उसके पैरके चिह्न भूमि पर नहीं पड़ते थे।।२९।।

स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विषादनम्।
यायात् नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः।।३०।।

श्लोकार्थः स्वप्नमें कंसने देखा कि प्रेत उससे लिपट रहे हैं. वह गधे पर नङ्गा सवार है, सिरसे पैर तक तेलसे नहाया हुआ है, गलेमें दुपहरियाके फूलोंकी माला पहने हैं और विष खा रहा है. इस प्रकारके बुरे-बुरे शकुन कंसको दिखाई देने लगे।।३०।।

व्याख्यार्थः इस प्रकार जगते रहनेकी स्थितिमें दबे हुवे खराब शकुनोंको कहकर सोते समय स्वप्नमें भी दिखाई देनेवाले अपशकुनोंका निरूपण इस 'स्वप्ने' श्लोकसे करते हैं. जागते समयमें दिखाई देनेवाले बुरे शकुन जैसे धर्म और धर्मीरूपसे सात प्रकारके बतलाये हैं, वैसे ही सपनेमें दिखाई देनेवाले अपशकुन भी सात प्रकारके ही हैं.

(१)प्रेतका आलिङ्गन, श्मशानमें पड़े हुवे मुर्देका आलिङ्गन, कंस जब श्मशान पर जायेगा, तब कंस भी उनका मित्र बनेगा, इस विचारसे करे अथवा मुर्दे मरे हुवे कंसका(भले आये) कहकर स्वागत करके आलिङ्गन करे, तब सम्भव है. इस प्रकार कंस मुर्दोंका कंस आलिङ्गन करते हुवे उसको दिखाई देने लगे.

(२)गधे पर सवार होना, कंस अपने आपको गधे पर बैठा देखता था. मृत्युकी देवी, काली तामसीशक्ति है और गधा उस देवी कालीका वाहन है. वह मृत्युदेवी कालिका गधे पर सवार होकर सब जगह घूमती फिरती है, इस वाक्यके अनुसार मृत्युदेवीने अपना वाहन गधा, कंसके पास भेज दिया था, यह तात्पर्य है.

(३)विष खा लेना, ये तीन आधिभौतिक बुरे शकुन, सात्त्विक, राजस और तामस है. प्रेतोंका आलिङ्गन ही देखता था, स्वयं प्रेत नहीं बना. स्वयं गधे पर बैठा सवार ही देखा, यमपुरीमें नहीं चला गया, स्वयंको विष खाता हुआ मात्र ही देखता था, मरा हुआ नहीं देखता था. इस प्रकार सपनेमें भी तीनों काम आधे-आधे ही कहकर शेष चौथेसे सातवे अपशकुन तक धर्मीका ही वर्णन करते हैं. ये सभी अपशकुन दर्शनरूप धर्म कंसके सम्बन्धी हैं, इस कारणसे यहां कंसका धर्मीरूपसे वर्णन किया है.

(४)कंस अपने आपको गलेमें दुपहरियाके फूलोंकी माला पहने हुवे देखता था.

(५)राजाधिराज होते हुवे भी कंस अपनेको अकेला ही देखता था. कंस अकेला ही यमलोकमें जाये, इस अभिप्रायको प्रकट करनेकेलिये ही'यायात्' श्लोकमें यह विधिलिङ्का प्रयोग है.

(६)वह अपने आपको तेलसे स्नान किया हुआ देखता था. स्वयंको अकेला देखना तामसी व्यवस्था है.

(७)दिगम्बर दिशाओंरूपी वस्त्रवाला होना यह आधिदैविक अपशकुन है.(वस्त्र सारे देवतारूप हैं) इस श्रुतिके अनुसार सब देवतारूप वस्त्रोंने भी कंसका त्याग कर दिया था. यह अन्तिम सातवां अपशकुन है, जौ आधिदैविकरूप बुरा शकुन है, यह निश्चितरूपसे सूचित करता है कि कंस अवश्य ही यमपुरीमें चला जायेगा,(मरेगा)।।३०।।

अन्यानि चेत्थम्भूतानि स्वप्नजागरितानि च।
पश्यन् मरणसन्त्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया।।३१।।

श्लोकार्थ: इस प्रकार सोतेमें और जागतेमें भी अनेक प्रकारके अशुभ सूचक मृत्युकी सूचना देनेवाले बुरे-बुरे शकुनोंको देखकर कंसको बड़ी चिन्ता हुई. भयानक चिन्ता और मृत्युके भयसे उसे रात भर नींद नहीं आई।।३१।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार कितने ही अशुभ शकुनोंका निरूपण करके दूसरे

समयों पर भी और स्वप्नमें भी, कंसको दिखाई देनेवाले बुरे शकुनोंको इस 'अन्यानि' श्लोकसे कहते हैं. उन शकुनोंका विशेषरूपसे वर्णन न करके 'इत्थम्भूतानि' ऐसे-ऐसे और भी खराब शकुनोंको कंसने देखा, यों साधारण रीतिसे कहा है. इस प्रकारके बुरे-बुरे शकुनोंको वह सोते और जागते भी बार-बार देखने लगा था. केवल उसको ऐसे बुरे शकुन ही नहीं दिखाई दिये, किन्तु उन अपशकुनोंने कंसको यह भी निश्चितरूपसे बतला दिया कि उसकी अवश्य मृत्यु होगी. इस बातको जानकर अपनी मौतका निश्चय करके कंसको भारी भय हो गया, ऐसा आधीरातके समयमें हुआ. पीछे चिन्तासे उसे नींद भी नहीं आई।।३१।।

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भयः समुत्थिते।
कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम्।।३२।।

श्लोकार्थः हे कुरुकुलभूषण ! रात बीत गई, सवेरा हो गया. सूर्य भगवान् क्षितिजसे ऊपर उठे. कंसने उठकर मल्लक्रीड़ाके महान् उत्सवका आरम्भ करनेके लिए सेवकोंको आज्ञा दी।।३२।।

व्याख्यार्थः इस प्रकारके बुरे-बुरे लक्षणोंसे अपनी मृत्युका निश्चय करके भी कंस अपने कर्त्तव्यसे नहीं डिगा, यह इस 'व्युष्टायां' श्लोकसे कहते हैं. इस कथामें परीक्षितका विश्वास दृढ़ रहनेकेलिये 'कौरव्य' यह सम्बोधन श्लोकमें दिया गया है. रात बीती, प्रातःकाल हुआ, दोष(अन्धकार) मिटा और प्रकाश(गुण)के फैल जाने पर, सूर्य प्रातःकालमें जलसे बाहर निकलते हैं और सन्ध्याके समय जलमें प्रवेश करते हैं, महासागरसे सूर्य निकलते हैं, इत्यादि श्रुतिके अनुसार सूर्यभगवान्के जलसे बाहिर उदित हो जाने पर तथा सब लोगोंके जाग जाने पर और सब त्रिवर्णोंके अपने-अपने आवश्यक कार्य कर लेनेके बाद कंसने मल्लक्रीड़ाका महोत्सव करवाया. इस क्रीड़ामें मल्लोंकी ही प्रधानता होती है. लोगोंको ठगनेकेलिये ही कंसने यह मल्लक्रीड़ाकी योजना की।।३२।।

आनर्चुः पुरुषा रङ्गं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे।
मञ्चाः स्वलङ्कृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः।।३३।।

श्लोकार्थः सेवकोंने अखाड़ेकी अच्छी तरहसे सजावट की. तुरही, नगाड़े, बाजे आदि बजने लगे. पताकाएं, झण्डियों तथा फूलोंसे सजाए गए वहांके फाटकों, तोरणों और पुष्पमालाओंसे वहांके मञ्च सुसज्जित किए गए।।३३।।

व्याख्यार्थः 'आनर्चुः' इस श्लोकसे रङ्गभूमिमें इकट्ठी की हुई

सामग्रियोंका वर्णन करते हैं. कंसके अधिकारी पुरुषोंने आखाड़ेको लीपने, पोतने आदिके द्वारा पवित्र किया. अखाड़ेका स्थान(भूमि) अन्तरिक्ष और आकाशका बना होता है. उनमेंसे भूमि भागकी पूजाको लीपने, पोतनेसे कहकर मध्यभाग अन्तरिक्षकी पूजाका वर्णन करते हैं कि वहां भेरियां, नगाड़े आदि नाना भांति माङ्गलिक बाजे बजाये जाने लगे, जो सबको इस प्रकार महान् उत्सवकी सूचना दे रहे थे. यहां श्लोकमें विविध बाजे और भेरियां ('तूर्याणि च भेर्यश्च' ऐसा द्वन्द्व समास है) बजाये जाने लगे. मञ्चोंकी सजावटके द्वारा अखाड़ेके आकाश भागकी पूजाका वर्णन करते हैं. वहांके सारे मञ्चोंको अनेक भांतिके पुष्पोंकी मालाओंसे, पताकाओं और झण्डियोंसे सजाया गया. कपड़ेके बने हुवे तोरणोंसे अथवा कपड़ोंसे तोरणों आदिसे मञ्चोंका शृङ्गार किया गया।।३३।।

तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः।
यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः।।३४।।

श्लोकार्थः उन मञ्चों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब पुरवासी, जनपदों(प्रान्तों)के रहनेवाले और प्रतिष्ठित राजा रईस लोग आकर अपने-अपने यथोचित स्थान पर विराजमान् हुए।।३४।।

व्याख्यार्थः 'तेषु' इस श्लोकसे उस सजाये हुवे अखाड़ेके उपयोगका वर्णन करते हैं. पहले ऊपरके भागका उपयोग बतलाते हैं कि उन मञ्चों पर ब्राह्मण और क्षत्रिय आगे बैठे, नगर निवासी, प्रान्तोंकी जनता सभी लोग सुखपूर्वक बैठे, क्योंकि मञ्चोंकी कमी नहीं थी, असङ्ख्य मञ्च थे. सम्मानकेलिये अथवा कृष्ण-बलदेवके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे बुलाये हुवे, कंसको कर देनेवाले आधीन सामन्त और स्वतन्त्र राजा, महाराजा अपने-अपने राजकीय अधिकारी वर्ग सहित यथा निर्दिष्ट आसनों पर बैठ गये।।३४।।

कंसः परिवृतोऽमात्यै राजमञ्चमुपाविशत्।
मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता।।३५।।

श्लोकार्थः कंसने अपनेलिए सबसे अलग एक ऊंचा राजमञ्च बनवाया था. उसी मञ्च पर वह अन्यान्य सामन्त राजाओंको मण्डलीमें मन्त्रियोंके साथ आकर बैठा. उस समय भी उसका हृदय भय और आशंकाके कारण धड़क रहा था।।३५।।

व्याख्यार्थः 'कंसः' इस श्लोकसे कंसका भी वहां अखाड़ेमें आकर बैठना कहते हैं. अपने मन्त्रियोंके मण्डलसे घिरा हुआ कंस बीचमें सब मञ्चोंसे उत्तमरीति

से बनाये गये राजमञ्च पर सारे मण्डलेश्वरोंके बीचमें बैठ गया. मण्डलेश्वरोंके मध्यमें बैठनेसे उसकी बाहर तो शोभा हुई, किन्तु उसका हृदय भयसे कांप रहा था. इसलिये उसकी भीतरी शोभा नहीं हो रही थी, ऐसा सूचित किया है।।३५।।

वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च।
मल्लाः स्वलङ्कृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समाविशन्।।३६।।

श्लोकार्थः नगाड़े आदि बाजे बज रहे थे और बीच-बीचमें मल्लोंके ताल ठोकनेके शब्द सुनाई दे रहे थे. इसी समयमें अपने गुरुके साथ सुन्दर वस्त्रों और आभूषणोंसे सुशोभित, गर्वीले मल्लोंने रङ्गभूमिमें प्रवेश किया।।३६।।

व्याख्यार्थः 'वाद्यमानेषु' इस श्लोकमें उस अखाड़ेके बीचके भागके उपयोगका बाजोंके बजते रहनेके निमित्तसे वर्णन करते हैं. बाजोंके शब्दोंको सुनने पर माङ्गलिक कार्यका प्रारम्भ हो जाना, जानकर सारे मल्ल अखाड़ेमें आ गये. उन वाद्योंके बीचमें पहलवानोंके ताल ठोंकनेके शब्द इस तरह सुनाई दे रहे थे, मानों वे तालें ठोंककर उन बाजोंकी ध्वनिका उत्तर दे रहे थे. इस प्रकारसे मल्लोंको वहां रङ्गभूमिमें बुलवाना और सत्य बोलनेवाले आप्तमल्लोंका प्रत्युत्तर वहां आ जानेके कारणरूपसे कहा गया है. वहां अखाड़ेमें मल्लोंकी(दाव पेचवाली) विद्या दिखाना था. इसलिये वे पहलवानों जैसी वेषभूषामें सज-धजकर आ गये. अथवा वे ऐसा समझते थे कि उनके समान कोई दूसरा प्रतिमल्ल दुनियामें ही नहीं, ऐसा मानकर वे केवल शोभार्थ ही कडे-कुण्डल आदि आभूषणोंका शृङ्गार करके ही वहां आये. वे बड़े ही घमण्डी मल्ल थे, इसलिये भगवान्की महिमाको सुनकर भी निडररूपसे अखाड़ेमें आ गये. वे उनके गुरु लोगोंको साथ लेकर वहां आये, इस कथनसे सूचित किया है कि उनमें विद्याका बल नहीं था अथवा अधूरी विद्या जाननेवाले मल्लोंको भगवान् मार गिराते हैं, तो भगवान्का माहात्म्य पूर्णरूपसे प्रकट नहीं होता. उसमें अशिक्षित मल्लोंको हरा देनारूप दोष रह जाता है. भगवान्ने अपने पर इस दोषको दूर करनेकेलिये ही उन मल्लोंकी ऐसी बुद्धि कर दी, जो वे उनके गुरुजनोंको साथ लेकर ही वहां आये. वे बड़ी शानके साथ सम्मान पूर्वक रङ्गभूमिमें आये।।३६।।

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च।
त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः।।३७।।

श्लोकार्थः चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, आदि प्रसिद्ध और

प्रधान मल्ल अखाड़ेके आस-पास आकर बैठ गए और कानोंको प्रिय लगनेवाले बाजोंको सुनकर प्रसन्न होने लगे ।।३७।।

व्याख्यार्थ: एक-एक करके सारे मल्लोंके आ जानेके बादमें युद्धके जोशमें भरे हुवे चाणूर आदि मुख्य मल्ल रङ्गभूमिमें आये, यह इस 'चाणूरो' श्लोकसे कहते हैं. ये चाणूर आदि पांचों मल्ल पांच दैत्योंके प्राणरूप थे और वे पांचों ही युद्धभूमिमें अपने-अपने सेवकोंके साथ उस अखाड़ेके निकट आ बैठे. मनोहर बाजोंके शब्दको सुनकर बड़े ठाट-बाटसे युद्धके उत्साहसे भरे हुवे वे वहां युद्धभूमिमें आये।।३७।।

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहूताः।
निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन् मञ्च आविशन्।।३८।।

श्लोकार्थ: इतनेमें नंद आदि सब गोप भी आ गए. उन्होंने कंसको सब भेटें नजर की और कंसने भी उनका अच्छी तरह सत्कार सम्मान किया. वे भी एक मञ्च पर जाकर बैठ गए ।।३८।।

व्याख्यार्थ: इस प्रकार सब सामग्रियां तथा तैयारियोंसे अखाड़ेकी पूर्णरूप सजावट हो जाने पर अक्रूरजीको गोकुल भेजकर बुलाये हुवे वे नन्द आदि गोप, रङ्गभूमिमें आकर एक मञ्च पर बैठे, यह इस 'नन्दगोपादयः' श्लोकसे कहते हैं. उन नन्दादि गोपोंके साथ मथुरा गये बालक(गोपबालक) तो भगवान्के साथ ही रङ्गभूमिमें आवेंगे और नन्दरायजीके समान अन्य गोप, जो कंसके प्रतापसे दबे हुवे थे, कंसके बुलाने पर जो घरसे ही भेटें ले लेकर आये, अथवा जो सब तरहसे कंसके आधीन थे, अथवा जो स्वयं प्रसिद्ध थे, वे कंसको भेंट देना उचित समझकर अपनी-अपनी भेटें अर्पित करके वहां आ बैठे. ये ब्रजवासी निर्बल होनेके कारण राक्षसोंके साथ कलह होनेके भयसे अलग ही एक मञ्च पर आकर बैठ गये, क्योंकि वहां अखाड़ेमें असङ्ख्य मञ्च सजाये गये थे।।३८।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणके दशम स्कन्धके अध्याय ३९,
राजस-प्रमाण-अवान्तर प्रकरणके 'धर्मी निरूपक' सप्तम अध्यायकी
श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणकृत श्रीसुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ.

दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)

राजस प्रमेय प्रकरण

(अध्याय ४०/४३ – ४६/४९)

अध्याय ४०

कुवलयापीडका उद्धार एवं रङ्ग मण्डपमें प्रवेश

शब्दस्य हि बलं पूर्णं सप्तभिर्विनिरूपितम्।
अर्थस्यापि बलं रोधे तावद्भिर्विनिरूप्यते।।का.१।।

कारिकार्थ : जिस प्रकरणमें शब्दका पूर्ण बल है, वह प्रमाण प्रकरण है, जिसका वर्णन सात अध्यायोंमें इसलिए किया है कि शब्द, ब्रह्मरूप है और ब्रह्म, षड् धर्म और सातवां धर्मी होनेसे सात प्रकारके हैं. अतः एक – एक अध्यायमें एक – एकका वर्णन हुआ है. अर्थ, अर्थात् प्रमेयरूपका वर्णन भी उस प्रकार निरोधार्थ सात अध्यायोंमें किया जाता है ।।१ ।।

प्रपञ्चो विस्मृतः सर्वैरुत्सवाद्यैरनेकधा।
माहात्म्यस्य परिज्ञानात्तदासक्तिर्निरूप्यते।।का.२।।

कारिकार्थ : सब प्रकारके उत्सवादिकोंसे प्रपञ्चकी विस्मृति हो गई और भगवान्के महात्म्यके अनेकविध पूर्णज्ञान होनेसे उनकी आसक्ति भी सिद्ध हुई. उस आसक्तिका भी निरूपण किया जाता है ।।२ ।।

द्रष्टृणां च तथा पित्रोः सर्वेषामेव चैव हि।
पूर्वोक्तानां तथान्येषां द्वाभ्यां द्वाभ्यामुदीर्यते।।का.३।।

कारिकार्थ : देखनेवालोंकी, माता तथा पिताकी एवं सबोंकी आसक्ति तो एक – एक अध्यायसे कही जाती है तथा प्रथम कही हुई तामस गोपियोंकी और दूसरोंकी आसक्तिका दो – दो अध्यायोंसे वर्णन किया जाता है ।।३ ।।

एवमासक्तिसिद्धौ हि तदेकपरता पुनः।
वक्तव्येति ततो हेतोः फलं चापि निरूप्यते।।का.४।।

कारिकार्थ : इस प्रकार प्रमेय–प्रकरणमें आसक्तिका वर्णन करनेके अनन्तर फिर(साधन प्रकरणमें) व्यसनकी सिद्धिका वर्णन किया जाता है. व्यसन सिद्धिके पश्चात् फल प्रकरणमें फलका निरूपण होता है ।।४ ।।

चत्वारिंशत्तमेऽध्याये कृष्णासक्तिर्निरूप्यते।

दृष्ट्वा सामर्थ्यमतुलं विस्मितानामनेकधा।।का.५।।

कारिकार्थ : अब इस ४०वें अध्यायमें श्रीकृष्णने अपनेमें राजसोंकी जो आसक्ति कराई है, उसका वर्णन है. राजस भक्त भगवान्का अनेक प्रकारसे अतुल सामर्थ्य देखकर विस्मित होनेसे भगवान्में आसक्त हो गए हैं ।।५ ।।

आभासार्थ : पूर्वके ३९ वें अध्यायमें भगवान् निर्दोष हैं, उसको प्रमाणित करनेकेलिए अलौकिक तथा लौकिक माहात्म्यका ज्ञान करवाया तथा साधारण चेष्टारूप कालने जो बुरे शकुन दिखाए, उनका भी वर्णन हुआ, तो भी कंस अपने दुष्कर्म करनेसे रुका नहीं. इस अध्यायमें भगवान्ने विचारा कि, यदि मैं मथुरा देखते हुए रङ्गमण्डपमें इसलिए नहीं जाऊं कि मुझे किसीने बुलाया नहीं और मैंने भक्तोंकी उपेक्षा की है, यह दोष मुझे लगेगा यह विचारकर, इस भ्रमको मिटानेकेलिए भगवान् राम – कृष्ण दोनों दर्शनमें प्रवृत्त हुए. जिसमें प्रथम रङ्गमण्डप देखनेकेलिए पधारे. जिसका वर्णन श्रीशुकदेवजी 'अथ कृष्णश्च' श्लोकमें करते हैं

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परञ्तप।

मल्लदुन्दुभिनिर्घोष श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः।।१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजीने कहा हे परन्तप ! उसके अनन्तर जिन्होंने अपनी शुद्धि पहले दिन ही कर ली है वैसे श्रीराम और श्रीकृष्ण, दुन्दुभिकी तथा मल्लोंकी ध्वनि सुनकर, समझ गए कि कार्य अब प्रारम्भ हुआ है. अतः देखनेकेलिए वहां उसके पास आये ।।१ ।।

व्याख्यार्थ : श्लोकमें 'च' शब्द दो बार आया है, जिसका भावार्थ यह है कि जो तदीय हैं उनके सङ्ग्रहकेलिये दिये हैं. अर्थात् सबका निरोध होगा, कारण कि साधन(बलराम) सहित फल(श्रीकृष्ण) पधार रहे हैं, अतः निरोध होनेमें किसी प्रकारका भी सन्देह नहीं है. 'अथ' शब्द कहनेका कारण यह है कि अब अन्य विषयका प्रारम्भ होता है. अर्थात् प्रमाणबल पूर्वप्रकरणमें दिखाया. अब प्रमेय–बल दिखाते हैं. 'कृतशोचौ' पदका अर्थ कोई तो करते हैं कि राम कृष्णने अपने आवश्यक(दन्त धावन आदि) कृत्य कर लिये थे, किन्तु आचार्य श्री आज्ञा करते हैं कि उन्होंने गत दिन ही अपनी शुद्धता करली थी. इसलिये 'कृत युगे च'

पद है. राजाकेलिये 'परन्तप' विशेषण देकर राजाको सूचित किया है कि आप गूढ अर्थ(तात्पर्य) को समझते हैं. कारण कि ये ब्रह्म धर्मा तपस्यासे ही जाने जाते हैं. मल्लोंकी तथा नगाड़ोंकी ध्वनि सुनकर समझा कि सब सामग्री सिद्ध हो गई है. अर्थात् अब कार्य प्रारम्भ होनेवाला है, अतः आप भी देखनेकेलिये वहीं समीप पधारे।।१।।

आभासार्थ : प्रमेयमें निरोध करनेवाला प्रत्यक्ष देखा हुआ माहात्म्य कारण है, यह बतानेकेलिए प्रथम ''कुवलयापीड़के वधका'' निरूपण 'रङ्गद्वार' श्लोकसे १३ श्लोकमें करते हैं.

रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन् गजमवस्थितम्।
अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम्।।२।।

श्लोकार्थ : श्रीकृष्णने रङ्गके द्वार पर आकर देखा कि महावतसे प्रचालित कुवलयापीड़ हस्ती वहां खड़ा है।।२।।

व्याख्यार्थ : कालको जीतना ही पराक्रम है. वह काल त्रयोदश(१३) मासरूप आत्मावाला है, जिसको संवत्सर नामसे निरूपण किया गया है. कालको जीतना है, अतः इनका १३ श्लोकोंमें वर्णन करते हैं. यहां यह हस्ती कालरूप है, इसलिये उसके नामके अक्षरोंके दो अर्थ होते हैं. एक 'कुवलयस्य आपीड़ं' पृथ्वी मण्डलका मुकट, और दूसरा अर्थ होता है पृथ्वी मण्डलको जिससे सर्व प्रकारसे पीड़ा होती है. वैसे हस्ती श्रेष्ठको मारनेकेलिये भगवान् तैयार हुवे, अतः आप वहां पधारे. उत्सव स्थानको सुशोभित करनेकेलिये द्वार आदिका विशेष प्रकारसे निर्माण किया गया था. द्वार तक आप पहुंच गये, वहां द्वारके मध्यमें गजको खड़ा हुआ देखा. भगवान्ने सोचा कि उत्सव तो तब होगा, जब कि पृथ्वी मण्डलको दुःख देनेवाला काल नष्ट होगा. इसको नाशकर पश्चात् उत्सव देखेंगे. मृत्युका ही रूप गज है, यह पञ्चम स्कन्धमें कहा गया है. द्वारमें स्थित उस मृत्युरूप गजको मारनेकेलिये दृष्टिसे देखने लगे, एक तो गज स्वयं मृत्युरूप होनेसे सबको दुःखदायी है ही और फिर उसका प्रेरक नीच जातिका है, जिससे मेरे सामने आ रहा है. इससे इसको मारनेमें भगवान्को किसी प्रकारका परिश्रम नहीं है. इसी कारणसे भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं, यों निरूपण किया है. यदि कोई कहे कि, यह कोई साधारण हस्ती होगा, तो इस शङ्काको मिटानेकेलिये कहा है कि यह भी कालात्मा कृष्ण है।।२।।

आभासार्थ : भगवान्के देखनेसे ही उसका बल तो क्षय हो गया, तो भी भगवान्ने उसको प्रबुद्ध करनेकेलिए ललकारा, जिसका वर्णन 'बद्ध्वा परिकरं' श्लोकसे करते हैं.

बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान्।
उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगम्भीरया।।३।।

श्लोकार्थ : भगवान् कमर कसकर और टेढ़े बिखरे हुए केशोंको इकट्ठा कर चोटी बनाके मेघके नाद जैसे गम्भीर नादसे महावतको कहने लगे ।।३ ।।

व्याख्यार्थ : उत्तरीय वस्त्रको कमरसे बांधा और कुटिल केशोंको दोनों हाथसे चोटी कर ली, यों करनेसे कालको दोनों प्रकारसे रोक लिया, इस प्रकारकी लीलासे कालको रोक लिया, यह सत्य नहीं है, तो इस भ्रमका निवारण करने केलिये वाणीसे उसका तिरस्कार करते हुवे कहने लगे. हस्ती यदि दुष्ट है तो महावतका धर्म है उसको रोकना, यदि वह दुष्ट है, उसको नहीं रोकता है तो उस(महावत)को ही मारना चाहिये, यों न हो सके, तो दोनोंको मारना चाहिये. हाथी तो महावतके आधीन है, अतः उसका तिरस्कार करते हुवे जैसे भय पैदा होवे वैसी सिंहकी गर्जना जैसी मेघसे भी गम्भीर वाणीसे कहने लगे, जिसको सुनकर वसुदेवादिकोंके तप्त अन्तःकरण भी शान्त हो गये।।३।।

आभासार्थ : भगवान्ने महावतका जिस प्रकार तिरस्कार किया, वह प्रकार 'अम्बष्ठाम्बष्ठ' श्लोकसे कहते हैं.

अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नो देह्यपक्रम मा चिरम्।
नोचेत्सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम्।।४।।

श्लोकार्थ : हे अम्बष्ठ ! हे अम्बष्ठ ! हमको भीतर जानेकेलिए रास्ता दे, यहांसे जल्दी हट जा, देरी मत कर, जो तूं न हटेगा तो अभी तुझे हस्ती समेत यमके घर पहुंचा दूंगा ।।४ ।।

व्याख्यार्थ : महावतका तिरस्कार करनेकेलिये 'अम्बष्ठ' शब्द दो बार कहा है, कारण कि अम्बष्ठ प्रति लोमज वर्ण संकर होता है. अतः जिसमें जो सहज दोष हो उसको प्रकट करनेसे उसका तिरस्कार होता है और दो बार इसलिये भी कहा है कि यदि एक बार कहनेसे ध्यान न दे तो दूसरी बार तो ध्यान देगा ही. हमें उत्सवमें जानेकेलिये मार्ग दो यह हम लोगोंका ही मार्ग है, कारण कि हमारेलिये ही उत्सव किया गया है. जब प्रश्न हुआ कि किस प्रकार मार्ग दूं? तो

उसके उत्तरमें कहते हैं कि यहांसे हट जाओ, देरी मत करो. यदि हटनेमें देरी करोंगे और हटोगे नहीं तो मेरा अधिकारी काल अभी ही तुम्हें मार डालेगा फिर विशेषमें कहते हैं कि यदि किसी प्रकार भी मार्ग नहीं दोंगे तो दोनोंका दोष समझकर दोनोंको अभी यमके घर पहुंचा दूंगा बीचमें नहीं छोडूंगा, यमके गृह कहनेका तात्पर्य मृत्यु है. यदि मृत्यु यमका गृह न हो तो 'मल्लेभकंसयवना' यह कहना असत्य हो जायेगा. यों भी न समझना कि हस्ती तेरे युद्धका साधन है, इसलिये इनको छोड़ दूंगा सो नहीं, तेरे साथ उनको भी मारूंगा. तुम पूछो कि कब? तो उसके उत्तरमें कहते हैं कि मारनेमें देरी भी न करूंगा अभी मारूंगा. यहां 'अथ' शब्द वर्तमान काल बताता है, न कि आजका दिन बताता है।।४।।

आभासार्थ : भगवान्का इस प्रकार अम्बष्ठके तिरस्कार करनेके बाद जो कुछ हुआ, उसका वर्णन 'एवं निर्भर्त्सितो' श्लोकमें करते हैंः

एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम्।
चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम्।।५।।

श्लोकार्थ : इस प्रकार अपमानित अम्बष्ठको क्रोध हुआ. उसने गजको कुपित किया. वह गज काल, अन्तक तथा यम के समान था, ऐसे गजको कृष्णके पास भेजा।।५।।

व्याख्यार्थ : भगवान्ने महावतका जन्मसे ही नीचपना प्रकट किया, जिससे उसने अपनी प्रतिष्ठाको धक्का लगा और मेरी इज्जत गई तथा अपमान हुआ, यों समझा. अतः वह गुस्सेमें आ गया और उसने हस्तीको तो पहले ही कुपित कर छोड़ा था. अतः इस कर्ममें निपुण मूर्ख महावतने हस्तीको सदानन्दरूप अथवा कालात्मा कृष्णके पास जानेकेलिये प्रेरणा दी.

महावतने हस्तीको उपद्रवकेलिये प्रेरणा दी है और उपद्रव होनेमें कारण काल ही है. यदि कालकारण न हो तो साधन विपरीत बन जावे. 'अन्तक' मृत्यु है. यदि वह कहींसे भी हो तो अनिष्ट हो जाये. आज्ञा करनेवाला अधिकारी 'यम' है. वह जब आज्ञा दे तब वह कार्य(मृत्यु) हो सकता है, अन्यथा नहीं. इस प्रकार ज्योतिष् शास्त्र, श्रुति, पुराण, शास्त्रोंमें पृथक्-पृथक् निमित्त कहे हैं. यदि वे नहीं मिले हुवे हों, तो कोई प्रयोजन कार्य सिद्ध नहीं होता है. उसीकी प्रेरणासे क्या लाभ? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह हस्ती काल, अन्तक और यम इन तीनोंका प्रतिनिधि है. अर्थात् वे तीन ही इसमें हैं. अतः उनकी यहां आवश्यकता

नहीं, जहां ये न हों, वहां उनकी अपेक्षा है।।५।।

आभासार्थ : महावतसे प्रचालित हस्ती यदि विशेष अपकार न करे तो भगवान् उसको मारे नहीं, इसलिए 'करीन्द्र' श्लोकसे विशेष अपकारका वर्णन करते हैं:

करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाग्रहीत्।
कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्याङ्घ्रिष्वलीयत।।६।।

श्लोकार्थ : महावतसे सञ्चालित उस कुपित करीन्द्रने भगवान्के पास आकर शीघ्र ही उनको सूंडसे पकड़ लिया. श्रीकृष्ण सूक्ष्म रूपसे सूंडसे निकलके उस हाथीको मारकर उसके पैरों में छुप गए।।६ ।।

व्याख्यार्थ : 'इन्द्र' क्रियाका अधिपति है, जिससे देवोंने उसको रोका नहीं. अतः बिना रुकावटके उन भगवान्के पास पहुंचकर शीघ्र ही सूंडमें भगवान्को पकड़कर उससे लपेट लिया भगवान् क्रियासे व्याप्त हों जायेंगे. अर्थात् बन्धनमें आ जायेंगे, इस बुद्धिसे यों किया था, किन्तु उसको यह ज्ञान नहीं था कि भगवान् तो भक्तिसे वशमें आकर अपना बन्धन भी करते हैं, अन्यथा उनको कोई साधन वशमें वा बन्धनमें नहीं ला सकता है.

अतः सूंडसे भगवान् निकल गये. सूंड उनको पकड़ रखनेमें असमर्थ हो गई. हस्तीने भगवान्को स्थूल देख बांधा था, किन्तु वे सर्वशक्तिमान् होनेसे 'सूक्ष्म' होके उससे निकल गये. निकलनेके पीछे इस हस्तीको मारकर इसके चारों पैरोंके बीचमें, उदरके नीचे छिप गये, जिससे वह जान न सके. भगवान् प्रारब्धसे छूटे और भाग गये, इस प्रकार समझना अज्ञान है. भगवान् तो सर्वशक्तिमान् होनेके कारण सूक्ष्म बनकर स्वयं बन्धनसे निकल गये और छिपे, यह जतानेकेलिये कि मैं उसको मिलता हूं, जिसको मेरेमें मिलनेकी चाह है और अन्तर्दृष्टि होने पर मिलता हूं।।६।।

आभासार्थ : हस्तीके पैरोंके मध्यमें छिप जानेके पश्चात् जो कुछ हुआ उसका वर्णन 'संक्रुद्ध' श्लोकमें करते हैं:

संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम्।
परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः।।७।।

श्लोकार्थ : सूंघनेसे ही जो वस्तुको देख सकता है, वैसा क्रोधसे भरा हुआ वह हाथी भगवान्को न देखकर विचार करने लगा. अर्थात् भगवान्को

ढूंढ़ने लगा कि इतनेमें कहां गए? फिर सूंघते – सूंघते भगवान्का पता लगाकर उनको सूण्डसे पकड़ लिया, किन्तु वे बलपूर्वक सूण्डसे निकल गए।।७।।

व्याख्यार्थ : पीटे जानेसे हाथीको बहुत ही क्रोध आया देखकर, बदला लेनेका प्रयत्न करूं, किन्तु यहां वहां दृष्टि फिराते हुवे भी भगवान्को नहीं देखा, तब पशु* दृष्टिसे ढूंढने लगा, जिससे उसने भगवान्को देखा कि वे युद्ध आदि करनेमें शक्तिमान् हैं. अतः भगवान् ब्रह्मा आदिको भी सुख देनेकेलिये प्रकट हुवे हैं तो मैं भी क्यों न वह सुख प्राप्त करूं, इस इच्छासे भी भगवान्को पकड़ा. हस्तीने भगवान्को पुष्करसे पकड़ा. पकड़े जाने पर सकल विद्यानिपुण भगवान् अपने शरीरको बढ़ाकर बल पूर्वक सूंडसे निकल गये. जिसके नाभीमें पुष्कर(कमल) है, वह पुष्करसे कैसे पकड़ा जा सकेगा?।।७।।

*.सूंघकर वस्तुका पता लगाना या उसको देखना यह पशु–दृष्टि है.

आभासार्थ : उसके बाद भगवान्ने हस्तीको विशेष कुपित करनेकेलिए पीछेसे जाकर उसकी पूंछ पकड़ ली, जिसका वर्णन 'पुच्छे' श्लोकमें करते हैं.

पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम्।
विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया।।८।।

श्लोकार्थ : भगवान् हस्तीकी पूंछको दोनों हाथोंसे मजबूत पकड़कर बिना श्रम मानो खेलते हुए २५ धनुष जितनी दूरी पर घसीट कर ले गए. जैसे गरुड़ महान् सर्पको घसीट ले जाता है।।८।।

व्याख्यार्थ : दोनों हाथोंसे दृढ़ पकड़कर २५ धनुष जितनी दूरी पर(एक धनुष ४ हाथका होता है) घसीटकर ले गये, भगवान् छोटे और हस्ती इतना बड़ा उसको कैसे खींचकर इतनी दूर ले गये होंगे? इस शङ्काको दृष्टान्त देकर मिटाते हैं कि जैसे गरुड़ महान् सर्पको खींचकर दूर ले जाता है. खींचकर दूर ले जानेका कारण बताते हैं, जिसको मारना है और जो भक्ष्य है उसको प्रथम कमजोर बनाना चाहिये, इसलिये ही दूर ले जाना आवश्यक था और हस्तीकेलिये तो यों शास्त्रोंमें लिखा है कि हस्तीसे २०० हाथ दूर रहना चाहिये इसलिये भी भगवान् इसको इतनी दूर ले गये. यदि भक्ष्य अथवा जिसको मारना है उसको निर्बल न किया जावे तो यह भक्ष्यमें रुकावटवाला हो जाये और वह शीघ्र मरे नहीं। इस हस्तीमें २५ तत्व मौजूद हैं. इसलिए इसको २५ धनुष जितनी भूमिसे घसीटकर ले गये, जिससे उतना मार्ग हो जायेगा. हस्ती २०० हाथ दूर होगा तो पथिकोंका रास्तेमें किसी

प्रकार अपकार न कर सकेगा, यह सब भगवान्ने लीलासे किया, जिससे उसको अपने बलका ज्ञान करवाया।।८।।

आभासार्थ : हस्ती भगवान्से छुड़ाने तथा स्थिर हो जानेकेलिए अपनेको समर्थ समझकर, दायें, बायें, फिरते हुए भगवान्को पकड़नेका प्रयत्न करने लगा, जिसका वर्णन 'स पर्यावर्तमानेन' श्लोकसे करते हैं.

स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः।
बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोपुच्छेनेव बालकः।।९।।

श्लोकार्थ : वह(हस्ती) बायें-दायें ज्यों - ज्यों भ्रमण करने लगा, त्यों - त्यों भगवान् भी, जैसे बालक गौके बछड़ेकी पूंछको पकड़कर चक्कर काटता है, वैसे उससे उलटा घूमने लगे ।।९ ।।

व्याख्यार्थ : वह हाथी कभी बायें कभी दायें क्रमशः फिरता हुआ भगवान्को खींचने लगा, जिससे भगवान् डरे नहीं, कारण कि आप 'अच्युत' हैं. आपमें किसी प्रकारकी भी कमी नहीं होती है. सदैव सर्वशक्ति पूर्ण होनेसे निर्भय रहते हैं, इसलिये किसी भी भगवान्के चरित्र सुननेवालेको शङ्का न हो, तदर्थ भगवान्को अच्युत कहा गया है. निडर होनेसे भगवान् भी इस प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे वह भगवान्को पकड़ न सका. हस्ती तो भगवान्को पकड़नेकेलिये प्रयत्न करता था, किन्तु भगवान्ने उसको भ्रमित करानेकेलिये स्वयं भी घूमने लगे. यदि किसीको शङ्का होवे कि भगवान् सर्व समर्थ हैं, फिर वे कैसे फिरने या चक्कर काटने लगे, तो इस शङ्काको मिटानेकेलिये कहते हैं कि बालक खेल करता हुआ गोवत्सकी पूंछको पकड़कर उसके पीछे घूमता है वैसे ही भगवान् भी इस प्रकार खेल करने लगे।।९।।

आभासार्थ : यों घूमना घुमाना तो भगवान्ने खेलकेलिए किया, इस प्रकार बालक्रीड़ा दिखाकर अब प्रौढ़ लीलाको प्रदर्शित करनेकेलिए हस्तीके सम्मुख आकर युद्ध करने लगे, जिसका वर्णन 'ततेऽभिमुखमभ्येत्य' इस श्लोकसे करते हैं:

ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाहत्य वारणम्।
प्राद्रवत्पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे।।१०।।

श्लोकार्थ : अनन्तर भगवान्ने हाथीके सामने आकर, उसको थप्पड़ मार कर दौड़ गए. जब हस्ती भगवान्को पकड़नेकेलिए दौड़ा, तब दौड़ते - दौड़ते

पग –पग पर गिरने लगा ।।१० ।।

व्याख्यार्थ : भगवान् पूंछको छोड़कर हस्तीके सन्मुख आये और जैसे अपने जातिवाले बालकके सामने कोई बालक जाकर अपनी बहादुरी दिखानेकेलिये उसको थप्पड़ मारकर भाग जाता है, वैसे ही भगवान् भी उस हस्तीको थप्पड़ मारकर भाग गये, वह हाथी सबको रोकनेमें समर्थ है, तो भी यहां उसका प्रयत्न तथा बल निरर्थक हो गया, कैसे व्यर्थ हुआ? उसका वर्णन करते हुवे कहते हैं कि भगवान् ऐसे तरीकेसे दौड़े जैसे हाथी पग–पग पर गिरने लगा. कारण कि हस्ती बड़ा था और भगवान् सूक्ष्म थे. इसलिये उसको पकड़नेकेलिये झुककर पैर रखना पड़े तो नमते ही गिर पड़े, इस प्रकार भगवान्ने अपना स्वरूप अनुलोम, प्रतिलोमकर अर्थात् बड़ा तथा छोटाकर उसको बार–बार गिरानेकी क्रीड़ा की।।१०।।

आभासार्थ : भुलावेमें डालनेसे यह निश्चय हो गया कि यह दैत्यांश है, भगवान्ने(यह दैत्यांश है) इसको मैं जानता हूं, यह बतानेकेलिए जो क्रीड़ा की उसका वर्णन 'स धावन्' श्लोकमें करते है:

स धावन्क्रीडया भूमौ पतितः सहसोत्थितः।
तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत् भुवम्।।११।।

श्लोकार्थ : वह भगवान् खेलते हुए, दौड़ते – दौड़ते पृथ्वी पर गिर पड़ते और झटपट उठ जाते, किन्तु कुपित हस्ती उनको पृथ्वी पर पड़ा हुआ समझ, दांतोंसे उनको मारने लगा. वे तो वहां थे नहीं, इसलिए उसके दांत पृथ्वीमें लगनेसे उसमें गड़ जाते, जिससे हस्तीको ही पीड़ा होती ।।११ ।।

व्याख्यार्थ : भगवान् क्रीड़ा करते हुएकी तरह दौड़ते हुए असावधानके समान गिर पड़े, हाथीने भगवान्के गिरते ही देखा किन्तु भगवान् झटपट उठ गये उसको वह न जान सका. पश्चात् उसने जो भ्रमसे कार्य किया उसका वर्णन करते हैं. भगवान्को वहां ही पड़ा हुआ समझ भगवान्से अपकृत होनेसे कुपित हस्ती दोनों दांतोंसे उस पृथ्वीको मारने लगा, जिससे आप ही पीड़ाको भोगने लगा. हस्तीने इस प्रकार तीन बार किया, किन्तु तीनों साधन इस प्रकार व्यर्थ ही हुए।।११।।

आभासार्थ : पश्चात् क्रोधमें आकर जो कुछ उसने, किया वह 'स्वविक्रमे' श्लोकमें करते हैं:

स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षणः।
चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा।।१२।।

श्लोकार्थ : करीन्द्र अपने पराक्रमको असफल हुआ देख बहुत कुपित हो गया और फिर महावतने प्रेरणा दी, जिससे क्रोधमें आकर लड़नेकेलिए श्रीकृष्ण पर चढ़ आया ।।१२ ।।

व्याख्यार्थ : हस्तीने जब देखा कि मेरे किये हुए सब साधन व्यर्थ हुए, तब सारे शरीरसे इसके ऊपर पड़े तो अच्छा, इस बुद्धिसे प्रवृत्त हुआ, क्योंकि यह कुञ्जरेन्द्र है, जिससे ही इसका शरीर सबसे महान् है. अतः साधन क्षीण हो जाने पर भी रुका नहीं, बल्कि साधनकी क्षीणतासे उसमें विशेष क्रोध प्रकट हुआ और फिर महावतने सर्व प्रकारसे लड़नेकेलिये प्रेरणा दी कि कृष्णाके पास जाओ, यदि कृष्णके पास शुद्ध भावसे जाता तो कृतार्थ हो जाता, किन्तु क्रोधसे गया, जिससे कृष्ण, जो सर्व मारक काल भी हैं, अब तो विशेषतया दैत्यपक्षको नाश करनेकेलिये उद्यत हैं, अतः इसका भी नाश हुआ।।१२।।

आभासार्थ : भगवान्ने जान लिया कि यह सर्व प्रकारसे मरना ही चाहता है तब उसको मारा, जिसका वर्णन 'तमापतन्तम्' श्लोकमें करते हैं:

तमापतन्तमासाद्य भगवान्मधुसूदनः।
निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले।।१३।।

श्लोकार्थ : मधुसूदन भगवान्ने उसको सामने आता हुआ देखकर हाथसे सूंडको पकड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया ।।१३ ।।

व्याख्यार्थ : ऊपर पड़नेकेलिये आते हुए हाथीके पास स्वयं भगवान्ने जाकर उसकी लम्बी की हुई सूंडको हाथसे पकड़ लिया, भगवान् मारना जानते हैं वा नहीं अथवा मार सकेंगे या नहीं वैसी शङ्का नहीं करनी, क्योंकि जो मधु कैटभ जैसे बलवान दैत्योंको मारनेसे 'मधुसूदन' कहलाये हैं, उनको इस अल्प बलवाले पशुको मारनेमें कौनसा प्रयत्न करना पड़ेगा? कुछ भी नहीं, अतः जैसे कोई बालक लकड़ीसे वृक्षकी डालको पकड़कर भूमि पर गिरा देता है वैसे ही आपने भी उसकी सूंडको हाथसे पकड़कर उसको पृथ्वी पर पटक दिया।।१३।।

आभासार्थ : हस्तीका शरीर भारी होनेसे गिरते ही उसको मूर्छा आ गई. इसके बाद भगवान्ने जो कुछ किया जिसका वर्णन 'पतितं' श्लोकमें करते हैं:

पतितं तं पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया।

दन्तमुत्पाट्य तेनैव हस्तिपांश्चाहनद्धरिः।।१४।।

श्लोकार्थ : गिरे हुए हस्तीके ऊपर पैर धरकर, जैसे सिंह हस्तीके दांतको निकालता है, वैसे आपने भी निकाल लिया, किन्तु सिंहको उसमें प्रयत्न करना पड़ता है, भगवान्ने लीलासे बिना परिश्रम निकाल दिया और उसी दांतसे उसको तथा महावतको मार डाला ।।१४ ।।

व्याख्यार्थ : भगवान्की पहली कृतिसे ही गिर पड़ा. वैसे ही गिरे हुएके मस्तक पर पैर रखकर दांतको उखेड़कर उसी ही दांतसे उन सबको मारा. दांतको उखेड़नेका प्रकार बताते हैं कि जैसे पशुओंका राजा सिंह हस्तीके दांतको उखाड़ता है. सिंह प्रथम हस्तीके गण्डस्थलको चीरकर दांतकी जड़को मांसादिसे अलगकर पश्चात् उखेड़के निकालता है, यों करनेसे सिंहको परिश्रम करना पड़ता है, किन्तु भगवान्ने बिना परिश्रम खेलकी भांति निकाल लिया. उस दांतसे उन सब महावतोंको जिनने हस्तीको प्रेरणा दी थी मारा और हाथीको भी मार डाला. श्लोकमें 'च'का आशय यह है कि यदि कोई शङ्का करे कि हाथी गिरनेसे अधमरा हो गया फिर उसको वहां ही छोड़ देना चाहिये था, उसको पुनः पूर्ण रीतिसे मारनेकी क्या आवश्यकता थी? इस शङ्काके निवारणकेलिये भगवान्का नाम 'हरि' दिया है, जिसका भावार्थ है कि हरि अर्थात् सिंह और हाथीका सहज स्वभावसे विरोध है, इसलिये सिंह हस्तीको पूर्णतया मारकर छोड़ता है, अधमरा नहीं छोड़ता है. दूसरा 'हरि' शब्दका अर्थ है सर्व दुःख हर्ता, अतः यदि अधमरा छोड़ते तो हस्तीको क्लेश भोगते हुवे जीवन काटना पडता, इसलिये वह इस प्रकार दुःख न भोगे, यह विचारकर उसको भी मार दिया. इसके सिवाय इसको मारनेसे वसुदेवादिकोंकी भी चिन्ता दूर करनी थी।।१४।।

आभासार्थ : इस प्रकार हस्तीको मार कर रुकावट हट जानेसे उसके नाशकी सूचना देते हुए अन्दर रङ्गमण्डपमें प्रविष्ट हुए जिसका वर्णन 'मृतकं' श्लोकसे करते हैंः

मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत्।
अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः।।
विरुढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ।।१५।।

श्लोकार्थ : हाथीका दांत जिसके हाथमें है, वैसे भगवान् मरे हुए हस्तीको वहां ही छोड़ आप जब रङ्गमण्डपमें पधारे, तब उस दांतको कन्धे पर

धारणकर लिया. उस समय भगवान्का मुखकमल हस्तीके रक्तके बिन्दु तथा पसीनेके कणोंसे सुशोभित हो रहा था ।।१५ ।।

व्याख्यार्थ : वह प्रथम ही निकम्मा व असमर्थ जीव था जिससे पानेमें भी वह दो की अपेक्षावाला था, इसलिये उसको वहां ही छोड़ हाथमें दांत लेकर निडर ही भीतर पधारे, भीतर पधारनेके समयका भगवान्का शरीर कैसा था, जिसका वर्णन करते हैं. लोकोंकी प्रतीतिकेलिये वह दांत विशेष बोझवाला है इसलिये उसको कन्धे पर धर लिया था. वास्तवमें भगवान्को तो वह पत्ते जैसा लगता था, भगवान्की भी यह एक प्रकारकी क्रीड़ा है. भगवान् रक्त तथा मदके बिन्दुओंसे सुशोभित हो रहे थे. हस्तीके दांतको उखाड़नेसे हस्तीके अङ्गमें रहा हुआ रुधिर तथा मद कणोंके रूपमें भगवान्के मुखारविन्दपर आ के पड़ा, जिससे जैसे पहले दिन माला तथा चन्दनोंसे सुशोभित थे, वैसे आज दांत और मद कणोंसे सुशोभित हुवे थे. कभी ग्वाले सींगके वाद्यकेलिये कन्धे पर धरते हैं, अतः यह कोई नवीन कार्य नहीं है, यह कुवलयापीड़ हस्ती बैल जैसा है, यों बतानेकेलिये भी दांतको सींगके वाद्यसमान कन्धे पर धरा था, भगवान्के मुख कमल पर जो पसीनेके कण दीख रहे थे जिनसे भगवान् बताते हैं कि मैं अपने भक्तोंके हितार्थ इतना परिश्रम करता हूं, जिससे मेरे मुख पर पसीना आ जाता है, वह पसीना मेरी शोभामें वृद्धि करता है, यह शोभा भगवान्को विशेष कान्तिवान् करती है।।१५।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवान्के स्वरूपका वर्णन कर अब 'वृतो गोपैः' श्लोकसे वर्णन करते हैं, कि भगवान्ने सर्व सुख देनेकेलिए रङ्गमण्डपमें प्रवेश किया.

वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ।
रङ्गं विविशतू राजन्गजदन्तवरायुधौ।।१६।।

श्लोकार्थ : हे राजन् ! हस्तीके दांत रूप श्रेष्ठ आयुधवाले कितने ही गोपोंसे घिरे हुए बलराम और श्रीकृष्णने रङ्गमण्डपमें प्रवेश किया ।।१६ ।।

व्याख्यार्थ : कितने ही गोप यहां वहां भाग गये, कितने ही प्रथम ही अन्दर चले गये, शेष जो बचे थे उन थोड़ेसे गोपोंसे भगवान् घिरे हुवे थे, दूसरा दांत, बलभद्रने ले लिया. दांत ही हस्तीका सर्वस्व धन है, भगवान् और बलरामजीकेलिये वह शत्रुका धन था, शास्त्र आज्ञा देता है कि शत्रुका धन ले लेना चाहिये, छोड़ना नहीं, अतः एक भगवान्ने तो पहले ही ले लिया था. अब

दूसरा बलरामजीने ले लिया, क्योंकि आगेकेलिये भी लड़ाईका साधन चाहिये. रामको 'बलदेव' कहनेका भावार्थ स्पष्ट करते हैं कि दैत्य वधका सामर्थ्य आपमें है और राक्षसोंसे आपका सहज द्वेष है, इन दोनों भावोंको बतानेकेलिये 'बलदेव' नाम कहा है. भगवान्का नाम 'जनार्दन' दिया है जिसके देनेका भावार्थ प्रकट करते हैं कि जो अविद्याको भी नष्ट कर देते हैं उनके इस हस्तीके पकड़ने तथा मारनेमें क्या परिश्रम होगा? कुछ नहीं, इसलिये यहां 'जनार्दन' नाम कहा है. दोनों भाई श्रेष्ठ गज दांतको आयुधरूपमें लेके रङ्ग मण्डपमें अब ही मार देंगे, यह प्रकट करते हुवे निर्भीक होके पधारे।।१६।।

आभासार्थ: इस प्रकारके वेष धारण करनेका प्रयोजन वर्णन करते हुए कहते हैं कि बलदेवके साथ भगवान्का स्वरूप भी सबने देखा. वह स्वरूप अधिकार अनुसार सबको पृथक्-पृथक् रस प्रकट करते हुए भाव स्वरूपका दर्शन दे रहे थे, जिसका वर्णन 'मल्लानाम्' श्लोकसे करते हैं.

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्,
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां,
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः।।१७।।

श्लोकार्थ: रङ्गमण्डपमें बड़े भ्राताके साथ पधारे हुए भगवान्के दर्शन देखनेवालोंको जिस प्रकार पृथक् भावमें हुए, उसको कहते हैं कि भगवान्ने मल्लोंको वज्र रूपसे, साधारण मनुष्योंको मनुष्योंमें श्रेष्ठ अर्थात् राजाके रूपसे, स्त्रियोंको स्वरूपधारी काम रूपसे, गोपोंको स्वजन(बांधव) रूपसे, दुष्ट राजाओंको दण्डदाता शासकरूपसे, माता-पिताको बालरूपसे, कंसको काल रूपसे, मूर्खोंको विराट् रूपसे, योगियोंको परम तत्त्व रूपसे, यादवोंको अपने देवता रूपसे दर्शन दिए।।१७।।

प्रमेयेण निरोधोऽत्र कर्तव्यो हरिणा भृशम्।
लोकाश्च दशधा भिन्नास्ततो दशविधोऽभवत्।।का.१।।

कारिकार्थ: इस प्रकरणमें भगवान्को स्वरूप बलसे ही भक्तोंका निरोध करना है, अतः भगवान् यहां दस प्रकारके स्वरूपवाले होकर दर्शन देने लगे हैं, कारण कि लोक दस* प्रकारके भिन्न-भिन्न भाववाले होनेसे पृथक्-पृथक् अधिकारी हैं।।१।।

*. गुणोंके भेदसे नव प्रकारके और एक निर्गुण.

यस्य भावो यथा लोके तस्यानुसरणे कृते।

निरोधो जायते सम्यक् अन्यथा बन्धनं भवेत्।।का.२।।

कारिकार्थ : लोकमें जिसका जैसा भाव हो, उसके अनुसार भाव स्वरूपसे दर्शन देनेसे निरोध भली – भांति हो जाता है, नहीं तो वह भाव लौकिक हो जानेसे प्रतिबन्धक* होता है ।।२ ।।

*. निरोधसे रुकावट करनेवाला होता है.

गुणा नवविधाः प्रोक्तास्तदभावस्तथा परः।

शृङ्गारादिरसाश्चैव तेषामेव निरूपकाः।।का.३।।

कारिकार्थ : गुणोंके नव भेद हैं और एक भेद निर्गुणका है, यों मिलकर दस भेद होते हैं, शृंगार आदि दस रस भी उनका ही निरूपण करनेवाले हैं ।।३ ।।

राजसास्त्रिविधाः पूर्वं सात्विकाश्च ततः पराः।

आध्यात्मिकास्तथा पूर्वं दैविकास्तु ततः परम्।।का.४।।

कारिकार्थ : प्रथम तीन प्रकारके राजस कहे हैं, आध्यात्मिक सात्त्विकोंसे प्रथम, आधिभौतिक तामस कहे हैं, उसके पश्चात् आध्यात्मिक सात्त्विक कहे हैं, अनन्तर आधिदैविक कहे हैं ।।४ ।।

रौद्रोऽद्भुतश्च शृङ्गारो हासो वीरो दया तथा।

भयानकोऽपि बीभत्सः शान्तो भक्तिरसस्तथा।।का.५।।

कारिकार्थ : रौद्र, अद्भुत, शृंगार, हास, वीर, दया, भयानक, बीभत्स, शान्त और भक्ति रस इस प्रकार रस भी दस कहे हैं ।।५ ।।

एतान् दर्शयितुं भावान् हरिरेवं बभौ महान्।

अतस्तस्मिन् गुणा एव सर्वे भावा न चान्यथा।।का.६।।

कारिकार्थ : इन भावों(रसों)को दिखानेकेलिए ही हरि इस प्रकार महान् सुशोभित हुए, अतः गुण ही स्वभाव रूप है, अन्य कुछ भी नहीं है ।।६ ।।

व्याख्यार्थ : वहां रङ्गमण्डपमें प्रथम मल्ल देखे जो अपनेसे लड़नेवाले प्रतियोगीको ढूंढ रहे थे, वे भगवान्को वज्र समझ गये कि ये तो हमारे मारनेवाले हैं न कि प्रतिद्वंदी हैं, इसलिये श्लोकमें कहा कि १.'मल्लानामशनि' मल्लोंको वज्ररूपसे दर्शन दिये, जहां कड़ाकेकी बिजली गिर रही हो तथा जोरसे वर्षा हो रही हो वहां कुशल नहीं तथा भाग जाना भी वहांसे कठिन होता है, इसलिये वे भाग

जानेमें भी असमर्थ हो गये. इस प्रकार रुद्र प्रकृतिवाले मल्लोंके स्वभावोंका निरोध कर लिया है. २.'नृणां नरवर' कहकर बताया है कि जो साधारण राजस हैं उन्होंने भगवान्‌को नरश्रेष्ठ अर्थात् राजाके समान अद्‌भुत वेशधारी स्वरूपवाला देखा, जिससे भगवान्‌ने अद्‌भुत रस प्रकट कर दिखाया, कारण कि साधारण अद्‌भुत रससे ही वश होता है. ३.'स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्' वहां जो स्त्रियां देखनेकेलिये आई थीं, वे राजस सात्विक थीं, अतः उनको तो भगवान् अपने इच्छित फलका रूप ही देखनेमें आये. वे कामकी सेनाएं हैं, उन्होंने अपने पतिके भी दर्शन कभी भी नहीं किये थे 'स्मर' ही स्मरणात्मा है, वह आत्मा जब स्वल्प धारणकर अब प्रकट हुई है, तब हम नाथवाली हुई है. इस प्रकार मूर्तिमान होनेसे अब हम सकल इन्द्रियोंसे, शरीरसे तथा अन्तःकरणसे सेवा कर सकेंगी. वैसे तीनोंका एक प्रकार कहा, सबसे अधम मल्ल हैं, क्योंकि तामस तामस हैं. उत्तम स्त्रियां हैं, कारण कि राजस सात्विक है, यह पुष्टिमार्गीय क्रम है, जो आधिभौतिक अभिमानी है, उनकी रीति यह है कि वे गोप हैं, जो भगवान्‌के इस प्रकारके माहात्म्य देखकर भी देह अभिमानके कारण उनको अपना स्वजन बन्धु ही समझने लगे, अतः वे तामस राजस हैं.

हमारे बन्धु होते हुवे भी इनका परम उत्कर्ष हुआ है. वह हास्य रसको उत्पन्न करनेवाला है, इस प्रकार यहां हास्य रस प्रकट किया. भगवान्‌ने जिस प्रकार अब आध्यात्मिक थे. वेश द्वारा आधिभौतिक द्रष्टाओंमें रस उत्पन्न किया वैसे ही पश्चात् इन्द्रियरूप राजसोंको. उसके बाद आत्मरूप भक्तोंमें रस प्रकट करेंगे, राजा लोग दमन करने योग्य होनेसे इन्द्रियरूप हैं. भगवान्‌को देखते ही उनमें वीर रस प्रकट हुआ, जिसका वर्णन 'अनतां क्षिति भुजां शास्ता' नीच राजाओंको शिक्षा देनेवाले हैं, इस पदसे किया है. दुष्ट राजाओंको भगवान्‌को देखनेसे भाव उत्पन्न हुवे कि यह हमारा दमन करेंगे, अतः हम इनसे लड़ेंगे, जिससे हमारा दमन न कर सकेंगे, ऐसी बुद्धि नीचताके कारण इनमें हुई, जिससे भगवान्‌के सत्यरूपको न जान सके. जैसे इन्द्रियां विषयासक्त होनेसे भगवान्‌को नहीं देख सकती हैं, अतः इन्द्रियोंका दमन जैसे आवश्यक है वैसे ही इनका दमन भी आवश्यक समझा. भगवान्‌ने इनको वीर रससे दर्शन दिया, किन्तु दर्शकोंमें जो सन्त थे, वृष्णि हैं और भक्तिके अधिकारी हैं, जो लौकिक असत् राजा थे वे पामर ही थे. उनको तो 'बीभत्स' रस स्वरूपके दर्शन हुवे. जो राजस थे वे राजस

भावकी सिद्धि करनेके कारण राजा कहे जाते हैं, इस प्रकार क्षितिभुजोंको ही वीर रस उत्पन्न हुआ था.

भगवान्‌को देखकर युद्ध करनेकी बुद्धि उनको उत्पन्न हुई थी, किन्तु उनको यह ज्ञान हो गया कि ये शास्ता हैं, अतः युद्धमें प्रवृत्ति न हुई वीर रस तो उत्पन्न हुआ ही, रसोंमें वीर रस भी एक प्रकारसे उत्तम है, यों दिखानेकेलिये उसको प्रकट किया है.

साधारण हीन पुरुष भी यदि राजाकी स्त्रीको देखे तो उसमें भी काम भावना उत्पन्न होगी ही, किन्तु वैसे पुरुषको देखकर रानीमें काम भाव न प्रकटेगा. कारण कि रानी उसको अपनेसे कम दर्जेका समझती है. अपनेसे सामनेवाला उत्तम है, वैसी बुद्धि रसकी पोषक होती है. अतः जो वीर विशेष वीरतावाले हैं, वे असत् हों अथवा विचार हीन हों, अभिमानी हों तो भी सामनेवालेमें शास्ताकी प्रतीति होने पर भी वीर रस उत्पन्न हो, यह योग्य ही है. भगवान्‌में जैसा स्नेह स्त्रियोंका है, वैसा ही अथवा उससे भी विशेष स्नेह वसुदेव देवकीका है, किन्तु स्त्रियोंमें अज्ञानात्मक तम है, जिसका प्रयोजक काम है, यहां अर्थात् वसुदेव देवकीके स्नेहमें प्रयोजक मोह है, इसलिये मोहांशके कारण इनमें राजस भाव है, स्नेहांश तो सर्वत्र सात्विक ही होता है.

स्नेहके तीन प्रकार हैं, जब लौकिक भाववाला स्नेह होता है, तब वह स्नेह राजस कहलाता है. जब शास्त्र निषिद्ध भाववाला स्नेह होता है, तब वह स्नेह तामस कहा जाता है और जब शास्त्रमें जिसकी आज्ञा है इस प्रकारका स्नेह हो तो वह सात्विक गिना जाता है, अतः जैसा-जैसा अधिकारी वैसा-वैसा उसका निरोध कहा गया है.

अपने माता पिता, वसुदेव देवकीको बालकरूपसे दर्शन दिया, शिशुरूपके दर्शनसे उनके हृदयसे करुणा अर्थात् दया रस उत्पन्न हुआ, वह(दया रस) स्नेहका अन्तरङ्गरूप है, बाल स्वरूपमें ही स्नेह धर्म रहता है, अतः उनको भगवान् शिशुरूपसे प्रतीत होने लगे. सात्विकोंको कहते हैं कि मुक्तिके अधिकारी हैं एवं अलौकिक हैं. ये भय, बीभत्स तथा शान्त रसके ही अधिकारी हैं. उनमेंसे जिसकी अब ही मुक्ति होगी वह दुष्कर्म कर्ता कंस तामस सात्विक है, देहकी अधिष्ठात्री देवता हो, जैसे प्राज्ञ हो, वैसे उसका निरूपण करते हैं. 'मृत्युः भोजपते' भोजपतिको भगवान् मृत्युरूप देखनेमें आया. 'मृत्यु' भयरूप है, जिससे विशेष

भयानक अन्य कोई नहीं है. लोक न्यायके अनुसार नरकसे भी मृत्यु महान् ही है. भोजोंका पति कहकर इसका महत्व भी बताया, जिससे यह 'सात्विक' है, यह भी सूचित हो गया. 'विराट् अविदूषां' अनपढ़ोंको विराट् स्वरूपका दर्शन हुआ. वे अनपढ़ होते हुवे भी भगवान्‌के स्वरूपमें निष्ठावाले भक्त होनेसे राजस सात्विक भक्त हैं, अतः भगवान्‌के स्वरूपमें रुधिर तथा मदके बिन्दु देखकर स्नेहके कारण उनको भय हुआ. इस प्रकार यहां बीभत्स रस उत्पन्न किया है. जैसे अपने पुत्रका किसी बुरे पदार्थसे सम्बन्ध हो तो माता-पिताको उससे पुत्रके अनिष्ट होनेका सन्देह तथा भय उत्पन्न होता है, जिससे वे उसकी निवृत्तिके उपाय करते हैं.

यदि इस प्रकार भय या सन्देह न हो तो निवारणमें प्रवृत्ति न हो, यह सब स्नेहके कारण होता है. दोष तो भगवान्‌की लीलाके कारण पूरी तरह ज्ञान न होनेसे होता है. जहां 'उत्कृत्योत्कृत्य कृति' है. अर्थात् जहां विशेषसे विशेष कृति है, वहां ही महान् पुरुषोंमें ही बीभत्स रस उत्पन्न होता है. जो प्राकृत हैं, उनमें बीभत्स रस उत्पन्न नहीं होता है, यदि ऐसोंमें भी यह रस उत्पन्न होवे तो यह रस निरोध जनक रसोंमें न गिना जाता. अति प्राकृत जिनकी बुद्धि है कि भगवान् त्यागनेके योग्य हैं, वे निरोधके अधिकारी नहीं हो सकते हैं. 'विराट्' शब्दका अर्थ शोभाके अभाववाला है, अथवा जिससे शोभाका भाव निकल गया है वे तो प्रसिद्ध नहीं हैं, कारण कि वैसा भाव देखा नहीं है और सङ्गत भी नहीं है. उसके स्वरूपको जाननेवाले मूर्ख नहीं होते हैं. अर्थात् विद्वान् ही उसके स्वरूपको जानते हैं. जो योगी हैं, वे सात्विक-सात्विकी हैं, किन्तु प्रवृत्ति स्वभाववाले होनेसे गुणातीत अर्थात् निर्गुण नहीं हैं. उनको अर्थात् योगियोंको अपने इच्छित फलकी सिद्धिकेलिये भगवान्‌की आत्मरूपसे स्फूर्ति होती है और स्नेह दो प्रकारसे होता है, अतः योगियोंका परम तत्व पुरुषोत्तम स्वरूप है. उनकी दृष्टिमें यह सब तत्वरूप है, अतः आत्मा भी तत्वरूप है, योग और साङ्ख्यका यह ही सिद्धान्त है.

'पर' शब्दका तात्पर्य परम काष्ठापन्न स्वरूप अर्थात् जिससे उत्तम अन्य कोई तत्व नहीं है, वृष्णी जो यादव हैं, वे भगवदीय होनेसे गुणातीत अर्थात् निर्गुण हैं. सात्विकोंका निरोध वर्णनकर पश्चात् उनका परम निरोध 'शय्यासनाटनालापे' श्लोकमें कहा जायेगा. उन यादवोंको भगवान् सबसे उत्कृष्ट अपना स्वामी और देवता समझमें आया. दासका स्वामी ही नियामक है, वह अर्थात् स्वामी लौकिक भी होता है, यह हमारे स्वामी लौकिक नहीं हैं, यों बतानेकेलिये 'देवता' पद दिया

है. यदि अपनी बुद्धि अलौकिक है, वैसा ज्ञान हो, तो भगवान्‌में दृढ भक्ति नहीं हो सकती है. अतः अपनी हीन प्राकृत बुद्धि रखनी चाहिये, जिससे भगवान्‌में भक्ति दृढ़ होवे. अतः भगवान्‌को परदेवता समझना योग्य ही है. यों तो भगवान् जिस प्रकारका कहो उस प्रकारका होते हुवे भी सबसे विलक्षण तथा सर्वरूप हैं. अतः कहा है कि 'इति विदितः' जैसा-जैसा अधिकारी वैसा-वैसा दर्शन देकर तदनुकूल रस प्रकट किया.

'रङ्गमण्डप'में इसलिये ही पधारे थे कि सबका ही रस पुष्ट हो, हालांकि शान्त रसका विशेष अभिनय यहां नहीं किया है, तो भी उस प्रकार बैठनेसे साधारण अभिनय तो हुआ ही है. नाट्यमें आठ रस हैं, यह विशेष अभिप्राय है. निपुणोंको भक्ति रसका रसकी दृष्टिके समान अभिनय करना चाहिये. भगवान् सर्वके हितार्थ रङ्गमण्डपमें पधारे. बलभद्रजीके साथ भगवान्‌ने सर्वत्र समभावसे निरूपण किया. बलभद्रको साथमें गौण भाव दिखानेकेलिये लिया है. यदि गौण भाव प्रकट करना न होता, तो साथमें कहनेकेलिये द्विवचन कहा जाता, किन्तु यहां 'साग्रजो गतः' इस प्रकार श्लोकमें एक वचन ही कहा है. भगवान्‌से वेदका सहभाव है, यों अलौकिकत्व दिखानेकेलिये कहना चाहिये.

इस प्रकार जहां सर्व रस सम्बन्ध है, वहां 'पित्रोः' यह कहना उचित नहीं हैं. गोपोंने भी लीला नहीं की है, उनकेलिये हास्यरस कहना ठीक नहीं है. इस कारणसे असर्वपन होनेसे सहभावसे ही कहा है, यों समझना चाहिये. रसको प्रकट करनेमें वैसी-वैसी बुद्धि ही योग्यतासे कही है, क्योंकि नहीं तो फल प्राप्ति न होगी, अतः फलकी प्राप्तिकेलिये वैसी बुद्धि होगी तो रस अवश्य प्रकट होगा।।१७।।

आभासार्थ : भगवान्‌को जो कार्य मथुरामें क्रमवार करने थे, उनमें मुख्य कार्य कंसको मारना था. अतः कार्यके क्रममें प्रथम क्रम यह होनेसे इसको प्रधान क्रम कहा है. जिसके कार्यका प्रारम्भ करते प्रथम वह कार्य करते हैं, जिससे कंसको भय उत्पन्न हो. जिसका वर्णन 'हतं कुवलयापीड़' श्लोकमें करते हैं.

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ।
कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप।।१८।।

श्लोकार्थ : हे राजन्! जिनने कुवलयापीड़को मारा, उन दोनोंको देखकर कंस समझ गया कि ये दोनों कठिनाईसे जीतने योग्य हैं, अतः मनस्वी होते हुए भी

बहुत व्याकुल हो गया ।।१८ ।।

व्याख्यार्थ : कंसने तो समझ रखा था कि भगवान् छन्न करके रङ्गमण्डपमें आयेंगे, किन्तु वहां तो वे अन्दर न आ सके, इसलिये जो शूर वीर पहलवानों सहित हाथीको द्वार पर खड़ा किया था. उसे मारकर चले आये, हालांकि राजा कंस महान् शूरवीर है, तो भी बहुत डरके कारण व्याकुल हो गया. वैसे हस्तीको जब बिना शस्त्रके मार डाला है, तो दूसरोंको भी मार डालेंगे, इस युक्तिको कहकर और उनको देखकर प्रमाणित करता है कि वे दोनों कठिनाईसे जीतने योग्य हैं. कंस कहने लगा कि ये मनसे अथवा देखनेसे दुर्जय मालूम होते हैं. मुझे तो यत्न करना चाहिये, किये भी बहुत हैं और इसके पिता आदिको बन्धनमें डालकर अपकार भी किये हैं, अतः निश्चय है कि यह मारेंगे ही. मारनेके सिवाय और कुछ नहीं करेंगे, इन विचारोंसे बहुत उद्वेगवाला हो गया. यहां 'दुर्जय' शब्दका अर्थ शब्दोंके अनुसार यौगिक नहीं लेना है, किन्तु उसका भावार्थ समझना चाहिये कि ये दोनों जीते न जायेंगे. अर्थात् इनको किसी प्रकारमें जीत नहीं सकूंगा, 'नृपः' विशेषण इसलिये दिया है कि मैं जो कुछ कह रहा हूं उसमें आपको विश्वास हो कि यह मेरो शत्रु ऐसा ही अजेय है।।१८।।

आभासार्थ : इस प्रकार प्रधान रसका आविर्भाव हुआ, यह कहकर अब अति कठोर मल्लोंको भगवान्के गुणोंका श्रवण भी विशेष चाहिए, किन्तु उनको छोड़कर वहां रङ्गमण्डपमें जो अन्य शिष्ट हैं, उनमें रसका आविर्भाव हुआ, जिसका वर्णन 'तौ रेजतुः' श्लोकमें कहते हैं.

तौ रेजतु रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ।
यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम्।।१९।।

श्लोकार्थ : आभूषण, माला और वस्त्रोंसे जिनने विचित्र वेष धारण किए हैं, वैसे महाभुजावाले रङ्गमण्डपमें गए हुए वे दोनों सुशोभित होने लगे. नटकी भांति उत्तम वेषधारी अपनी कान्तिसे द्रष्टाओंके मनको अपनी तरफ खींचते हुए शोभायमान हुए ।।१९ ।।

व्याख्यार्थ : वे दोनों अपनी कान्तिसे देखनेवालोंके मनको अपनी तरफ खेंचते हुवे शोभायमान हुवे. उनका मन अपनी तरफ इसलिये खेंचने लगे कि मन चञ्चल होनेसे क्षणमें रसान्तरको उत्पन्न कर देता है. खेंचा हुआ(मन) रसान्तर उत्पन्न नहीं करेगा, मन ही रसको एक रसमें रखनेकेलिये प्रतिबन्धक है. अतः उस

प्रतिबन्धककी निवृत्तिकेलिये प्रथम भगवान्‌की शोभाका वर्णन करते हैं. शोभामें दोनों रूपोंकी समानता है, जैसे नीलम और मोती समान हैं. नटकी भांति ही दोनों भगवत्स्वरूपोंने रूपान्तर ग्रहण किया है. वे उस रूपान्तरसे रङ्ग मण्डपमें पधारे तब वेशधारण करना सचमुच सार्थक हो गया. लोकमें भी नाटकमें ही नटकी उत्तमता देखनेमें आती है, दूसरे स्थान पर नहीं दिखती है. पहलेकी अपेक्षा भी जब रङ्गमण्डपमें गये, तब सुशोभित हुवे.

यह रङ्गमण्डप तो बनावटी है, यहां रमण कैसे होगा? इस शङ्काकी निवृत्तिकेलिये कहते हैं कि 'महाभुजौ' बड़ी भुजावाले हैं, अतः इन भुजाओंसे सब कृत्रिमपन मिटा देंगे. इसलिये शोभित हुवे यह कहना योग्य ही है, जिससे रमण अर्थात् रस का प्रकट हुआ है. यों मान भी लेवें, तो भी जो रससे अनजान हैं, प्राकृत हैं, शुद्ध स्वाङ्गके रसको नहीं जानते हैं, उनमें रसकी उत्पत्ति कैसे होगी? उनमें रसकी उत्पत्तिकेलिये ही इस प्रकारकी आभूषण माला और वस्त्रोंसे विचित्र वेष धारण किया है, जिससे उनमें भी रसकी उत्पत्ति हो. तीन प्रकार के आभरण की विचित्रता उत्पन्न करते हैं, अतः अन्यों में भी रस की योग्यता होती है . इन दोनोंने जो नटकी विचित्रता उत्पन्न करते हैं, अतः अन्योंमें भी रसकी योग्यता होती है. इन दोनोंने जो नटकी भांति रूपान्तर ग्रहण किया है, जिसकी प्रतीति महान् पुरुषोंको होगी न सर्वको, तब नटके ज्ञान न होने पर रसकी उत्पत्ति कैसे होगी? इसके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे नट अर्थात् नटको देखकर जैसे सबको रस आता है, वैसे ही वहां भी इन दोनोंने नटकी भांति ही खेल किया है. अतः सबको ही नटकी प्रतीति होती है, उनका अपूर्व दर्शन स्वाभाविक होता है. जिससे क्या रसका प्राकट्य नहीं हो सकता है. इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यहां उत्तम वेष धारण किया है, किन्तु यह नटका नाटक स्वाभाविक नहीं है, अतः सर्वके मनका हरण तो अपने वास्तविक प्रभावसे ही किया है, यह योग्य है।।१९।।

आभासार्थ : रङ्गमण्डपमें स्थितोंको उन स्वरूपोंको प्रेमपूर्वक देखनेसे रस उत्पन्न हुआ, जिसका वर्णन 'निरीक्ष्य' श्लोकमें करते हैं.

निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप।
प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम्।।२०।।

श्लोकार्थ : साधारण तथा उत्तम पुरुष, जो मञ्च पर बैठे थे, एवं जो राष्ट्रके निवासी थे, उन सबको उन दोनों उत्तम पुरुषोंको देखकर हर्षके वेगसे नेत्र

तथा मुखारविन्द खिल गए, नेत्रोंसे उनके मुख रसका पान करते हुए वे तृप्त न हुए।।२०।।

व्याख्यार्थ : साधारण सुन्दर पुरुषको देखकर भी आनन्द उत्पन्न होता है, ये तो पुरुषोंमें उत्तम पुरुष हैं. उत्तम पुरुष अर्थात् परमात्मा, अतः ये आत्माके भी नियामक हैं. श्लोकमें 'जनाः' पद साधारण सकल प्राणियोंकेलिये दिया है, उन साधारणोंसे उत्तम वे थे, जो सभामें मञ्च पर बैठे थे. उनको मञ्च पर इसलिये बिठाया गया था कि वे देखनेके योग्य थे. नगरवासी रसको जानते हैं और देशवासी अनुभवी होते हैं, अतः इनको वरिष्ठ अर्थात् उत्तम या विलक्षण कहा है. उनसे भी राजा लोग तीन चार प्रकारके थे वे सब, सबके नियन्ताको देखकर प्रसन्न हुवे, वे केवल प्रसन्न ही न हुवे, किन्तु प्रसन्नताके वेगसे उनके मुख कमल विकसित हो गये. यह पहला ही दर्शन है, आगे शब्दोंसे खिलना कहेंगे, अतः नेत्रोंसे उनके मुख कमलका पानकर अन्तःकरणमें उनको पधराया. नेत्रोंको संस्कृतमें 'नयन' कहते हैं. अर्थात् ले जानेवाले हैं, अतः मुखको भी अन्दर ले गये. यह लेना ही प्रकट करता है कि उनकी इनमें आसक्ति है, जिससे बाहर और भीतर वे स्वरूप ही उनको दीख रहे हैं।।२०।।

आभासार्थ : वे योगीकी भांति अन्तःकरणमें पधारकर कृतार्थ नहीं हो गए, किन्तु भक्तोंके परम आकांक्षावालोंके, मुग्धोंके, युवावस्थावाली सरल स्वभाववाली नायिकाके, विदेशसे आए हुए प्रीतमके और परम प्यारेके समान स्थितिवाले हो गए, जिसका वर्णन 'पिबन्त इव' श्लोकमें करते हैं.

पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया।
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः।।२१।।

श्लोकार्थ : रङ्गमें स्थित नेत्रोंसे मानो उनका पान कर रहे हैं, जिह्वासे मानों चाट रहे हैं, नासापुटोंसे मानों सूंघ रहे हैं और बाहुओंसे मानों आलिङ्गन कर रहे हैं।।२१।।

व्याख्यार्थ : आंखोंसे मानों भगवान्का पान कर रहे थे, कैसे पान करते थे? उसकी व्याख्या करते हैं कि प्रत्येक दर्शक अपने भीतरके दुःसह तापकी निवृत्ति करनेकेलिये भगवान्को नेत्रों द्वारा भीतर पधराते हैं. जैसे पीनेके समय जल भीतर तथा बाहर वैसा फैला रहता है, वैसे ही भगवान् भीतर तथा बाहर व्याप्त हो रहे हैं. जिस प्रकार गौ, बछड़ेसे प्रेमकी पूर्त्तिकेलिये उसको चाटती रहती है, वैसे

ही दर्शक भी भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान होनेके बाद अपना भाव प्रदर्शित करनेके बाद अपना भाव प्रदर्शित करनेकेलिये मानो जिह्वासे चाट रहे हैं. जैसे पिता विदेशसे आगमनके समय पुत्रकेलिये अनेक पदार्थ लाता है और आते ही उस पुत्रके मस्तकको प्रेम प्रकट करनेकेलिये अथवा प्रेम पूर्तिकेलिये सूंघता है. अथवा पुत्रके जन्म होने पर प्रेमसे मस्तक सूंघता है, वैसे सर्व दर्शक भी मानो नासापुटसे सूंघ रहे हैं. इस प्रकार ज्ञान तथा प्रेम होनेके बाद बाहर भगवान्‌को अपनी आत्मा समझ व्यवहार कर रहे हैं. मित्र तथा स्त्रियां बाहरसे बहुत समयसे आये हुवे अपने मित्र तथा पतियोंका आलिङ्गन करती हैं, वैसे दर्शक भी इस प्रकारके भाववाले होकर मानो आलिङ्गन कर रहे हैं. जैसे ज्ञान, प्रेम और आत्मपनके व्यवहार सिद्ध हो जाने पर सख्य पर्यन्त अथवा आत्मसमर्पण तक भक्तिके साधन किये जाते हैं, वैसे ही ये भी करने लगे।।२१।।

आभासार्थ : इस प्रकार ज्ञान तथा क्रिया शक्तिके निवेदनसे अपने अन्तःकरण एवं शरीरका पूर्णरीतिसे, भगवान्‌में प्रविष्टकर दिया तथा चाटने और सूंघनेसे इन्द्रियों एवं प्राणोंको भी भगवान्‌में जोड़ दिया, वैसे चार प्रकारकी ज्ञानशक्तिका निरूपण किया है. हालांकि इससे उनकी भगवान्‌में आसक्ति सिद्ध ही हो गई, तो भी स्थूणाखनन न्यायकी भांति जो इसको स्थिर न किया जायेगा तो रस दृढ़ न होगा, इसलिए वाणीसे भगवान्‌के गुणोंका 'ऊचुः परस्परं' श्लोकसे वर्णन किया है:

ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम्।
तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव।।२२।।

श्लोकार्थ : वे दर्शक उनकी रूप गुण, मधुरता और सामर्थ्य जैसी देखी थी और सुनी उनका मानो याद कर आपसमें परस्पर कहने लगे ।।२२ ।।

व्याख्यार्थ : हालांकि सब भगवान्‌के रूप गुण आदिको जानते हैं, तो भी उनको दृढ़ करनेकेलिये सब ही वक्ता तथा श्रोता बन गये, इसलिये परस्पर अर्थात् आपसमें कहने लगे. कारण कि ये प्रसिद्ध निरुद्ध थे, सब ही वैसे ही हो गये हैं, यों निश्चय बतानेकेलिये कहने लगे.

भगवान्‌के माहात्म्यका वर्णन तब करना चाहिये जब उसका ज्ञान होवे, अतः श्लोकमें कहते हैं कि 'यथादृष्टं, यथा श्रुतम्' हम जो वर्णन करते हैं वह कल्पनासे नहीं कहते हैं, बल्कि जैसा आंखोंसे प्रत्यक्ष देखा है, और जैसा सुना है,

वह कहते हैं, जो सुना जाता है उसको ही कहा जाता है. वह स्वयं सिद्ध है और फिर वह आंखोंसे देखा हुआ हो, तो उसमें असम्भावना नहीं रहती है. यहां गुणोंके निरूपणका कोई अवसर नहीं है फिर क्यों कहे जाते हैं? इसके उत्तरमें कहते हैं कि उनके रूप, गुण मधुरता और सामर्थ्य ऐसे हैं जो स्मरण करानेकेलिये विवश कर देते हैं. अतः संस्कारोंके जगनेसे संयोगकी अपेक्षासे संस्कार बलवान् होते हैं, अतः कहना ही पड़ता है. यदि न कहा जावे तो चित्तके अन्यत्र जानेकी सम्भावना हो सकती है. अतः गुणानुवाद कहनेसे परोक्ष होते हुवे भी प्रत्यक्ष हो जाते हैं, जिससे अन्यत्र चित्त नहीं जाता है. यथार्थमें तो भगवान्के गुण तथा भगवान्का स्वरूप भगवान्की कृपासे उनमें(दर्शकोंमें) प्रकट ही हैं, तो भी मानो स्मरण हुआ है, वैसे कहते हैं, अतः श्लोकमें 'इव' पद दिया है।।२२।।

आभासार्थ : उनने जो वाक्य कहे हैं वे 'एतौ भगवतः' श्लोकसे आठ श्लोकोंमें वर्णन करते हैं:

एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि।
अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि।।२३।।

श्लोकार्थ : नारायण हरि साक्षात् भगवान् ही राम और कृष्ण इन दो स्वरूपोंसे वसुदेवके गृहमें *अंशसे प्रकट हुए हैं ।।२३ ।।

*.अंशसे कहने का आशय यह है कि जितने अंशसे उनका उद्धार हो, उतनेसे ही वहां व्यापारवाले हुए हैं. विशेष टीकामें – अनुवादक.

व्याख्यार्थ : आठ ऐश्वर्य कहने चाहिये अथवा छः गुण, सातवें भगवान् और आठवें प्रमाण(बलराम) कहने चाहिये. जन्म काल तक सर्व कहते हैं, उसमें प्रथम दोनोंके प्राकट्यमें समानता बताते हैं. ये राम और कृष्ण सर्व दुःख निवृत्त करनेवाले साक्षात् आप प्रकट भगवान् पुरुषोत्तमके स्वरूप हैं. वह अपनेमें उनको पधराकर अपनी देह आदिका उनमें सम्पादनकर उद्धार करते हुवे आये हैं, इसलिये कहते हैं, कि 'नारायणस्य' नारायण शब्द कहकर बताया है कि सर्व भाव अर्थात् मूल मध्य तथा ब्रह्माण्डके भाव इनमें हैं. उनका इतना कार्य करना सर्वकी मुक्तिकेलिये है. श्लोकमें आये हुवे 'हि' शब्दका भाव प्रकट करते हैं कि सर्वकी मुक्ति भगवान्के अवतारके सिवाय नहीं हो सकती है, इसलिये उनका अवतार होना योग्य ही है. इसलिये 'हि' शब्द दिया है, जिनका उद्धार करना है उनके यहां ही प्रकट होना 'अवतार' है. यदि कोई कूपमें गिर पड़ा है तो उसको दो प्रकारसे

निकाला जाता है. एक रस्सीसे और दूसरे स्वयं कूएमें जाकर. यदि कूएमें गिरा हुआ मूर्ख है, रस्सी पकड़ना नहीं जानता है, तो निकालनेवाला दयालु स्वयं कूएमें कूदकर उसको निकालता है. अज्ञोंका भी उद्धार करता है, अतः उनमें प्रकट होना ही योग्य समझ आप दो स्वरूपोंसे प्रपञ्चमें प्रकटे हैं. जितने अंशसे इनका उद्धार होता है उतना ही अंश फैलाया है. या काममें लिया है. अंशपन और स्वरूपपन दोनोंका उसमें विरोध नहीं है. जो सर्वत्र पूर्ण गुणवाले हैं तथा आनन्द मात्र कर, पाद, मुख, उदर, आदिवाले अनन्त मूर्ति पूर्ण हैं. यह प्राकट्य सर्वमें प्रसिद्ध है. यों कहते हुवे कहते हैं कि वसुदेवजीके वेश्म(घर-स्त्री)में प्रकट हुवे हैं. अतः घरमें वा स्त्रीमें दोनोंका समर्थन किया है. 'यथाश्रुत' इस वाक्यसे समर्थन किया है कि जैसा कि हमने सुना है, उन्होंने उतना ही सुना है।।२३।।

आभासार्थ : इस प्रकार दोनोंके सामान्य स्वरूपोंका वर्णनकर भगवान्के स्वरूपकी विशेषता 'एष वै' श्लोकसे प्रकट करते हैं:

एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम्।
कालमेतं वसन्गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि।।२४।।

श्लोकार्थ : प्रसिद्ध एवं निश्चय है कि यह कृष्ण देवकीके यहां प्रकटे और गोकुल पहुंचाए गए. जहां गुप्त रीतिसे इतने दिन रहे वहां ही नन्दके घरमें बड़े हुए हैं।।२४।।

व्याख्यार्थ : यह कृष्ण देवकीके यहां प्रकटे, गोकुलमें वसुदेवजी ले गये, यह बात निश्चित है और प्रसिद्ध है. श्लोकमें 'च' दिया है जिसका आशय है कि कृष्णको वहां छोड़के उसकी प्रतिनिधिरूपमें कन्या ले आये. इस प्रकार जन्म होना और नन्दके यहां जाना यह बात प्रसिद्ध कैसे हुई? यह समय लीला गुप्त ही हुई थी. इस पर आचार्य श्री कहते हैं कि नारदके कहनेसे यह प्रसिद्ध हुई. वहां जानेके अनन्तर ग्यारह वर्ष नन्दके घरमें रहकर आप बढ़े तब सबने क्यों न पहचाना? इसकेलिये श्लोकमें कहा है कि 'गूढः' गुप्त होकर वहां रहे थे. अर्थात् किसीको तब तक मालूम न था कि यह वसुदेवके पुत्र हैं. भगवान् कृष्णका बढ़ना केवल प्रतीति मात्र था. वास्तवमें वे तो सदैव एक समरसरूप हैं।।२४।।

आभासार्थ : केवल चुपचाप बैठकर नहीं बढ़े, किन्तु चरित्र भी किए. जिसका वर्णन 'पूतनानेन' श्लोकसे लेकर पांच श्लोकों में करते हैं:

पूतनानेन नीतान्तं चक्रवातश्च दानव।

अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः।।२५।।

श्लोकार्थ : इसने पूतना, बड़े दानव तृणावर्त, यमलार्जुन, केशी, शंखचूड, धेनुकका तथा वैसे अन्योंका भी अन्त किया ।।२५ ।।

व्याख्यार्थ : दुष्टोंका निग्रह, श्रेष्ठ पुरुषोंका दुःख दूर करना और उनको फल देना ये तीन कार्य किये. इनमें दुःख तीन प्रकारके हैं.(१.आधिभौतिक, २.आध्यात्मिक और ३.आधिदैविक) और चरित्र पांच प्रकारके हैं, उनमें प्रथम प्रकार कहते हैं. इनने पहले पूतनाका अन्त किया अर्थात् पूतनाको मारा है. उसके पश्चात् महान् दैत्य तृणावर्तका नाश किया. उसके बाद यमलार्जुन वृक्षोंको गिरा दिया. उसके अनन्तर धेनुकको, पीछे केशी और शङ्खचूड़ को मारा और जो दूसरे अरिष्ट आदि थे, उसका भी नाश किया।।२५।।

षडेते प्रतिपक्षास्तु इन्द्रियाणीव रूपिताः।
अतिदिष्टास्तथाचान्ये सर्वतुल्या यतः परे।।का.१।।

कारिकार्थ : ये छः इन्द्रियोंके समान प्रतिपक्षी कहे हैं. दूसरे अतिदेश हैं. क्योंकि वे सर्व समान हैं ।।१ ।।

आभासार्थ : जो आधिभौतिक उपद्रव मिटाया, जिसको 'गावः' श्लोकमें कहते हैं:

गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः।
कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः।।२६।।

श्लोकार्थ : इनने गोपों सहित गायोंकी दावाग्निसे रक्षा की. कालिया नागका दमन किया और इन्द्रका अहङ्कार नष्ट किया ।।२६ ।।

व्याख्यार्थ : इन भगवान्ने गोपों सहित गायोंका दावाग्निसे रक्षणकर जड़ अग्निसे हुवे कष्टको नष्ट किया. अब चेतनसे जो कष्ट हुआ उसको मिटानेकेलिये कालियसर्पका दमन किया. इन्द्रका भी अभिमान निवृत्त किया. इन्द्र देव होनेसे आधिदैविक है, किन्तु इस समय उसने कृत्यसे अपनेको भूत समान बना दिया है. अतः उनका वर्णन भी यहां किया गया है. 'च' शब्दसे ब्राह्मण और वरुण आदिका भी मद उतारा है, यह भी बता दिया।।२६।।

आभासार्थ : आधिदैविक उपद्रवोंका निराकरण इस 'सप्ताह' श्लोकसे कहते हैं:

सप्ताहमेकहस्तेन कृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना।

वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम्।।२७।।

श्लोकार्थ : इस बालकृष्णने एक ही हाथसे बड़ा गिरिराज सात दिन धारण किया. जिससे वर्षा, वायु और पत्थरोंसे गोकुलकी रक्षा की और उपधर्मसे भी बचा लिया ।।२७ ।।

व्याख्यार्थ : एक हाथसे गोवर्धन धारण किया. जिसके धारण करनेसे इनको किसी प्रकारका भी परिश्रम न हुआ. जिससे कहा है कि सात दिन एक हाथ पर धारण कर रहे थे. एक हाथसे धारण की विशेष उक्तिका आशय यह है कि आपको सर्वत्र दूसरेकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है.

जैसे सूर्यका दमन दुःसाध्य है, तो कालियका दमन करना अतिदुःसाध्य था उसमें संशय ही नहीं है. श्लोकमें 'अमुना' पदका भावार्थ बताते हैं कि यह इस लीला करनेके समय बालक ही थे. धारणकर कौनसा कार्य सिद्ध किया? इसके उत्तरमें कहा है कि वर्षा, वायु और पत्थरोंसे गोकुलकी रक्षा की. श्लोकमें आये हुवे 'च' अक्षरका भावार्थ है कि गोकुलको न केवल इनसे बचाया किन्तु गोकुलवासी जो 'उपधर्म' गौणधर्म परदेवाश्रय कर रहे थे, जिससे भी उनको बचा लिया।।२७।।

आभासार्थ : आध्यात्मिक पीड़ाके परिहारका वर्णन 'गोप्यो' श्लोकमें करते हैं:

गोप्योऽस्य नित्यमुदित हसितप्रेक्षितं मुखम्।
पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमं मुदा।।२८।।

श्लोकार्थ : गोपीजन इनके नित्य आनन्दमय हर्षयुक्त मुखारविन्दको देखती हुईं बिनाश्रम तथा आनन्दसे अनेक प्रकारके तापोंको पार कर गईं ।।२८ ।।

व्याख्यार्थ : गोपीजन इनके मुखको देखती हुईं विविध तापोंको पारकर गईं. अर्थात् ताप त्याग दिये. भगवान्के मुखका वर्णन करते हैं कि नित्य आनन्दमय तथा हर्ष पूर्वक जिसका देखना है, वैसे मुख कमलका गोपियोंने दर्शन किया. जिससे उनके ताप नष्ट हो गये. मुख नित्य आनन्दमय है ही, अतः आनन्द उत्पन्न करनेकेलिये कुछ भी कर्त्तव्य करना ही नहीं पड़ा. आनन्द युक्त मुख दर्शनकेलिये दृष्टि स्वतः प्रवृत्त होती है. विवेक करनेसे अथवा अज्ञानसे जो क्लेश होते हैं, उन दोनों क्लेशोंका नित्य आनन्दरूप और हर्षवाले ईक्षणसे निराकरण कर दिया. मुख परमानन्दरूप है. जिससे ही काम आदि अज्ञान कार्य और शास्त्र विधि

पूर्वक कर्म करनेसे रुकावटें नष्ट हो गईं. इसमें इसकी प्रसिद्धि ही प्रमाण है. कर्म, ज्ञान और भक्ति मार्गमें अन्तमें श्रम भी है, किन्तु ये तो विना श्रम 'क्लेशौ'को पारकर आनन्दस्वरूपको पा गईं हैं.

हालांकि नौकामें बैठकर समुद्र पार करते हैं, उसमें श्रमका अभाव है, किन्तु वहां प्रसन्नता नहीं, कुछ भय रहता है. यहां तो बिना श्रम तथा अधिक हर्षसे पार पहुंच गईं. इसलिये 'श्लोक'में 'अश्रम' और 'मुदा' दो पद दिये हैं।।२८।।

आभासार्थ : इस प्रकार दुःखका अभाव कहकर सत्पुरुषोंको सर्व सुख या दान होगा, जिसका वर्णन 'वद' श्लोकसे करते हैं:

वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः।
श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः।।२९।।

श्लोकार्थ : इस भगवान्के कारणसे यह यदुका वंश अच्छी प्रकारसे बहुत विशेष प्रसिद्ध होगा, इसकी रक्षा करनेसे 'श्री' व 'यश' और बड़ाईको प्राप्त करेगा।।२९।।

व्याख्यार्थ : इस भगवान्के कारणसे निन्दित भी यदुका वंश अच्छी प्रकारसे बहुत विशेष प्रसिद्ध होगा, जो दुष्ट निन्दित है उसको कोई सुनना भी नहीं चाहता है. जब उसके दोष मिट जाते हैं, तब सुना जाता है. यदि उसमें गुण प्रकट होवे तो विशेष सुना जाता है. जो वे गुण अलौकिक होवें तो उसको बहुत सुनना चाहते हैं. यदि उन वंशमें मोक्ष दान करनेकेलिये भगवान् पधारे हों तो उसको अच्छे प्रकारसे सब सज्जन सुनना चाहते हैं. न केवल इतना ही किन्तु पहलेसे अधिक 'श्री'को प्राप्त करता है. 'श्री' होनेसे लोभरूप दोषकी सिद्धि होती है. जिसको मिटानेकेलिये यशका निरूपण किया है. यह वर्णन बाहरकी शोभाका है. अब भीतरकी शेभाका वर्णन करते हुवे कहते हैं कि उसमें महत्ता भी आ जाती है. जिससे उसमें सत्य आदि सर्वगुण भी प्रकट हो जाते हैं. श्लोकमें 'च'का भावार्थ बताते हैं कि इस 'च' कहनेसे यह प्रकट किया है कि इस वंशको मोक्ष भी प्राप्त होगा. इसे करके ही यह वंश पूर्ण रीतिसे रक्षित होगा. न कि जैसे सन्निपातसे मरे हुवेकी गङ्गा मुक्ति नहीं करती है, वैसे ही इसके निन्दित होनेसे भगवान् मुक्ति नहीं करेंगे. यों नहीं है, यों होवे तो भगवान्की सबसे उत्कृष्टता चली जाये. अतः वंश मनुष्यका कैसा भी हो, तो भी भगवान् उसको मुक्त कर सकते हैं।।२९।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवान्का चरित्र कहकर प्रमाण बलकी भांति

बलभद्रके चरित्र 'अयं' श्लोकसे वर्णन करते हैं:

अयं चास्याग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः।
प्रलम्बो निहतो येन वत्सको धेनुकादयः।।३०।।

श्लोकार्थ : ये श्रीमान्, कमलके समान नेत्रवाले राम, इनके बड़े भाई हैं, जिनने प्रलम्ब, वत्सासुर और धेनुक आदि दैत्य मारे हैं।।३०।।

व्याख्यार्थ : श्लोकमें 'च' अक्षरका भावार्थ बताते हैं कि जैसे भगवान् ऐश्वर्य आदि छः गुणोंसे युक्त हैं वैसे ये भी हैं. इससे बराबरीके ऐसा निरूपण करते हुवे भी भगवान्में उपदेशके अतिदेशसे जो विलक्षणता है, उसको निरूपण करते हैं. इनके बड़े भाई हैं, ये बड़े हैं और इनमें भगवतत्व भी है, जिसको प्रसिद्ध करनेकेलिये 'हेतु' देते हैं, कि ये 'श्रीमान्' हैं. अर्थात् सबसे अधिक शोभावाले हैं. ये 'राम' नामसे प्रसिद्ध हैं. यों कहनेसे उनका साधारणरूप बताया. विशेषता बताते हुवे कहते हैं कि ये कमल लोचन होनेसे दृष्टिसे ही सबके ताप नाश करते हैं. अथवा सर्व प्रकारके तापोंको मिटाते हैं. इतना वर्णन करनेसे इनका विक्रम प्रकट न हुआ, अतः शौर्यका वर्णन करते हैं. इन्होंने प्रलम्बको मारा. लोकमें वत्सकको मारा, यह प्रसिद्ध है, तथा धेनुक आदि भी मारे. उनके सम्बन्धी तालोंको भी गिना, यह भी लोकमें प्रसिद्ध है कि भगवान्ने धेनुकको मारा. अतः पहले कहा है, अथवा ये 'बकादय' यों पाठ है. प्रसिद्ध न होनेसे आदि शब्दसे दर्दुर आदि असुर भी मारे, यह समझ लेना चाहिये. इस प्रकार सब भगवान्के गुण वर्णनमें तत्पर हो गये, जिससे काया, वाणी और मनसे भगवान्के शरण हुवे।।३०।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवद् गुणानुवाद श्रवणके अनन्तर मल्लोंमें भी रसका आविर्भाव हुआ, जिसका वर्णन श्रीशुकदेवजी करते हैं:

श्रीशुक उवाच

जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च।
कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत्।।३१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहने लगे – मनुष्य इस प्रकार गुणानुवाद कर ही रहे थे कि तुरहैयें बजने लगीं. वे बज ही रहीं थीं और चाणूरने आकर राम – कृष्णसे कुशल प्रश्न किए. जिससे उनको प्रसन्न समझा. फिर चाणूर निम्न वाक्य कहने लगा।।३१।।

व्याख्यार्थ : मल्लोंकी प्रवृत्तिमें रुद्र रस रहता है. प्रतियोगीको देखकर

उनमें रौद्र रस उत्पन्न होता है. यहां उत्पन्न हुआ भी, रौद्ररस भगवान्के गुणोंके श्रवणसे रुक गया. जिससे सम्भाषण करनेकेलिये प्रवृत्त हुवे. इस प्रकार जब सर्व मनुष्य जोरसे भगवद्गुणगान कर रहे थे, तब तुरही बाजे निरन्तर बजने लगे. 'च' कहकर यह बताया कि मल्लोंका भी शोर होने लगा. इस प्रकार प्रारम्भिक मङ्गल पूर्ण होने पर, हमारी जीत होगी. इसमें शक समझकर मल्लोंमें मुख्य चाणूर भगवान् राम कृष्णसे कुशल प्रश्न कहने लगा. अर्थात् उनका वाणीसे स्वागत किया. जिससे उनकी प्रसन्नता जानकर निम्न वाक्य कहने लगा.

यह मल्लोंमें मुख्य होनेसे जो कुछ कहने लगा, उसके पदोंका अर्थ तो बाधित है, किन्तु समग्र वाक्यका भावार्थ युद्ध करना चाहिये यह निकलता है. अतः 'वचन' न कहकर मूल श्लोकमें 'वाक्य' कहा है।।३१।।

आभासार्थ : निश्चयसे वह चतुर है. अतः जो गुप्त कहने योग्य है, उसका गुप्त रीतिसे निरूपण करता हुआ 'हे नन्दसूनो !' यह श्लोक कहता है, जिसमें गोप्यका संकेत कर देता है:

चाणूर उवाच

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसम्मतौ।
नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाहूतौ दिदृक्षुणा।।३२।।

श्लोकार्थ : चाणूर कहने लगा कि हे नन्दपुत्र ! हे राम ! तुम दोनोंकी शूरवीरता वीर पुरुष बखानते हैं. आप मल्ल युद्ध कर सकते हैं और उसमें दोनों कुशल हैं. यह सुनकर ही आपकी चतुराई देखनेकी इच्छावाले राजाने आपको बुलाया है।।३२।।

व्याख्यार्थ : यह नन्दका पुत्र नहीं है, यह अच्छी तरहसे कंस जानता ही है, तो भी, भ्राताकी तरह भानेजको भी युद्धमें लगाता है. 'राम' यों कहना तो नाम मात्र संतोषकेलिये है. यदि 'बलभद्र' कहे तो उसकी बड़ाई देखनेमें आवे. राममें जो सङ्कर्षणत्व है, वह गुप्त रखने योग्य ही है. इस प्रकार नाम लेनेके अनन्तर उनकी स्तुति करता है कि आप वीरोंमें माननीय हैं. अतः आपके पराक्रमकी सब बखान करते हैं. कोई ऐसा नहीं है कि जो कहे कि ये वीर युद्ध में कुशल नहीं है. अतः राजाने आपको बुलाया है और विशेष आप कुशल लड़ाकू हैं. मल्लोंके समान बाहुके युद्धमें भी शक्तिमान हैं. यह बात जो राजाने सुनी है, वह प्रमाणित ही है. सुननेसे राजाको आपकी कुशलता देखनेकी इच्छा हुई, इसलिये आपको

बाहुयुद्ध करनेकेलिये बुलाया है।।३२।।

आभासार्थ : राजाको तो देखनेसे आनन्द होगा, हमारा कौनसा प्रयोजन सिद्ध होगा ? यदि राम कृष्ण यों कह दें तो उसके उत्तरमें चाणूर 'प्रियं राज्ञः' श्लोक कहता है:

प्रियं राज्ञः प्रकुर्वत्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः।
मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा।।३३।।

श्लोकार्थ : जो प्रजा मन, वाणी तथा कर्मसे राजाका प्रिय करती है, वह सुखी रहती है और जो प्रिय नहीं करती हैं, वह दुःखी होती है ।।३३ ।।

व्याख्यार्थ : राजाका अच्छी तरहसे जो प्रिय करती है, उसके अधीन वह प्रजा धन आदि उत्तम फल पाती है. वह प्रिय भी कपटसे न करे. अर्थात्, शुद्ध मन, कर्म तथा वाणीसे करेगी तो निश्चयसे फल पायेगी. प्रियकरनेसे तो उत्तम फल प्राप्त करती है, किन्तु जो मन कर्म और वाणीसे भी प्रिय नहीं करती है वह विपरीत फल, अर्थात् सर्व प्रकारकी पीड़ा भोगती है. कारण कि प्रजाका धर्म है राजाका प्रिय करना।।३३।।

आभासार्थ : वनमें रहनेवाले हम बालकोंने मल्लयुद्धकी शिक्षा कहांसे प्राप्त की होगी. यदि ये यों कह दें तो उसके उत्तरमें कहता है:

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम्।
वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः।।३४।।

श्लोकार्थ : सदा ही आनन्दमें रहनेवाले ग्वाले बचपनमें ही बछड़ोंको चरानेकेलिए जब वनमें जाते हैं, तब वहां वनोंमें मल्लयुद्धकी क्रीड़ा करते हुए गौवोंको चराते हैं, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है ।।३४ ।।

व्याख्यार्थ : मल्लयुद्ध सीखनेके दो हेतु हैं. एक जीविकाकेलिये सीखना, दूसरे शरीरको पुष्ट बनानेकेलिये सीखना. आपके सिखानेवाले वे हैं, जो परम्परासे सीखते व करते आये हैं, वे लौकिक कहे जाते हैं. अतः जो युद्ध शास्त्रकी विधिके जाननेवाले शिक्षकोंसे सीखे हैं, उनसे वे फलसे हीन हैं, तो भी स्वरूपसे पुष्ट होते हैं. वह(चाणूर) कहता है गोप हमेशा प्रसन्नचित्त वाले होते हैं. बचपनसे ही बछड़ोंको चराने जाते हैं. वे वनोंमें मल्लयुद्धकी क्रीड़ा करते हुए उनको चराते हैं. गौओंको चरानेमें श्रम होने पर पीनेकेलिये दूध तो बिना विलम्ब तैयार है. बैलोंको पकड़ना बलिष्ठोंका काम है. अतः ग्वाले मल्लयुद्धकी क्रीड़ा करते

हुए दूध पीकर पुष्ट होते हैं. अतः जो राजाने सुना है, वह सर्वथा सत्य है।।३४।।

आभासार्थ : इसलिए हमको राजाका प्रिय करना चाहिए. जिसका वर्णन 'तस्माद्राज्ञः' श्लोकमें करता है:

तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे।
भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः।।३५।।

श्लोकार्थ : इसी कारणसे तुमको और हमको राजाका प्रिय करना चाहिए, क्योंकि राजा सर्व भूतोंका रूप है, जिससे अपने ऊपर भूत प्रसन्न होते हैं।।३५।।

व्याख्यार्थ : सबको राजाकी सेवा करनी चाहिये. अतः तुम जो लौकिक हो और हम जो शास्त्रीय हैं और 'च' कहनेसे यह बताया है कि अन्य भी जो इस विद्याको जाननेवाले हैं, वे सब मिलकर राजाका प्रिय कार्य करें. एक ही मार्ग पर चलनेवालोंको मुख्यका अनुसरण करना चाहिये. हम करते हैं तो आपको भी करना चाहिये. इस प्रकार करनेसे क्या होगा? भूत हम पर प्रसन्न होंगे, प्राणी सर्वभूतोंके रूप हैं. अतः उनका हित करना चाहिये. यदि हित नहीं किया तो शाप और प्रसादमें फलदानकेलिये कृतघ्नता होगी, क्योंकि राजा सर्व भूतमय है. भूत राजा देवतारूप कहे हैं, वास्तविक तो वह भी भौतिक ही है।।३५।।

आभासार्थ : पश्चात् अक्लिष्टकर्मा भगवान् कहने लगे कि जो युक्तसे युक्त हो वह ग्रहण करना चाहिए. और लौकिकका भी बाध न करना चाहिए. जिसका वर्णन 'तन्निशम्य' श्लोकमें करते हैं:

श्रीशुक उवाच

तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः।
नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च।।३६।।

श्लोकार्थ : चाणूरके ये वचन सुनकर भगवान् कृष्ण उसके वचनोंका अभिनन्दनकर अपनेको भी युद्ध करना अभीष्ट है, यह मानते हुए देश और कालके अनुरूप योग्य वचन कहने लगे।।३६।।

व्याख्यार्थ : युक्तिसे युक्त जो वचन हैं, उनको कहनेकेलिये ही कृष्णने अवतार लिया है और यहां आये हैं, तो भी देश तथा कालके योग्य जो वचन हैं, वे कहने लगे. कारण कि यहां प्रश्न लौकिकका है. शास्त्र आदिसे युद्ध करनेकी अपेक्षा मल्लयुद्ध ही अपनेको अभीष्ट है. क्षत्रिय १६ वर्षके जब होते हैं तब शस्त्र

ग्रहण करते हैं. उपनयनके अनन्तर ही शिक्षा ली जाती है. अतः बाहुयुद्ध ही अभीष्ट मानते हुवे देश कालके योग्य वचन कहनेके कारण उस चाणूरका अभिनन्दनकर राजाको कहने लगे।।३६।।

आभासार्थ : यहां दो बात कहनी हैं. एक राजाका प्रिय कर्तव्य करना और दूसरी तेरे साथ लड़ाई नहीं करनी है. कारण कि दोनोंका बल समान नहीं है. जिसका वर्णन दो श्लोकों से करते हैं. जिनमें प्रथम 'प्रजा' इस श्लोकसे कहते हैं:

प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः।
करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः।।३७।।

श्लोकार्थ : इस भोजपति कंसकी हम और तुम प्रजा हैं. हम तो वनवासी हैं, तो भी इनका प्रिय करते हैं. वह आपका बड़ा अनुग्रह है ।।३७ ।।

व्याख्यार्थ : इस भोजपति कंसकी हम वनवासी प्रजा हैं. यह उपहासकी तरह कहा है, 'च' कहकर बताया है कि सचमुच तो तुम इसकी प्रजा हो. हम तो वनमें रहनेवाले हैं, अतः हमारा राजासे कोई काम नहीं है, तो भी उनका नित्य प्रिय करते हैं. हम फलकी इच्छा नहीं रखते हैं, इसलिये कहते हैं कि इस प्रकार हमको मल्लयुद्ध करनेका अवसर आपने दिया है. यह परम अनुग्रह है. राजा मेरा मामा है, वह यदि भानेजोंके गुणोंको देखे तो अनुग्रह करेगा ही, यह योग्य होनेसे हर्षकी बात है. इस प्रकार जो कहा है, वह साधारण है।।३७।।

आभासार्थ : साधारण कहकर अब विशेष कहते हैं:

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम्।
भवेन्नियुद्धं माऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः।।३८।।

श्लोकार्थ : हम बालक हैं, अतः समान बलवालोंसे योग्यताके अनुसार खेलेंगे. कुश्ती भले ही हो, पर इसी प्रकार हो कि जैसे मल्ल और सभासदोंको अधर्म स्पर्श न करे ।।३८ ।।

व्याख्यार्थ : इस सभामें अपनी पहलवानी दिखाना ही प्रयोजन है, न कि दूसरा कोई मतलब है? यदि यों है तो मल्लयुद्ध शास्त्रानुसार करना ही चाहिये. इसलिये हम वैसा ही करेंगे. जिसका स्पष्टीकरण करते हुवे कहते हैं कि हम बालक हैं, युद्धके प्रारम्भमें कहा है कि समान आयुवाले तथा समान देह और बलवालोंमें कुश्ती करनी चाहिये, यह मर्यादा है. इसलिये कहते हैं कि जैसे योग्य हो वैसा करना चाहिये. यदि कहो कि राजाकी आज्ञा ही प्रमाण है, योग्यता क्या

है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि कुश्ती भले हो, किन्तु असमानोंमें कुश्ती करनेसे यह हस्तयुद्ध अधर्म होगा, अतः वह नहीं होना चाहिये, जिससे मल्लयुद्ध लड़ने वालोंको तथा सभासदोंको अधर्म न लगे. चाणूरने कहा कि वह लौकिक धर्म है और यह युग शास्त्रीय धर्म है, उससे विरुद्ध नहीं है. चाणूर आदि दैत्य हैं, इसलिये उन्होंने जो कहा है वह छलसे ही कहा है. यहां भगवान्ने 'बाला' शब्द अपनेलिये कहा है, जिसका गूढ आशय आचार्यश्री प्रकट करते हैं कि भगवान्के इस शब्दका भावार्थ है हम बालक, सम्बन्धी होनेसे 'बाल' हैं. अर्थात् आयु करके प्रतीति बालकी होती है, किन्तु हम बलवाले हैं, गोप आदि भी प्रतीतिसे ही सखा हैं, अथवा बलभद्र तुम तो हमारे समान बलशाली नहीं हो, किन्तु कम शक्तिवाले हो. इस अभिप्रायसे 'बाला' शब्द दिया है।।३८।।

आभासार्थ : चाणूर तो भगवान्के वचनोंको विपरीत समझकर अनिष्ट फलकेलिए विपरीतता सम्पादनकर युद्धमें प्रवृत्त करानेकेलिए 'न बालो' आदि दो श्लोकों में कहता है, हेतु देकर सिद्ध करता है कि आप बलवान् हैं, आप बालक नहीं हैं:

चाणूर उवाच

न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः।
लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत्।।३९।।
तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्र वै।
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः।।४०।।

श्लोकार्थ : चाणूर कहने लगा कि तू न बालक है और न किशोर है और बलराम बलवानोंमें श्रेष्ठ हैं. हजार हस्तियोंके समान बलवाले कुवलयापीड़को जिसने क्रीड़ासे मार डाला, अतः आप दोनोंको बलवानोंसे ही कुश्ती करनी चाहिए, इसमें किसी प्रकारका अन्याय नहीं है. हे वृष्णि कुलमें उत्पन्न कृष्ण, तू मेरे साथ मल्लयुद्धकर और बलराम मुष्टिकके साथ कुश्ती करे।।४०।।

व्याख्यार्थ : मैं बालक हूं यह जो तू कहता है, वह ठीक नहीं है, क्योंकि तुम्हारी आयु बल आदिको नियममें रखनेवाली नहीं है. इस अभिप्रायसे कहता है कि 'न बालो न' तू न बालक है और न किशोर है, आचार्यश्री कहते हैं कि वास्तवमें यह कहना सत्य है. 'च' का तात्पर्य है कि बलराम भी न बालक है और न किशोर है, बल्कि बलवानोंमें श्रेष्ठ है, वह और आप दोनों ही बलवान् हैं, इस

प्रकार दोनों बलवान् हो, यह प्रतिज्ञाकर उसको सिद्ध करनेकेलिये दृष्टान्त देता है. कुवलयापीड़ हस्तीमें हजार हाथियोंका बल है, एक साधारण हस्तीमें बलिष्ठ मनुष्योंके समान बल रहता है और सौ मनुष्योंके समान बोझ भी उठाता है, वैसे बलिष्ठ कुवलयापीड़को लीलासे मार डाला, बिना किसी शस्त्र आदि साधनके कोई बालक या पुरुष साधनवाले हस्तीको नहीं मार सकता है, अतः तू बहुत वीर है. इससे तू मनुष्य जैसा नहीं है, इस प्रकार बलभद्र भी मनुष्यके समान नहीं है. यदि यों है, तो क्या? इसके उत्तरमें कहते हैं कि इसी कारणसे आपके साथ तो उन योद्धाओंको लड़ना चाहिये जो कुवलयापीड़से विशेष बलवान् होवें. इस प्रकार इस युद्धमें अन्याय नहीं है, शत्रुओंसे तो युद्ध करना ही चाहिये, जिसमें न्यायसे भी विरोध नहीं है, यह निश्चय ही है. यदि कहो कि गोप वैसे ही हैं, उनसे हम युद्ध करें. उसके उत्तरमें चाणूर कहता है कि नहीं. हे वार्ष्णेय तू मुझसे कुश्ती कर, तू युद्ध कलामें उत्पन्न हुआ है, अतः मैं गोप हूं, यह छत्र छोड़कर खुली तरहसे मुझसे लड़ाई कर. तू कंसके बहिनका पुत्र है, अतः छलसे वाद क्यों कर रहा है? छल छोड़कर मुझ शत्रुसे, स्पष्ट लड़ाई कर, इसलिये कहता है कि विक्रमसे आज्ञा अर्थमें लोहा दिया है कि लड़ाईकर, पराक्रम दिखा. बलरामके साथ मुष्टिक पराक्रम दिखावे, यों कहनेका चाणूरका तात्पर्य है कि मुष्टिकमें थोड़ा बल है, मैं तुमसे भी विशेष बलवाला हूं, इससे ही कहा गया है कि चाणूरको भगवान्ने मारा, यों नहीं कहते, अर्थात् अहङ्कार प्रकट न करता, तो अक्लिष्टकर्मा भगवान् उसको नहीं मारते, क्योंकि मारनेकी प्रतिज्ञा नहीं की थी इस प्रकार वाणीके बन्धन तक सब देखनेवालोंकी भगवान्में आसक्तिका निरूपण किया।।४०।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कन्धके अध्याय ४०,
राजस–प्रमेय अवान्तर प्रकरणके प्रथम अध्यायकी श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण द्वारा
विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ.

अध्याय ४१

चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानोंका तथा कंसका उद्धार

एकचत्वारिंशत्तमे वधः कंसस्य रूप्यते।
तदीयैः सह तस्माद्धि पित्रोरोधश्च दीनयोः।।का.१।।

कारिकार्थ : इस इकतालीसवें अध्यायमें साथियोंके साथ कंसके वधका निरूपण किया जाता है, जिससे माता – पिताकी आसक्ति भी कही गई है.

बलक्षयाय लीलापि वाक्यान्यासक्तिबोधने।
भक्तार्थे मारणं चास्य कंसस्यापि तथैव च।।का.२।।
प्रतिबन्धनिवृत्यर्थमेतावद्भगवत्कृतम्।
निरुद्धास्तेपि मुक्ता हि पूर्वस्माच्च विशिष्टता।।का.३।।
बोधिता ज्ञानकथनादासक्तिश्च स्थितैव हि।
त्रिविधाः सर्व एवैते गुणातीतोपि सात्त्विकः।।का.४।।

कारिकार्थ : उनकी आसक्तिको जगानेकेलिए नगरकी स्त्रियोंके वाक्य माता–पिताको कहे गए हैं. कंस तथा मल्ल आदिका वध भक्तोंकेलिए ही किया है. यह सब भगवान्ने निरोधमें जो प्रतिबन्ध थे, उनकी निवृत्तिकेलिए किया है और जिससे इस अध्यायमें शत्रुओंकी भी मुक्ति हुई है. इस अध्यायमें भगवत्व(भगवान्पने)के ज्ञान कहनेसे प्रथम कहे हुए निरोधसे यहां विशेषता बताई हैं. आसक्ति भी स्थित है ही उसका यों निरूपण है और यहां कोई नवीन आसक्ति नहीं कराई जाती है, इस कारणसे भी विशिष्टता है. तामस भावके समय भगवान्पनसे ज्ञान नहीं था. अब भगवत्वका ज्ञान हुआ है. अतः आसक्ति नूतन कही जाती है. ये सब तीन प्रकारके हैं. ये कोन? मल्ल, स्त्रियां और माता – पिता. ये तीन क्रमसे तामस(मल्ल) राजस(स्त्रियां)और सात्विक(माता–पिता) हैं, यद्यपि वसुदेवजीको अन्यत्र गुणातीत कहा गया है, किन्तु यहां सात्विक हैं. यहां वैकुण्ठ लोकका फल कहा है. वह लोक ज्ञानियोंको प्राप्त होता है और वह ज्ञान सतोगुणके उदय होनेसे ही होता है, इस कारणसे वसुदेवजीको यहां सात्विक कहा है।।४।।

अथवा ते पुनर्वाच्यास्तत्रैके मोचिताः स्वतः।
निरुद्धाः सफलाः प्रोक्ताः पितरौ पूर्वतोधिकौ।।का.५।।

कारिकार्थ : अथवा ये तीन गुण इस अध्यायके अनन्तरके प्रसंगमें इस प्रकार समझने चाहिए, वे प्रकार बताते हैं

१. जो यादव बाहर दुःखी थे, उनको उस दुःखसे स्वतः छुड़ाकर यहां बुला लिया, यह बुलाना माता – पिताकेलिए नहीं था और सांदिपनीको भी बुला लिया ये सात्विक हैं. इनकी कथा आगेके अध्यायों में होगी.

२. जिनका पहले निरोध हुआ है, वे तामस व्रजस्थ हैं. जिनका वर्णन दो अध्यायोंमें किया है.

३. जिनको फल प्राप्त हुआ है वे कुब्जा, अक्रूर आदि राजस, जिनका कि वर्णन पीछे दो अध्यायोंमें हुआ है. इस अध्यायमें पूर्व निरोधसे भी अधिक गुणातीत माता – पिताका वर्णन किया है उनके छुड़ानेकेलिए अन्योंका वर्णन है ।।५ ।।

आभासार्थ : पूर्व अध्यायमें युद्धकेलिए चाणूरने बुलाया है, शास्त्रकी आज्ञा है कि यदि कोई लड़ाई करनेकेलिए बुलावे तो लड़ाई करनी ही चाहिए. वहांसे हटना योग्य नहीं है, चाहे वह लड़नेवाला कम बलवाला हो. अतः युद्ध करनेको प्रवृत्त हुए, जिसका वर्णन 'एवं चर्चित' श्लोकमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं:

श्रीशुक उवाच

एवं चर्चितसङ्कल्पो भगवान्मधुसूदनः।
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः।।१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहते हैं – इस प्रकार जो करना है, उसका विचार करके मधुसूदन भगवान् चाणूरके पास जाकर उससे भिड़े और रोहिणीके पुत्र मुष्टिकसे भिड़े ।।१ ।।

व्याख्यार्थ : भगवान्ने प्रथम इस कुश्ती करनेके विषयमें चाणूरसे विचार विमर्श किया, अनन्तर तय हुआ कि कुश्ती करनी चाहिये, यदि परामर्श करनेके सिवाय दुर्बलके साथ हस्त युद्ध किया जावे तो दोष है. अब विचार पूर्वक यह कुश्ती लड़ी जाती है.अतः इसमें किसी प्रकार दोष नहीं है. विशेषमें भगवान् चाणूरके हृदयकी बात भी जानते हैं कि यह युद्धके सिवाय शान्ति न करेगा. लड़नेमें भगवान्को तो कुछ संशय वा डर नहीं है, क्योंकि भगवान् 'मधुसूदन' हैं अर्थात् मधु दैत्यको मारनेवाले हैं. जहां मधु दैत्य जैसे प्रबलका कुछ बल नहीं चला, वहां यह बेचारा क्या है? अतः इसके निकट जाकर इससे भिड़े, पहले

चाणूरके पास गये, अनन्तर उस [२]चाणूरको अपनेसे मिला लिया. अनन्तर दूसरे [२]पक्षमें उसको मारा व दूर फेंक दिया और मुष्टिकको रोहिणी पुत्रने इस प्रकार नष्ट किया. मुष्टिक तो डरता था, इसलिये स्वयंने कुछ नहीं कहा. इसलिये उसकी कुश्ती प्रयोजनवाली नहीं थी. मुष्टिकने देखा चाणूर भगवान्से [३]कुश्ती लड़ रहा है, तब आप भी लड़ने लगे, वह अनुचित है, इसलिये बलराम न कहकर 'रोहिणी सुत' कहा है।।१।।

१.आधिदैविक, २.चाणूर आधिभौतिक रहा उस पक्षमें, ३.घुटने, सिर आदि मिलाकर सम्मुख होके लड़ रहे हैं.

आभासार्थ : मल्ल शास्त्रमें जिस प्रकार मल्लसे लड़नेकेलिए कहा है वैसे ही लड़नेमें प्रवृत्त हुए, जिसका वर्णन ४ श्लोकोंमें करते हैं:

बलं शिक्षा च माया च प्रसादश्च गुरोस्तथा।
चत्वारोपि निराकार्यास्ततः श्लोकचतुष्टयम्।।का.१।।

कारिकार्थ : ४ श्लोक क्यों कहे हैं? उसका कारण आचार्यश्री इस कारिकामें प्रकट करते हैं. ४ श्लोकमें बल, शिक्षा, माया और गुरुकी कृपा, इन चार बातोंको बतानी है अतः ४ श्लोक हैं ।।१ ।।

हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः।
विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया।।२।।

शलोकार्थ : हाथोंसे हाथ मिलाकर और पैरोंसे दोनों पैर जोडकर, जीतनेकी इच्छासे बलपूर्वक आपसमें खीचने लगे।।२।।

व्याख्यार्थ : हाथोंके अग्रभागको अग्रभागसे मिलाकर इस प्रकार पैरोंके अग्रभागको पैरोंके अग्रभागसे मिलाकर दोनों एक दूसरेको खींचने लगे. जीत लेनेकी इच्छासे जबर्दस्तीसे खींचनेकी क्रिया करने लगे. जिसके खींचनेसे दूसरा घसीटा हुआ आ जाता है, वह पराजित गिना जाता है. इस युद्धमें ही दोनोंकी परस्पर अङ्गुलियोंका बन्धन होता है. जीतनेमें विशेष बल चाहिये।।२।।

आभासार्थ : पश्चात् सर्व अङ्गोंसे सामने परस्पर मिलकर जो युद्ध किया है, उसका वर्णन 'अरत्नी द्वे' श्लोकमें करते हैं :

अरत्नी द्वे अरत्नीभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी।
शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः।।३।।

श्लोकार्थ : दोनोंने अपने हाथकी अंगुलियोंको खोलकर परस्पर हाथ

मिलाए और इस प्रकार घुटनोंको घुटनोंसे, मस्तकको मस्तकसे, छातीको छातीसे मिलाकर लड़ने लगे ।।२।।

व्याख्यार्थ : दोनों तरफसे खुले हुवे हाथोंके मध्यभागके सम्बन्धको 'अरत्नी' कहते हैं. इसी प्रकार दोनों घुटने भी नीचेके भाग सहित मिलाये तथा मस्तक–मस्तकसे, छाती–छातीसे मिलाकर परस्पर सामना करने लगे. इस प्रकार बल और शिक्षाका निरूपण किया।।३।।

आभासार्थ : मायासे शास्त्रकी परिपाटी 'परिभ्रामण' श्लोकसे कहते हैं:

परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः।
उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम्।।४।।

श्लोकार्थ : चारों तरफ घुमाना, दूर फैंकना, जोरसे आलिंगन, फिर पृथ्वी पर पटकना आगे बढ़ना, पीछे हटना, इस प्रकार एक दूसरेके बलको रोकने लगे ।।४ ।।

व्याख्यार्थ : प्रथम दोनों परस्पर एक दूसरेको चारों तरफ घुमाते हुवे फेंक देते थे, फिर दोनों आकर गाढ आलिङ्गन करते थे. पश्चात् मिलते ही भूमि पर पटक देते थे. इस प्रकार चारों ही एक क्रमसे करते थे. अनन्तर जब दोनों छुट्टे हो जाते थे तब आगे धकेलते, तो वे पीछे पास आ जाते, जो कोई गिरा देता तो वह सरकता हुआ ऊपर आ जाता है. जिससे उसकी जीत हो जाती है. अथवा ऊपरवाला नीचे हो जाये तो फिर वह जीत जाता है, इस प्रकार जैसे एक दूसरेका बल रुक जावे ऐसी क्रियाकर अपना बल दिखाने लगे।।४।।

आभासार्थ : पश्चात् अर्थात् बल, शिक्षा और मायाके प्रकारसे युद्धकर अब गुरु कृपासे जो युद्ध करनेके तरीकोंका ज्ञान हुआ है, उन तरीकों से युद्ध करते हैं जिसका वर्णन 'उत्थापनैः' श्लोकसे करते हैं:

उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि।
परस्परं जिगीषन्तावुपचक्रतुरात्मनः।।५।।

श्लोकार्थ : जो घुटने और पैरोंको समेटकर स्थिर जैसा बैठ जाता है, उसको वहांसे खड़ा कर देना और जो एक स्थान पर सिमिट कर खड़ा रह जाता हैं, उसको वहां से सरकाकर ले जाना, जो स्थिर है, उसको हिला देना, जो हिलता एवं फिर रहा हैं, उसको एक स्थान पर स्थिरकर देना, इन चार प्रकारोंसे वे मल्ल अपनी– अपनी जीत होनेकेलिए अपनी देहको दुःख देने लगे ।।५ ।।

व्याख्यार्थ : जो प्रतिज्ञाकर, स्थिर होकर बैठे हुवेको उठाता है, वह जीतता है. जो सीधा खड़ा हो जाता है, उसको झुकाता है वह भी जीतता है. जो स्थिर होकर खडा होता है, प्रतिज्ञाके साथ उसको वहांसे हिलाता है, वह भी जीतता है. और जो इधर उधर घूम रहा हो, उसको एक स्थान पर स्थिर कर देता है. वह भी जीतता है. इस प्रकार ये युद्धके जो चार प्रकार हैं, उनसे जो युद्ध करते हैं, वे जीतनेकी इच्छासे अपने शरीरका अपकार करते हैं. इस प्रकारके युद्धमें अङ्गको चोट लगना तो प्रत्यक्ष ही है. यद्यपि चाणूर आदि स्थूल हैं, किन्तु वे कपासकी भांति हैं और भगवान् सूक्ष्म होते हुवे भी वज्रके समान अति निष्ठुर हैं।।५।।

आभासार्थ : यद्यपि इस युद्धका फल भगवान्की ही जय हुई, तो भी जो भगवान्में प्रेमासक्त थे, उनको विपरीत प्रतीत होने लगी. उनमें भी जो स्त्रियां थीं वे तो भोली थीं, जिससे वे उस प्रतीतिको सहन न कर सकी. अतः अपने हृदयमें स्थित भावोंको प्रकाशित करने लगीं, जिसका वर्णन 'तद्बलाबल' से ११ श्लोकोंमें करती हैं. उनमें सात श्लोकोंमें प्रत्यक्ष देखा हुआ भगवच्चरित्र वर्णन करती हैं और ४ श्लोकोंमें अपनी निन्दाकेलिए गोपियोंका स्तोत्र कहा है. जिसमें पहले युद्धको देखकर जो खेदयुक्त होके चिल्लाने लगे, उनका वर्णन करती हैं. किस प्रकार कहने लगीं वह प्रकार कहते हैं. दयायुक्त हृदयवाली सब स्त्रियां अपने-अपने देश तथा ग्रामके भेदसे रक्षित स्थान पर मिलकर परस्पर जो कहना है वह कहने लगीं. सबल और निर्बलका युद्ध जो प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा था प्रथम उसका वर्णन करने लगीं ।।५।।

तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः।
ऊचुः परस्परं राजन् सानुकम्पा वरूथशः।।६।।

श्लोकार्थ : हे राजन् ! बलवान् और निर्बलका वह युद्ध देख, इकट्ठी हुई सब स्त्रियां करुणा सहित परस्पर कहने लगीं ।।६ ।।

व्याख्यार्थ : कोई कहते हैं कि वे उसके दोष भी आगे कहने लगीं. बलवाले और *निर्बलकी लड़ाई देखकर जो समान शील तथा व्यसनवाली थीं, वे परस्पर आके मिलीं. इन सब स्त्रियोंके मिलापका कारण निरोध है, न कि सम्बन्ध कारण है. राजन् यह सम्बोधन राजाको स्नेहसे सावधान करनेकेलिये दिया है, क्योंकि कदाचित् राजा यों समझे कि स्त्रियोंके वचन हैं वे कैसे होंगे उनको न सुना

तो हानि नहीं, यों राजा न समझें, इसलिये इस प्रकारका सावधान करनेकेलिये सम्बोधन दिया है. स्नेहसे यह गुण है कि समर्थको असमर्थ समझा देता है, विशेष समूहमें अच्छी तरह सुना जाता है अर्थात् करनेवाले बहुत होते हैं तो बड़ी ध्वनि निकलती है, जिससे वह अच्छी तरह सुननेमें आती है. लीलासे वे दस प्रकारकी थीं. सगुणसे नव प्रकारकी थीं और एक निर्गुण थी, इस प्रकार दस विध समूह थे।।६।।

*.श्लोकमें 'बलाबलवत्' पदमें जो मतुप् प्रत्यय है, वह बल और अबल दोनों शब्दोंके साथ जोड़ना है.

आभासार्थ : उनमें एक प्रकारका न्याय प्रिय था, वह अन्यायको सहन नहीं कर सकती थी, वह कहने लगी:

स्त्रिय ऊचुः

महानयं बताधर्म एषां राजसभासदाम्।
ये बालबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः।।७।।

श्लोकार्थ : स्त्रियां कहने लगीं – खेद है कि राज सभाके ये सभासद् राजाके देखते हुए बालककी बलवान्से कुश्ती करा रहे हैं, यह महान् अधर्म है।।७।।

व्याख्यार्थ : खेद है कि यह अचानक अधर्म कैसे हो रहा है? यहां बड़ा ही अधर्म है, जो राजसभाके सभ्योंको लगेगा. हालांकि अधर्म राजासे सम्बन्ध रखता है, तो भी उसका सभासे भी सम्बन्ध है. उनमें भी जो सभाके अधिकारी हैं अर्थात् सभाके अधिकारियोंको वैसी सभा बन्द करनेका अधिकार है. सब अधर्मोंसे यह महान् अधर्म है, जो एक बाल और दूसरा बलवाला अर्थात् पहलवान, इन दोनोंका युद्ध शास्त्रके विरुद्ध है. उस पर भी राजाके देखते हुवे युद्ध हो रहा है. राजा धर्मकी मूर्ति होता है, उसके सामने अधिकारियोंको अन्याय नहीं करना चाहिये. अतः राजाके देखते हुवे भी अधिकारी यों करना चाहते हैं, इससे राजा भी यों समझेगा कि ये सब ऐसे दुष्ट हैं, जो अधर्म करा रहे हैं. पश्चात् देखकर इसका दण्ड भी होगा, उनके कहनेका यह ही आशय है।।७।।

आभासार्थ : भगवान् भी बलवान् – बलिष्ठ हैं. अतः कोई अधर्म नहीं होगा. इस पर 'क्व वज्रसार' श्लोक कहती हैं:

क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ।

क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ।।८।।

श्लोकार्थ : वज्रके समान कठोर अंगवाले तथा पर्वतराजके समान योद्धा कहां? और अतिकोमल अंगवाले, जो अभी युवावस्थाको भी प्राप्त नहीं हुए हैं, वैसे किशोर अवस्थावाले बालक कहां? ।।८ ।।

व्याख्यार्थ : बाधित अर्थको वेद भी बोध नहीं कराता है. भगवान्के अङ्ग कोमल हैं, यह अनुभवसे सिद्ध है. मल्लोंके अङ्ग बहुत कठोर होते हैं, यह भी प्रसिद्ध है. और विशेष वे मल्ल तो लम्बे हैं और ये बाल छोटे हैं. जैसी आकृति वैसे गुण होते हैं, यों कहकर बताया कि यहां न्यायके विरुद्ध कार्य हो रहा है जिसका वर्णन करती हैं. वज्रसे भी मजबूत सर्व अङ्गवाले, मल्ल विद्यामें भी निपुण तथा महामेरुके तुल्य ये मल्ल कहां? और ये अति कोमलाङ्ग कुमार कहां? आयुसे तो अभि किशोर ही हैं. कभी किशोर भी देह तथा बीजके कारण किशोर अवस्थामें भी जवान जैसे हो जाते हैं, किन्तु ये वैसे, भी नहीं हैं, यह स्पष्ट देखनेमें आता है. इसलिये श्लोकेमें 'न आप्तयौवनं याभ्यां तौ(नाप्तयोवनौ)' यह नञ् समाससे दिया है।।८।।

अभासार्थ : इस प्रकार अधर्म करनेमें जो हेतुरूप न्यायका विरोध है, वह कहकर विशेष कहती हैं कि न केवल इनको अधर्म लगेगा, किन्तु जिस धर्मके प्रभावसे ऐश्वर्य आदि भोगते हैं उस धर्मका भी उल्लङ्घन होगा, जिसका वर्णन 'धर्मव्यतिक्रमो' श्लोकमें करते हैं:

धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत्।
यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित्।।९।।

श्लोकार्थ : इस सभामें धर्मका उल्लङ्घन अवश्य होगा, जहां अधर्म होवे, वहां कभी बैठना नहीं चाहिए ।।९ ।।

व्याख्यार्थ : इस समाजका निश्चय उलटा भाग्य होगा. कारण कि शुभ फल धर्मसे ही होता है. उसके उल्लङ्घनसे नाश ही होता है. प्रथम छोटेको बड़ेसे युद्ध कराके अधर्म किया है. दूसरे भी सहज(उसके साथ) अधम हुवे हैं. वास्तवमें धर्मका स्वामी अच्युत है. उसका अन्य प्रकार विनियोग होने पर वा लीला दर्शनमें अथवा धर्म सेवकपनसे सेवक सेवकोंका अतिक्रम होता ही है. वह भी अधर्म है. शास्त्रमें आज्ञा है कि धर्मका उल्लङ्घन न करें. इस प्रकार इसमें चारों तरफ अधर्म प्रकट हो रहा है. इससे जहां सर्व प्रकार अधर्म देखनेमें आवे वहां दुःख(नाश)

अवश्य होगा. अतः वहां कभी भी नहीं ठहरना चाहिये, जो कि यहां दुःखकी सम्भावना प्रकट नहीं है, तो भी कारणकी उत्पत्ति तो मौजूद है. इसलिये जैसे सर्प पड़ा हो वहां उसके निकट सोना नहीं चाहिये, क्योंकि नाशका कारण सर्प मौजूद है. इसी प्रकार यहां भी दुःखका कारण मौजूद है।।९।।

आभासार्थ : यदि यों हैं तो सर्वको अधर्म लगेगा, सभाकी विशेषता क्या है? जो उसको ही अधर्म लगे इस पर 'न सभां प्रविशेत्' श्लोक कहकर इसका समाधान करती हैं:

न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन्।
अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते।।१०।।

श्लोकार्थ : दूसरी कहती है – सभासदोंके दोष जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुषको सभामें नहीं जाना चाहिए, क्योंकि वैसी सभामें जाकर न कहे, अथवा विरुद्ध कहे, अथवा कहे कि मैं नहीं जानता, तो वे तीन ही पापके भागी होते हैं।।१०।।

व्याख्यार्थ : अथवा क्या करना चाहिये? सभा छोड़कर बाहर आ जाना चाहिये या चुप होके बैठना चाहिये? इस पर जो करना चाहिये वह 'न सभा' इस श्लोकमें बताती हैं जो सभामें बैठे हों उनको अवश्य कहना चाहिये, यदि कहनेकी शक्ति न हो, तो बुद्धिमान्को सभामें क्या होगा, इसको पहले ही समझ, सभामें ही न जाना चाहिये, मनुने भी कहा है कि सभामें जाना ही नहीं चाहिये यदि जाये तो जो योग्य हो वह कहना चाहिये यदि न कहता है तो वह मनुष्य पापी होता है. ये सभासदोंके दोष हैं नहीं कहना, सभामें बैठे हुवेको पूछते अथवा न पूछने पर भी योग्य(उचित बात) नहीं कहे, तो वह नरक भागी होता है, अथवा विरुद्ध कहे तो भी नरक भागी होता है. अन्यायसे पूछने पर, वा न पूछने पर या पूछने पर भी यदि कोई कह देवे कि मैं नहीं जानता हूं तो वह मूर्ख कहा जाता है. इस प्रकारके तीन ही सभामें बैठे हुए नरक भागी होते हैं. सभा में जाते समय सभा का स्मरण करते हुए उसके गुण तथा दोषोंको भी स्मरण करना चाहिये, 'किल्बिष' शब्दका अर्थ यहां अवश्य नरककी प्राप्ति है।।१०।।

आभासार्थ : यदि कोई कहे कि भगवान् भी निश्चय बलवान् हैं जिसका प्रमाण कुवलयापीड़ हस्तीका वध है इसके उत्तरमें 'बल्गतः शत्रुं' श्लोक कहती हैं:

वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम्।
वीक्षतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः।।११।।

श्लोकार्थ : अरी ! शत्रुके चारों तरफ मल्लके शब्द कहते फिरते हुए कृष्णके मुखकमलको देखो तो कैसा परिश्रमसे उत्पन्न जलसे अर्थात् पसीनेसे गीला हो रहा है ? यों दिखाई देता है, जैसा जलसे व्याप्त कमल ।।११ ।।

व्याख्यार्थ : शत्रु(चाणूर)के चारों तरफ मल्लोंके समान शब्द करते हुवे, हमारे सर्वस्व सदानन्द कृष्णके पसीनेके जलसे व्याप्त मुखकमलको तो देखो, यदि शत्रुसे अधिक बलवाले अथवा समान बलवाले होते तो शत्रुकी तरह इनको भी श्रम न होता, शब्द तो असमर्थ ही करते हैं, यह लोकमें प्रसिद्ध ही है. श्रमसे उत्पन्न जलसे मुखकमल भरा पड़ा है, नहीं कि बूंदोंसे. इससे मालूम होता है कि भीतरी श्रमकी अधिकता है. कर्म करनेसे *श्रम होता ही है, इससे कौनसा दोष है ? इसके समाधानमें कहती हैं कि जैसे पद्मकोश जलसे उत्पन्न होता है, किन्तु उसको जल स्पर्श नहीं करता है. ज्यों जल बढ़ता है त्यों उसका नाला भी बढ़ता है, जिससे उसकी जलसे आर्द्रता असम्भव है. वैसे ही भगवान्को भी श्रम जलका स्पर्श हो नहीं सकता है.

तब शङ्का होती है कि स्त्रियें जो कह रही हैं वह असत्य है क्या ?

जिसका समाधान आचार्यश्री करते हैं कि ये स्त्रियां अन्यमें आसक्त न होवें, उनकी आसक्ति मुझमें ही सिद्ध हो तदर्थ भगवान्ने उनको वैसी प्रतीति कराई है और यों करनेसे कंसादिकको भी प्रथम प्रसन्न किया है।।११।।

*.टीकामे 'भवत्येव' है, नीचे नोटमें 'भवतु' पाठ दिया है. यदि वह हो, तो उसका अर्थ इस प्रकार होगा, कर्मसे श्रम होने दो क्या दोष है ?

आभासार्थ : यह भगवान्के मुखारविन्द पर श्रम जलका दर्शन सबको न भी हुआ हो. कदाचित् कहनेवालीको भी न हुआ हो. बलभद्रमें जो दीख रहा है वह तो सब देख रहे हैं. अतः अपेक्षासे 'किं न पश्यत' श्लोकमें उसका वर्णन करती हैं:

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम्।
मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरम्भशोभितम्।।१२।।

श्लोकार्थ : अरी ! रामका लाल शुर्ख नेत्रवाला मुख नहीं देखती हो क्या ? जो मुष्टिकके प्रति क्रोधपूर्ण है. इतना होते हुए भी वह हासके आवेशसे

सुशोभित है ।।१२ ।।

व्याख्यार्थ : ताम्र जैसे सम्पूर्ण लाल नेत्रवाला रामका मुख क्या नहीं देखती हो? यह बड़ा भाई है, इसका श्रम सार्वजनिक है, नहीं होता तो क्रोधको प्रकट न करते, अशक्त ही यों करता है, लाल नेत्र स्वभावसे भी होते हैं, इस पर कहती हैं कि ये नेत्र स्वभावसे लाल नहीं हैं, किन्तु इस मुष्टिकको मारना इसलिये क्रोधका आविर्भाव होनेसे ये नेत्र लाल हुवे हैं. जो स्वयं असमर्थ हैं, उनकी प्रवृत्ति कामादिक कराते हैं. यदि कहो कि यह भी सहज है तो इस पर कहती हैं कि हाससे जो क्रोध उत्पन्न किया उससे सुशोभित मुख है. जिससे ये नेत्र क्रोधके कारण ही लाल हुवे हैं अथवा प्रथम हास पूर्वक की हुई कामलीला से यह मुख सुशोभित है. अथवा आगे कहे हुए वचनमें हमको खिन्न(सखेद) देखकर हास और क्रोधसे शोभित यह मुख है. ये स्त्रियां हमको नहीं जानती हैं, इस कारण हास्य किया है और ये दुःख पा रही हैं. इसलिये उसकी(मुष्टिक करो) शीघ्र मारना चाहिये, अतः क्रोध भी करते हैं. दोनों(हास एवं क्रोध)से विशेष शोभित हैं, अतः कहनेका यह तात्पर्य है कि कुछ भी सहज नहीं है।।१२।।

आभासार्थ : इस प्रकार अश्रान्त भी भगवान्को प्रेमसे श्रमित समझकर कहने लगीं कि हमने भगवान्के दर्शन अवसर पर नहीं किए. इससे अपने भाग्यको धिक्कारती हुई गोकुल वासियोंके भाग्यकी पुण्या बतं, श्लोकसे लेकर ४ श्लोकोंमें सराहना करती हैं:

पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्गगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः।
गाः पालयन्सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयाञ्चति गिरित्रमार्चिताङ्घ्रिः।।१३।।

श्लोकार्थ : अहो ! व्रजकी भूमि धन्य है. जहां मनुष्य शरीरसे गुप्त साक्षात् पुराण पुरुष परमात्मा बनके विचित्र पुष्पमाला धारणकर, बलदेवजीके साथ गौओंको चराते, बंसी बजाते क्रीड़ा करते वहां बिराजते हैं, इस लीला समयमें भी महादेवजी तथा लक्ष्मीजी इनके चरणोंकी सेवा करती हैं ।।१३ ।।

व्याख्यार्थ : प्रथम व्रजकी भूमिकी सराहना करती हैं, पीछे स्त्रियोंकी पहले तो व्रजकी भूमियां धन्य हैं, कारण कि यह स्वयं पुराण पुरुष, कपटसे मानुषरूप धारणकर, विचित्र वनकी मालाओंको पहनकर, वहांकी गायोंको पालते हुवे, सहायक बलभद्रके साथ विशेष क्रीड़ा करनेकेलिये व्रज भूमिको पूजते हैं अथवा वहां जाते हैं, आपके चरण तो महादेव और लक्ष्मी पूज रहे हैं, भूमि

यद्यपि स्वभावसे पुण्यवाली होती है, हालांकि मथुरा भी वैसी गिनी गई है तो भी मथुरा मण्डलमें व्रजकी भूमियां ही पुण्यरूप हैं, पुण्यका फल सुख है, जिसका प्रमाण यह है कि व्रजवासी निरन्तर सुखका अनुभव कर रहे हैं, यहां तो उससे विपरीत दुःखका अनुभव हो रहा है, श्लोकमें(बत) शब्दसे हर्ष प्रकट किया है कि लोकमें ऐसा भी स्थान है, जो गोप्य है. उसकी ही क्रीड़ा सुख देनेवाली होती है. अतः यह भूमि गुप्त क्रीड़ाका साधन होनेसे भगवान्को भी सुख देनेवाली है.(पुराण पुरुष) कहकर यह बताया है कि इनको दृढ़ स्वरूप ज्ञान है, तो भी श्रमके आविर्भावसे दूसरे स्थलकी प्रशंसा ही की है. सब कार्य गुप्तरूपसे सब कर सकते हैं. इस प्रकारसे है तो भी नियामकको भी कहती हैं, वनमें स्थितोंका भी नियामक, विचित्र वनमालाओंको धारण करनेवाले हैं,(गायोंका पालन करते हुवे) यों कहनेका आशय है कि बहुत ही गौण भावके आश्रयसे स्वच्छन्द लीला हो सकती है, अर्थात् पुराण पुरुषोत्तम होकर भी कपट मनुष्य बन गायोंको चराना यह गौण भावका आश्रय लेना है. वैसा करनेसे ही गोप आदिसे स्वच्छन्द लीला हो सकी है. उस लीलामें कोई भी बाधक न हो तदर्थ अपने साथ सहायक (बलरामजी) भी लिया है. रसको जगानेकेलिये रक्षक देवको भी प्रबुद्ध करनेकेलिये अथवा दिनके समयमें भी परमानन्दको अनुभव करानेकेलिये, भगवान् वेणु बजाते हैं, और श्लोकमें जो(च) शब्द दिया है जिसका आशय प्रकट करते हुवे आचार्य श्री कहते हैं कि केवल यह लीला नहीं करते थे, किन्तु अन्य भी अनेक प्रकारकी लीलाओंको करते थे. भूमिका पूजन करते हुवे वहां वालोंका भी समादर करते थे, यों कहनेसे यदि स्वच्छन्द लीलाका उल्लङ्घन भी हो जाये तो कोई अपराध नहीं. अन्यत्र गुप्तत्वका यदि अभाव हो तो वह आपको प्रिय नहीं है, गुप्त होने पर चाणूर आदिका अतिक्रम होता है. इस प्रकार दोनों बातोंमें दुःख है. यह भी शङ्का न करनी कि ये गोकुलमें अपने निज स्वरूपसे च्युत हो गये हैं, जो कि यहां स्थित स्वरूपको भी महादेवजी तथा लक्ष्मीजी पूज रही हैं. महादेवजी इसलिये भी पूजा करते हैं कि स्वयं(पशुपतिः) पशुओंके स्वामी हैं. और यहां भगवान् उन पशुओंके रक्षक एवं पालक हैं और विशेष कारण बताते हैं कि एक तो वे पूजन करते हैं, जो अपराधी होता है पूजासे अपराधको दूर करता है और देखता है कि इसने यह महान् होकर मेरा कार्य कर रहे हैं, मैं नहीं करता हूं, तब उसको लज्जा आती है, जिससे वह पूजा करता है, अन्यथा गोवर्द्धनके उद्धरणके समय

इन्द्रका अपकार(बुरा) करे अथवा गोवर्द्धन टूक कर दे, वह तो यथा स्थित पर्वतोंकी पालना करते हैं. सुदर्शनका मोक्ष भी अङ्गीकार न करे, अतः देखा जाता है कि उसका व्यवहार सेवककी भांति ही है. लक्ष्मीजी सकल स्त्रियोंकी मूल प्रकृति हैं. उनके वैभवका रूप गोपियां हैं. उन पर भी कृपा करते हैं. अथवा महादेवजी यों समझ पूजन करते हैं कि यदि इस प्रकार भगवान् पशु पालन करेंगे तो मेरा(पशुपालन) कर्म चला जायेगा और लक्ष्मी समझेगी कि इस प्रकार गोपियां सदैव भगवान्के पास रहेंगी तो मेरा आदर मिट जायेगा. अतः पूजाकर भगवान्को प्रसन्न करूं, तो मेरा आदर बना रहे।।१३।।

आभासार्थ: इस प्रकार भूमिका अभिनन्दन कर तीन श्लोकोंमें गोपियोंका अभिनन्दन करती हैं 'गोप्यस्तपः किमचरन्निति':

गोप्यस्तपः किमचरन्यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुरापमेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य।।१४।।

श्लोकार्थ: अहो ! गोपियोंने ऐसा कौनसा तप किया है, जो श्रीकृष्ण–चन्द्रका रूप जो कि लावण्यसे श्रेष्ठ, नित्य प्रति नया, दुर्लभ, यश, लक्ष्मी और ऐश्वर्यका अविचल धाम तथा स्वतः सिद्ध और जगत्में उनके बराबर या उत्तम अन्य कोई नहीं है, वैसे को नेत्रोंसे देखती हैं, मानों पी रहीं हैं ।।१४।।

व्याख्यार्थ : ये गोपियां भगवान्के उस रूपको देख रही हैं जिसका भक्त ध्यान करते हैं, और गान भी भगवान्का ही गाती हैं, तथा नित्य उनमें ही आसक्त रहती हैं. ये तीन ही अल्प तपस्या अथवा प्रसिद्ध विशेष तपस्यासे भी जब नहीं प्राप्त होती हैं, तब इन्होंने न जाने कौनसी तपस्या की है, जिससे इनको ये तीन ही प्राप्त हुवे हैं. यदि बिना तपस्याके होते हैं तो अन्यको भी प्राप्त होने चाहिये, किन्तु होते नहीं.

हालांकि हम भी भगवान्के रूपका दर्शन कर रही हैं, तो भी इनको जिस रूपका दर्शन होता है, वह तो सारभूत लावण्य ही है, अर्थात् उस रूपमें केवल लावण्य ही प्रकाशित है अथवा सौन्दर्यका भी सार है, इस समय तो क्रोधके प्रकट होनेसे अवस्था बदलनेसे वह लावण्य तिरोहित सा हो गया है और विशेषमें कहती हैं कि उनके समान अथवा उत्तम कोई नहीं है. उनकी दृष्टिमें केवल भगवान् ही दीख रहे हैं. यहां तो हम लोगोंको दुष्ट और सम्बन्धी चाणूर भी दीख रहा है. कैसे आदि उच्च आसन पर बैठे होनेसे उनकी

उच्चता प्रतीत हो रही है. वह सौन्दर्य रस तो केवल भगवान्में हि सिद्ध है. अतः वैसे अमृतका पान तपस्याके सिवाय नहीं होता है. जिससे निश्चय है कि उनकी पूर्ण तपस्या फलीभूत है. यदि यों न हो तो पृथ्वी पर अन्य भी इसका पानकर भाग्यवाले हो सकें, जो नहीं होता है, और विशेषता यह है कि नेत्रोंसे पान कर रही हैं. नेत्रोंसे दूर होते हुवे भी पान हो सकता है. उसमें भी कटाक्षोंके अनेक प्रकारोंसे पान कर रही हैं. यों कहनेसे गोपियोंके रमणके सर्व प्रकार बताये हैं. यदि कोई कहे कि ये बताते हुवेको फिर चबानेके समान क्रिया हुई. उसके उत्तरमें कहती हैं कि नहीं, यह तो प्रतिक्षण नूतन ही नूतन बना रहता है. एक बार देखकर जो रस प्राप्त हुआ पुनः दूसरी बार देखने पर उसमें भी उत्कृष्ट रस प्राप्त होता है. यह रस सर्वको सुलभ भी नहीं है. सबको ही दुःखसे अर्थात् परिश्रमसे भी मुश्किलसे प्राप्त करने जैसा है, किन्तु इनको तो बिना यत्न प्राप्त हो गया है. यदि कहो कि इनको तो भगवान्से केवल भोग ही सिद्ध हुआ है, जिससे सर्वसे उत्कृष्टता कैसे हुई? जब कि सर्व प्रकारके फलको सिद्धि होवे तब सर्वोत्तमता मानी जाये. इसके उत्तरमें कहती हैं कि(एकान्त धाम) भगवान् सबके धाम हैं, अर्थात् भगवान्के रूपके लावण्य सारके पानसे उनको न केवल भोगकी प्राप्ति हुई है किन्तु ऐश्वर्य, यश श्रीकी भी प्राप्ति हुई है. श्लोकमें(च) शब्दसे यह भी बता दिया कि ज्ञान, वैराग्य आदि भी प्राप्त हो गये हैं।।१४।।

आभासार्थ:सबसे उत्तम भगवान्की भक्ति है. इनमें तो कामकी प्रधानता है, उनकी स्तुति कैसे करती हो? जिसका उत्तर 'या दोहनेऽवहनने' श्लोकमें देती हैं:

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रूकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचिन्तयानाः।।१५।।

श्लोकार्थ:अहो! ये व्रजांगनाएं धन्य हैं, क्योंकि जो दुहती, चावल आदि कूटती, दही बिलोती, लीपती, झूलती, सींचती, रोते हुए बालकोंको झूलेमें झुलाती और रमाती इत्यादि काम करती हुई भी भगवान्में अनुरक्त चित्त होनेसे उस समय भी भगवान्का ही चिन्तन करती हुईं उनके गुणोंको गाती थीं, जिससे प्रेमका उद्बोध हो गला भर जाता है।।१५।।

व्याख्यार्थ : व्रजकी स्त्रियोंके गृहके चार कार्य स्वाभाविक ही हैं

१.प्रातः और सायं गायोंका दोहना,
२.चावल आदि कूटना,
३.दही बिलोना,
४.घरमें लेपन करना.

उसके अनन्तर बालकोंका रोना होता है तब उनको झूलेमें झुलाना, वृक्ष आदिमें पानी देना तथा छोटे पेड़ तुलसी आदिमें सींचना, आङ्गनको बुहारीसे झाड़ना, इन कामोंको करती हुईं इस भगवान्के गुणोंको गाती हैं. 'च' देकर यह बताया है कि न केवल गाती ही हैं, किन्तु स्मरण करती हैं तथा उनकी हृदयमें भावना करती हैं, जो कुछ करती हैं वह उनकेलिये ही करती हैं. धर्म(घरके काम काज)के परायण हो वे कर्म करती होंगी? इस पर कहती हैं कि(अनुरक्तधियः) हालांकि ग्रहके परायण होकर कर्म करती हैं, किन्तु उनकी बुद्धि भगवान्में अनुरागवाली है. अतः वे कर्म अनासक्तिसे कर रहीं हैं. यदि कहो कि केवल अनुरागसे भक्ति नहीं होती है, क्योंकि केवल अनुरागमें उत्कट भाव अभाव है, लौकिक प्रेमवालोंके धर्म मार्गमें भी यों है. इस पर कहती हैं कि 'अश्रुकण्ठ्यः' इनकी आंखोंके आंसू कण्ठमें आ गये हैं जिससे कण्ठ गद्-गद् हो गया है, अथवा श्रवण वा स्मरणके न होनेके कारण अन्तर्दृष्टि होनेसे उनके आंसू कण्ठमें आ जाते हैं, इस प्रकारकी अवस्था होनेसे निश्चय है कि ये सर्वभावसे भगवान्के शरणागत हुई हैं. जिससे फल पा रही हैं, अतः ये व्रज सीमन्तिनियें धन्य हैं, अर्थात् भाग्यवाली हैं. विशेषमें कहती हैं कि इनको यह भाव केवल कभी-कभी नहीं होता है, किन्तु सर्वदा भगवान्का ही चिन्तन करती रहती हैं. जिससे इस प्रकारका भाव भी सर्व कालमें बना ही रहता है।।१५।।

आभासार्थ: वैसी होते हुए भी योगीके समान केवल साक्षात्कारसे भी रहित नहीं हैं, किन्तु जैसे तपस्वियोंको वरदान देनेकेलिए प्रकट होकर दर्शन देते हैं वैसे ये भी प्रकट भगवान्का सर्वदा दर्शन करती रहतीं हैं. जिसका वर्णन 'प्रातर्व्रजाद्व्रजत' श्लोकमें करती हैं :

प्रातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम्।
निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम्।।१६।।

श्लोकार्थ: प्रातःकाल जब भगवान् गायोंको लेकर ब्रजमेंसे वनमें जाते और सांझ समय, जब बंशी बजाते हुए गायोंके साथ लौटते हैं, तब ये अबलाएं

जल्दी घरसे निकल बहुत पुण्यवाली होनेसे मार्गमें इन भगवान्‌के दया दृष्टि सहित मन्द हास्य युक्त मुखारविन्दका दर्शन करती हैं ।।१६ ।।

व्याख्यार्थ : गूढ लीलाओंकी तो इनको पहचान नहीं है, इसलिये सायं प्रातः जो भगवद्‌दर्शन होता है, उसका वर्णन करती हैं. प्रातः काल गायोंको लेकर जाते हुवे और सायं काल व्रजमें आते और 'च' शब्दसे यह बताया है कि इसके सिवाय यदि कभी भी इच्छानुसार कहीं जाते तो दर्शन करती रहती थीं. इस प्रकार कहनेसे अन्य सर्व दर्शनकी अवस्थाएं बताईं, गायोंके साथ कहनेका आशय है कि सायं काल उनको साथ लौटाकर लाना आवश्यक है तथा निर्भयता बतानेकेलिये कहा है. वेदने जिस पदार्थका बोध कराया है, उसमें किसीको भी शङ्का नहीं होती है और विशेषमें कहती हैं कि भगवान् लोटते समय वेणु बजाते इसलिये पधारते हैं कि उनका चित्त मुझमें आकर्षित होवे. जिससे उनके अन्तःकरणके अन्य सर्वभाव तिरोहित हो जावें और मेरे सम्बन्धों सर्वभाव आविर्भूत हो जावें. अतः उनके वेणुनादको सुनते ही घरसे निकल खडी-खडी रास्तेमें ही भगवान्‌के दर्शन करती हैं. योगी लोग तो भगवान् आवे तब दर्शन करते हैं, ये तो आधेमें आये हुवेका दर्शन कर लेती हैं. योगियोंसे भी इनमें यह विशेषता है, अतः ये अबलाएं बहुत पुण्यात्माएं हैं. पुण्यात्मा कहनेका आशय यह है कि इनमें दोषोंका अभाव है. स्वल्प हंसनेसे विकसित भगवान्‌का मुखारविन्द देखनेसे इनके अन्तःकरणमें आनन्दका आविर्भाव होता है, जिससे स्नेहात्मक भक्तिमें प्रतिबन्धक ज्ञान उत्पन्न होकर निवृत्त हो जाता है.

इस प्रकारके प्रेमानन्दको भगवान् इनको देते हैं, जो मोक्षसे भी अधिक फलवाला है. यों भी न कहना चाहिये कि इसका संसार निवृत्त न होगा, क्योंकि भगवान् इनको दयापूर्वक दृष्टिसे देखते हैं, जिससे दयाके कारण दोष निवृत्ति हो जाती है तथा अवलोकनसे भगवान् इनको सर्वस्व दान करते हैं।।१६।।

आभासार्थ : मथुरा नगरकी स्त्रियोंने इस भगवल्लीलामें भगवान्‌को बहुत परिश्रम हुआ है, यों कहा, भगवान् उनके वचनोंको सहन नहीं कर सके, अतः उसके बाद जो किया वह 'एवं संभाषमाणासु' श्लोकमें शुकदेवजी कहते हैं:

श्रीशुक उवाच

एवं सम्भाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः।
शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ।।१७।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहते हैं – हे भरतर्षभ !स्त्रियोंके ऐसे वचन सुनकर योगेश्वर भगवान् हरिने शत्रुको मारनेका विचार किया ।।१७ ।।

व्याख्यार्थ : भगवान् अन्य कार्यमें आसक्त थे तो भी सर्वकी आत्मा होने तथा योगेश्वर हैं, इससे भी दूरसे श्रवण दर्शन आदि उनके धर्म हैं. जिससे उन स्त्रियोंसे जो मनोहर अच्छी तरह कहा वह दूरसे ही सुनकर हरि होनेसे उनके दुःख हर्ता हैं. अतः शत्रु कंसको ही मारनेकेलिये तथा चाणूरको नष्ट करनेकेलिये अथवा यों करनेसे उनके(स्त्रियोंके) विषादको नाश करनेकेलिये विचार किया. वह तो अक्लिष्टकर्मा हैं, अतः मारनेकी क्रिया कैसे करेंगे ? सन्ध्या पर्यन्त युद्ध ही करते रहें. युद्धसे अच्छी तरह पीटे हुवे वे फिर दूसरे दिन आनेकी हिम्मत न करें, यों है तो भी मारनेकेलिये भगवान्ने दूसरा मन बना लिया. यदि पूर्व सिद्ध मन जो कार्य नहीं करता है तो नवीन मन उससे अधिक कैसे करेगा ? इसके उत्तरमें शुकदेवजी कहते हैं कि 'भगवान्' ये भगवान् हैं, इनमें सर्व गुण हैं. अतः सब कुछ कर सकते हैं. इस पर विश्वास करनेकेलिये राजाको 'भरतर्षभ' कहा है।।१७।।

आभासार्थ : भगवान् सर्व समर्थ हैं, तो भी स्त्रियोंके वाक्य सुनकर उनको मारनेकेलिए कैसे प्रवृत्त हुए? भगवान् (सर्वात्मा) होनेसे उनकी भी आत्मा हैं, अतः उनको मारना नहीं चाहिए, इस शंकाका समाधान 'उपश्रुत्य' श्लोकमें करते हैं:

उपश्रुत्य गिरस्तासां पुत्रस्नेहशुचातुरौ।
पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम्।।१८।।

श्लोकार्थ : उनकी वाणी सुनकर पुत्रके स्नेहके कारण शोकसे आतुर माता तथा पिता संताप करने लगे, क्योंकि वे पुत्रके बलको नहीं जानते थे ।।१८ ।।

व्याख्यार्थ : उनके(स्त्रियोंके) वाक्यसे देवकी और वसुदेवको बहुत ही क्लेश हुआ, जो भगवान् शत्रुको शीघ्र न मारे, तो माता–पिताको इससे विशेष क्लेश होता. माता–पिताको विशेष दुःख न हो इसलिये भी मारनेका विचार किया. माता–पिता भी वहां आ गये थे, इससे उनके निकट ही स्त्रियां बोल रही थी. वह सुन कर वे माता–पिता बहुत शोकातुर हुवे. स्त्रियां इस प्रकार बोल रही थी कि भगवान् मानो निर्बल हैं. अतः भगवान्के माहात्म्यको जानते थे, तब क्लेश क्यों करने लगे ? इस पर कहते हैं कि 'पुत्रयोरबुधौ बलं' पुत्रके माहात्म्यको

तो जानते थे, किन्तु बलको नहीं जानते थे, जिससे क्लेशको प्राप्त हुवे और दुःखी होने लगे।।१८।।

आभासार्थ : इस प्रकार प्रासङ्गिक विषय कहकर, प्रस्तुत विषय जो प्रथम कृष्ण और चाणूरका युद्ध चार प्रकारका कहा है वैसे अब राम और मुष्टिकका 'तैस्तैर्नियुद्ध' श्लोकमें कहते हैं:

तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ।
युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ।।१९।।

श्लोकार्थ : उन अनेक प्रकारके मल्ल युद्धके प्रकारों से, जैसे श्रीकृष्ण और चाणूर कुश्ती करते हैं, वैसे और अन्य भी अनेक प्रकारों से बल और मुष्टिक परस्पर द्वंद्व युद्ध करने लगे ।।१९ ।।

व्याख्यार्थ : बाहु युद्धके उन-उन प्रसिद्ध प्रकारोंसे अथवा पहले कहे हुवे प्रकारोंसे उनसे भी पान अनेक भांतिसे जैसे कृष्ण चाणूर लड़ रहे हैं वैसे ही बल मुष्टिक भी उसी भांति ही लड़ते हैं, श्लोकमें 'अन्योऽन्य' पदसे द्वन्द्व युद्ध करनेका कहा है।।१९।।

आभासार्थ : पहले की हुई युद्धकी व्यर्थता होनेसे दूसरी भी वैसी ही अर्थात् व्यर्थ होगी? इस शमाको मिटानेके लिए पहले की हुई लड़ाईका फल चाणूरका वध है. जिसका वर्णन 'भगवद्गात्र' श्लोकमें करते हैं:

भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः।
चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवापह।।२०।।

श्लोकार्थ : भगवान्के वज्र समान अवयवोंके साथ बार-बार रगड़ होनेसे और कठोर प्रहारोंसे चाणूरके सब अङ्ग टूट गए, जिससे वह बारम्बार ग्लानि पाने लगा ।।२० ।।

व्याख्यार्थ : वज्र सम अवयवोंके साथ बार-बार रगड़नेसे जो कठोरता होती है, जिससे भी कठोर भगवान्के अवयवोंके प्रहारोंसे जिसके अङ्ग टूट गये हैं, वैसा चाणूर बार-बार ग्लानिको प्राप्त हुआ. श्लोकमें आया हुआ(ह) आश्चर्य वाचक है. आश्चर्य वाचक(ह)का स्पष्टीकरण करते हैं कि चाणूरका पहले जब इन्द्रसे युद्ध हुआ था, जब इन्द्रने जो वज्र फेंका तो उस वज्रको छातीसे स्पर्श होते ही चाणूरने फेंक दिया था, वैसा चाणूर अब कैसे मूर्च्छित हो गया? यह आश्चर्य है।।२०।।

आभासार्थ : अक्लिष्टकर्मा भगवान्, चाणूरको मारेंगे, क्योंकि प्रथम चाणूरका ही दोष है, जिसका वर्णन 'स श्येनवेग' श्लोकमें करते हैं:

स श्येनवेग उत्पत्त्य मुष्टिकृत्य करावुभौ।
भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत।।२१।।

श्लोकार्थ : चाणूरने बाजके वेगके समान उछलकर, दोनों हाथोंकी मुठ्ठी बांध, क्रोधकर वासुदेव भगवान्के वक्षःस्थलमें प्रहार किया ।।२१ ।।

व्याख्यार्थ : वह बाजसे भी अधिक वेगवाला है. बाज भ्रातृव्य(शत्रु)को गिराकर ले जाता है. बाजसे सब पक्षी डरते हैं. अतः वहांसे छलांग मार दोनों हाथोंकी मुट्ठी बान्धकर गदाकी भांति एककर अथवा अलग-अलग एक-एक हाथकी मुट्ठी बांधके मोक्षदाता सर्वेश्वर भगवान्का भी आदर न कर बाजकी भांति उनकी छाती पर झपटा यदि यों न होता तो भुजाओंका अधिष्ठाता इन्द्र कभी इस कार्यमें प्रवृत्ति न करता. काल आदि देवभी चुप करके स्थित हो गये. क्योंकि भगवान् मोक्ष देंगे, इस भगवान्की इच्छासे अन्यथा करनेमें असक्त हो गये.

भगवान्ने अन्तर्यामी होकर ऐसी प्रेरणा कैसे की? जिसके उत्तरमें कहा है कि 'क्रुद्धः' चाणूरने क्रोध होनेसे यों किया है, न कि बुद्धिसे और न प्रेरणासे कार्य किया है, तो किसलिये किया है? राजा आदिकेलिये अर्थात् यों करनेसे कंस प्रसन्न होकर लक्ष्मी देगा, अतः लक्ष्मीके निवास स्थान भगवान्की छातीका ही स्पर्श किया।।२१।।

आभासार्थ: उसका वह स्पर्श दो अर्थवाला हुआ, जिसका वर्णन 'नाचलत्' दो श्लोकों में करते हैं :

नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः।
बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशोऽभ्रामयद्धरिः।।२२।।
भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम्।
विस्रस्ताकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वज इवापतत्।।२३।।

श्लोकार्थ : जैसे मालाके प्रहारसे हाथी डिगता नहीं, वैसे ही भगवान् इसके प्रहारसे नहीं डिगे, किन्तु भगवान् चाणूरकी दोनों भुजाओंको साथमें पकड़कर खूब घुमाने लगे, घुमाते हुए पृथ्वी पर पछाड़ दिया, तब उसी वक्त उसके प्राण निकल गए और गहने केश तथा माला आदि बिखर गए, पड़ते समय ऐसा

मालूम हुआ कि इन्द्रध्वज गिरा ।।२२ – २३ ।।

व्याख्यार्थ : उसके प्रहारसे भगवान् थोड़े भी न हिले और न चलायमान हुवे. केवल हिलना भी समझमें न आया. इसमें दृष्टान्त देते हैं कि जो हस्ती अङ्कुशके प्रहारको भी नहीं गिनता है वहां मालाके प्रहारकी क्या बात है? अर्थात् जिन भगवान्ने हाथियोंके देवता इन्द्रका भी गर्व भजन कर दिया, वह भी कुछ न कर सका तो चाणूरके ये हाथ क्या कर सकेंगे? कुछ नहीं? अनन्तर भगवान्ने चाणूरकी वे दो भुजाएं जिनकी मुट्ठी बान्धकर भगवान् पर प्रहार किया था, उसको एक हस्तसे इस प्रकार पकड़ लिया जैसे छुड़ा न सके. बादमें बहुत बार उसको ऐसे घुमाने लगे जैसे क्षेपणी रज्जुसे बहुत बार घुमाई जाती है।।२२।।

पश्चात् पत्थरकी शिला पर जैसे वस्त्रोंको पटकते हैं वैसे ही पृथ्वी पर पटका. पटका तो क्या हुआ फिर खडा हो जायेगा? इसके उत्तरमें कहते हैं 'तरसा क्षीण जीवितम्'. घुमाते समय ही जिसका जीवन क्षीण हो गया था, जिससे उठनेकी शक्ति ही न रही थी, भगवान्ने उसको दूरसे ही फेंक दिया था न कि एक भागको पकड़कर भूमि पर मारा था. अतः भगवान्के हाथसे छूटकर पृथ्वी पर गिरनेका प्रकार कहते हैं कि 'विस्त्रस्ताकल्प केशस्रग्' जहां तहां जिसके आभूषण, केश और मालाएं बिखर गई हैं.

यों क्यों हुआ? जिसका कारण कहते हैं कि इसने लक्ष्मीके निवास स्थान पर प्रहार किया. जिससे लक्ष्मी इससे अप्रसन्न हो गईं हैं, अतः लक्ष्मी सम्बन्धवाले सब पदार्थ जहां तहां फैल गये.

चाणूर कैसे पड़ा? उसको दृष्टान्त देकर समझाते हैं. 'इन्द्रध्वज इव' पहले जैसे भगवान्ने इन्द्रके गर्वका नाश किया था, वैसे ही इसका भी मद तोड़ा है. यों बतानेकेलिये 'इन्द्रध्वज इव' कहा है. पूर्व देशमें प्रसिद्ध उच्च स्तम्भ है जिसको रस्सोंसे खींचकर खड़ा किया गया है. वह जैसे रस्सोंके ढीले हो जाने पर वस्त्र आभरणादिकोंके गल जानेसे गिर पड़ता है, वैसे ही यह भी काल, कर्म और अदृष्टके नष्ट होनेसे तथा रक्षकके अभावसे पृथ्वी पर गिर गया. मल्ल लोग गिरते हुवे भी धारणाके वश शरीरको धारण कर देते हैं. अर्थात् खड़े कर सकते हैं, किन्तु यहां वह भी न हो सका. इसलिये 'इन्द्रध्वज'का दृष्टान्त देकर समझाते हैं।।२३।।

आभासार्थ : जैसे भगवान्ने इनको मारा, वैसे ही बलरामजीने मुष्टिकको मारा. जिसका वर्णन 'तथैव' श्लोकमें करते हैं:

तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै।
बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम्।।२४।।

श्लोकार्थ : उसी प्रकार जिस मुष्टिकने प्रथम बलदेवजी पर अपनी मुष्टिकका प्रहार किया था. जिससे बलशाली बलदेवजीने भी उसको तल प्रहारसे मार डाला ।।२४ ।।

व्याख्यार्थ : बलभद्र भी अक्लिष्टकर्मा हैं, यह जतानेकेलिये कहते हैं कि यहां भी प्रथम मुष्टिकने ही अतिक्रमण किया है. उसी प्रकार स्त्रियोंके वाक्य सुननेके बाद उनके दुःखोंको दूर करनेकेलिये बलभद्रने भी शत्रुके मारनेकी इच्छा की. वैसे ही गात्र स्पर्शसे शत्रुके सब अङ्गोंमें व्यथा पैदा कर दी, अनन्तर उसको मार डाला. यह सब समय तथा भाग्यकी बात है. अब मारनेके प्रकारका फिर वर्णन करते हैं. मुष्टिकने जब प्रथम अपने गुस्सेसे बलरामजी पर प्रहार किया, तब बलरामजीने जोरसे थप्पड़ मारी. जिससे वह कांपने लग गया और मुखसे रुधिर बहाता हुआ दुःखसे प्राण हीन हो, जैसे वायुके झटकेसे पेड़ गिरता है वैसे ही गिर पड़ा. थप्पड़ लगनेसे ही उसकी क्रिया शक्ति नष्ट हो गई, कारण कि सजातीय बलवान् मल्लकी वह थप्पड़ थी और उससे वह मारा गया.

मुष्टिकके नामसे उसकी मुष्टि(मुक्की या घूंसा) ही प्रसिद्ध थी. इस कारणसे ही चारों तरफ अथवा सामने बलको मारा. जिसके दो पहलू हैं, एक घूंसोसे सर्व अङ्गों पर प्रहार, दूसरा मुख पर वा छाती पर एक ही बार प्रहार. बलने केवल थप्पड़से कैसे मार डाला? जिसके उत्तरमें 'बलिना' विशेषण दिया है. अर्थात् बलरामजी प्रसिद्ध बलशाली हैं. अतः एक ही थप्पड़से मार डाला. इस विशेषणसे थप्पड़ कर्णके पास मर्म स्थान पर लगनेसे मरा अथवा प्रारब्ध वैसा ही थी इसलिये मरा. इन दोनों पक्षोंका निराकरण किया है, वैसे ही 'अभिहतो' कहकर भी इन पक्षोंका निराकरण किया है, कारण कि बलरामजीका नाम 'बलभद्र' इसलिये है कि इनका बल कल्याण करनेवाला है. अर्थात् सबका हित ही करनेवाला है, इससे थप्पड़से मुष्टिकका हित ही किया है।।२४।।

आभासार्थ : केवल थप्पड़ लगनेसे कैसे प्राण निकल गए. इस शंकाको मिटानेके लिए 'प्रवेपितः' श्लोक कहा है:

प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः।
व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रपः।।२५।।

श्लोकार्थ : उसके मुंहसे रुधिर बहने लगा और वह कांपने लगा तथा दुःखी हुआ, प्राण निकल जानेसे यों पृथ्वी पर गिर पड़ा, जैसे वायुके वेगसे पेड़ गिरता है ।।२५ ।।

व्याख्यार्थ : थप्पड़ लगनेसे ऐसा कम्पन हुआ जो मूर्छा आ गई. जिससे अन्तःकरणमें क्षोभ हुआ. थप्पड़की चोटसे सकल अङ्गमें रुधिर एक स्थान पर इकट्ठा होकर मुखसे बाहर निकलने लगा. जिससे ऐसी पीड़ा होने लगी जो प्राण निकल गये. रोकनेवाला कोई न होनेसे गिर पड़ा. इसके गिरने तक बलरामजीकी क्रिया इसके साथ लगी रही. जैसे वायुका वेग पेड़के गिरने तक पेड़को नहीं छोड़ता है वैसे ही बलकी क्रियाशक्तिने इसको गिरने तक नहीं छोड़ा।।२५।।

ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः।
अवधील्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना।।२६।।

श्लोकार्थ : हे राजन् ! प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ रामने समीप आए हुए कूट नामवाले मल्लको अपमानके साथ बाएं हाथकी मुक्कीसे मार डाला ।।२६ ।।

व्याख्यार्थ : मुष्टिकके मरजानेके अनन्तर बहुत कपट जानने वाला कूट नाम धारी मल्ल कूट(मुद्गर, पर्वतकी चोटी)की तरह खड़ा हुआ भी बलभद्र पर प्रहार करने लगा. तब बलरामजीने लीलासे ही उसको भी मार डाला. इसे मारनेमें बलरामजीका कोई व्यापार(मेहनत, श्रम) नहीं है, किन्तु मल्ल रसको उत्पन्न करनेकेलिये एक प्रकारका खेल ही है. 'प्रहरतां वरः' कहकर यह बताया है कि जो कुछ कार्य है, वह इसकेलिये लीला है तथा पुरुषार्थ भी निरूपण किया है. हे राजन् यह सम्बोधन विश्वासकेलिये दिया है, क्योंकि यह लीला अलौकिक है. विश्वास करने पर ही समझमें आती है. 'राम'नाम 'बल'नामकी भांति क्रियाशक्ति की प्रधानतावाला है. यह 'राम' नाम सामर्थ्यको प्रतिपादन करनेकेलिये दिया है।।२६।।

आभासार्थ : इस प्रकार दोका वध बलरामने किया. शेष जो बचे उनका वध भगवान्ने किया. जिसका वर्णन 'तर्ह्येव' श्लोकमें करते हैं:

तर्ह्येव हि शलः कृष्णपादापहतशीर्षकः।
द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः।।२७।।

श्लोकार्थ : उसी क्षण 'शल' नामक मल्ल श्रीकृष्णके चरण प्रहारसे भग्न शिर हो गया. जिससे तोशलक मल्लके भी दो टुकडे हो गये. इस भांति ये दोनों

ही गिर गए ।।२७ ।।

व्याख्यार्थ : बलभद्रके कार्य करनेके अनन्तर शल और तोशलक न मरे किन्तु जब ही कूट मरा तब ही चौथे शलका भी कृष्णके चरणारविन्दके प्रहारसे मस्तक गिरा. वह आया तो था भगवान्के पैरोंको पकड़नेकेलिये, किन्तु पैर पकड़ते ही जो भगवान्ने पैरको उछाला तो उससे उसका शिर गिर गया. उसी समय तोशलक भी आ गया, वह तो भगवान्के पैरसे दो टुकड़ेमें हो गया. दोनोंके मरनेमें पादका ही कार्य हुआ. ये वचन इसलिये कहते हैं कि इनकी मृत्यु साक्षात् भगवान्के द्वारा ही हुई है. इसका अर्थ दूसरे प्रकारसे करते हैं कि भगवान्के चरणारविन्दके उछालनेसे शलका शिर दूर जाके गिरा. उसके शिरसे तोशलकके प्रदरकी भांति दो टुकड़े कर दिये, तोशलक भगवान्के चरणसे नहीं मरा. दोनों प्रकारके अर्थका तात्पर्य यह है कि दोनों एकबार ही गिरे, एक चिर गया और एक टेढे बांके दो टुकड़े होके गिरा. उनके गिरनेमें यह विशेषता थी।।२७।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवान्का अक्लिष्ट कर्मपन बताया है:

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते।
शेषाः प्रद्रुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः।।२८।।

श्लोकार्थ : चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलकके मरजाने पर शेष रहे सब मल्ल प्राण बचानेकी इच्छासे भाग गए ।।२८ ।।

व्याख्यार्थ : कितने वा कौन-कौन मरे यह जतानेकेलिये श्लोकमें नाम देकर गणना की गई है. जो पांच मरे हैं, उनमेसे यदि एकमें श्वास होता तो जैसे श्वास रहने पर देह नहीं जाती है वैसे बचे मल्ल भी नहीं भागते. एक भी नहीं बचा, इस कारणसे सब अपने प्राणोंके रक्षक थे. अतः धन प्राप्तिकी छाया छोड़ जोरसे भाग गये. उन्होंने समझा कि लड़ेंगे नहीं तो कंस क्रोध करेगा और लड़ाई करेंगे तो(भगवान्का भय) अर्थात् भगवान् मार डालेंगे. अतः भाग जाना ही रक्षाका मार्ग है. श्लोकमें 'मल्लाः' शब्द इसलिये दिया है कि केवल मल्ल भाग गया अन्य दूसरे वीर नहीं भागे. यदि थोड़े मल्ल भागते, कुछ नहीं भी भागते तो बचे हुवे मल्लोंको भगवान्से युद्ध करना पड़ता, इसलिये कहा है कि सब मल्ल भाग गये.

यदि यों कहो कि भागे क्यों? सबको अपनी-अपनी शूरवीरता दिखानी चाहिये थी, इस कर्त्तव्यका उल्लङ्घन क्यों किया? इस शङ्काके निवारणकेलिये

कहते हैं कि उन्होंने देखा कि ये मारे गये हैं और यदि हम ठहरेंगे तो हम भी मरेंगे, इसलिये प्राण बचानेकी इच्छासे शेष रहे हुवे सब भाग गये. जो चाणूर आदि न मरे होते तो अन्य भी लड़ते. वीर प्राणोंकी परवाह नहीं करते हैं, किन्तु मल्ल वैसे नहीं हैं, मल्ल तो प्राणोंकी रक्षाके इच्छुक होते हैं, प्राण बचाना चाहते हैं, अतः भाग गये।।२८।।

आभासार्थ : पश्चात् भगवान्ने समान बलवालोंसे खेलूंगा, पहले ही यों कहा था. अतः शेष मल्लोंके भाग जाने पर गोपोंके साथ कुश्ती करने लगे क्योंकि भगवान्को, राजाको प्रसन्न करनेकी इच्छा थी. जिसका वर्णन 'गोपान्वय-स्यानाकृष्य' श्लोकमें करते हैं:

गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः।
वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ।।२९।।

श्लोकार्थ : तब अपने मित्र गोपोंको खींच उनसे मिलकर खेलने लगे, उस समय बाजे बजाते थे और आपके कूदनेसे नूपुर झनझनाहट करते थे ।।२९ ।।

व्याख्यार्थ : समान आयुसे एवं प्रीतिसे मित्र कालने जिनमें समान बल किया है, वैसे गोपोंने उनको अपने हाथसे खींचा, क्योंकि वे भी कुछ डरे हुवे थे. खींचा आनेके बाद दोनों खेलने लगे. भगवान् खेलनेकेलिये यहां नहीं आये थे और कंसको भी यह अभिप्रेत(पसंद) नहीं था, तो फिर क्यों खेलने लगे? पहले उनके(चाणूर आदिके) साथ न लड़नेकेलिये प्रण किया था कि बालकोंके साथ युद्धकेलिये भी, वाक्यके भेदके प्रसङ्गसे दोनों तरफ तात्पर्य होता है. यदि कहो कि प्रकरण ही नियामक है, इससे दूसरेका निषेध कहना ही चाहिये, जिसका उत्तर देते हैं कि उन मल्लोंके मर जाने पर भी, मल्लोंको रस उत्पन्न करनेवाले बाजे बाजते ही रहे. यह फिर कुश्ती करनेका निमित्ति कारण लोगोंके प्रतीतिकेलिये मौजूद ही था. अब तक जो कुश्तीका खेल हुआ, उससे किसीको भी सन्तोष न हुआ. अतः लोगोंको प्रसन्न करनेकेलिये मल्लोंके जीतके शब्द करते हुवे खेलने लगे. भगवान्के नूपुरोंकी झनझनाहट भी जयको बतानेवाली ध्वनि थी, यह लोकमें प्रसिद्ध ही है।।२९।।

आभासार्थ : यह कार्य जिसलिए किया वह हुआ, जिसका वर्णन 'जनाः प्रजह्रषुः' श्लोकमें करते हैं:

जनाः प्रजह्रषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः।

ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधुसाध्विति।।३०।।

श्लोकार्थ : राम – कृष्णका चरित्र देख कंसके सिवाय सब लोग प्रसन्न हुए. मुख्य विप्र तथा साधु लोग धन्य – धन्य शब्द कहने लगे ।।३० ।।

व्याख्यार्थ : जनता अत्यन्त प्रसन्न हुई. वहां आठ प्रकारकी जनता थी. कंसके सिवाय वह समग्र प्रसन्न हुई. भगवान्के रूपको देखकर जनता प्रसन्न हुई होगी, यों कोई समझे तो उस भ्रमको मिटानेकेलिये कहते हैं कि रूपसे नही, किन्तु उन दोनोंके मल्ल वधरूप अलौकिक कर्मसे जनता प्रसन्न हुई, वा बालकोंसे युद्ध क्रीड़ा करते समय मल्ल युद्धके दाव पेच देखकर प्रसन्न हुई. चाणूर आदिसे लड़ना तो मनको दुःखी करनेवाला था, जो रसको पैदा करनेवाला नहीं था.

कंस तो प्रसन्न हुआ होगा, ऐसी शङ्का किसीको हुई हो तो उसको मिटानेकेलिये श्लोकमें स्पष्ट कहा गया है कि 'ऋते कंसः' कंसके सिवाय अन्य सर्व सम्पन्न हुवे. उनमें भी मुख्य ब्राह्मण और साधु अर्थात् भगवत्परायण जो थे, वे धन्य हो, धन्य हो, यों कहते हुवे अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगे. शरीरका व्यापार दर्शन ही है, मनका व्यापार हर्ष है, वाणीका व्यापार प्रशंसा है, यों कहकर यह बताया कि इनको सर्व प्रकार हर्ष प्राप्त हुआ. यदि कोई साधारण हीन प्रशंसा करे तो वह योग्य नहीं. अर्थात् उस प्रशंसाका कुछ आदर नहीं. अतः कहा है कि श्रेष्ठ ब्राह्मण और साधुओंने प्रशंसा की है, जिससे उसकी योग्यता तथा महत्ता लोकमें प्रसिद्ध हुई।।३०।।

आभासार्थ : बीचमें कितने ही समय तक जबकि गोपोंसे कुश्ती हो रही थी, तब तक कंस चिन्ताकुल तथा विचार मूढ हुआ बैठा था, पीछे फिर दैत्यके आवेशसे बहिर्मुख हुआ, जिससे बाजे बजाना आदि सब बंद करा दिए, जिसका वर्णन 'हतेषु मल्लवर्येषु' श्लोकमें करते हैं:

हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट्।
निवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह।।३१।।

श्लोकार्थ : कितने ही मल्ल मर गए और कितने ही भाग गए, तब कंसने अपने बजते हुए बाजोंको बन्द करा दिया और यह वाक्य कहने लगा ।।३१ ।।

व्याख्यार्थ : कितने ही मरे और कितने ही भाग गये, यों देखकर जो कंसने विचार किया कि अब तक तो कपटसे अपकार कराया, किन्तु अब प्रसिद्ध रीतिसे इनका अपकार कराना चाहिये, क्योंकि यह भोजराज है. प्रसिद्ध अपकारमें

प्रथम जो बाजे बज रहे थे वे बन्द करवाये तथा आगेके वचन कहने लगा. 'च' शब्दका आशय है कि युद्धकेलिये भी सावधान हो गया. कपट लीला आपने ही खतम कर दी और अपना ईश्वरत्व प्रकट कर दिखा दिया. वैसा होने पर यदि दोनोंको प्यार करे, अथवा चुपचाप भीतर चला जावे, तब तो कोई चिन्ता नहीं थी. कारण कि भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं, वसुदेवको ले जाने अथवा वहां ही ठहरावे. भगवान्की प्रतिज्ञा है कि जो भक्तका द्रोह करे, उसका वध होना चाहिये. यह भगवान्की इच्छा बिना क्लिष्ट कर्म करनेसे ही सिद्ध हो जावे, अतः कंस स्वयं निम्न वचन कहने लगा. इसलिये 'ह' शब्द आश्चर्य अर्थमें दिया है. अर्थात् कंस स्वयं अपने वधकेलिये ऐसे शब्द कहता है. जिससे उसका वध निश्चित होता है, अतः आश्चर्य है. इतना दोनों भ्राताओंका पराक्रम देखकर भी निर्लज्ज होकर फिर भी आज्ञा देता है।।३१।।

आभासार्थ : उसने(कंसने) जो अयोग्य वचन कहे, उनका 'निःसारयत' से दो श्लोकोमें वर्णन करते हैं:

कंस उवाच

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात्।
धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम्।।३२।।

श्लोकार्थ : कंसने कहा वसुदेवके इन दुराचारी पुत्रोंको नगरसे बाहर निकाल दो, गोपोंका धन लूट लो, दुर्बुद्धि नन्दको कैद करो ।।३२ ।।

व्याख्यार्थ : भगवान् तथा उनके सम्बन्धी लोकमें जो दोषकी प्रतीति हो रही है, उसको निकालनेकेलिये छलसे कंस कहने लगा कि इन दोनों वसुदेवके पुत्रोंको निकालदो, क्योंकि ये दुराचारी हैं. इनको मारना उचित नहीं है, कारण कि मैंने युद्ध देखनेकेलिये बुलाये हैं और वसुदेवके पुत्र होनेसे मेरे भगिनिके पुत्र हैं. इसलिये इनको नगरसे निकालना ही योग्य है. गोपोंका धन छीन लो, उनके धनसे ही ये दोनों पोषित हुवे हैं. हालांकि नन्द अपना ही है, तो भी अन्य पक्षमें चले जानेके कारण इसको भी बान्ध लो. यदि कहो कि नन्दने कौनसा अपराध किया है? यह तो इनको अपना पुत्र जानता है, न कि पराया जानता है. उसके उत्तरमें कहता है कि यह 'दुर्मति' है. इसकी बुद्धि श्रेष्ठ नहीं है, बल्कि दुष्ट है, क्योंकि जब नन्दने देखा कि यह विलक्षण पुत्र है, मेरे जैसे लक्षणोंवाला नहीं है, तो यह मुझसे पैदा हुआ पुत्र वैसा कैसे होगा? ऐसा विचारकर राजाको कहना था कि

देखो यह विलक्षण बालक कैसे उत्पन्न हुआ है? जो विचार करनेवाले हैं और जो चतुर पुरुष हैं, उनकी यह रीति है. यों न करनेके कारण समझा जाता है कि यह दुष्ट बुद्धिवाला है, अतः इसको कैद करना ही दण्ड है।।३२।।

आभासार्थ : वसुदेव तो मुख्य अपराधी है, अतः इससे विशेष 'वसुदेवः' श्लोकमें कहते हैं:

वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः।
उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः।।३३।।

श्लोकार्थ : अति नीच दुर्बुद्धि वसुदेवको शीघ्र मार डालो और अनुचरों सहित पिता उग्रसेनको भी मार डालो, क्योंकि यह भी शत्रुके पक्षमें हो गया है।।३३।।

व्याख्यार्थ : 'तु' शब्द कहकर बन्धनका तरीका बतलाता है. यह वसुदेव दुष्ट बुद्धिवाला है, क्योंकि आठवां बालक मैं स्वयं ले आऊंगा, ऐसी प्रतिज्ञा करके भी उसको नहीं लाया, उस(बालक)से कंसको ही मरवाना योग्य है, इस विचारसे कपटकर बालकको दूसरे स्थान पर स्थापित कर दिया. अतः शीघ्र ही बिना कुछ विचार करनेके, इसको मार डालो. सत्पुरुष बान्धवोंको मारनेकी शास्त्रमें आज्ञा नहीं है, बल्कि निषेध है. अतः इसको नहीं मारना चाहिये. यदि कोई यों कह दे उसका उत्तर स्वयं देता है कि 'असत्तम' बहुत ही नीच हैं. जिसमें हेतु यह है कि जिस 'राजा'को समग्र प्रजा पूज्य मानती है, उस राजाको मरवानेकेलिये उसने यह प्रयत्न किया है. यदि तुम यों करोगे तो सर्व यादव मिलकर तुझे मारेंगे. इस पर कहता है कि उग्रसेन, जो कि पिता है, तो भी उसको देवक सहित मार डालो, वह भी शत्रु पक्षमें है. यों करनेसे दूसरे अराजक होनेसे डर जायेंगे तथा दूसरे साधारण हैं, कोई अपकार न कर सकेंगे, कहनेका यह तात्पर्य है।।३३।।

आभासार्थ : अपनी आंखोंके सामने अपनेसे भी अधिक बलवालोंका मरना देखकर भी दुष्ट बुद्धिवाला कंस विनय त्यागकर विपरीत कहने लगा, अतः यह मारने योग्य है. यों समझ भगवान् इसके दोष छुड़ानेकेलिए इसके मारनेमें प्रवृत्त हुए, जिसका वर्णन 'एवं विकत्थमान' श्लोकमें करते हैं:

एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः।
लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत्।।३४।।

श्लोकार्थ : इस प्रकार कंसके प्रलाप(अण्ड – बण्ड बकने) करने पर भगवान् कोप कर, फुर्तीसे कूद, जल्दी ऊंचे मञ्च पर चढ़ गए ।।३४ ।।

व्याख्यार्थ : यह कंस रजकके समान है. अतः अपशब्द किसके प्रति बोलता है और किसके प्रति नहीं बोलता है? इस प्रकार रजकके समान तिरस्कारके वचन कहते हुवे कंसको देख, निर्भीक तथा भक्तोंके अपकार श्रवणसे कुपित अधिकारी भगवान्, जैसे मल्ल विद्यामें कूदना कहा है, वैसे कूदकर भारी मञ्च पर चढ़ गये, जहां कंस स्थित था, वहां कूदकर भगवान् इसलिये गये कि यह उच्च स्थान पर बैठा है, इसलिये यह बक–बक कर रहा है, अतः इसको नीचे पटकना चाहिये।।३४।।

आभासार्थ : उसके अनन्तर जो कुछ हुआ, उसका वर्णन 'तमापतन्तम्' श्लोकमें कहते हैं:

तमापतन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात्।
मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी।।३५।।

श्लोकार्थ : उसने अपनी मृत्युको पास आते देख झट आसनसे उठ वीर कंसने ढाल और तलवार हाथमें ले ली ।।३५ ।।

व्याख्यार्थ : कंसने देखा कि कृष्ण मुझे मारनेकेलिये यहां मेरे निकट आ गया है, तो भी भगवान्की शरण नहीं ली. यदि तब शरणमें चला जाता तो न मारते, इससे यह सूचित होता है कि वहां उस समय भी कंस अतिक्रमण करने लगा. कंसने पहले ही सुन लिया था कि यह मेरा काल है, तो भी डरकर शान्त हो, विनय नहीं की, क्योंकि शूर है, शूरवीरोंके अन्दर अन्तकालमें भी शूरवीरता उत्पन्न होती है. तब आसनसे उठा, क्योंकि समझा कि अब आसन पर बैठे रहना अयोग्य है. युद्धमें मरना क्षत्रियकेलिये धर्मकी आज्ञा है. अतः स्वधर्मके अनुसार तलवार और ढालको ले लिया, क्योंकि समीपके युद्धमें तलवार और ढाल ही उपयोगी होते हैं।।३५।।

आभासार्थ : पश्चात् लड़ाईका यत्न करते हुए उसको देख, ऊपर लड़ाई करना योग्य नहीं है, पृथ्वी पर ही योग्य है, अतः पृथ्वी पर गिरानेकेलिए उसको पकड़ा जिसका वर्णन 'तं खड्गपाणिं' श्लोकमें करते हैं:

तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे।
समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य।।३६।।

श्लोकार्थ : खड्ग हाथमें लेकर जैसे आकाशमें बाज इधर – उधर घूमता है, वैसे घूमते हुए कंसको असह्य और उग्र तेजवाले भगवान्ने वैसे बलात्कारसे पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्पको पकड़ता है ।।३६ ।।

व्याख्यार्थ : उसकी महत्ता दिखलानेकेलिये उसके युद्धकी कुशलताका वर्णन करते हैं बाजके समान शीघ्र फिरनेवाले यह उसकी अलौकिक शिक्षा कही, उसको ऊपर वा आकाशमें कूदते देखा, भगवान्ने आकाशमें ही उसको पकड लिया. कंसके हाथमें तलवार है, वह प्रहार करेगा, इससे क्यों नहीं डरे? इसके उत्तरमें 'दुर्विषग्रहोग्रतेजा' दो विशेषण भगवान्के दिये हैं, भगवान् कैसे भी प्रहारको सहन कर सकते हैं, तथा आपका सबसे बढकर उग्र तेज है जिसको देख सामनेवाले स्वतः डर जाते हैं. प्रभाव तथा सामर्थ्य दोनोंके विद्यमानसे आप निडर हैं. अतः तेजके सामर्थ्यके कारण कंस शस्त्र चला नहीं सका तथा भगवान्ने पकड़ लिया जिसमें कोई बाधा न हुई. इस वक्त भगवान् कालात्मा होकर उसको मारनेकेलिये प्रवृत्त हुवे हैं. अतः उसको बलसे वैसे पकड़ लिया जैसे गरुड़ सर्पको पकड़ता है. इससे उसके शरीरके व्यापारको प्रतिकूलताकी सूचना दी है।।३६।।

आभासार्थ : यद्यपि उसको पकड़कर उसके आगे अपनी सामर्थ्य इसलिए दिखाई कि अब भी यह विनय करे तो ठीक है किन्तु तो भी यह अनम्र ही रहा. अतः उसको मञ्चसे गिरा दिया जिसका वर्णन 'प्रगृह्य' श्लोकसे करते हैं:

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात्।
तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः।।३७।।

श्लोकार्थ : भगवान्ने मञ्च पर चढ़ते ही इस प्रकार कंसके केशोंको पकड़ लिया जिससे कि उसका मुकुट गिर गया. अनन्तर उसको ऊंचे मञ्चसे अखाड़ेमें पटका तथा आप, जो सर्व जगत्के आश्रय, स्वतन्त्र और कमलनाभ हैं, वे उसके ऊपर आ पड़े ।।३७ ।।

व्याख्यार्थ : भगवान्ने उसको स्पर्श भी न कर चोटीसे पकड़ लिया तो उसका मुकुट गिर गया. जिससे वह व्याकुल हुआ तथा घबराया. पश्चात् सर्व प्रकार सजा हुआ तथा अपने चरणोंसे पवित्र किया हुआ जो रङ्गमण्डप है, उसमें ऊंचे मञ्चसे इसलिये गिराया कि उसका भगवदीयरूप हो जावे, अतः आप भी उसके ऊपर पड़ गये. लोकको वैसी प्रतीति हुई, जैसे कोई अनजानेमें गिरते हैं, वैसे ये दोनों गिरे हैं. उस क्रियामें आप व्यापारवाले होते हुवे भी क्लिष्टकर्मा नहीं

हैं. शङ्का करते हैं कि गिराकर मारना यह नवीन लक्षणवाला ढङ्ग है, जिसमें आप ही शत्रुको मारनेमें साधन बने गये हैं. यों तो कभी भी नहीं हुआ है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि 'अब्जनाभः' आप कमल नाम विष्णु हैं, अतः सर्व कार्यका मूल कारण जैसे आप हैं वैसे यहां भी आप कारण बन गये हैं. यह नाम देनेसे अलौकिक प्रकारसे मारा, यह दोष भी मिटा दिया है. आप सबके पिता हैं जिससे सबका उद्धार भी आपको ही करना है, इसलिये इस प्रकार किया है. 'विश्वाश्रय' पदका भाव कितने ही यों कहते हैं कि आपके बोझसे मरा है, किन्तु आचार्य श्री इस पदका भावार्थ बताते हैं कि जैसे आप सर्व जगत्का आश्रय हैं, वैसे ही इसका भी आश्रय हैं. इसलिये उसका भी उद्धार भगवान्को ही करना चाहिये, जिससे उसकी अपनी आत्मा हो, अतः आप उसके ऊपर पड़े हैं. आपको कोई भी कार्य करनेमें शङ्का नहीं होती है, कारण कि 'आत्मतन्त्रः' स्वतन्त्र हैं, अतः आप ही पीड़ा न होनेमें तथा अनधिकारीको अपनी आत्मा देनेमें कारण हैं।।३७।।

आभासार्थ : भगवान्ने कंसको अपनी आत्माका दान देकर कृतार्थ किया, किन्तु लोक प्रतीतिकेलिए कपटकर खड़े हैं, वैसे भ्रान्तिकी प्रतीतिकी सिद्धिकेलिए मरे हुए को भी आप अपने हाथसे घसीटने लगे, जिसका वर्णन 'तं संपरेतं' श्लोकमें करते हैं:

तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः।
हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र।।३८।।

श्लोकार्थ : मरे हुए कंसको भगवान्ने जगत्के देखते हुए पृथ्वी पर वैसे घसीटा, जैसे सिंह मरे हुए हस्तीको घसीटता है. हे नरेन्द्र ! उस समय सब जनोंके मुखसे भारी हाहाकार शब्द निकला ।।३८ ।।

व्याख्यार्थ : अच्छे प्रकार यहांसे गया, अथवा भगवान्के हाथसे अच्छे प्रकार मरा. मुक्तिके दो तरीके हैं, एक सारूप्य, दूसरा सायुज्य. भगवान्के हाथसे मरनेके कारण इसको सारूप्य मुक्ति मिली, अतः इसके प्राण निकल नहीं गये किन्तु मूर्च्छासे अन्तर्दृष्टि होने पर अन्दर और बाहर भगवदीयके जैसा रूप सदा देखनेमें आता है. वैसे रूपमें स्वयं प्रवेश करते हुवे प्राणोंको भी उसमें प्रवेश कराया, यह सारूप्य मुक्तिका पक्ष है. सायुज्य पक्षमें इसी शरीरमें वा आत्मामें प्राणोंका लय यहां हो जाता है जैसा कि ''मृत्युर्यस्योपसेचन'' श्रुतिमें कहा है. पश्चात् वैसे कंसका भगवदीय शरीर हो जाये तदर्थ उसको खींचा. खींचते–

खींचते जहां-जहां भगवान्‌की चरण रज थी, वहां-वहां लेकर उससे सम्बन्ध कराया. इसीलिये भूमि पर गिराकर घसीटा है. घसीटनेका वास्तविक आशय तो भगवान्‌का यही था, किन्तु लोककी प्रतीतिमें यों आया कि यह निकृष्ट है. इसलिये इसको घसीटते हैं. घसीटनेसे शरीरके अवयव वैसे विशीर्ण हो गये, जैसे सिंह हस्तीको जब घसीटकर ले जाता है, तब उसके शरीरके अवयव जैसे हो जाते हैं. सिंह छोटा है और हस्ती स्थूल देहवाला है, तो भी उसको मारकर जब घसीटता है, तब उसके शरीरके अवयव फट जाते हैं. जिससे निश्चय होता है कि यह दैवसे अकस्मात् नहीं मरा है, किन्तु इस छोटे सिंहने ही इस स्थूल हस्तीको मारा है. वैसे यहां भी कंसको श्रीकृष्णने ही मारा है. यों घसीटनेसे लोगोंको निश्चय हो गया कि भगवान्‌ने मारा, किन्तु आप 'हरि' हैं. अर्थात् सर्व दुःखहर्ता हैं. गजेन्द्रको ऊपर ले गये, किन्तु इसको पृथ्वी पर घसीटा, यह विशेषता है. भगवान्‌ने अधिक परिश्रम नहीं किया, जगत्‌के देखते हुवे यह लीला की है. जिससे आपका माहात्म्य और अक्लिष्टकर्मा स्वतः सिद्ध है. कितने ही कहते हैं कि भगवान्‌का कंसको घसीटनेका आशय दुःखी माता-पिताके संतोषार्थ था. इस आशयसे दृष्टान्तादिका मेल नहीं होता है. अन्य पुराणोंमें यह कथा है कि भगवान् घसीटकर यमुना पर ले गये, वहां शान्ति ली और विशेष भगवान्‌ने इसको मार डाला, सबको ऐसी प्रतीति हुई. जिससे बड़ा भारी हाहाकारका शब्द हुआ. वैसा शब्द तब होता है जब कोई अयोग्य कार्य होता है. माता-पिताके हितकेलिये यों करने पर सर्व मनुष्योंका हाहाकार शब्द करना योग्य नहीं लगता है. अथवा कंस राजा था, इसलिये अचानक वैसे शब्द निकलते हैं. राजाको 'नरेन्द्र' कहनेका तात्पर्य यह है कि रक्षा करनेवाले हैं, वे लोकको पीड़ित करनेवालोंसे वैसा ही व्यवहार करते हैं. इसकी सूचना कर दी है कि आप राजाओंमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये इस बातको आप समझते ही हैं।।३८।।

आभासार्थ : इस प्रकार सर्व जनका हित हो, इसलिए उसको मारनेमें प्रमेय बलका आश्रय लेकर प्रवृत्त हुए हैं तो उसकी परलोकमें क्या गति हुई? सायुज्य या सारूप्य मुक्ति हुई? उसका 'स नित्यदो' श्लोकमें वर्णन करते हैं:

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन्वदन्वा विचरन्स्वपन्श्वसन्।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यत्तदेव रूपं दुरवापमाप।।३९।।

श्लोकार्थ : वह कंस उद्विग्न बुद्धिसे चक्रधारी उस ईश्वरको पीते, बोलते,

घूमते, सोते, श्वास लेते सदा आंखोंके सामने देखता था, अतएव दुर्लभ उसी रूपको प्राप्त हुआ ।।३९ ।।

व्याख्यार्थ : हमेशा ही भयके कारण उद्विग्न बुद्धिसे उसी भगवान्को भयसे हुई आसक्तिसे शङ्ख , चक्र गदा तथा पद्म धारण किये हुवे ईश्वर स्वरूपको सर्व प्रकारकी अवस्थाओंमें देखता हुआ उसी रूपको प्राप्त हुआ. कारण कि सदैव उनके भावसे भावित था. यों भावना करते हुवे अन्तमें तो उनके दर्शन कर ही लिये. पान करनेसे दुःखकी निवृत्ति हुई, जिससे सुखकी प्राप्ति हुई. सुख सब विषयोंसे प्रबल है, अतः उसको सब अन्य विषयोंकी विस्मृति हो गई. भोजनमें, शिकार आदिमें फिरते हुवे, निद्रामें, श्वास लेते, मूर्छामें भी इस प्रकारकी पांच अवस्थाओंमें भी जब भगवान्के दर्शन उसको हो रहे थे, तब बैठते और उठते समय दर्शन होनेमें क्या सन्देह है? कोई सन्देह नहीं है. इस प्रकार केवल स्वरूपका स्मरण ही नहीं हुआ, किञ्च आंखोंके सामने चक्रधारीका साक्षात् दर्शन करता था. कंसको तो भगवान् सर्वदा भय उत्पन्न करनेवाले हैं. अतः उसका भय निवृत्त न हुआ. जिससे अन्तमें भी यह विचार हो रहा था कि भगवान् मुझे मारनेकेलिये प्रवृत्त हुवे हैं. इससे भय उत्पन्न हुआ कि भगवान् आ गये, अतः वही रूप प्रकट हो गया. अन्तःकरणमें ही यह विचार हो रहा था, दूसरे बाहरके पक्षमें उत्क्रान्तिकी भी अपेक्षा होती है. यद्यपि शूरवीरोंके समान कालरूपसे सायुज्य होना योग्य था, तो भी भावनाकी बलिष्ठता थी, जिससे जिस स्वरूपका भावनासे साक्षात्कार करता था, उस स्वरूपको प्राप्त हुआ. वास्तवमें सबको वह स्वरूप प्राप्त होना कठिन है।।३९।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवदिच्छासे वैसे स्वरूपको प्राप्त हुआ था. उसमें स्वतः कोई दोष नहीं था, गुण ही विद्यमान थे. अतः उसकी सायुज्य मुक्तिका वर्णन कर, अब व्यवहारानुसार, जो योग्य कृत्य करना है, उसका वर्णन करते हुए उसके भ्राताओंका वध 'तस्यानुजा' श्लोकमें कहते हैं:

तस्यानुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः।
अभ्यधावन्नतिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः।।४०।।

श्लोकार्थ : उसके आठ छोटे भाई, कङ्क और न्यग्रोधक आदि अति क्रोध करते हुए भाईका वैर लेनेके वास्ते दौड़कर आए ।।४० ।।

व्याख्यार्थ : उस कंसके कङ्क, न्यग्रोधक आदि आठ भाई कहे हैं,

किन्तु यदि शब्द देकर यह बताया है कि इनके सिवाय अन्य भी इसके पक्षवाले बहुत हैं. भ्राताओंके जीते हुवे कंस मारा गया, यह अयोग्य हुआ. इतने भाईयोंके होते हुवे शत्रुओंसे भ्राता मारे जाने योग्य नहीं. यदि मारा गया है, तो 'जिघांसन्तं जिघांसीयात्' इस न्यायानुसार भ्राताका ऋण चुकाते हैं. अर्थात् बदला लेते हैं. अतः बहुत क्रोधमें हो दौड़ते आये, बहुत क्रोध इसीलिये किया कि कृष्णने हमारे भाईको कपटसे अचानक मारा है. मारनेवाला एक है, हम आठ हैं. इसलिये क्रोधमें आकर सामने ही दौड़ने लगे, जो मारे उसको मारना ही चाहिये, यदि वैसा नहीं किया जाता है, तो वह ऋण उतरता नहीं है।।४०।।

आभासार्थ: यहां भी उन आए हुए कंसके आठ भाईयोंको मारनेमें भगवान्का एक ही भ्राता समर्थ है. अतः उस एकने आठोंको मारा, जिसका वर्णन 'तथातिरभसान्' श्लोकमें करते हैं:

तथातिरभसांस्तांस्तु संयत्तान्रोहिणीसुतः।
अहन्परिघमुद्यन्य पशूनिव मृगाधिपः।।४१।।

श्लोकार्थ : जैसे सिंह पशुओंको मारता है, वैसे ही बलरामजीने शास्त्रादि से सजकर अति वेगसे आए हुए उन आठ भ्राताओंको मुग्दरसे मार डाला।।४१ ।।

व्याख्यार्थ : जैसे कंस बहुत वेगवाला था, वैसे ये सब भी बहुत शीघ्र वेगसे आये, उन प्रसिद्धोंको बलरामजीने मुद्गरसे मार डाले. बलरामजीने मारे, इसलिये श्लोकमें 'तु' शब्द दिया है. जिसका भावार्थ है कि भगवान्ने नहीं मारे. भगवान्ने क्यों नहीं मारे? इसका कारण यह है कि भगवान् देवकीजीके पुत्र हैं और ये देवकीके भाई हैं, जिससे भगवान्के मामे हैं. इसलिये भगवान्ने नही मारे. यदि भगवान्को मारना नहीं था, तो उपेक्षाकर छोड़ देना था. तो कहते हैं कि छोड़नेके योग्य भी नहीं थे. कारण कि वे शस्त्र लेकर मारने आये थे, उनकी उपेक्षा करनी योग्य नहीं है. अतः बलरामजी रोहिणीके पुत्र हैं, उन्होंने मारे. जब उनको बलरामजीने मारे, तो कंस भी भगवान्का मामा था, उसको क्यों मारा? इसके उत्तरमें कहते हैं कि कंस दूसरेसे मर नहीं सकता. इस विचारसे और अपकारी होनेसे जैसे-तैसे लाचार हो मार डाला. वे भाई सशस्त्र थे, इसलिये बलरामजीने भी मुद्गर जैसा दांत ही लेकर अथवा वहां अन्य जो कुछ भी विद्यमान आयुधको लेकर या किवाड़को ही लेकर उससे उन्हें मार डाले. जैसे लकड़ीसे पशु मारे जाते हैं, वैसे ही वे भी पशुओंकी भांति मार डाले गये, उनको काट डाला गया तो नहीं

कहा जायेगा, क्यों? इस शङ्का पर दृष्टान्त देते हैं कि 'मृगाधिपः इव' सिंहकी तरह मारे. भूखा सिंह खानेकेलिये ही पशुको मारता है. जिससे उस पशुके अवयव फाड़ डालता है, वैसे ही उनके अवयवोंकी भी परिधकी चोटसे वैसी ही दशा हो गई थी. अथवा सिंहका दृष्टान्त इसलिये दिया है कि सिंहको पशु मारनेमें कोई परिश्रम नहीं होता है और सिंहने पशुको मारा, इसमें कोई सन्देह भी नहीं होता है, वैसा यहां भी समझना चाहिये।।४१।।

आभासार्थ: इस प्रकार भ्राताओं सहित कंसके मरनेसे देव भी बहुत प्रसन्न हुए. देवोंके शत्रुओंके नाशसे भगवान्ने धर्मको स्थिर ही किया. मामेके वधके दोषको मिटानेकेलिए देवोंने पुष्पवृष्टि आदि की, जिसका वर्णन 'नेदुर्दुन्दुभयः' श्लोकमें करते हैं:

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः।
पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीताः शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः।।४२।।

श्लोकार्थ: उस समय आकाशमें दुन्दुभि, बाजे बजने लगे और ब्रह्मा, महादेव आदि भगवान्की विभूतिएं प्रेमसे पुष्पवर्षा करती हुईं स्तुति करने लगीं तथा अप्सराएं नृत्य करने लगीं।।४२।।

व्याख्यार्थ : विष्णु तो भगवान् ही हैं, इसलिये शेष ब्रह्मा और महादेव दो रहे. उनकी विभूतियोंमें गणना की है. अथवा प्रमेय और प्रमाणरूप दोनों हैं. इसलिये ये दो कहे हैं. अर्थात् ये दोनों अन्य देवोंके समान केवल विभूतिरूप नहीं हैं. सर्व देवगण प्रसन्न हो प्रेमसे पुष्पवर्षा करते हुवे स्तुति करने लगे. नगाड़े बिना किसीके बजाये उनकी प्रेरणासे स्वतन्त्र ही बजने लगे, जिससे ब्रह्मादि देवोंने कायिक प्रसन्नता प्रकट की. दुन्दुभिका बजना यह पृथक् कर्त्तापन है, तो भी इससे ब्रह्मादि देवोंके मनकी प्रसन्नता प्रकट होती है. कारण कि उनकी प्रेरणासे वे बजने लगे थे और पुष्प-वृष्टि कायिकी-सेवा तथा स्तुति वाणीकी सेवा है. देवोंकी स्त्रियां पुरुषोंके धर्मके तुल्य होती हुई भी पृथक्, अकेली ही भगवान्के अधिक स्नेहके कारण नाचने लगी.

ब्रह्मा सबको उत्पन्न करता हैं, इसलिये उसको सर्व समान है और कंस महादेवजीका भक्त है तो इन्होंने भी अन्योंके साथ कैसे प्रसन्नता प्रकट की है? यदि यों कोई शङ्का करे तो उसके उत्तरमें कहा है कि 'विभूतयः' अर्थात् अन्य सब भगवान्की वे विभूतियें हैं, अतः स्वामी जो कार्य करे, उसका अभिनन्दन

विभूतियोंको करना ही चाहिये।।४२।।

आभासार्थ : जब भगवान्ने स्त्रियोंके सुखार्थ अवतार लिया है तथा बहुत निकट सम्बन्धवाली स्त्रियां जो कि मामियें हैं उनको विधवापन कैसे दिया? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि उनको साधारण ही दुःख हुआ था, जिसके दो कारण हैं. एक तो वे अपने पतियोंके दोषोंको जानती थीं. उन दोषोंके स्मरणसे उनको दुःख कम ही हुआ. दूसरा भगवान्में उनका विशेष आदर था. इन दोनों कारणों से उनको विशेष दुःख नहीं हुआ, यह बतानेकेलिए उनके चरित्रोंका 'तेषां स्त्रियः' श्लोकसे वर्णन करते हैं:

तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः।
तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः।।४३।।

श्लोकार्थ : हे महाराज ! उनकी स्त्रियां पतिके मरणसे दुःखित हो, सिर कूटती, आंखोंसे आंसू बहाती वहां आईं।।४३ ।।

व्याख्यार्थ : मल्ल आदिकोंकी तथा कंस आदि नवों भाइयोंकी स्त्रियां वहां आईं. हे महाराज यह सम्बोधन आश्चर्य प्रकट करनेकेलिये अथवा उत्साह बढ़ानेकेलिये दिया है, क्योंकि यह विषय लौकिक है. उसको यदि राजा सुनना न चाहे, तो यह सम्बोधन देकर सुननेकेलिये उत्साहित किया है. अपने पतियोंके मरनेसे ये सब स्त्रियां अति दुःखित देखनेमें आईं. पति शब्द न कहकर 'सुहृद्' शब्द कहनेका भाव बताते हैं कि अन्यायी थे, इस कारण पतित थे. अतः पति न कहकर 'सुहृद्' शब्द दिया है श्रुतिमें कहा है कि ''पत्नी हि सर्वस्य मित्रं'' सर्व मनुष्योंका मित्र अपनी पत्नी ही है, इसलिये यहां पतिको भी सुहृद् कहा है. मरनेसे दुःखी हुई थीं यदि भगवान् इनको न मारकर बन्दी बना देते तो वैसा दुःख न करती. मरनेके कारण जिनकी आंखोंसे आसूं गिर रहे हैं, वैसी वे सिरको कूटती हुई वहां आ गईं. शोकके तीन कार्य हैं. अर्थात् शोक होने पर ये तीन कार्य स्वतः हो जाते हैं. एक आंसू आनेका, जो अन्तःकरणका धर्म है. सिर पीटना, इन्द्रियोंका धर्म है. वहां(मृतकके स्थान पर वा सभ्योंकी सभामें) जाना, देहका धर्म है. कुलकी स्त्रियोंका ऐसे समय ही सभाओंमें आना होता है. दूसरे समय बाहर नहीं निकलती हैं।।४३।।

आभासार्थ : आकर जैसा देखा उसका वर्णन करते हैं:

शयानान्वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः।

विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः।।४४।।

श्लोकार्थ : वीर शैया पर सोए हुए पतियोंका आलिङ्गन कर, शोक करती हुई बार – बार आंसू बहाती हुई स्त्रियां सुस्वरसे विलाप करने लगीं ।।४४ ।।

व्याख्यार्थ : यहां वीर शैया कहनेका भावार्थ यह है कि रणाङ्गणमें, शैया पर शयन स्त्रियां कर सकती हैं, यह उनका अधिकार है. पतियोंको सोये हुवे देख स्त्रियोंमें स्नेह प्रकट हुआ, अतः पतियोंका आलिङ्गन करने लगीं. पश्चात् शोक करने लगीं और सुस्वरसे विलाप करने लगीं, क्योंकि वे उनकी पत्नियां थीं. उनका दिखावटी विलाप नहीं था, किन्तु हृदयके आन्तरिक दर्दसे विलाप करती थीं. जिसका चिह्न है बार–बार आंखोंसे आंसू टपकते थे. यह *लौकिकी भाषा है, जिस प्रकार देवकी आदिने पुत्रादिकोंके नाशसे रुदन किया था वैसे ही इनका भी रोदन है. भगवान् भक्तों पर कृपा करनेकेलिये यों करते हैं. यह बतानेकेलिये इस प्रकार निरूपण किया है।।४४।।

*.भागवतमें तीन भाषाएं हैं – लौकिकी, परमत और समाधि.

आभासार्थ : स्त्रियोंके विलापका ४ श्लोकोंमें 'हा नाथ'से प्रारम्भसे होकर वर्णन हुआ है:

स्त्रिय ऊचुः

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथवत्सल।

त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः।।४५।।

श्लोकार्थ : हा नाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हा दयालु ! हा अनाथ वत्सल ! आपके मरनेसे घर और प्रजा के साथ हम भी मरी हैं ।।४५ ।।

व्याख्यार्थ : प्रथम उनका शोक करती हैं. पश्चात् पुरीका, अनन्तर उनकी दुर्दशाका, बादमें ईश्वरके अपराधसे परलोकमें भी सुख न मिलेगा, यों कहकर प्रथम अपना शोक प्रकट करती हैं. 'हा' शब्दसे महादुःख प्रकट करनेमें जो नाथ आदि पांच विशेषण कहे हैं वे पांच पुरुषार्थके साधक हैं. जैसा कि 'नाथ' शब्द देकर यह बताया है कि आप 'नाथ' हैं, आपकी सेवासे हमारा 'धर्म' सिद्ध होता था. 'प्रिय'से बताया है कि आप प्रीतम हैं, इससे हमारा आपसे 'अर्थ' सिद्ध होता था. 'धर्मज्ञ'से बताया है कि आप धर्मको जाननेवाले हैं, अतः हमारा 'काम' आपसे सिद्ध होता था. 'करुण'से यह बताया है कि आप कृपालु हैं, जिससे हमारा मोक्ष भी सिद्ध होता था. 'अनाथ वत्सल' पदसे यह बताया है कि हम दीन

अनाथ आपके शरणागत हैं, यों भक्ति भी सिद्ध होती थी, ये पांच पुरुषार्थ आपके होते हुवे ही हमारे सिद्ध हो जाते थे. अब आपके मर जानेसे वे हम सब आपके घर सहित प्रजा समाप्त हो गई है. कोई भी किसी भी क्रियासे व्याप्त भले ही हो, वह जैसा कैसा भी प्रकारका मरण हेतु तो मारनेवाला ही होता है. धर्म शरीरसे, घरसे वा पुत्रोंसे भी सिद्ध हो सकता है. इस प्रकार एक पक्षका निराकरण किया है, क्योंकि हम सब मारे ही गये, अब धर्मकी सिद्धि कैसे हो सकेगी।।४५।।

आभासार्थ : यह मथुरापुरी तीर्थ है. इसमें जीते हुए वा मरने पर भी मोक्ष सिद्ध किया जा सकता है तो फिर भर्ताके मरनेसे शोक क्यों किया जाता है? यदि यों कहो तो उसका उत्तर 'त्वया विरहिता' श्लोकमें देती हैं:

त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ।
न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला।।४६।।

श्लोकार्थ : हे पुरुष श्रेष्ठ! आप इस पुरीके पति हैं, आपके बिना यह पुरी शोभा नहीं देती है, जैसे कि हम(लोग) कारण कि इसके उत्सव तथा मङ्गल सब नष्ट हो गए हैं।।४६ ।।

व्याख्यार्थ : आप स्वामीके बिना यह पुरी स्वयं नहीं शोभती है, तो वह दूसरोंका क्या उपकार कर सकेगीं? कारण कि उसके अपने उत्सव और मङ्गल नष्ट हो गये हैं.

पतिके मौजूद होने पर ही उत्सव और मङ्गल कार्य होते हैं, उसके जाने पर नहीं होते हैं. उनकी दृष्टिसे अमङ्गलवत् दिखता है, वाद्य बजने बन्द हो जानेसे उत्सव बन्द हो गये, अतः वह नहीं शोभती है. थोड़े दिन बाद शोभा देगी, इस पर कहती हैं कि नहीं, हमारी भांति वह कभी भी शोभित नहीं होगी. जैसे हम इसके बाद अशोभित ही रहेंगी वैसे ही यह पुरी भी. स्त्रियोंकी शोभा पतिसे होती है, पतिके विरहमें वे अशोभावाली हो जाती हैं. यदि कोई कहे कि आप(रानियों)के समान तो पुरी नहीं है, क्योंकि पुरी, एक(पति) राजाके जाने पर दूसरे(पति) राजावाली हो जाती है. इनके उत्तरमें कहती हैं कि यद्यपि पुरीका कोई दूसरा भी पति होगा, तो वह त्याज्य पति होगा. जैसा कि धुले हुवे पुराने कपड़े पहने जाने पर उनसे नवीन वस्त्रोंके समान शोभा नहीं होती है वैसे ही यहां भी होगा और भगवान् तो पुरीके राजा नहीं बनेंगे, यह जो स्त्रियोंने कहा तो स्त्रियोंके ये वचन सत्य ही हैं, किन्तु अब शङ्का यह उठी कि जब भगवान् पुरीके राजा नहीं बनेंगे तो वहां कैसे

रहा जायेगा? तो उसकेलिये कहा गया है कि तब वह पुरी छोड़ दी जानी चाहिये. इस पर उन्होंने(बड़े आर्त कण्ठसे) कहा हे पुरुषर्षभ अर्थात् हे पुरुषोंमें उत्तम।।४६।।

आभासार्थ: यदि स्त्रियोंके भाग्यमें विधवापन न लिखा होता तो यह मरता नहीं, अतः तुम्हारे दुर्भाग्यसे यह मरा है, तब विलाप क्यों करती हो? यदि यों कहो तो उसका उत्तर इस 'अनागसां' श्लोकमें करती हैं:

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहमुल्बणम्।
तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम्।।४७।।

श्लोकार्थ: आपने जो निष्पापी जीवोंका घोर द्रोह किया, जिससे इस दशाको प्राप्त हुए हो, कारण कि जो जीवोंसे द्रोह करता है उसको सुख नहीं मिलता है. अर्थात् भूत द्रोहकर कोई भी सुख नहीं पाता है।।४७।।

व्याख्यार्थ : निर्दोष प्राणियोंका तुमने पुत्र मारने आदिका बड़ा द्रोह किया है, उससे ही इस मृत्यु(रूप) दशाको प्राप्त हुवे हो, मैंने यदि ये अपराध किये हैं तो धर्म भी बहुत किया है, तो जैसे उस धर्मका फल नहीं हुआ वैसे इसका भी फल नहीं मिलना चाहिये, इसके उत्तरमें कहा है कि सब अधर्मोंमें विशेष अधर्म भूत(जीव) द्रोह है. बहुत धर्म करनेवाला भी यदि भूतोंका द्रोह करता है तो वह भी कल्याणको प्राप्त ही नहीं कर सकता है. द्रोह ऐसा जबरदस्त है जो सब धर्मोंको दबाकर अपना ही फल देता है।।४७।।

आभासार्थ: राजाओंका द्रोह करना स्वभाव सिद्ध है, यदि यों न करें तो किस रीतिसे फल(दंड) हो? जो ऐसी शंका हो तो उसके उत्तरमें इस 'सर्वेषामिह' श्लोकमें विशेष कहते हैं:

सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः।
गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित्सुखमेधते।।४८।।

श्लोकार्थ: यहां यह ही श्रीकृष्ण सकल प्राणियोंको पैदा करनेवाले तथा संहार करनेवाले हैं, इनसे द्रोह कर कोई भी कहीं भी क्या सुख प्राप्त कर सकता है? कदापि नहीं।।४८।।

व्याख्यार्थ : राजाका भी सर्व भूतोंसे द्रोह करने पर अनिष्ट ही होता है. उससे भी तुमने अन्य प्रकारसे जो महान् भूत द्रोह किया जिसका फल भी वैसा ही हुआ है, क्योंकि समस्त भूतोंका यह भगवान् उत्पन्न होनेका स्थान और नाशका

स्थान है. इससे मध्यमें भी अर्थात् पालनेका स्थान भी वह ही है. यह अर्थ योग्य है, कारण कि ब्रह्म अर्थात् भगवान् ही शास्त्रोंमें कारणपनसे कहा गया है. अतः उसकी अवहेलनाकर भूतों द्वारा प्राप्त सुख कभी भी नहीं होता है. कारण, भूतोंके आराध्य भगवान् ही हैं. मारक होनेसे और भयजनक होनेसे, एवं पालन कर्ता भी वही हैं. अतः सब उसके ही रूप हैं, जिससे उनके द्रोह करनेसे कहीं भी कुछ भी सुख नहीं प्राप्त होता है. इससे यह अवस्था तुमने अपने दोषोंसे आप ही की है।।४८।।

श्रीशुक उवाच

राजयोषित आश्वास्य भगवांल्लोकभावनः।

यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत्।।४९।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि लोकोंके पालक भगवान्ने राजाकी स्त्रियोंको सांत्वना दे, लोक रीतिके अनुसार मरे हुए सवोंकी क्रिया करवाई।।४९।।

व्याख्यार्थ : इस प्रकार कहे हुवे उनके(स्त्रियोंके) सत्यवचन सुनकर भगवान्ने उनको आश्वासन(धैर्य) दिया जिससे वे परमानन्दित हुईं, क्योंकि भगवान् शब्द कहनेसे कृष्णमें अलौकिक सामर्थ्य है. जिससे वचन मात्रसे दुःख दूरकर आनन्द दान करते हैं और आप लोकभावन हैं. अर्थात् आपकी शत्रु अथवा मित्रमें उदासीनता नहीं है दोनोंमें समान भावना है. अतः शत्रुको स्त्रियोंको भी धैर्य देकर उनका उपकार किया है. उन पर कृपा करके ही परलोककी क्रिया आपने करवाई है. इसलिये श्लोकमें 'यामाहु लौकिकीं संस्थां' कहा है. वह लौकिक क्रिया कौनसी? इसको स्पष्ट करते हुवे कहते हैं कि 'दाहादिक्रिया' दाहसे लेकर पिण्ड आदि सर्व क्रिया करवाईं. वे स्त्रियां पतियोंके साथ नहीं गई, क्योंकि भगवान्ने उनका दुःख मिटाकर आनन्द दान दे दिया था. यद्यपि अस्ति और प्राप्ति दुष्ट थीं, तो भी आगे लीला करनी है, इसलिये पतिके पीछे सती होनेकी बुद्धि नहीं दी. वचनसे उनको इसी प्रकार समझाया जिससे वे उनके पीछे मरजानेसे रुक गईं।।४९।।

आभासार्थ : इस प्रकार दुष्टका वध करके तथा मरनेके अनन्तरकी उस वक्त होनेवाली क्रियाएं करवाके, अनन्तर जिनकेलिए इतना कार्य किया, उन माता – पिताका लौकिक निरोध छुड़ाकर अपनेमें निरोध किया जिसका वर्णन

'मातरं पितरं' 'देवकी वसुदेवश्च' इन दो श्लोकों में कहते हैं:

मातरं पितरं चैव मोचियत्वाथ बन्धनात्।
कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसास्पृश्य पादयोः।।५०।।

श्लोकार्थ : फिर माता–पिताको बन्धनसे छुड़ाकर राम तथा कृष्ण दोनोंने उनके चरणोंमें सिर रखकर और उनके चरणोंका स्पर्शकर वन्दन किया ।।५० ।।

व्याख्यार्थ : श्लोकमें 'माता' शब्द पहले इसलिये दिया है कि मुख्य दुःख माताको ही था. यद्यपि उग्रसेन आदि बहुत कैद किये गये थे तो भी प्रथम इन दोको ही छुड़ाये. पीछे अन्य छुड़ाये तथा 'च' शब्द देकर यह बताया है कि निकटमें जो सेवक थे, उनको भी मुक्त किया. पहले निरोधसे दूर किये, अनन्तर बन्धनसे. पहला छुड़ाना मानस था, दूसरा कायिक था. दोनोंमें विलक्षणता बतानेकेलिये 'अथ' शब्द दिया है. नियोगके बाद जब कार्य सिद्धि होनेसे व्यग्रता भी नहीं रही तब फलके साधनरूप राम तथा कृष्ण प्रणाम करने लगे. यों करनेसे दोनों ही निरुद्ध होंगे. मस्तकसे चरणोंको छूकर उनको सत्यलोकसे ऊपर पहुंचाया. उनका केवल दुःख दूर नहीं करना था, किन्तु उनको फल देना है. जहां पुत्रको पितृभक्तिसे सत्यलोककी प्राप्ति होती है, वहां माता पिताको तो उच्च स्थान प्राप्त कराना योग्य ही है. चारों तरफ स्पर्श करनेसे सत्यलोकका उल्लङ्घनकर जैसे ऊपर लावै वैसा उपाय दोनोंने किया।।५०।।

आभासार्थ : इस प्रकार उत्कृष्ट फल दान देकर, अपने घर ले जानेसे, वे माता – पिता निरुद्ध होते हुए भी अनधिकारी न होवें, 'देवकी वसुदेवश्च' श्लोकमें करते हैं:

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ।
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ।।५१।।

श्लोकार्थ : देवकी तथा वसुदेवने दोनों पुत्रोंको जगदीश्वर जानकर नमस्कार किया, किन्तु उसका आलिङ्गन नहीं किया, क्योंकि शंकाशील हुए कि ये जगदीश्वर हैं, इनका आलिङ्गन कैसे करें? ।।५१ ।।

व्याख्यार्थ : 'च' समुच्चय अर्थमें है तथा एक भी गौण नहीं है. दोनोंकी समानता दिखानेकेलिये भी 'च' है. कंस आदिको मारनेसे और वैकुण्ठ पहुंचानेसे प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर समझ गये कि दोनों जगदीश्वर हैं. यों जानकर प्रणाम करने लगे, किन्तु उनको पुत्र समझ आलिङ्गन नहीं किया, क्योंकि मनमें शङ्का होने

लगी. ईश्वरमें सम्बन्धियोंको भी शङ्का होती है. प्रपञ्च कंसने ही नाश किया. आसक्ति तो थी ही,फल और साधन करने थे. उनमें फल वैकुण्ठकी प्राप्ति और साधन ज्ञान है. इन दोनोंकी प्राप्ति होने पर पूर्ण निरोधका निरूपण हुआ।।५१।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कन्धके अध्याय ४१,
राजस–प्रमेय अवान्तर प्रकरणके द्वितीय अध्यायकी श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण द्वारा
विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ.